सूर्यपुराण

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम

पूर्व सम्पादक 'जीवन-यज्ञ'–'युग-सस्कृति'
रचयिता 'मन्त्र महाविज्ञान'–'तन्त्र महाविज्ञान'
'उपासना महाविज्ञान'–'वैदिक मन्त्रविद्या'
और
'प्राणायाम के असाधारण प्रयोग'

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

●

सम्पादक :
डॉ० चमनलाल गौतम

●

●

प्रथम संस्करण :
१९७२

●

मुद्रक :
शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी
नव-ज्योति प्रेस,
सेठ भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

निवेदन

भारतवर्ष के पौराणिक साहित्य की शृङ्खला बहुत लम्बी है। अठारह पुराणों के पश्चात् अठारह उपपुराण और अठारह लघुपुराणों की नामावली भी सुनने में आती हैं। यद्यपि यह साहित्य व्यवस्थित नहीं है, और बाजार में जमीन पर पुस्तक फैलाकर बेचने वालों के यहाँ पुराणों के नाम पर दो दो, चार-चार आने की ऐसी छोटी पुस्तकें भी बिकती दिखाई पड़ती है, जिनकी गिनती कभी प्रामाणिक अथवा पठनीय पुस्तकों में नहीं की जा सकती। ऐसी दुकानों पर हमने "सूर्य पुराण" और "गणेश पुराण" आदि पुस्तकें देखी हैं जिनकी पृष्ठ संख्या चालीस पचास से अधिक नहीं होती। पर वास्तविक बात ऐसी नहीं है। उप पुराणों में भी "देवी भागवत" और "हरिवंश पुराण" जैसे ग्रन्थ पाये जाते हैं, जो कितने ही महापुराणों से बड़े और विषय विवेचन की दृष्टि से उत्तम हैं।

यह "सूर्य-पुराण" भी काफी बड़ा है, और विषय की क्रमबद्धता तथा भाषा की एक रूपता के कारण कितनी ही पौराणिक रचनाओं की अपेक्षा उच्च श्रेणी का माना जा सकता है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह पूर्णतया शैव है और इसमें हर जगह शिवजी की महानता का ही कथन किया गया है। इसके अनुसार शिव ही परब्रह्म हैं और पार्वती उनकी शक्ति। यह दोनों विश्व ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति और प्रलय करते हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवगण भी हैं, पर वे सब इन्हीं के बनाये और इनकी शक्ति से ही काम करने वाले हैं। अन्य देवता, जो स्वर्ग में निवास करते हैं वे तो सदैव इनके आश्रित रहते हैं, दुरात्मा दानवों से अपनी रक्षा की प्रार्थना किया करते हैं। विष्णु देवताओं का पक्ष लेकर दानवों से संग्राम करते हैं, उनका नाश करते हैं, पर उनको यह शक्ति शिवजी द्वारा ही प्रदत्त है। 'सूर्य पुराण' में कहा गया है कि विष्णु भगवान ने सहस्र नाम द्वारा शिवजी की स्तुति की और उनकी पूजा करते हुए जब एक कमल कम पड़ गया तो अपनी

आँख (कमल रूपी नेत्र) निकालकर चढादी। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उनको सुदर्शन चक्र दिया। यह कथा हम एकाध अन्य पुराण में भी पढ चुके हैं।

पर 'सूर्य पुराण' में सब से अधिक निन्दा की गई है वैष्णवों के चार आचार्यों में से एक 'माध्वाचार्य' की। सम्भवत उन्होने शैव सम्प्रदाय का विशेष विरोध किया होगा। इस लिये उनको किसी विधवा ब्राह्मणी का व्यभिचार से उत्पन्न पुत्र बतलाया है, और उनके जन्म का सम्बन्ध कामदेव के दहन की घटना से जोडा है। अर्थात् कामदेव के किसी सहयोगी ने माध्वाचार्य के रूप मे जन्म लेकर शिवजी से उस घटना का बदला लिया और उनकी निन्दा फैलाई।

भक्ति-मार्ग प्राय वैष्णवो से सम्बन्धित माना जाता है। उत्तर भारत मे तो सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य आदि जितने भक्तो का आविर्भाव हुआ है, वे सब विष्णु और उनके अवतारो—रामकृष्ण आदि के उपासक थे। पर 'सूर्य पुराण' म वैसा ही वर्णन शिव-भक्ति का किया गया है, और वह भी नारद तथा ब्रह्मा के सम्वाद के रूप मे जैसा वैष्णव पुराणो मे किया गया है। नारद के भक्ति विषयक प्रश्न करने पर ब्रह्मा जी ने कहा—"भगवान् शम्भु की भक्ति का योग देहधारियो के लिए बहुत ही दुर्लभ है। यदि किसी प्रकार वह भक्ति प्राप्त करली गई तो फिर उसके लिए कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नही रहता उस भक्ति के द्वारा ही इन्द्र और विष्णु का पद प्राप्त किया जा सकता है और मुझ ब्रह्मा का दर्जा भी प्राप्त कर लिया जाता है। शिव भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त होने म तो कोई सन्देह ही नही। जैसे अग्नि द्वारा ईंधन भस्म हो जाता है उसी प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों की राशि को भगवान् भव की भक्ति भस्म कर देती है। पर शिव मे ऐसी मति का स्थिर होना बडा कठिन है हे नारद! ससार रूपी सर्प के मुख म स्थित देह धारियो को विमोचन कराने वाले महादेव ही है, ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है। श्री शिवजी के पचाक्षरी मन्त्र 'ॐ नम शिवाय' की प्रशसा करते हुए कहा है कि 'शिवजी के मुख से सात करोड मन्त्र निकले, पर वे सब

मिल कर भी इस मन्त्र की सोलहवीं कला के तुल्य नहीं हो सकते।"

कलियुग-वर्णन भी पुराणों का एक लक्षण बन गया है। कदाचित् ही कोई ऐसा पुराण होगा जिसमे कलियुगी भ्रष्टाचार, दुराचार आदि का वर्णन हो। "सूर्य पुराण" के लेखक ने भी उस परम्परा का पालन किया है पर अधिक आक्षेप वैष्णवों पर ही किया है—

"कलियुग पूर्ण रूप से व्याप्त हो जाने पर अधम नर मायावाद ही किया करेंगे। ये सब योग की निन्दा करने वाले होंगे और अग्निहोत्र का विरोध करने लगेंगे। जो नर पुराणों को वेदान्त शास्त्र के समान कहते हैं वे नरकगामी हैं, केवल देखने में ही मनुष्य हैं। उनसे अच्छे तो बौद्ध जैन और कापालिक ही है, जो खुले तौर पर वेदों को अप्रामाण्य कहते हैं, और हम भी उनको अहंकारी समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। वे तो वैदिक मतावलम्बी है ही नहीं। पर जो वेदों को प्रमाण मानते हैं और साथ ही अनीश्वर वादियों का सा व्यवहार करते हैं घोर पापी तो वे ही हैं ऐसे लोग सन्यासी का वेष धारण करने पर भी जीविका के लिए तरह-तरह के धन्धे किया करते हैं। इनमें कितने ही प्रच्छन्न कौलिक (वाममार्गी) भी होते हैं। ये किसी सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों को नहीं जानते, केवल दाम्भ धन के लिए उनकी दृष्टि में अन्य सब देवता हेय (व्यर्थ) ही हैं तो वे क्यों वेदों को पढ़ते हैं और क्यों उन पर तर्क करते हैं। कलियुग में ऐसे किसी भी जाति के व्यक्ति को सर मुड़ाकर और काषाय (भगवा) वस्त्र पहिनाकर मठों का अधिपति बना दिया जायगा। इन "तत्त्ववादियों" में केवल पांच ही गुण होंगे — मठों का स्वामी बनना, सेवा करना, धन-संग्रह, दासियों से गमन और ईर्ष्या-भावना "ये तत्त्ववादी कहा करते हैं कि यह संसार ही परम सत्य है, क्योंकि वे शुद्ध सत्य को तो जानते ही नहीं। जिस समय कलियुग में पापों की उत्पत्ति होगी उस समय लोग इसी प्रकार दम्भ का भाव रखकर वैष्णव बन जायेंगे।"

'सूर्य पुराण' की सबसे मुख्य विशेषता भगवान शिव के स्वरूप का विवेचन है, जिसके सम्बन्ध में ग्रन्थ के आरम्भ में ही [illegible] द्वारा यह

गया है—"यह पुराण सभी वेदों के अर्थों की एक संग्रह स्वरूप है। शूली भगवान शम्भु का रूप ही परम तत्व है। उसके द्वारा ही यह समस्त विश्व व्याप्त है और किसी के द्वारा नहीं—ऐसा श्रुति ने बतलाया है। वही समस्त भूतों की आत्मा हैं और जगदम्बा उमा के साथ एक मात्र चैतन्य स्वरूप वाले हैं। केवल वे एक शिव ही अपनी लीला से बहुत रूपों मे शोभित हुआ करते हैं। वही स्वयं ब्रह्मा विष्णु के रूप में देवों के मध्य विराजमान दिखाई दिया करते हैं। एक बार ब्रह्मा आदि देवों द्वारा भगवान् शङ्कर से पूछा गया कि हे देव! आप कौन हैं? उस समय उन्होंने कहा कि मैं एक ही हूँ और अन्य कोई भी नहीं है।" आदि भूत और लीला विग्रह महादेव से ही आदि-सर्ग-काल में ब्रह्मा विष्णु की उत्पत्ति हुई थी। उन्ही एक आदि कर्त्ता—ईश्वर परमात्मा को उनका ज्ञान रखने वाले बहुत प्रकार का कहते हैं। उन्ही को इन्द्र तथा मित्र भी कहा जाता है—ऐसी श्रुति है।"

इस वर्णन से प्रकट होता है कि 'सूर्य पुराण' के रचियता ने आधार को ग्रहण किया है जो भारतीय तत्वज्ञान के मूल आधार उपनिषदों और गीता आदि में वर्णित है। उन्होंने केवल राम या कृष्ण के बजाय शङ्कर का नामोल्लेख कर दिया है। पर इस देश के मनीषी तो पहले ही कह चुके हैं कि कोई मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही नहीं यदि ईसा, मूसा, मुहम्मद का नाम लेकर भी त्याग, तपस्या, परोपकार का सच्चा धार्मिक जीवन व्यतीत करेगा तो वह अन्त में उस परमात्मा के निकट ही पहुँचेगा, जहाँ जाति, धर्म और नाम का कोई भेदभाव शेष नहीं रहता। यह विभिन्न देवताओं अथवा धर्म गुरुओं का नाम लेना तो देश, काल और मनुष्यों की कम या अधिक विकसित मनोवृत्ति से कारण होता है। इसलिये "सूर्य पुराण" के लेखक ने भगवान शिव को प्रधानता दी तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं है। शिवजी तो हमारे बड़े त्याग, तपस्या और समता के सबसे बड़े प्रतीक हैं, उनकी महिमा के सम्मुख कौन नतमस्तक न होगा।

—प्रकाशक

विषय सूची

सूर्यपुराणं

।। नैमिषारण्य प्रशंसादिकथन ।।

यस्याऽऽज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चि पालको हरि ।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने ।।१
तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणा क्षेत्रमुत्तमम् ।
मुनीनामाश्रयो नित्य नैमिषारण्यमुत्तमम् ।।२
शौनकाद्या महात्मान· शिवभक्ता महौजस ।
दीर्घसत्र प्रकुर्वन्तस्तत्रेशानस्य तुष्टये ।।३
तस्मिन्सत्रे महाभागो मुनीना भाग्यगौरवात् ।
आजगाम मुनीन्द्रष्टु सूतः पौराणिकोत्तम ।।४
तं दृष्ट्वा ते महात्मानो नैमिषारण्यवासिन· ।
प्रहृष्टा प्रष्टुमुद्युक्ता पप्रच्छू रोमहर्षणम् ।।५
यथ भगवता पूर्वमादित्येनाऽऽत्मरूपिणा ।
पुराण कथितं सौर तन्नो वक्तुमिहार्हसि ।।६
कृष्णद्वैपायनात्साक्षात्पूर्वं हि विदित्त त्वया ।
त्वत्तो नास्ति परा वक्ता पुराणाना महातप· ।।७

जिनकी आज्ञा से ब्रह्माजी इस जगत् का सृजन करने वाले होते हैं भगवान् विष्णु इस जगत् का पालन किया करते हैं तथा कालरुद्र नाम वाले प्रभु सबका सहार किया करते हैं उन पिनाकधारी प्रभु के लिए नमस्कार है ।।१।। समस्त तीर्थों से उत्तम तीर्थ सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र नैमिषारण्य परम उत्तम वन है जो मुनिगणों का नित्य ही आश्रय स्थल रहा करता है ।।२।। महान् ओज से सम्पन्न शौनकादि महात्मा भगवान् शिव के परम भक्त थे और वहा पर भगवान् शिव

की तुष्टि के लिये दीर्घ सत्र कर रहे थे ॥३॥ उस सत्र में मुनि मण्डल के भाग्य के गौरव से महा भाग और पौराणिकों में अत्युत्तम श्री सूतजी मुनियों के दर्शन करने के लिये आ गये थे ॥४॥ उन नैमिषारण्य में निवास करने वाले महात्माओं ने जब श्री सूतजी का दर्शन किया तो परम प्रसन्न हुए और कुछ पूछने के लिये उत्सुक होकर श्री रोमहर्षण जी उन्होंने पूछा ॥५॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवान् ! आत्म रूपी आदित्य भगवान् ने पहिले कैसे इस सौर पुराण का वर्णन किया था—इसे आप हम लोगों को बताने के लिये परम योग्य है ॥६॥ आपने तो साक्षात् श्रीकृष्ण द्वैपायन जी से पहिले ही सब कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आप तो महान् तपस्वी होने के साथ पुराणों के परम श्रेष्ठ वक्ता भी हैं। आप से अधिक अन्य कोई भी वक्ता नहीं हैं ॥७॥

सन्त्यन्ये बहव शिष्या अपि तस्य महात्मनः ।
तथाऽपि शिष्यवात्सल्यात्त्व पुराणेषु योजित ॥८
यान्यन्यानि पुराणानि त्वयोक्तानि महामुने ।
अन ते पार्वतीकान्तभवतो भक्तियुत स्विदम् ॥९
न यज्ञैर्न तपोभिर्वा न दानैर्न व्रतैस्तथा ।
शिवभक्तिमृते यस्मान्मुक्तिर्नास्तीति शुश्रुम ॥१०
देवोऽस्य भगवान्भानुरन्तर्यामी सनातन ।
यो ब्रूते सर्ववस्तूनां तत्त्व ज्ञात्वैव नान्यथा ॥११
अत श्रद्धा हि महती श्रोतु त्वद्वदनामृतम् ।
अस्माक वर्तते सूत रोमहर्षण सुव्रत ॥१२
नत्वा सूर्यं पर धाम ऋग्यजु सामरूपिणम् ।
त्रिसत्य त्रिजगद्योनि त्रिमार्ग च त्रितत्त्वगम् ॥१३
पुराण सप्रवक्ष्यामि सौर शिवकथाश्रयम् ।
यच्छ्रुत्वा मनुज शीघ्र पापकञ्चुकमुत्सृजेत् ॥१४

उन महान् आत्मा वाले भगवान् वद व्यास जी के अन्य भी बहुत स्वरण हैं किन्तु तो भी शिष्य पर अधिक प्रेम होने से उन्होंने आपको

ही पुराणो मे योजित किया था ॥८॥ हे महामुने ! यद्यपि अन्य जो भी पुराणो को आप ने कहा है किन्तु वे सब पार्वती के कान्त की भक्ति मे समर्थ नहीं हैं और यह सौर पुराण तो उनकी भक्ति से युक्त है ॥९॥ यज्ञ तप दान और व्रतो से बिना भगवान् शिव की भक्ति के जीवों की मुक्ति नही हुआ करती है—ऐसा ही हम लोग सुन रहे हैं ॥१०॥ यह भगवान् भानुदेव अन्तर्यामी और सनातन हैं जो कि समस्त वस्तुओ में तत्वो को जानकर ही बोला करते हैं और कभी भी अन्यथा नही बोलते हैं ॥११॥ इसी कारण से आपके मुख कमल के द्वारा इस अमृत के श्रवण करने की हे श्री सूत जी ! हे रोमहर्षण जी ! हम लोगो के हृदय मे बडी भारी श्रद्धा समुत्पन्न हो रही है क्योकि आप तो सुन्दर व्रतो को धारण करने वाले महा पुरुष हैं ॥१२॥ श्री सूत जी ने कहा—ऋगु-यजु और साम वेद के स्वरूप धारण करने वाले तीनो कालो मे सत्य स्वरूप वाले—तीनो जगतो के समुत्पन्न करने के कारण-परमधाम-तीनो मार्गों वाले और तीनो तत्वो के ज्ञाता भगवान् सूर्य्य को नमस्कार करके भगवान् शिव की कथा का आश्रय रूप सूर्य पुराण को मैं बतलाऊँगा जिस पुराण का श्रवण करके मनुष्य इस लोक मे बहुत ही शीघ्र पापों की पञ्जुरी का परित्याग कर दिया करता है अर्थात् समस्त पापो के आवरण से विमुक्त हो जाता है ॥१३-१४॥

श्लोकद्वयं पठेद्यस्तु श्लोकमेकमथापि वा ।
श्रद्धावान्पापकर्माऽपि स गच्छेत्परमं पदम् ॥१५
पौराणीं वृत्तिमाश्रित्य ये जीवन्ति द्विजातय ।
तन्मण्डलं विनिर्भिद्य ते सायुज्यं व्रजन्ति ते ॥१६
यवना यत्र रविं साक्षाच्चक्रुरा तस्य सुतो मनु ।
माहात्म्यं वर्णते धर्मोऽर्थस्तस्मादधिक द्विजा ॥१७
इदं पुराणं वक्तव्यं धार्मिकायाममूयवे ।
द्विजाय श्रद्दधानाय शिवे भक्तिविबुद्धये ॥१८
आसीन्मनुः सूर्यसुतो वर्तते यो महातपा ।
स कदाचिन्महाभागः नामिषारण्यं वनं ययौ ॥१९

प्रतर्दनस्य नृपतेर्यज्ञे विपुलदक्षिणे ।
तत्त्व विचारयामासुर्मिथो यत्र महर्षय ॥२०
अशक्तास्ते महाभागा भृग्वाद्यास्तत्त्वनिर्णये ।
एवं स्थितेषु विप्रेषु मायया मोहितात्मसु ॥२१

इस सौर पुराण की इतनी बड़ी महिमा है कि जो कोई भी इसके दो श्लोक अथवा केवल एक ही श्लोक का पाठ कर लिया करता है और परम श्रद्धा से युक्त होता है वह भले ही कितना ही पापो के कर्मों का करने वाला क्यो न हो इसके प्रभाव से सीधा पापो से मुक्त होकर भगवान् सूर्य देव के पद को प्राप्त हो जाया करता है ॥१५॥ जो द्विजाति गण पुराण पाठो एव प्रवचनो की वृत्ति को धारण कर के अपने जीवन का निर्वाह किया करते हैं वे उसके मण्डल का भेदन करके उनके सायुज्य की प्राप्ति किया करते हैं ॥१६॥ हे द्विजो ! जहा पर स्वय साक्षात् रविदेव वक्ता है और उसके श्रोता उनके सुत मनु हैं उस भगवान् शम्भु के माहात्म्य को कहा जाता है क्योकि इससे अधिक अन्य कुछ भी नही है ॥१७॥ यह पुराण ऐसी उत्तमता और परम गोपनीयता में रखने वाला है कि इसका श्रवण किसी परम धार्मिक और किसी को भी असूया न करने वाले ऐसे पुरुष को ही कराना चाहिए जो द्विज हो और परम श्रद्धालु एव भगवान् शिव के चरणो मे ही अपनी बुद्धि को समर्पित कर देने वाला हो ॥१८॥ मनु भगवान् सूर्य के सुत थे जो महान् तपस्वी हैं। वह महागण किसी समय मे नामिश नामक वन मे गये थे ॥१९॥ जहा पर विपुल दक्षिणा वाले प्रतर्दन राजा के यज्ञ मे महर्षि लोग परस्पर मे तत्त्व का विचार कर रहे थे ॥२०॥ वे सब महाभाग भृगु आदि तत्त्व के निर्णय करने मे असमर्थ हो रहे थे और वहाँ पर माया से मोहित आत्मा करने वाले सब विप्रगण इसी प्रकार से सशय मे मग्न स्थित होकर बैठे थे । ॥२१॥

स दयाविष्टचित्तेषु वागभूदशरीरिणी ।
सत्यं मुनयः विप्रेन्द्रास्तपोज्ञानविवर्हणम् ॥२२

विलिप्त वाले हो गये हैं ॥२७॥ ये सब भी विश्व के अन्तर्यामी विभु मुझ परम देव का दर्शन प्राप्त करें ॥२८॥

इति दृष्ट्वा रविं साक्षात्प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।
मेने कृतार्थमात्मानं मनुर्वैवस्वतस्तदा ॥२९
आत्मन्यात्मानमाधाय सर्वभावेन स यमी ।
स्तुतिं चकार स मनुर्मुनिभिः सह सुव्रतः ॥३०
नमो नमो वरेण्याय वरदायांशुमालिने ।
ज्योतिर्मय नमस्तुभ्यमनन्तायाजिताय ते ॥३१
त्रिलोकचक्षुषे तुभ्यं त्रिगुणायामृताय च ।
नमो धर्माय हंसाय जगज्जननहेतवे ॥३२
नरनारीशरीराय नमो मीढुष्टमाय ते ।
प्रज्ञानायाखिलेशाय सप्ताश्वाय त्रिमूर्तये ॥३३
नमो व्याहृतिरूपाय त्रिलक्षायाऽऽशुगामिने ।
हर्यश्वाय नमस्तुभ्यं नमो हरितवाहवे ॥३४
एकलक्षविलक्षाय बहुलक्षाय दण्डिने ।
एकसंस्थाद्विसंस्थाय बहुसंस्थाय ते नमः ॥३५

श्री सूत जी ने कहा—उस समय में वैवस्वत मनु ने इस प्रकार से साक्षात् भगवान् रवि का अपने सामने स्थित हुए प्रत्यक्ष रूप से दर्शन किया तो उन्होंने अपने आपको पूर्णतया कृतार्थ मान लिया था ॥२९॥ उन सुव्रत मनु जो बहुत ही संयमी थे अपनी आत्मा में आत्मा का आधान करके सर्वभाव से उन सब मुनियों के साथ सूर्य भगवान् का स्तवन किया था ॥३०॥ मनुजी ने कहा—वरदान प्रदान करने वाले—अंशु माली और वरेण्य आपके लिये बारम्बार नमस्कार है। हे ज्योतिर्मय ! अनन्त एवं अजित आपकी सेवा में नमस्कार है ॥३१॥ तीनों लोकों के चक्षु स्वरूप-त्रिगुण और अमृत आपकी सन्निधि में प्रणाम समर्पित है। इस सम्पूर्ण जगत् के जनन के कारण धर्म और हंस आपके लिये नमस्कार है ॥३२॥ नर और नारी दोनों

के स्वरूप वाले सबके ईश-प्रज्ञान रूप सात अश्वों वाले-त्रिमूर्त्ति और भी दुष्टम के लिये हम सबका नमस्कार है ॥३३॥ व्याहृतियों के स्वरूप वाले-आशुगमन करने वाले त्रिलक्ष-हरित बाहुओं वाले और हर्यश्व आपके लिये नमस्कार है ॥३४॥ एक लक्ष विलक्ष बहुलक्ष-दण्डी-एक सत्य द्विसत्य और बहु सत्य आपके लिये नमस्कार है ॥३५॥

शक्तित्रयाय शुक्लाय रवये परमेष्ठिने ।
त्वं शिवस्त्वं हरिर्देव त्वं ब्रह्मा त्वं दिवस्पतिः ॥३६
त्वमोंकारो वषट्कारः स्वधा स्वाहा त्वमेव हि ।
त्वामृते परमात्मानं न तत्पश्यामि दैवतम् ॥३७
एवं स्तुत्वा मनुः प्राह भगवन्तं त्रयीमयम् ।
मुनिभिः सह धर्मात्मा सम्यग्दर्शनकाङ्क्षिभिः ॥३८
किं तच्छ्रेयस्करं तत्वं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ।
कस्माद्विश्वमिदं जातं कस्मिन्वा लयमेष्यति ॥३९
कस्य ब्रह्मादयो देवा वशे तिष्ठन्ति सर्वदा ।
तदेकमथवाऽनेकमुभयं वा वद प्रभो ॥४०
येन वा ज्ञायते सम्यगमश्व इतीरितम् ।
ज्ञाते तस्मिंस्तु किं रूपं तस्य ज्ञानं किमात्मकम् ॥४१
चरितं तस्य किं तात किं तीर्थं तदधिष्ठितम् ।
येषामनुग्रहस्तस्य तीर्थे निवसता प्रभो ॥४२
लक्षणं च पुराणानां व्रतानां च क्रमो यथा ।
वर्णानामाश्रमाणां च वर्णाचारविधिः कथम् ॥४३
श्राद्धं कथं वा क्रियते प्रायश्चित्तविधिः कथम् ।
एतत्सर्वं हि भगवन्पृष्टं वक्तुमिहार्हसि ॥४४
एवं मनोर्वचः श्रुत्वा भगवान्भास्करो द्विजाः ।
यत्पृष्टं तदशेषेण वक्तुं समुपचक्रमे ॥४५

तीन शक्तियों वाले-शुक्ल-परमेष्ठी और रविदेव के लिये नमस्कार है। हे भगवन् ! आप ही शिव हैं-आप हरि हैं-आप ही ब्रह्मा हैं

और आप ही दिवस्पति हैं ॥३६॥ आप ही ओङ्कार हैं वषट्कार है-और आप ही स्वाहा तथा स्वधा हैं। आपके विना उन परम दैवत परमात्मा को नही देख पाता हूँ ॥३७॥ इस रीति से मनु देव ने सूर्य देव का स्तवन करने जो कि भगवान् त्रयीमय हैं भलीभांति दर्शन का आकाङ्क्षा रखने वाले मुनियो के ही साथ मे उन भगवान् से कहा—॥३८॥ मनुदेव ने प्रार्थना की—हे भगवन्! वह कौनसा श्रेय करने वाला तत्त्व है जो कि वेदान्तो में प्रतिष्ठित है? किस से यह इतना विशाल विश्व समुत्पन्न हुआ है अथवा फिर अन्त मे किस मे जाकर यह लय को प्राप्त हो जाया करता है? ॥३९॥ ये समस्त ब्रह्मा आदि देवता सर्वदा किस के वश मे स्थित रहा करते हैं। हे प्रभो! आप हम लोगों को कृपा करके यह बतलाइये कि वह तत्त्व एक है या अनेक या अनेक स्वरूप वाला है अथवा दोनो ही प्रकार का है? ॥४०॥ यह अर्थ भलीभांति किसके द्वार, जाना जाया करता है और उसका ज्ञान हो जाने पर किस प्रकार का रूप होता है तथा उसका ज्ञान किस स्वरूप वाला है? ॥४१॥ हे तात! उसका क्या चरित है और कौनसा तीर्थ उसम अधिष्ठित है? हे प्रभो! और उसके तीर्थ मे निवास करने वाले किन के ऊपर उनका अनुग्रह हुआ करता है? ॥४२॥ पुराणो का लक्षण और व्रतो का क्रम तथा वर्णों का और आश्रमो का वर्णाचार विधि किस प्रकार की होती है? ॥४३॥ हे भगवन्! श्राद्ध कैसे किया जाता है तथा प्रायश्चित्तों के करने का क्या विधान है? यह सभी हमारे पूछने का विषय है उन सबका आप वर्णन करने के लिये परम सुयोग्य महापुरुष है ॥४४॥ हे द्विजो! इस प्रकार से इस वचन को भगवान् भास्कर ने श्रवण किया था और जो भी कुछ उन से पूछा गया था वह सभी वर्णन करना उन ने आरम्भ कर दिया था ॥४५॥

॥ शिव महिम वर्णन ॥

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ।
पुराणेऽस्मिन्महाभाग सर्ववेदार्थसंग्रहे ॥१
तत्तत्त्वं यद्भगवतो रूपमीशस्य शूलिनः ।
विश्वं तेनाखिलं व्याप्तं नान्येनेत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥२
स एवात्मा समस्तानां भूतानां मनुजाधिप ।
चैतन्यरूपो भगवान्महादेवः सहोमया ॥३
एकोऽपि बहुधा भाति लीलया केवलः शिवः ।
ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण देवदेवो महेश्वरः ॥४
पृष्टो ब्रह्मादिभिर्देवैः कस्त्वं देवेति शंकरः ।
अब्रवीदहमेवैको नान्यः कश्चिदिति श्रुतिः ॥५
आत्मभूतान्महादेवाल्लीलाविग्रहरूपिणः ।
आदिसर्गे समुद्भूतौ ब्रह्मविष्णू सुरोत्तमौ ॥६
तमेकं परमात्मानमादिमध्यान्तमीश्वरम् ।
प्राहुर्बहुविधं सन्तो द्वन्द्वं मिलितमिति श्रुतिः ॥७

श्री भानुदेव ने कहा—हे पुत्र ! जिसमें जो भी तत्त्व प्रतिष्ठित है उसको मैं बतलाऊँगा तुम सावधान होकर श्रवण करो । यह पुराण हे महाभाग ! सभी वेदों के अर्थों का एक संग्रह स्वरूप है ॥१॥ शूली ईश भगवान् का जो रूप है वही परम तत्त्व है । उसके द्वारा ही सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है अन्य किसी के द्वारा नहीं है—ऐसा ही श्रुति ने बतलाया है ॥२॥ हे मनुजों के स्वामिन् ! वह ही समस्त भूतों की आत्मा है और जगदम्बा उमादेवी के साथ भगवान् महादेव चैतन्य स्वरूप वाले हैं ॥३॥ केवल वे एक ही शिव अपनी लीला से बहुत प्रकार के स्वरूपों में शोभित हुआ करते हैं । वही स्वयं ब्रह्मा-विष्णु आदि के स्वरूप के द्वारा देवों के भी देव महेश्वर सर्वत्र विराजमान दिखाई दिया करते हैं ॥४॥ एक बार ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा भगवान् शङ्कर से पूछा गया था कि हे देव ! आप कौन हैं । उस समय

म उनसे उन्होने स्वय ही कहा था कि मैं एक ही हूँ और अन्य कोई भी नही है–ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ।।५।। आदि भूत और लीला से विग्रह तथा रूप के धारण करने वाले महादेव से ही जो आत्म भूत हैं, आदि सर्ग काल मे सुरो मे उत्तम ब्रह्मा और विष्णु ये दोनो समुत्पन्न हुए थे ।।६।। उन्ही एक आदि कर्त्ता ईश्वर परमात्मा को उसके ज्ञान रखने वाले उनको बहुत प्रकार का कहते हैं । उन्ही को इन्द्र तथा मित्र भी कहा करते है—ऐसी श्रुति है ।।७।।

न तस्मादधिक कश्चिन्नाणीयानपि कश्चन ।
तेनेदमखिल पूर्ण शङ्करेण महात्मना ।।८
मुमुक्षुभि सदा ध्येय शिव एको निरञ्जन ।
सर्वमन्यत्परित्यज्य मुक्त एव विमुच्यते ।।९
धर्मार्थकाममोक्षाणा प्रायणे कारण परम् ।
शिवभक्ति सदा सत्य नान्यत्किचन भूतले ।।१०
त्रिलोका सुखकामो यस्तेन पूज्य सदाशिव ।
शिवभक्तिमृते मोक्ष युत स्यात्तार्य देहिनाम् ।।११
शिवभक्त्या धन विद्या यश शत्रुक्षयस्तथा ।
प्राप्यते विजय सर्व सत्यमत्र न सशय ।।१२
रोगक्षयस्तथाऽरोग्य यद्यद्धि मनसेच्छति ।
जनस्तत्सर्वमाप्नोति वेदस्य वचन यथा ।। १३
यदा ललाटे धात्रा हि लिखित सौख्यमुत्तमम् ।
शिवभक्तौ तदा बुद्धिर्जायते नान्यथा ध्रुवम् ।।१४

उनसे अधिक भी कोई नही है और उनसे अणीयान् अर्थात् सूक्ष्म भी कोई नही है । उन्हीं महात्मा भगवान् शङ्कर के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण हो रहा है । तात्पर्य यह है कि इस विश्व म जो भी कुछ जड-चेतन दिखाई देता है वह सभी उन्ही का स्वरूप है ।।८।। जो मुक्ति की अभिलाषा रखने वाले प्राणी हैं उनके द्वारा एक निरञ्जन भगवान् शिव का ही सदा ध्यान करना चाहिए और अन्य सबका त्याग कर देना चाहिए । इससे जो मुक्त होता है वह भी विमुक्त हो जाया करता है ।।९।। धर्म अर्थ-काम और मोक्ष के प्रायण मे शिव भगवान्

ही परम कारण स्वरूप है। भगवान् शिवजी भक्ति सर्वदा सत्य है और इसके सिवाय भूतल मे अन्य कुछ भी नही है अर्थात् यही एक परमसार वस्तु है ॥१०॥ जो इस त्रिलोकी मे सुख की कामना करने वाला है उसको सदा भगवान् शिव की पूजा करनी ही चाहिए। भगवान् शिव की उपासना के बिना सब देहधारियो को सुख कहाँ पर है अर्थात् सुख हो ही नही सकता है ॥११॥ भगवान् शिव की भक्ति के द्वारा ही धन-विद्या-यश-शत्रु नाश-विजय सभी कुछ प्राप्त किया जाता है—यह सर्वथा सत्य है और इसमे लेशमात्र भी संशय नही है ॥१२॥ रोगो का क्षय आरोग्य आदि जो-जो भी प्राणी मन से चाहा करता है मनुष्य उन सभी को प्राप्त कर लिया करता है—ऐसा ही वेद के वचन के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है ॥१३॥ जब ऐसी ही शिव भक्ति की महिमा है तो मनुष्य उसे क्यों नहीं किया करते हैं—इस आशङ्का का समाधान बताया जाता है कि यदि विधाता ने ललाट मे जिस समय मे परमोत्तम सुख की प्राप्ति का उल्लेख कर दिया है तो ही मनुष्यों की बुद्धि में शिव की भक्ति समुत्पन्न हुआ करती है अन्यथा निश्चित रूप से ऐसी बुद्धि ही नहीं हुआ करती है ॥१४॥

न तस्य कर्मकार्यं वा बन्धमुक्ती महेशितुः।
आनन्दरूपया गौर्या क्रीडति स्म महेश्वरः ॥१५

अक्षर परमं व्योम शैवं ज्योतिरनामयम्।
यस्तन्न वेद किं वेदैर्ब्राह्मणस्य भविष्यति ॥१६

नान्यो वेद्य स्वयंज्योती रुद्र एको निरञ्जनः।
तस्मिञ्ज्ञातेऽखिलं ज्ञातमित्याहुर्वेदवादिनः ॥१७

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शक्रश्चान्ये दिवौकसः।
अद्याप्युपायैर्विविधैः शंभोर्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥१८

न दानैर्न तपोभिर्वा नाश्वमेधादिभिर्मखैः।
भक्त्यैवानन्यया राजन्नाप्यते भगवाञ्छिवः ॥१९

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

भर्गाद्विश्वस्य भरणाद्विश्वयोनेरुमापते ॥२०
तस्य ज्ञानमयी शक्तिरव्यया गिरिजा शिवा ।
तया सह महादेव सृजत्यवति हन्ति च ॥२१ /

उन महेश्वर भगवान् का न तो कर्म करने के योग्य है अर्थात् कोई भी कर्म नही करना है और न उनका बन्ध तथा मुक्ती ही है। महेश्वर भगवान् आनन्द स्वरूप वाली जगदम्बा गौरी के साथ क्रीडा किया करते थे ॥१५॥ भगवान् शिव अक्षर-परम व्योम अन्तमय शैव ज्योति हैं। जो उनको नही जानता है उस ब्राह्मण या वेदों से क्या कल्याण होगा ॥१६॥ इस लोक में अन्य कोई भी जानने के योग्य नही है। केवल एक स्वयं ज्योति निरञ्जन रुद्र भगवान् ही जानने के योग्य तत्त्व हैं। वेदो के वाद करने वाले लोग यही कहते हैं कि उस ज्योति के ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सभी कुछ का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है ॥१७॥ मैं ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र तथा अन्य देवगण हैं। आज भी विविध उपायो से हुए प्राणी भगवान् शम्भु के दर्शन की आकाङ्क्षा रखने वाले हैं ॥१८॥ भगवान् शिव का ज्ञान हे राजन्! केवल एक अनन्य भक्ति हुआ करता है अन्य कोई भी इसके प्राप्त करने का नही है। दान-तप और अश्वमेध आदि बड़े-बड़े मख भी इसके साधन नही हो सकते हैं ॥१९॥ भर्ग-विश्व के भरण विश्व की योनि और उमा के स्वामी भगवान् शिव का स्थल है जहाँ पर मनके ही साथ वाणी भी विरत हो जाया करती हैं। अर्थ यह है कि वहाँ मन-वाणी और बुद्धि किसी की भी पहुंच नहीं है ॥२०॥ उनकी ज्ञानमयी शक्ति अव्यया गिरिजा शिवा ही है। उसी के साथ महादेव जगत् का सृजन-पालन और संहार किया करते है। तात्पर्य यह है कि शिव की शक्ति ही की महिमा से सभी कुछ हुआ करता है ॥२१॥

आचक्षते तयोर्भेदमज्ञा न परमार्थत ।
अभेद शिवयो सिद्धो वह्निदाहकयोरिव ॥२२
माया सा परमा शक्तिरक्षरा गिरिजाऽव्यया ।
मायाविन्दारमत्रो रुद्रस्तज्ज्ञात्वा शम्भो जयेत् ॥२३

स्वात्मन्यवस्थितं देवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
भक्त्या परमया राजञ्ज्ञात्वा पाशैर्विमुच्यते ॥२४
सकलं तस्य भासैव भाति नान्येन शंकरः ।
तस्मिन्प्रकाशमाने हि नैव भान्त्यनलादयः ॥२५
तस्मिन्महेश्वरे गूढे विद्याविद्ये क्षराक्षरे ।
विधातरि जगन्नाथे विश्वं भाति न वस्तुतः ॥२६
तस्मिन्महेश्वरे विश्वमोतं प्रोतं न संशयः ।
तस्मिञ्ज्ञातेऽखिलैः पाशैर्मुच्यते मनुजेश्वरः ॥२७
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा मुनयो मनवस्तथा ।
सर्वे क्रीडनकास्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥२८

जो अक्ष पुरुष हैं वे ही उन दोनों का भेद बतलाया करते हैं कि शिव और उमा दो भिन्न शक्तियां हैं परमार्थ रूप से शिव और शिवा का भेद नहीं होता है—यह परम सिद्ध सिद्धान्त है जैसे अग्नि और में कोई भेद नहीं हुआ करता है क्योंकि जो अग्नि है वह दाहक भी है ॥२२॥ उमा साक्षात् माया स्वरूपिणी हैं। वही परमाशक्ति है। वह अक्षरा-अव्यया गिरिजा है। रुद्र मायी विश्व स्वरूप वाले हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी अमृती हो जाया करता है ॥२३॥ हे राजन् ! अपनी ही आत्मा के अन्दर अन्तर्यामी के स्वरूप से विद्यमान है अर्थात् बहुत ही निकटतम है। विश्व में भी सर्वत्र व्यापी है ऐसे देव ईश्वर हैं। उनका ज्ञान परमोत्कृष्ट भक्ति के ही द्वारा होता है और उसको पाकर यम की पाशों से छुटकारा पा जाया करता है ॥२४॥ उनकी दीप्ति से इस सबका भान होता है अन्य के द्वारा यह भासित नहीं हुआ करता है ऐसे ही भगवान् शङ्कर हैं। उनके प्रकाशमान होने पर तेजस्वी भी परम तेजः सम्पन्न अग्नि आदि कुछ भी प्रकाश नहीं दे सकते हैं ? अर्थात् इस तेज के सामने सभी अन्य तेज निस्तेज से हो जाया करते हैं ॥२५॥ उन परम गूढ़-विद्या और अविद्या रूप वाले—क्षर एवं अक्षर रूप-विधाता-जगत् के स्वामी महेश्वर प्रभु में

वास्तविकता से यह विश्व भान नहीं किया करता है ॥२६॥ उस विश्वेश्वर में महेश्वर में यह सम्पूर्ण विश्व ओत-प्रोत है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उन प्रभु का ज्ञान हो जाने पर मनुज समस्त पाशों से विमुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ उन्हीं देवों के भी देव भगवान् शूली के ये सब ब्रह्मा-विष्णु आदि समस्त देवगण-मुनिमण्डल तथा मनु प्रभृति सब खिलौने हैं ॥२८॥

स एवैको न चानेको न द्विरूप कदाचन ।
तस्याऽऽज्ञयाऽखिलं विश्वं वर्तते तन्नियन्त्रितम् ॥२९
आदिसर्गे महादेवो ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ।
दक्षिणाङ्गाद्विरूपाक्ष सृष्ट्यर्थं लीलया किल ॥३०
तस्मै वेदान्पुराणानि दत्तवानग्रजन्मने ।
वासुदेव जगद्योनि सत्त्व द्रिक्त सनातनम् ॥३१
असृजत्पालनार्थं च वामभागान्महेश्वरः ।
हृदयात्कालं रुद्राख्य जगत्संहारकारकम् ॥३२
असृजद्योगिना ध्येयो निर्गुणस्तु स्वयं शिवः ।
विश्व तस्माद्धि सभूत तस्मिंस्तिष्ठति शकरे ॥३३
लयमेष्यति तत्रैव त्रयमेतत्स्वलीलया ।
स एवाऽऽत्मा महादेव सर्वेषामेव देहिनाम् ॥३४
ज्ञानेन भक्तियुक्तेन ज्ञातव्यः परमेश्वरः ।
न पश्यामि महादेवादधिक देवतान्तरम् ॥३५

ये प्रभु सर्वदा एक ही हैं और कभी भी दो रूप वाले नहीं हैं और ये अनेक नहीं हैं। उनकी आज्ञा से यह सम्पूर्ण विश्व उनके ही द्वारा नियन्त्रित रहा करता है। २९॥ सर्ग के आदि काल में प्रभु ने ब्रह्माजी का सृजन किया था। उस समय में विरूपाक्ष प्रभु ने लीला से ही सृष्टि की रचना करने के लिये अपने दाहिने अङ्ग से इनका सृजन किया था ॥३०॥ फिर उनको जो कि अग्रजन्मा थे सब वेदों को और पुराणों को प्रभु ने दे दिया था। इसके अनन्तर रक्षा की हुई सृष्टि के

पालन करने के लिय सत्त्वादिक्त जगत् की योनि-सनातन वासुदेव की रचना की थी ॥३१॥ महेश्वर भगवान् ने विष्णु भगवान् की रचना अपने वाये भाग मे की थी और आपने हृदय के भाग स काल रुद्र नाम वाले देव की रचना की थी जो इस जगत् के सहार को करने वाले हैं ॥३२॥ योगियो के ध्यान करने के योग्य निर्गुण शिव भगवान् ने स्वय विश्व का सृजन किया था तथा उन्ही से यह समुत्पन्न हुआ था उसी मे शङ्कर स्थित भी रहा करते हैं ॥३३॥ ये तीनो उनकी ही लीला से उन्ही मे लय को प्राप्त हो जायेंगे। वे ही महादेव सब देह-धारियो की आत्मा हैं। वे परमेश्वर भक्ति से युक्त ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होते हैं। मैं तो महादेव भगवान् से अधिक अन्य किसी भी देवता को नही देखता हूं ॥३४-३५॥

वेदा अपि तमेवार्थं माहु· स्वायभुवेऽन्तरे ।
य प्रपश्यन्ति विद्वासो योगिन क्षपिताशया ।
नियम्य करणग्राम स एवाऽऽत्मा महेश्वर· ॥३६
ब्रह्मविष्ण्विन्द्रचन्द्राद्या यस्य देवस्य किंकरा ।
यस्य प्रसादाज्जीवन्ति स देव पार्वतीपति ॥३७
न जानन्ति पर भाव यस्य ब्रह्मादय सुरा ।
अद्यापि न वय विद्म स देवस्त्रिपुरान्तक· ॥३८
शृण्वन्तु देवता सर्वा सत्यमस्मद्वच परम् ।
नास्ति रुद्रान्महादेवादधिक दैवत परम् ॥३९
न यथा कूर्मरोमाणि शृङ्ग न शशमस्तके ।
न यथाऽस्ति वियत्पुष्प तथा नास्ति हरात्परम् ॥४०
शिवभक्तिमृते यस्तु मुक्तमाप्तुमिहेच्छति ।
अजागलस्तनादेव स दुग्ध पातुमिच्छति ॥४१
महादेव विजानीयादहमस्मीति पण्डित ।
अन्यथिकमस्मादप्यस्ति ज्ञातव्य मुविचारितैनवे ॥४२

स्वायम्भुव अन्तर में वेद भी उसी को ही अर्थ के रूप म बतलाते

हैं। वेदों ने कहा था—अचित आशय वाले विद्वान् योगिगण जिसको देखा करते हैं और अपनी सब इन्द्रियों को नियमित कर लिया करते है वह ही महेश्वर भगवान् आत्मा हैं ॥३६॥ जिन देवेश्वर प्रभु के ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र और चन्द्र प्रभृति समस्त देवगण किङ्कर हैं और जिनके ही प्रसाद से ये सब जीवित रहा करते हैं वह पार्वती के पति महादेव ही सर्वोपरि देवेश्वर हैं ॥३७॥ ब्रह्मादि देवगण भी जिसके प्रभाव को नही जानते हैं और अभी तक भी हम लोग भी उनके स्वरूप को नही समझा करते हैं वही देव त्रिपुरासुर के अन्त करने वाले हैं ॥३८॥ सब देवगण अब हमारा यह परम सत्य वचन श्रवण कर लेवें कि महादेव भगवान् रुद्र से अधिक अन्य कोई भी परम देव नही है और वही सर्वोपरि विराजमान् देव हैं ॥३९॥ जिस तरह से कर्म के रोम नही होते हैं और शश (खरगोश) के मस्तक में सींग नही रहा करते है तथा जैसे आकाश मे पुष्प नही होते हैं तात्पर्य यह है कि ये उपर्युक्त तीनो बातें असम्भव है ठीक उसी भाति यह भी सत्य है कि हर भगवान् से पर कोई देवता नही है ॥४०॥ जो पुरुष भगवान् शिव की भक्ति के बिना ही इस लोक मे सुख प्राप्त करने की इच्छा किया करता है उसकी यह इच्छा भी इसी तरह से समझना चाहिए जिस तरह से अजा के गले मे होने वाले स्तन से कोई दूध पीने की इच्छा किया करते हों क्योकि गले के स्तन से दूध कभी निकलता नही है और ऐसी इच्छा करना निरर्थक ही होती है। वैसे ही शिव भक्ति के बिना सुख भी नही पाया जा सकता है ॥४१॥ मैं पण्डित हूँ–अर्थात् ज्ञाता हूँ–इस भावना से महादेव प्रभु का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मुक्ति के लिये इसका ज्ञान करना परमावश्यक है कि अन्य भी कुछ उनके अतिरिक्त है क्या ॥४२॥

ब्राह्मी नारायणी रौद्री पूजयित्वा महेश्वरीम् ।
यत्प्रपश्यन्ति योगीन्द्रास्तद्विद्याच्छांकरं पदम् ॥४३॥
क्रमाच्चक्राणि चक्रम्य शक्तिन्यामुपरि स्थितम् ।
यदभिव्यज्यते ज्योतिस्तद्विद्याच्छांकरं पदम् ॥४४

देवयानपथं हित्वा पितृयाणं तथोत्तरम् ।
गगनाद्यो रवः सूक्ष्मः शंकरस्य स वाचकः ॥४५॥
विश्वतश्चक्षुरीशानस्त्रिशूली विश्वतोमुख. ।
जनकः सर्वभूतानामेक एव महेश्वर. ॥४६॥
बालाग्रमात्रं हृत्पद्मे स्थितं देवमुमापतिम् ।
येऽनुपश्यन्ति विद्वांसस्तेषां शान्तिर्हि शाश्वती ॥४७॥
पृथिव्यां तिष्ठति विभुः पृथिवी वेत्ति नैव तम् ।
रूपं च पृथिवी यस्य तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥४८॥
अप्सु तिष्ठति नैवाऽऽपस्तं विदुः परमेश्वरम् ।
आपो रूपं च यस्यैव नमस्तस्मै जलात्मने ॥४९॥

ब्राह्मी–नारायणी–रौद्री महेश्वरी शक्ति को पूत करके योगीन्द्र लोग जिसको देखा करते हैं उसी पदको शङ्कर यह जान लेना चाहिए ॥४३॥ क्रम से चक्र चक्रमण करके शङ्खिनी के ऊपर स्थित जो ज्योति अभिव्यक्त होती है। उसी को शङ्कर भगवान् का पद (स्थान) समझना चाहिए ॥४४॥ देवयान पथ का त्याग करके उत्तर में पितृयाण है। यहां पर गगन से जो सूक्ष्म रव होता है वही भगवान् शङ्कर का वाचक है ॥४५॥ विश्व चक्षुवाद्-ईशान-त्रिशूली विश्वतोमुख और समस्त भूतों के जनक एक ही भगवान महेश्वर हैं ॥४६॥ हृदय रूपी कमल में बालके अग्रभाग के परिमाण वाले उमापति देव स्थित रहा करते हैं। जो विद्वान लोग उनका दर्शन किया करते हैं उनको शाश्वती शान्ती हुआ करती है ॥४७॥ विभु इसी पृथ्वी पर स्थित रहा करते हैं किन्तु यह पृथ्वी उनको नहीं जानती है। जिसका यह पृथ्वी रूप है उन भूम्यात्मा के लिये नमस्कार है ॥४८॥ ये जलों में भर समवास्थित रहा करते हैं किन्तु जो उन परमेश्वर को नहीं पहिचानते हैं। ये आप (जल) जिनका स्वरूप है उन जलात्मा प्रभु के लिये नमस्कार है ॥४९

योऽग्नौ तिष्ठत्यमेयात्मा न तं वेत्ति कदाचन ।
अग्नी रूपं भवेद्यस्य तस्मै वह्न्यात्मने नमः ॥५०॥

तिष्ठत्यजस्र यो वायौ न वायुर्वेत्ति तं परम् ।
वायुर्यस्य भवेद्रूप तस्मै वाय्वात्मने नम. ॥५१॥
व्योम्नि तिष्ठति यो नित्य व्योम वेत्ति न तं हरम् ।
व्योम यस्य भवेद्रूप तस्मै व्योमात्मने नमः ॥५२॥
सूर्ये तिष्ठति यो देवो न सूर्यो वेत्ति शकरम् ।
यस्य सूर्यो भवेद्रूप तस्मै सूर्यात्मने नम ॥५३॥
यश्चन्द्रे तिष्ठति विभुश्चन्द्रो वेत्ति न शाश्वतम् ।
चन्द्रो यस्य भवेद्रूप तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥५४॥
यजमाने तिष्ठति यो न त वेत्ति कदाचन ।
यजमानोऽपि यद्रूप यजमानात्मने नमः ॥५५॥
त्वत्तो वयं समुद्भूतास्त्वय्येव विलयस्तथा ।
प्रमाणपदमारूढास्त्वत्प्रसादाद्वृषध्वज ॥५६॥
एव वेदस्तुतिं श्रुत्वा भगवान्गिरिजापति ।
प्रत्यक्ष समभूत्तेषा वेदाना मनुजाधिप ॥५७॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशः सहस्राक्ष. सहस्रपात् ।
सहस्रशीर्षा पुरुष सूर्यसोमाग्निलोचन ॥५८॥
स्थूलात्स्थूलतर. स्थूल सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरः पर ।
वेदानुवाच भगवान्देवदेवो महेश्वर ॥५९॥

जो अमेयात्मा अग्नि में विराजमान रहा करते हैं और वह अग्नि उनका ज्ञान ही नही रखता है । उन अग्नि के स्वरूप वाले प्रभु अग्न्यात्मा के लिये नमस्कार है ॥५०॥ जो निरन्तर वायु मे स्थित रहा करते हैं उन परमेश्वर को यह वायु नही जानता है । वायु जिनका रूप होता है उन वाय्वात्मा के लिये नमस्कार है ॥५१॥ जो नित्य ही व्योम मे रहा करते हैं और उन हरको यह व्योम नही जानता है । यह व्योम उनका रूप होता है उन व्योमात्मा प्रभु के लिये नमस्कार है ॥५२॥ जो देवेश्वर सूर्य मण्डल मे विद्यमान रहा करते है किन्तु सूर्य देव स्वयं उन शङ्कर भगवान् का ज्ञान नही रखते है । सूर्य जिनका रूप होते हैं उन सूर्यात्मा

प्रभु के लिये नमस्कार है ॥५३॥ जो चन्द्रमा मे स्थित रहते हैं और चन्द्र उन शाश्वत प्रभुको नही पहिचानते हैं किन्तु चन्द्रमा जिनका रूप है उन चन्द्रात्मा प्रभु की सेवा मे हमारा प्रणाम है ॥५४॥ वे यजमान ही एक मे भी विराजमान रहा करते हैं किन्तु यजमान को उनकी स्थिति का ज्ञान नही होता है वह यजमान भी उनका ही एक स्वरूप होता है अतः उस यजमानात्मा प्रभु के लिये हमारा प्रणाम है ॥५५॥ हे वृष ध्वज ! हम लोग सब आप से समुद्भन हुए है और आप मे ही विलय को प्राप्त होंगे । आपके ही प्रसाद से हम सब प्रमाण पद पर समारूढ हुए हैं ॥५६॥ भगवान् भानु देव ने कहा—इस प्रकार से वेदो के द्वारा की हुई स्तुति का श्रवण करके भगवान् गिरिजा के स्वामी हेमनु जाधिय ! फिर उन वेदो के सामने प्रत्यक्ष हो गये थे ॥५७॥ करोडो सूर्यों के समान दीप्ति वाले—सहस्र नेत्रो से युक्त-सहस्र चरणों से समन्वित-सहस्र शीर्षों से सम्पन्न पुरुष थे जिनके सूर्य और चन्द्र एव अग्नि लोचन थे ॥५८॥ वे स्थूल से भी अधिक स्थूल थे तथा सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म देवो के भी देव भगवान् महेश्वर वेदो से बोले—॥५९॥

मत्प्रसादाद्भविष्यध्व हे वेदा लोकपूजिता. ।
युष्मानाश्रित्य विप्रेन्द्राः कर्म कुर्वन्ति नान्यथा ॥६०॥
ये युष्मान्समतिक्रम्य यत्किचित्कर्म कुर्वते ।
निष्फल तद्भवेत्कर्म तेषा युष्मदवज्ञया ॥६१॥
नित्य नैमित्तिक काम्य यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ।
युष्मद्वचो नान्यदिति मत्वा धीरो न शोचति ॥६२॥
ये वै युष्माननादृत्य शास्त्र कुर्वन्ति मानवाः ।
निरये ते विपच्यन्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥६३॥
श्रेयसे त्रिषु लोकेषु न वेदादधिक परम् ।
विद्यते नात्र सदेह इति दत्तो वरो मया ॥६४॥
युष्मत्कृत परं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति वै द्विजाः ।
तेषामध्ययन पुण्य मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥६५॥

प्रत्यक्ष सर्वभूतानामज्ञाना तद्विपर्यय ।
विश्वमायाविधातार द्विरष्टादशरूपिणम् ॥३॥
भक्तिग्राह्य महादेव जानीह्यात्मनि सस्थितम् ।
आत्मभूते महादेवे योगिध्येये सनातने ॥४॥
भक्तिमास्थाय परमा वर निर्वाणमाप्नुहि ।
तीर्थयात्रा बहुविधा यज्ञाश्च विविधा कृता ॥५॥
येषा जन्मसहस्रेषु तेषा भक्तिर्भवेच्छिवे ।
अक्षय परमो धर्मो भक्तिलेशेन जायते ॥६॥
नास्ति तस्मात्परो धर्म इत्याहुर्वेदवादिन ।
धर्मो बहुविध प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि ॥७॥

श्री भानु देव ने कहा– जो यह ईश्वर का तेज है वह सर्वत्र गमन करने वाला है और यदि परम पद प्राप्त करने की इच्छा है तो केवल उनकी ही शरणागति म चले जाओ ॥१॥ वह ही समस्त भूतों म स्थित है। वह ज्ञानमय और तम से परे हैं—अक्षर—निर्गुण—शुद्ध—आनन्द और वह परम अव्यय है ॥२॥ वह ईश्वरीय तेज समस्त भूतो को प्रत्यक्ष है किन्तु जो अज्ञ पुरुष हैं उनको उससे विपर्यय होता है अर्थात् उनको प्रत्यक्ष नही होता है। वे विश्व की माया के विधाता और छत्तीस स्वरूप वाले हैं ॥३॥ श्रीमहादेव भक्ति के द्वारा ग्रहण करने के योग्य हैं और उनको अपनी आत्मा मे ही सस्थित समझ लेना चाहिए। वह आत्मा के भी आत्म वे भी आत्मभूत है और सनातन तथा योगियो के द्वारा ध्यान करने के योग्य महादेव हैं ॥४॥ परम भक्ति मे समास्थित होकर परम निर्वाण को प्राप्त करो। अनेक प्रकार की तीर्थो की यात्रा और बहुत तरह के यज्ञ किये हैं ॥५॥ ये जीवजन सहस्रों जन्म धारण कर लेते हैं तब कहीं भगवान् शिव के चरणों में भक्ति उत्पन्न हुआ करती है। भगवान शिव की भक्ति के लेश मात्र से ही परम अक्षय धर्म होता है ॥६॥ वेदों का कथन करने वाले ज्ञाता

पुरुष यही कहते हैं कि शिव से पर कोई भी धर्म नहीं है। तत्व दर्शी मुनियो के द्वारा बहुत प्रकार का धर्म बतलाया गया है ॥७॥

सत्राक्षय परो धर्म शिवधर्म सनातन ।
यज्ञात्तीर्थाज्जपाद्दानाद्धर्म स्याद्बहुसाधन ॥८॥
साधनप्रार्थनाक्लेश परसपत्तिदु खद ।
य पुन शिवधर्मस्तु न साधनमपेक्षते ॥९॥
सचित जन्मासाहस्त्रं पाप मेरूपम यदि ।
करोति भस्मसाच्छक्ति शभोरमिततेजस ॥१०॥
कुर्वन्नपि सदा पाप सकृदेवार्चयेच्छिवम् ।
लिप्यते न स पापेन याति माहेश्वर पदम् ॥११॥
ये स्मरन्ति महादेव यदि पापरता अपि ।
ते विज्ञेया महात्मान इति सत्य ब्रवीम्यहम् ॥१२॥
नामानि च महेशस्य गृणस्त्यज्ञानतोऽपि वा ।
तेषामपि शिवो मुक्ति ददाति किमत परम् ॥१३॥
अत्राह सप्रवक्ष्यामि कथा पापप्रणाशनीम् ।
पाद्मकल्पसमुद्भूता ब्रह्मणा समुदीरिताम् ॥१४॥

भगवान् शिवजी भक्ति मे अक्षय पर धर्म है और शिवधर्म सनातन अर्थात् सर्वदा चले आने वाला है। यज्ञ से—तीर्थ से—जप से और दान से बहुत साधनो वाला धर्म होता है ॥८॥ वह धर्म साधनो और प्रार्थनाओं के क्लेश वाला होता है तथा पराई सम्पत्ति के दु ख का देने वाला हुआ करता है। जो यह शिवभक्ति रूप धर्म है वह किसी भी साधन की अपेक्षा नही रक्खा करता है ॥९॥ यदि सहस्रो जन्मो मे संञ्जित किया हुआ पाप मेरु पर्वत के समान है तो उसको भी अपरिमित तेज वाले भगवान शम्भु की शक्ति भस्म कर दिया करती है ॥१०॥ मनुष्य सदा पापो को करता हुआ भी यदि एक बार भी भगवान् शम्भु की अर्चना करता है तो वह पाप से कभी भी लिप्त नही हुआ करता है शिवार्चन की ऐसी ही महिमा है और अन्त मे महेश्वर के पद को प्राप्त

किया करता है ॥११॥ यदि अहर्निश पापों में रति रखने वाले भी पुरुष हैं वे भी महा देव का स्मरण किया करते हैं तो उनको महान् आत्मा वाले ही समझना चाहिए—यह मैं सर्व पर सत्य कह रहा हूँ ॥१२॥ यदि कोई अज्ञान से भी महेश्वर भगवान् के नामों का कीर्त्तन करते हैं तो उनको भी परम दयालु भगवान शिव मुक्ति दे दिया करते करते हैं—इससे अधिक और क्या हो सकता है ॥१३॥ यहाँ पर मैं एक पापों का विनाश कर देने वाली कथा बतलाऊगा जो पाद्मकल्प में समुत्पन्न हुई थी और ब्रह्मा जी द्वारा कही गयी थी ॥१४॥

श्रद्धया परया राजञ्शृणु त्वं गदतो मम ।
वक्ष्येऽहं तं प्रणम्याऽऽदावीशं भुवननायकम् ॥१५॥
आसीदाद्ये कृतयुगे सप्तद्वीपैकराड्वली ।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ॥१६॥
[illegible] पुत्रो महाभाग सुद्युम्न इति विश्रुतः ।
ऐश्वर्यैरखिलैर्भाति यथा दिवि शचीपतिः ॥१७॥
प्रतिष्ठानपुरे रम्ये गङ्गातीरे मनोरमे ।
तत्र स्थिरवाऽखिला पृथ्वी तस्मिन्राजनि शासति ॥१८॥
कदाचित्तत्र भगवास्तृणाबिन्दुर्महामुनिः ।
आजगाम स तं द्रष्टुं सुद्युम्नं प्रियदर्शनम् ॥१९॥
तमायान्तं मुनिं दृष्ट्वा राजा रुद्रार्चने रतः ।
उद्रास्यार्चां महाबाहुरुत्थाय च कृताञ्जलिः ॥२०॥
यथावदभिवाद्याथ ददावासनमुत्तमम् ।
यथावन्मधुपर्कादि तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ॥२१॥

हे राजन् ! परमाधिक श्रद्धा से उसका आप श्रवण करो । मैं उसको बतलाता हूँ । मैं प्रारम्भ में समस्त भुवनों के नायक ईश उनको प्रणाम करके उस कथा का वर्णन करूगा ॥१५॥ सबसे आदि में होने वाले कृत युग में सातों द्वीपों के एक छत्र राजा तथा बलवान् और परम धार्मिक इन्द्र द्युम्न नाम वाला राजा प्रसिद्ध हुआ था ॥१६॥

उसका एक पुत्र था जिसका नाम सुद्युम्न प्रसिद्ध था। वह महान् भाग्य वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से त्रिलोक में इन्द्र के ही समान शोभित होता था ॥१७॥ गङ्गा के तट पर परम मनोरम एवं अत्यधिक सुरम्य प्रतिष्ठान पुर में वह राजा रहा करता था और समस्त पृथ्वी का वहीं पर स्थिर होकर शासन किया करता था ॥१८॥ वहां पर किसी समय में महामुनि भगवान् तृण बिन्दु उस सुद्युम्न से मिलने के लिये समागत हुए थे। सुद्युम्न परम प्रिय दर्शन था ॥१९॥ राजा उस समय में भगवान् रुद्र के अर्चन में निरत था। उस समय में समागत मुनि को देखकर महाबाहुओं वाले राजा ने अर्चा को उद्वासित करके उठ गया और हाथों को जोड़कर खड़ा हो गया था ॥२०॥ यथावत् मुनि को अभिवादन करके इसके अनन्तर उसने मुनि के बैठने के लिये उत्तम आसन दिया था। तथा विधि विधान के साथ मधुपर्क आदि सभी पूजनीय चार उनकी सेवा में समर्पित किये थे ॥२१॥

अद्य धन्यः कृतार्थोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
भगवानागतो यस्मात्मां द्रष्टुं मुनिसत्तम ॥२२॥
किमद्य मतो ब्रह्मन्क्रियकृत्योऽस्मि सुव्रत।
विशेषाच्छङ्करे भक्तो न दुर्लभमिहास्ति ते ॥२३॥
सुद्युम्नस्य वचः श्रुत्वा मुनिराह महामनाः।
शिवभक्त्यमृतास्वादपरानन्दैकनिर्भरः ॥२४॥
राजन्यदुक्तं भवता तत्तथैव न संशयः।
तथाऽपि चरितं श्रुत्वा तवाहं विस्मयान्वितः ॥२५॥
प्रष्टुं समागतो राजञ्जन्मनस्तव गौरवम्।
कथयस्व महाबाहो श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥२६॥
जन्मन्यहमतीतेऽस्मिन्व्याधोऽहं गोमतीतटे।
देवतानामहं द्वेष्टा सर्वेषां प्राणिनामपि ॥२७॥
सुव्याडिरिति नामाऽहं ख्यातोऽहं व्याधराड्मुने।
न कश्चिद्धर्मलेशोऽस्ति पापकर्मस्वहं रतः ॥२८॥

राजा ने कहा हे मुनि श्रेष्ठ ! आज मैं परम धन्य एव कृतार्थ होगया हूँ और मेरा यह जीवन भी आज सफल होगया है क्योंकि आप स्वय कृपा करके मुझे दर्शन देने के लिये मेरे घर पर पधारे हैं ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! आप तो परम सुमुत हैं । आप यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं ? मैं तो परम कृतकृत्य हो गया हूँ । आप तो विशेष रूप से भगवान् शङ्कर के भक्त हैं । आपको इस लोक मे कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है ॥२३॥ श्री भानुदेव ने कहा—सुद्युम्न राजा के इस वचन का श्रवण करके महामना मुनि ने कहा जो कि मुनि भगवान् शिव की भक्ति रूपी अमृत के आस्वाद मे परमाधिक आनन्द में निमग्न हो रहे थे ॥२४॥ तृरण विन्दु ने कहा—हे राजन् ! आपने जो कुछ भी कहा है वह वस्तुत. वैसा ही है और इसम कुछ भी सशय नहीं है तो भी मैंने आपके चरित का श्रवण किया था तो मुझे परम विस्मय हो गया था ॥२५॥ हे राजन् ! मैं आपके जन्म का गौरव पूछने के ही लिये यहाँ पर आया हूँ । हे महाबाहो ! आप उसे मेरे सामने कहिये क्योंकि मेरे हृदय में उसके श्रवण करने का बडा भारी कौतूहल उत्पन्न हो रहा है ॥२६॥ राजा सुद्युम्न ने कहा—हे मुनिवर ! मैं अपने प्रथम जन्म मे गोमती के तट पर एक व्याध था । मैं सभी देवों का द्वेषी था और सभी प्राणियो के साथ भी सदा द्वेषभाव रक्खा करता था ॥२७॥ हे मुने ! मेरा नाम 'सुव्यादि' था और मैं व्याधो का राजा प्रसिद्ध हो रहा था । मेरे अन्दर उस व्याध जीवन मे धर्म का तो लेशमात्र भी नही था तथा मैं रातदिन पाप पूर्ण कर्मों मे ही निरत रहा करता था ॥२८॥

मया ये निहिता मार्गे तेषां सख्या न विद्यते ।
परस्व यदपहृत तत्पाप पर्वतोपमम् ॥२९
एव बहुतिथे काले गतेऽहं पञ्चता गत: ।
धर्मराजस्य पुरतो नीतोऽहं यमकिंकरै: ॥३०
मा दृष्ट्वाऽथाब्रवीद्धर्मश्चित्रगुप्त विचारकम् ।

किमनेन कृतो धर्मलेशोऽस्ति वद सुव्रत ॥३१
अनेन यत्कृतं पुण्य मया वक्तुं न शक्यते ।
जानाति भगवानेको विश्वव्यापी महेश्वरः ॥३२
इदं पुण्यमिति ज्ञात्वा कृतं नानेन यद्यपि ।
आहर प्रहरेत्यादि नामसकीर्तनं च यत् ॥३३
करोति तेन पुण्येन दुष्कृतं भस्मसात्कृतम् ।
पापलेशोऽपि नास्त्यस्ति इति मे निश्चिता मतिः ॥३४

मैंने उस समय मे मार्ग मे जिनका वध किया था वे अगणित प्राणी थे और उनकी सख्या कुछ भी नही बतलायी जा सकती है। दूसरो का धन जो मैंने अपहरण किया था वह पाप भी साधारण नही था प्रत्युत एक पर्वत के ही समान महान् था ॥२६॥ इस प्रकार से बहुत-समय व्यतीत हो जाने पर मैं मृत्युगत हो गया था। यम के किकरो के द्वारा मुझे धर्मराज के समक्ष मे प्राप्त किया गया था ॥३०॥ मुझको देखकर धर्म-राज ने पाप-पुण्यो के लेखा-जोखा करने वाले चित्रगुप्त से कहा—हे सुव्रत ! यह बतलाओ कि इसने क्या किया है? क्या इसके जीवन मे धर्म का भी थोडा बहुत लेश है ? ॥३१॥ चित्रगुप्त ने कहा—इसने जो पुण्य किया है वह ऐसा है कि मेरे द्वारा कहा नही जा सकता है। उसको विश्व मे व्याप्त रहने वाले एक भगवान् महेश्वर ही जानते हैं ॥३२॥ यद्यपि यह कोई पुण्य का कार्य है—यह जानकर इसने नही किया था। यह सदा 'आहर'-'प्रहर' इत्यादि नामो का सकीर्त्तन किया करता था। इन दोनो शब्दो के कथन का अर्थ अपहरण करो और मार डालो—यही होता था किन्तु उन दोनो शब्दो मे "हर" का नाम आता है ॥३३॥ उसी पुण्य से जो भी कुछ इसके जीवन मे दुष्कृत थे वे सब भस्म हो गये थे। अब इसमे पाप का लेशमात्र भी शेष नही रह गया है—मेरे बुद्धि तो यही निश्चय करती है ॥३४॥

तस्य तद्वचन श्रुत्वा चित्रगुप्तस्य धीमत ।
सुव्याडि पूजयामास यथावद्विधिपूर्वकम् ॥३५

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमान सार्वकामिकम् ।
सूर्यायुतप्रतीकाश दिव्यस्त्रीभिर्विराजितम् ॥३६
देवदूतै समानीनमारुह्य मुनिपुगव ।
धर्मराजमनुज्ञाप्य गतोऽहममरावतीम् ॥३७
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्युगानामयुत तत ।
गतोऽस्मि ब्रह्मसदन ब्रह्मणाऽह प्रपूजित ॥३८
तत्राह कल्पपर्यन्त भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
ततस्तु कर्मण शेष भोक्तुमत्र महीतले ॥३९
इन्द्रद्युम्नस्य राजर्षे कुले जातोऽस्मि सुव्रत ।
स्मरामि पूर्विका जाति प्रमादाच्छूलिनो मुने ॥४०
ईश्वरे सहसा भक्तिर्मम त्रिदशपूजिते ।
जानाति को महेशस्य माहात्म्य परमात्मन ॥४१
यस्य नाम्न फलमिदमज्ञानोच्चारणादपि ।
ज्ञात्वा य कीर्तयेच्छम्भोर्नामान्यमिततेजस ॥
मुक्ति करतल तस्य स्थितेति मुनयो जगु ॥४२

राजा सुद्युम्न ने कहा—धीमान् चित्रगुप्त के इस वचन को सुनकर धर्मराज ने उस सुख्यादि का विधि पूर्वक यथावत् पूजन किया था ॥३५॥ इसी बीच मे वहाँ पर सब कामनाओ के पूर्ण करने वाला एक विमान आ गया था जो दश हजार सूर्यो के समान दीप्तिमान् और दिव्य स्त्रियो से समन्वित था ॥३६॥ उस विमान को देवदूत वहाँ लाये थे और उनके द्वारा मुझसे कहा गया था कि हे मुनिश्रेष्ठ ! इस पर समारूढ होइये । मैं भी मुनि श्रेष्ठ ! उस पर चढकर तथा धर्मराज की आज्ञा प्राप्त करके अमरावती मे चला गया था ॥३७॥ फिर वहाँ पर दश सहस्र युगो तक मैंने महान् भोगो का उपभोग किया था और इसके उपरान्त मैं ब्रह्माजी के सदन म चला गया जहाँ पर ब्रह्माजी के द्वारा मेरी पूजा की गयी थी ॥३८॥ वहाँ पर मैं एक कल्प तक यथेप्सित भोगो का उपभोग करके इसके पश्चात् शेष कर्म का फल भोगने के लिये इस

महीतल मे आगया हूँ ॥३६॥ हे सुव्रत ! यहाँ पर मैं राजर्षि इन्द्र द्युम्न के कुल मे समुत्पन्न हुआ हूँ। हे मुने ! मैं अभी भी भगवान् शूली के प्रभाव से अपनी पहिली जाति का स्मरण करता हूँ। अर्थात् भगवान् शङ्कर का ही यह प्रभाव है जिससे अपनी प्रथम जन्म की बात अभी तक याद है ॥४०॥ देवो के द्वारा समर्चित ईश्वर मे मेरी सहसा भक्ति है। परमात्मा महेश के माहात्म्य को कौन जानता है। अर्थात् कोई भी नही जानता है ॥४१॥ जिन भगवान् शङ्कर के नाम का यह फल है जो कि बिना ही ज्ञान के उच्चारण करने ही प्राप्त होगया है। जो मनुष्य उनके नाम के माहात्म्य को जानकर अमित तेज वाले शम्भु के नामों का कीर्त्तन करता है उसके तो हाथ मे ही मुक्ति स्थित रहा करती है—ऐसा मुनियो ने बतलाया है ॥४२॥

इति सर्वमशेषेण चरितं तस्य धीमत ।
सुद्युम्नस्य मुनि श्रुत्वा विस्मितोऽभूत्पुनः पुन ॥४३
समालिङ्ग्य महात्मान सुद्युम्न राजपुंगवम् ।
राजन्स्वमाश्रपद यामीत्युक्त्वा जगाम स ॥४४
एतत्ते चरित राजन्सुद्युम्नस्य महात्मन ।
कथित य पठेद्भक्तया ब्रह्मलोक स गच्छति ॥४५

भानुदेव ने कहा—परम बुद्धिमन् उस सुद्युम्न के सम्पूर्ण चरित को पूर्ण रूप से सुनकर मुनि बारम्बार विस्मित होगये थे ॥४३॥ उस मुनि ने महात्मा श्रेष्ठ राजा सुद्युम्न का भलीभाँति आलिङ्गन किया और फिर कहा—हे राजन् ! अब मैं अपने आश्रम को जाता हूँ—इतना कहकर वह वहाँ से चले गये ॥४४॥ हे राजन् ! यह महान् आत्मा वाले सुद्युम्न का चरित आपको बतला दिया है। जो मनुष्य इसको भक्ति की भावना से पढता है वह सीधा ब्रह्मलोक मे गमन किया करता है ॥४५॥

।। वाराणसी महिम-कलियुग वर्णन ।।

राज्ञ. सकाशात्स मुनिर्गत्वा कि कृतवान्पुनः ।
तस्याऽऽश्रमस्य किं नाम भगवन्ब्रूहि मे प्रभो ।।१
रेवातीरे महत्पुण्य जालेश्वरमिति स्मृतम् ।
आश्रमं तृणबिन्दोस्तु मुनिसिद्धनिषेविनम् ।।२
गत्वा तत्र मुनिश्रेष्ठो भवभावसमन्वित. ।
शिवलिङ्ग प्रतिष्ठाप्य तीर्थयात्रा चकार स. ।।३
कानि तीर्थानि गुह्यानि येषु सनिहितः शिवः ।
ब्रूहि मे तानि भगवन्नन्यान्यपि च तत्त्वत. ।।४
तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणा क्षेत्रमुत्तमम् ।
वाराणसीतिनगरी प्रिया देवस्य शूलिनः ।।५
यत्र विश्वेश्वरो देवः सर्वेषामिह देहिनाम् ।
ददाति तारक ज्ञानं ससारान्मोचक परम् ।।६
गङ्गा ब्रह्ममयी यत्र मूर्तिश्चोत्तरवाहिनी ।
सहत्री सर्वपापाना दृष्टा स्पृष्टा नमस्कृता ।।७।।

मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! हे प्रभो ! अब कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि वह मुनि उस राजा सुद्युम्न के समीप से जाकर फिर उन्होंने क्या किया था और उनके आश्रम का क्या नाम है ? ।।१।। भानुदेव ने कहा—रेवा नदी के तट पर महान् पुण्यमय एव पवित्र जालेश्वर नाम से कहा गया है वह तृण बिन्दु मुनि का आश्रम है जो मुनियो और सिद्धो के द्वारा सेवित है अर्थात् मुनि और सिद्ध वहा पर निवास किया करते हैं ।।२।। वह मुनियो मे श्रेष्ठ वहाँ पर जाकर भगवान् भव (शङ्कर) के भाव से परिपूर्ण होगया था । और वहाँ पर एक शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा की थी और इसके पश्चात् उसने तीर्थयात्रा की थी ।।३।। मनुजी ने कहा—वे कौन २ से तीर्थ हैं जिनमें भगवान् शिव सन्निहित रहा करते हैं और जो तीर्थ परमगुह्य हैं । हे भगवन् !

आप उनको मुझे बतलाइये और जो अन्य तीर्थ हो उनको भी तात्त्विक रूप से बतलाइये ॥४॥ भानुदेव ने कहा—समस्त तीर्थों मे उत्तम तीर्थ और सब क्षेत्रो मे अत्युत्तम क्षेत्र वाराणसी-इस नाम वाली नगरी है जो भगवान् शूली देव की परम प्रिया है ।.५॥ जहाँ पर विश्वेश्वर देव हैं जो यहाँ पर सभी देहधारियों को ससार से मोचन कराने वाला तारक ममज्ञ तथा ज्ञान प्रदान किया करते हैं ॥६॥ जिसमे ब्रह्ममयी गङ्गा की उत्तर की ओर वहन करने वाली विद्यमान है जिसका दृष्ट किया जाने पर व्यथा स्पर्श मात्र और नमस्कार की हुई होने पर वह समस्त मनुष्यों के पापो का संहार करने वाली होती है ॥७॥

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं वाराणस्यां विशेषतः ।
तत्रापि मणिकर्ण्याख्यं तीर्थं विश्वेश्वरप्रियम् ॥८॥
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पातकी वाऽप्यपातकी ।
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देवं मुक्तिं भाग्भवते नर. ॥९
विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं प्रयुक्तं ब्रह्मसूनुना ।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि व्यासायमिततेजसे ॥१०
घोरं कलियुगं प्राप्य कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
किं तच्छ्रेयस्करमिति हृदि कृत्वा जगाम सः ॥११
नन्दीश्वरस्य यः शिष्यो योगिनामग्रणीः स्वयम् ।
सनत्कुमारो भगवान्यत्राऽऽस्ते हिमवन्दिरौ ॥१२
नानादेवगणाकीर्णे यक्षगन्धर्वसेविते ।
सिद्धचारणकूष्माण्डैरप्सरोभिश्च सकुले ॥१३
गङ्गा मन्दाकिनी यत्र राजते दुःखहारिणी ।
शोभिता हेमकमलैः पुष्पैरन्यैर्मनोहरैः ॥१४
तस्याऽऽश्रममनुप्राप्य पाराशर्यो महामुनिः ।
अभिवाद्य यथान्यायं तस्याग्र उपविश्य च ॥१५
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥१६

भागीरथी गङ्गा के तुल्य अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है और विशेष रूप से वाराणसी में तो यह गङ्गा ही सर्वोत्तम तीर्थ है। और उस गङ्गा तट में भी जो मणिकर्ण नाम वाला घाट है वह तो भगवान् विश्वेश्वर का परम प्रिय तीर्थ है ॥८॥ उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके चाहे वह महापातकी ही क्यों न हो अथवा अपातकी हो भगवान विश्वेश्वर का दर्शन प्राप्त करके मुक्ति का प्राप्त करने का सच्चा अधिकारी हो जाया करता है अर्थात् उस मनुष्य की निश्चय ही मुक्ति हो जाती है ॥९॥ अपरमित तेजधारी भगवान् व्यासजी को ब्रह्माजी के पुत्र ने भगवान् विश्वेश्वर का जो महात्म्य कहा है उसी को मैं आपको बतलाऊगा ॥१०॥ इस महान घोर कलियुग प्राप्त करके श्रीकृष्ण द्वैपायन प्रभु इस ससार मे क्या श्रेय का सम्पादन करने वाली है—यह अपने मन मे विचार करके ही वहा पर वे गये थे ॥११॥ जो नन्दीश्वर के शिष्य हैं और स्वय योगियो मे सबसे अग्रणी अर्थात् परम प्रधान हैं ऐसे सनत्कुमार भगवान हिमवान् गिरिपद जहाँ पर विराजमान रहा करते है॥१२॥ वह हिमालय पर्वत का स्थान अनेक देवो के समुदाय के द्वारा समाकीर्ण है तथा यक्षो और गन्धर्वों के द्वारा सेवित रहा करता है एव बड़े बड़े सिद्ध चारण और कूष्माण्डो से तथा अनेक अप्सराओ से घिरा हुआ रहा करता है ॥१३॥ जहा पर मन्दाकिनी गङ्गा विराजमान रहती हैं जो समस्त दुःखो का हरण कर देने वाली हैं। उस गङ्गा मे हम कमल तथा अन्य विविध प्रकार के अत्युत्तम पुष्प विकसित होकर उसकी शोभा की वृद्धि किया करते हैं ॥१४॥ उसके आश्रम मे पराभर मुनि के पुत्र व्यास देव जी मुनि प्राप्त हो गये थे। वहा पहुँचकर उन्होंने यथोचित रूप से सनत्कुमारजी का अभिवादन किया था और फिर उन्ही के सामने उपविष्ट हो गये थे ॥१५। व्यास देवजी ने अपने दोनों हाथो को जोडकर उस समय मे वह वाक्य कहा था ॥१६॥

प्राप्त कलियुग घोर पुण्यमार्गबहिष्कृतम् ।
पाखण्डाचारनिरत म्लेच्छाग्रजनसकुलम् ॥१७

अधार्मिकाः क्रूरसत्त्वा ह्यनाचारात्मेधसः ।
तस्मिन्युगे भविष्यन्ति ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः ॥१८
स्नानं देवार्चनं दानं होमं च पितृतर्पणम् ।
स्वाध्याय न करिष्यन्ति ब्राह्मणा हि कलौ युगे ॥१६
न पठन्ति तथा वेदाञ्श्रेयसे ब्राह्मणाधमाः ।
प्रतिग्रहार्थं वेदांश्च पठिष्यन्ति कलौ युगे ॥२०
पुरुषोत्तममाश्रित्य शिवनिन्दारता द्विजाः ।
कलौ युगे भविष्यन्ति तेषां त्राता न माधवः ॥२१
स्वां स्वां वृत्तिं परित्यज्य परवृत्त्युपजीवकाः ।
ब्राह्मणाद्या भविष्यन्ति सम्प्राप्ते तु कलौ युगे ॥२२

श्री व्यास देव जी ने कहा—हे भगवान् ! यह महान् घोर कलियुग प्राप्त हो गया है जिसमें पुण्य का मार्ग एकदम दूर हो गया है और सर्वत्र पाखण्ड पूर्ण आचार लोग किया करते हैं तथा सर्वत्र म्लेच्छों के समान ही आन्ध्रजन हो गये हैं और सब स्थल इन्हीं से घिरे हुए हैं ॥१७॥ इस युग में ब्राह्मण लोग भी शूद्रों को भजन कराने वाले हो जायँगे यह ऐसा ही घोर युग है कि उसमें लोग अधार्मिक-महान् क्रूर- आचार से रहित तथा अत्यल्प मेधा वाले हो जायगे ॥१८॥ इस कलियुग में ब्राह्मण गण स्नान देवों का अभ्यर्चन-दान-होम और पितृगणों का भी तर्पण नहीं किया करेंगे और न वेदों का स्वाध्याय ही करेंगे ऐसे ही अनाचारी विप्र हो जाँयगे ॥१६॥ ये अधम ब्राह्मण अपने श्रेय का सम्पादन करने के लिये भी वेदो का पठन पाठन नहीं किया करेंगे और इस घोर कलियुग मे केवल दान ग्रहण करने के ही लिए वेदों का अध्ययन किया करेंगे ॥२०॥ भगवान् पुरुषोत्तम का समाश्रय ग्रहण करने भगवान शिव की निन्दा करने में निरत रहेंगे ऐसे द्विज इस कलियुग में समुत्पन्न होंगे जिनका त्राण माधव भी नहीं किया करते हैं ॥२१॥ विप्रगण अपनी २ वृत्ति का परित्याग करदेंगे और दूसरे वर्णों की वृत्ति से उपजीवित रहने वाले हो

जायेंगे। इस महान् घोर कलियुग के आने पर सभी ब्राह्मण आदि वर्ण ऐसे ही अपने २ कर्मों का त्याग करेंगे- ऐसे ही हो जांयगे ॥२२॥

एतान्पापरतान्दृष्ट्वा राजानश्चाविचारका ।
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते वृथा जात्यभिमानिन ॥२३
उच्चासनगता शूद्रा दृष्ट्वा च ब्राह्मणास्तदा ।
न चलन्त्यल्पमतय: सप्राप्ते तु कलौ युगे ॥२४
कापायिणश्च निर्ग्रन्था नग्ना: कापालिकास्तथा ।
बौद्धा वैशेषिका जैना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२५
तपोयज्ञफलाना तु विक्रेतारो द्विजाधमा ।
यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रश ॥२६
विनिन्दन्ति महादेव संसारान्मोचक परम् ।
तद्भक्ताश्च महात्मना ब्राह्मणाश्च कलौ युगे ॥२७
ताडयन्ति दुरात्मानो ब्राह्मणान्राजसेवका ।
न निवारयते राजा तान्दृष्ट्वाऽपि कलौ युगे ॥२८
एव घोरे कलियुगे किं तच्छ्रेयस्कर द्विज ।
ब्रू हि तद्भगवन्मह्य ससारान्मोचक परम् ॥२९

राजा लोग भी केवल अपनी जाति का वृथा अभिमान रखने ही वाले हो जायेंगे और इन सबको पाप कर्मों मे रत देखकर भी कोई विचार नही किया करेंगे ॥२३॥ यह कलियुग प्राप्त हो जायगा तो उस मे शूद्र लोग ब्राह्मणो को देखकर भी ऊचे आसनो पर बैठे रहा करेंगे तथा अपने आसन से बिल्कुल भी ये अल्प मति वाले शूद्र जरा भी नहीं हटा करेंगे ॥२४॥ कलियुग मे कषाय वर्ण के वस्त्रो को धारण करने वाले—निर्ग्रन्थि अर्थात् ज्ञान शून्य—नग्न—कापालिक खप्परधारी-बौद्ध और वैशेपिक अनेक सम्प्रदायो वाले समुत्पन्न हो जांयगे ॥२५॥ अधम द्विज अपना तप और यज्ञो के फल को बेच देने वाले हो जायेंगे तथा कलियुग मे सैकड़ों और सहस्रो ही यति होकर भ्रमण करते हुए सर्वत्र

दिखलाई देंगे ॥२६॥ इस ससार [redacted] मोचन कर देने वाले भगवान् महादेव जी की विशेष निन्दा किया करेंगे। कलियुग में ऐसे ही लोग हो जायगे कि महात्माओं और उनके भक्तों तथा ब्राह्मणों की भी निन्दा किया करेंगे ॥२७॥ दुष्ट आत्मा वाले राजा के सेवकगण ब्राह्मणों को ताडित किया करते हैं। इस कलियुग का ऐसा ही प्रभाव होगा कि राजा लोग विप्रों को सताने वाले अपने दुष्ट सेवकों को देखकर भी उन्हें इस दुष्ट कर्म के करने से नहीं हटाया करेंगे ॥२८॥ हे द्विज! आप अब यही बतलाइये कि जब ऐसा महान् घोर कलियुग होगा तो उस समय में श्रेय करने वाला क्या होगा? हे भगवन्! इस संसार से छुटकारा दिलाने वाला क्या साधन होगा—यह हमको आप बतला दीजिए कि प्राणियों का कल्याण होवे ॥२९॥

॥ महादेव वर-प्रदान ॥

गच्छ वाराणसी व्यास यत्र विश्वेश्वर शिव ।
न तत्र युगधर्मोऽस्ति नैव भग्ना वसुधरा ॥१
विश्वेश्वरस्य यल्लिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग तदुच्यते ।
यस्मिन्दृष्टे क्षणाज्जन्तु संसार न पुनर्विशेत् ॥२
गत्वा पश्य पर लिङ्ग तत्र सत्यवतीसुत ।
प्राप्स्यसे परमा मुक्ति देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥३
स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये पश्य विश्वेश्वर परम् ।
[redacted] दास्यति पर ज्ञान येन मुक्तो भविष्यसि ॥४
दृष्ट्वा विश्वेश्वर देव यावत्तिष्ठति (स्त्यास्यसि) तत्क्षणात् ।
आगमिष्यन्ति मुनयस्त्वा द्रष्टु सर्व एव ते ॥५
विश्वेश्वरस्य माहात्म्य प्रक्ष्यन्ति त्वा महामुने ।
ब्रूहि मद्वचनात्तेषा ज्ञान माहेश्वर परम् ॥६

एव सत्यवतीसूनुस्तन्माहात्म्यमशेपत ।
सनत्कुमारात्स्वगुरो श्रुत्वा माहेश्वराग्रणी ॥७
प्रणिपत्य गुरु भक्त्या रुद्र ब्रह्मादिसेवितम् ।
सशिष्य प्रययौ शीघ्र व्यासो वाराणसी प्रति ॥८

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास देव ! आप अब वाराणसी पुरी म चले जाइये जहाँ पर साक्षात् विश्वेश्वर शिव स्वय विराजमान रहा करते हैं। यहा पर इस कलियुग का धर्म सर्वथा नहीं है और न यह वसुन्धरा भी लगना है ॥१॥ भगवान् विश्वेश्वर का यहा पर लिङ्ग है वह ज्योति लिङ्ग कहा जाता है। जिसके एक बार दर्शन मात्र कर लेने पर क्षणमात्र मे ही प्राणी फिर इस ससार मे जन्म ग्रहण नहीं किया करता हैं ॥२॥ हे सत्यवती के पुत्र ! आप वहा पर गमन करके उस ज्योतिलिङ्ग का दर्शन करो। आप वहा पर परमोत्तम मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे जोकि देवगणो को भी महान् दुर्लभ होती है ॥ ॥ वहीं पर वारारणसी पुरी मे भागीरथी गङ्गा के परम पुण्यमय जल म स्नान करके परम विश्वेश्वर प्रभु का दर्शन करो। वे स्वय ही आपको परम ज्ञान का उपदेश करेंगे जिससे आप मुक्त हो जायगे ॥४॥ भगवान् विश्वेश्वर देव का दर्शन करके जितनी देर भी आप वहा पर ठहरेंगे तो उसी समय मे सभी मुनिगण आपका दर्शन करने के लिए वहा पर आ जायगे। ५॥ हे महा मुने ! वे सब मुनिगण आपसे भगवान् विश्वेश्वर का माहात्म्य पूछेंगे तो आप उस समय म मेरे वचन को उन्ही के द्वारा उनको भगवान का परम माहेश्वर ज्ञान प्रदान कर देना ॥६॥ इस प्रकार से सत्यवती के पुत्र ने उनके माहात्म्य को पूर्ण रूप से महेश्वर देव के भक्तो मे अग्रणी ने अपने गुरुदेव सनत्कुमार जी से श्रवण किया था। फिर व्यासजी ने अपने गुरुदेव को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया था। और ब्रह्मादि देवो के द्वारा सेवित श्री रुद्रदेव को भी प्रणाम किया था और इसके अनन्तर व्यास देव अपने शिष्यों के सहित ही वाराणसी को चले गये थे ॥७॥८॥

गत्वा वाराणसी व्यास सिद्धर्षिमुनिसेविताम् ।
अकरोत्किं तदाचक्ष्व भगवान्विश्वपूजित ॥६॥
सम्प्राप्य काशी धर्मात्मा कृष्णद्वैपायनो मुनि ।
स्नात्वा यथावज्जाह्नव्या तर्पयित्वा सुरान्पितॄन् ॥१०
ययौ विश्वेश्वरं द्रष्टुं ज्योतिर्लिङ्गमनामयम् ।
संपूज्य सर्वभावेन दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥११
देवस्य दक्षिणां मूर्तावुपविश्य महामुनि ।
पश्यन्विश्वेश्वरं लिङ्गं जपन्वै शतरुद्रियम् ॥१२
क्षणाल्लिङ्गात्परं ज्योतिराविर्भूतं निरञ्जनम् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मं च परममानन्दं तमसः परम् ॥१३
आदिमध्यान्तरहितं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
यत्तन्माहेश्वरं ज्योतिर्वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥१४

श्री मनुदेव ने कहा—हे भगवान ! आप तो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा पूजित हैं अब मुझको यह बतला दीजिए कि व्यास देवजी ने सिद्ध ऋषि और मुनिगण से सेवित वाराणसी पुरी में पहुँचकर फिर क्या किया था ? ॥६॥ श्री भानुदेव ने कहा—श्री कृष्ण द्वैपायन परम महान आत्मा वाले मुनि जो बहुत ही अधिक धर्मात्मा थे वाराणसी पुरी में पहुच गये और उन्होंने भगवती जा ह्नवी देवी के पवित्र जल में विधि पूर्वक स्नान किया और देवों का तथा पितृगणों का तर्पण वहां पर सविधि किया था ॥१०॥ इसके उपरान्त वे अनमय ज्योति लिङ्ग भगवान् विश्वेश्वर के दर्शन करने के लिये गये थे । वहां पर सर्व भाव से उनका भली भाँति अभ्यर्चन किया था और उनको प्रणाम किया था जोकि भूमि पर एक दण्ड के ही समान गिर कर साष्टांग प्रणाम किया था ॥११॥ फिर देव की दक्षिणा की थी और वहा पर मुनि उपविष्ट हो गये थे । मूर्ति के सामने ही दक्षिण भाग में बैठकर उन्होंने विश्वेश्वर प्रभु के ज्योति लिङ्ग का दर्शन करते हुए और शत रुद्रिय का जाप करते हुए ध्यानमान हो गये थे । एक ही क्षण में उसशिव लिङ्ग से एक निरञ्जन ज्योति का आवि-

भाव हुआ था जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म परम आनन्द स्वरूप और तम से परे थी ॥१३॥ वह ज्योति आदि-मध्य और अन्त से रहित तथा करोडों सूर्यों के समान प्रभा से युक्त थी। वह महेश्वर प्रभु की ज्योति वेदान्तों में प्रतिष्ठित है ॥१४॥

दर्शनात्तस्य च मुने पाराशर्यस्य धीमत ।
दिव्य माहेश्वर ज्ञानमुद्भूत केवल शिवम् ॥१५
मेने कृतार्थमात्मामाम दु खत्रयविवर्जितम् ।
अद्वयं निर्गुण शान्त जीवन्मुक्तस्तदा मुनि ॥१६
अहो विश्वेश्वरो देव कथ कैर्वा न सेव्यते ।
यस्मिन्दृष्टे क्षणाज्ज्ञानमुदित मम निर्मलम् ॥१७
नमो भगवते तुभ्य विश्वनाथाय शूलिने ।
पिनाकिने जगत्कर्त्रे विश्वमायाप्रवर्तिने ॥१८
दुर्विज्ञेयाप्रमेयाय परमानन्द रूपिणे ।
भक्तिप्रियाय सूक्ष्माय पार्वतीशाय ते नमः ॥१९
नमो जगत्प्रतिष्ठाय जगज्जननहेतवे ।
सहर्षे ऋग्यजु सामभूर्तये तत्प्रवर्तिने ॥२०
जानाति कस्त्वा विश्वेश तत्त्वतो मादृशो जन ।
वेदा अपि न जानन्ति साङ्गोपनिषदक्रमाः ॥२१

उस परम दिव्य ज्योति के दर्शन करने से पराशर के पुत्र बुद्धिमान उन मुनि को परम दिव्य माहेश्वर ज्ञान उत्पन्न हुआ था जो केवल शिव था ॥१५॥ उस समय म मुनि देव ने अपने आपको परम कृतार्थ एव तीनों प्रकार के दु खों से रहित माना था मुनि अद्वय निर्गुण और शान्त ज्योति का दर्शन करके जीवन मुक्त हो गये थे ॥१६॥ ओहो ! यह भगवान् विश्वेश्वर देव की महिमा का आह्वन है ! क्या कारण है कि किस प्रकार से किनके द्वारा इनका सेवन नहीं किया जाता है। अभिप्राय यही है कि इनको सेवा सभी को करनी चाहिए जो भी नहीं करते हैं

वे महान् मूर्ख हैं। जिनका इतना प्रबल प्रभाव है कि दर्शन करने पर एक ही क्षण भर मे मुझे परम निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो गया है ॥१७॥ भगवान् विश्वनाथ शूल धारी आप के लिए मेरा प्रणाम है। आप पिनाक धनुष के धारण करने वाले—जगत् के कर्त्ता और विश्व की माया के प्रवृत्त करने वाले प्रभु की सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है ॥१८॥ जो बहुत ही कठिनाई से जानने के योग्य हैं— अप्रमेय है और परमानन्द रूप वाले हैं तथा भक्ति से प्यार करने वाले और परम सूक्ष्म हैं ऐसे पार्वती के ईश के लिये नमस्कार है ॥१९॥ जो इस जगत की प्रतिष्ठा हैं और जगत के जन्म देने के हेतु हैं तथा इसका सहार करने वाले हैं और ऋक्-यजुर्वेद और सामवेद की मूर्त्ति हैं तथा उनको प्रवृत्त कराने वाले हैं उनके लिए नमस्कार है ॥२०॥ हे विश्वनाथ ! सात्विक रूप से मुझे जैसा कौन मनुष्य आपको जानता है जबकि साङ्ग और उपनिषदों से युक्त साक्षात् वेद भी आपको नही जान पाते है ॥२१॥

अथ तस्मिन्महादेवे परज्योतिषि विश्वभुक् ।
शूलपाणिरमेयात्मा प्रादुरासीद्वृषध्वज. ॥२२
ततस्तमब्रवाद्वाक्यं कारुण्याच्छुभया गिरा ।
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते ॥२३
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्तव शंकर ।
जाता त्वद्विषय ज्ञान देवानामपि दुर्लभम् ॥२४
भक्ति परे भगवति त्वय्येवाव्यभिचारिणीम् ।
देहि मे देवदेवेश नान्यदिष्ट वर मम ॥२५
एवमस्त्विति देवेशो व्यासायामिततेजसे ।
वर दत्त्वा मुनीन्द्राय क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥२६
तस्माद्व्यासात्परो नान्यः शिवभक्तो जगत्त्रये ।
कृष्णो वा देवकीसूनुरर्जुनो वा महामतिः ॥२७
एवं हराल्लब्धवरः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
तत्र यानि च लिङ्गानि तानि द्रष्टुं ययौ मुनिः ॥२८

श्री भानु देव ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्योति में जो परम दिव्य महादेव जी की थी इस विश्व का भोग करने वाले वृषभध्वज-अभेय आत्मा वाले शूलपाणि प्रभु प्रादुर्भूत हुए थे ॥२२॥ इसके पश्चात् परम करुणा पूर्ण वाणी के द्वारा भगवान् विश्वनाथ ने उस मुनि व्यास देव से कहा था कि तुम वरदान माँग लो। मैं वही दूगा जो भी तुम्हारे मन में हो ॥२३॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे भगवान ! हे शङ्कर ! आपके चरणों के दर्शन प्राप्त करके मैं तो कृत कृत्य हो गया हूँ। मुझे आपके विषय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया है जोकि देवों को भी परम दुर्लभ होता है ॥२४॥ सबसे पर भगवान आपके चरणों में ही अव्यभि-चारिणी भक्ति होवे—हे देव देवेश्वर। मुझे यही एक वरदान आप प्रदान करिए। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी वरदान प्राप्त करने की मेरी इच्छा ही नहीं है ॥२५॥ भानुदेव ने कहा—फिर देवेश्वर ने ऐसा ही होगा—यह उन अमित तेज से युक्त व्यास देव को वर दे दिया था जोकि व्यास देव महामुनीन्द्र थे और फिर एक ही क्षण में भगवान शङ्कर अन्तर्हित हो गये थे ॥२६॥ तीनों लोकों में उन श्री व्यास देव जी से अधिक अन्य कोई भी शिव का भक्त नहीं है। अथवा देवकी देवी के पुत्र श्रीकृष्ण या महा मतिमान् अर्जुन हैं। इस तरह से श्रीकृष्ण द्वैपायन प्रभु ने श्री हर से वर प्राप्त कर लिया था और फिर वहाँ पर जो भी भगवान शिव के लिङ्ग विराजमान थे उनके दर्शन करने के लिए वे मुनि चले गये थे ॥२७॥२८॥

।। वाराणसी लिंग महिम वर्णन ।।

कानि दिव्यानि लिङ्गानि यानि द्रष्टुं ययौ मुनिः ।
आचक्ष्व तानि नः सूत माहात्म्य चापि कृत्स्नशः ।।१
यदुक्तं भानुना पूर्वं मन्वे मुनिसत्तमाः ।
तदेव कथयिष्यामि शृणुध्व गदतो मम ।।२
आग्नेय्यामविमुक्तस्य वापी त्रैलोक्यविश्रुता ।
यत्र सन्निहितो देवो नित्य विश्वेश्वरः शिवः ।।३
यत्र स्नानं द्विजश्रेष्ठा देवानामपि दुर्लभम् ।
भक्त्या यैस्तज्जल पीतं ते रुद्रा एव भूतले ।।४
तेषां लिङ्गानि जायन्ते हृदये त्रीणि सुव्रताः ।
दुर्लभं तज्जल तस्मात्तिष्ठत्येव हि मुद्रितम् ।।५
तत्र सत्यवतीसूनुः स्नात्वा चैव यथाविधि ।
अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा लाङ्गलीशं ततो ययौ ।।६
तत्र ब्रह्मादयो देवाः सेवन्ते शूलपाणिनम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञान पाशुपत भवेत् ।।७

ऋषियों ने कहा—वे कौन-कौन से शिवलिङ्ग दिव्य हैं जिनका दर्शन प्राप्त करने के लिये व्यास मुनि गये थे ? हे सूतजी ! उनको आप हमको बतलाइये और उन का पूर्ण माहात्म्य भी कहिए ।।१।। श्री सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! पहिले मनुजी को भानुदेव ने जो कहकर बताया था । वही मैं आपको बतलाऊंगा । मुझसे आप श्रवण करिए ।।२।। आग्नेयी विदिशा मे एक अविमुक्त की लोको मे परम प्रसिद्ध वापी है जहां पर विश्वेश्वर देव शिव नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं ।।३।। द्विज श्रेष्ठो ! जहाँ पर स्नान करने की बहुत बडी महिमा है जो स्नान देवो को भी परम दुर्लभ हुआ करता है । जिन्होने भक्ति से उस जल का पान किया था वे रुद्र भूतल मे ही विद्यमान हैं ।।४।। हे सुव्रतो ! उनके हृदय मे तीन लिङ्ग उत्पन्न होते हैं । वह जल बहुत ही दुर्लभ है । इसी

कारण से वह मुद्रित स्थित रहा करता है ॥५॥ वहां पर उस जल में विधि-विधान के साथ सत्यवती के पुत्र श्री व्यास देवजी ने स्नान किया था। फिर वहां अविमुक्तेश्वर प्रभु का उन्होंने दर्शन किया था तथा इसके पश्चात् लाङ्गलीश के समीप में वहाँ से वे चले गये थे ॥६॥ वहां पर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् शूलपाणि की सेवा किया करते हैं। उनके दर्शन की ऐसी महिमा है कि केवल उनके दर्शन भर ही से पाशुपत ज्ञान का उदय हो जाया करता है ॥७॥

जगाम स मुनिः पश्चात्द्रष्टुं वै तारकेश्वरम् ।
यत्रान्तकाले भगवाञ्ज्ञान तत्सप्रयच्छति ॥८
यत्रैवानेन देवस्य स्थापित लिङ्गमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥९
तद्दृष्ट्वा परम लिङ्ग व्यास सत्यवतीसुतः ।
ययौ शुक्रेश्वर द्रष्टुं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥१०
आराध्य मुनिना यत्र शुक्रेणामिततेजसा ।
प्राप्ता सजीवनी विद्या सुराणामपि दुर्लभा ॥११
देवस्य वह्निदिग्भागे कूपस्तिष्ठति शोभनः ।
स्नान तत्राश्वमेधस्य फल यच्छति शोभनम् ॥१२
तस्मिन्कूपे मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा शुक्रेश्वर शिवम् ।
ब्रह्मेश्वर ययौ द्रष्टुं तत्र ब्रह्मा विराट् स्वयम् ॥१३
तपस्तप्त्वा महाघोर प्रीतये पार्वतीपतेः ।
ब्रह्मत्व प्राप्तवान्ब्रह्मा योग चान्ये महर्षयः ॥१४

इसके पश्चात् वे महामुनि भगवान् तारकेश्वर प्रभु के दर्शन करने के लिये चले गये थे जहाँ पर भगवान् अन्त काल में अपना ज्ञान प्रदान किया करते हैं ॥८॥ जहां पर ही इनने देवेश्वर के एक उत्तम लिङ्ग की स्थापना की थी। जिसके केवल दर्शन कर लेने से ही ब्रह्म हत्या के महापातक दूर हो जाया करते हैं ॥९॥ महामुनि व्यासदेव ने उस परमोत्तम लिङ्ग का दर्शन करके फिर समस्त सिद्धियों के प्रदान करने

वाले भगवान् शुक्रेश्वर का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से गमन किया था ॥१०॥ जहाँ पर अपरिमित तेज वाले शुक्र देवाचार्य मुनि ने आराधना की थी और भगवान् शिव के प्रसाद से सजीवनी विद्या को प्राप्त किया था जो विद्या सुरो को भी परम दुर्लभ है ॥११॥ देवेश्वर के अग्नि कोण के भाग मे एक परम सुन्दर कूप विद्यमान है । वहाँ पर स्नान करने से वह कूप अश्वमेघ महायज्ञ का परम शोभन फल प्रदान किया करता है ॥१२॥ उस कूप मे मुनिवर व्यासजी ने स्नान किया था और शुक्रेश्वर शिव का दर्शन भी किया था । इसके पश्चात् वे ब्रह्मेश्वर प्रभु के दर्शन करने के लिये चले गये थे वहाँ पर विराट् ब्रह्माजी स्वयँ ही विराजमान रहा करते है ॥१३॥ वहाँ पर ब्रह्माजी ने पार्वती के स्वामी भगवान् शिव की प्रीति प्राप्त करने के लिये महान घोर तप किया था जिसके प्रभाव से ब्रह्माजी ने ब्रह्मत्व प्राप्त कर लिया था और अन्य महर्षियो ने योग की प्राप्ति कर ली थी ॥१४॥

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सर्वयज्ञफल लभेत् ।
पुनर्जगाम भगवानोकारेश्वरमव्ययम् ॥१५
स्मरणाद्यस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वपातकैः ।
यत्र साक्षाच्छिवः सूक्ष्मो नित्य तिष्ठति वै द्विजाः ॥१६
अनुग्रहाय लोकाना पशुपाशविमोचक ।
यत्र पाशुपताः सिद्धा ओंकारेश्वरमीश्वरम् ॥१७
सपूज्य परमां सिद्धि प्राप्तवन्तो द्विजोत्तमा. ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्या तस्मिल्लिङ्ग उपोषितः ॥१८
यदि जागरण कुर्यात्परा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
ततः सत्यवतीसूनुः कृत्तिवासेश्वर ययौ ॥१९
उपासते महादेवं यत्र ब्रह्मादयः सुरा ।
मुनय. शसितात्मानो रुद्रजाप्यपरायणाः ॥२०
कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे लीला (ना,श्च बहवो द्विजाः ।
देवस्य पूर्वदिग्भागे हसतीर्थ महत्सरः ॥२१

उस दिव्यलिङ्ग का ऐसा अभूतपूर्व प्रभाव है कि उसके दर्शन से प्राणी सभी प्रकार के यज्ञों के करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। फिर भगवान् व्यास देव अव्यय ओङ्कारेश्वर के समीप में चले गये थे ॥१५॥ जिस लिङ्ग के स्मरण कर लेने भर से ही मनुष्य समस्त प्रकार के महापातकों से छुटकारा पा जाया करता है। हे द्विजो ! जहाँ पर सूक्ष्म स्वरूप वाले भगवान् शिव साक्षात् नित्य ही स्थित रहा करते हैं ॥१६॥ पशुपाश के विमोचन करने वाले प्रभु ने लोकों पर अनुग्रह के लिये ही ऐसा किया है। जहाँ पर सिद्ध पाशुपत ईश्वर ओङ्कारेश्वर का भली भाँति पूजन करके हे द्विजोत्तमो ! उत्तम सिद्धि को प्राप्त कर चुके है। मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन में उपोषित होकर उस लिङ्ग के समीप में स्थित रहे ॥१७-१८॥ यदि उस दिन रात्रि जागरण करे तो परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है। इसके पश्चात् सत्यवती के पुत्र श्री व्यास देवजी कृत्तिवासेश्वर जी के स्थान में गमन कर गये थे ॥१९॥ जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् महादेव जी की उपासना किया करते हैं। शमित आत्मा वाले मुनिगण रुद्र मन्त्र के जप में परायण रहा करते हैं ॥२०॥ हे द्विजगण ! कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग में बहुत से लीन हैं। देवेश्वर के पूर्व दिशा के भाग में हंस तीर्थ नाम वाला एक महान सरोवर है ॥२१॥

स्नात्वा तत्र महानेव कृत्तिवासेश्वर शिवम् ।
ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानस्ते वै ब्रह्मादिवन्दिता ॥२२
सकृत्पश्यति यो भक्त्या कृत्तिवासेश्वर विभुम् ।
न पतत्येव ससारे रुद्र एव न सशय ॥२३
हंसतीर्थे नर स्नात्वा कृत्तिवासेश्वर विभुम् ।
सपूज्य परया भक्त्या कृत्तिवासेश्वर शिवम् ॥२४
न पतत्येव ससारे नात्र कार्या विचारणा ।
ययो रत्नेश्वर द्रष्टु मोक्षो यत्र प्रतिष्ठित ॥२५

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य फल वक्तुं न शक्यते ।
सर्वस्मादधिको योगो वेदविद्भिर्निषेव्यते ॥२६

योऽय पाशुपतो योगः पशुपाशविमोचक ।
वर्षैर्द्वादशभि- सम्यक्कृते पाशुपते द्विजाः ॥२७

रत्नेश्वरे तदा ज्योतिर्दर्शनान्मनुजोत्तमः ।
रत्नेश्वर तु सपूज्य पाराशर्यो महामुनिः ॥२८

उस सरोवर मे स्नान करके कृत्तिवासेश्वर महादेव शिव का जो दर्शन करेंगे वे महान आत्मा वाले लोग ब्रह्मा आदि देवो के भी पूजित हो जाया करते हैं ॥२२॥ कृत्तिवासेश्वर विभु को जो केवल एक बार भी दर्शन करते हैं और भक्ति की भावना से उनका अवलोकन किया करते हैं वे फिर कभी भी इस ससार मे आकर जन्म ग्रहण नही किया करते हैं वे तो साक्षात् रुद्र का ही स्वरूप प्राप्त कर लिया करते हैं–इस मे लेशमात्र भी सशय नही है ॥२३॥ उस हसतीर्थ मे मनुष्य स्नान कर के कृत्तिवासेश्वर प्रभु का परा भक्ति से अभ्यर्चन करता है तो फिर वह इस ससार मे कभी पतन प्राप्त ही नही किया करता है—यह सर्वथा सत्य है और इसमे कुछ भी विचार नही करना चाहिए। फिर व्यास देव ने रत्नेश्वर भगवान का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से चले गये थे जहाँ पर मोक्ष को प्राप्त कर लेना तो प्रतिष्ठित ही होता है ॥२४-२५॥ उस लिङ्ग के दर्शन प्राप्त करने से जो भी पुण्य-फल प्राप्त होता है वह तो मुख से कहा ही नही जा सकता है। सब से अधिक योग तो वेदो के वेत्ता लोगो के ही द्वारा निषेवित किया जाया करता है ॥२६॥ जो यह पाशुपत योग है वह पशुपाश का विमोचन करने वाला होता है। हे द्विजो ! बारह वर्ष तक इस पाशुपत योग को भली भाँति कर लेने पर उस समय मे रत्नेश्वर मे ज्योति आविर्भूत होती है। मनुजोत्तम उसका दर्शन करने से श्रेय प्राप्त किया करता है। रत्नेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजन करके पराशर मुनि के पुत्र महामुनि व्यासदेव आगे की ओर बढ़ गये थे ॥२७-२८॥

द्रष्टु देवाधिदेवेश वृद्धकालेश्वर ययौ ।
तस्मिंल्लिङ्गे महादेव सदा तिष्ठति लीलया ॥२९
अनुग्रहाय लोकानामुमया सह विश्वभुक् ।
पृथिव्या यानि लिङ्गानि सन्ति दिव्यानि वै द्विजाः ॥३०
वृद्धकालेश्वरे दृष्टे दृष्टान्येव न सशय ।
देवस्य पूर्वदिग्भागे कूपो मुनिनिषेवित ॥३१
पूरित पुण्यसलिलैर्देवदेवेन शम्भुना ।
यै पीत तस्य सलिल प्राकृतैश्चुलुकत्रयम् ॥३२
प्रकृतिर्मुच्यते तेभ्यो मुक्तात्मानो भवन्ति ते ।
तत्र द्वैपायनो विप्रा स्नान कृत्वा समाहितः ॥३३
वृद्धकालेश्वर लिङ्ग सपूज्य च ततो ययौ ।
मन्दाकिनीतटे रम्ये मुनिसिद्धनिषेविते ॥३४
मध्यमेश्वरनामान मोक्षलिङ्गमनुत्तमम् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा मुनय सनकादय ॥३५

फिर वे वहाँ से देवाधिदेव श्री वृद्ध कालेश्वर प्रभु का दर्शन करने के लिये गये थे। उस लिङ्ग में महादेव सर्वदा ही लीला से समवस्थित रहा करते हैं ॥२९॥ समस्त लोकों के ऊपर अपना परम अनुग्रह करने के लिये विश्व का भोग करने प्रभु जगदम्बा उमादेवी के साथ ही वहाँ पर स्थित रहते हैं। हे द्विजो ! इस पृथ्वी पर जितने भी दिव्य शिव लिङ्ग हैं उन सबके दर्शन केवल एक वृद्ध कालेश्वर के दर्शन कर लेने पर ही हो जाया करते हैं—इसमें संशय नहीं है। देवेश्वर के पूर्व दिशा के भाग में एक कूप मुनिगण के द्वारा निषेवित है ॥३०-३१॥ देवों के भी देव भगवान शम्भु के द्वारा वह पुण्य जलों के द्वारा पूरित कर दिया गया था। जिन साधारण मनुष्यों ने उसका तीन चुल्लू जल का पान किया है प्रकृति उनसे मुक्त हो जाया करती है और वे मुक्तात्मा हो जाया करते हैं। हे विप्रो ! वहाँ पर द्वैपायन मुनि ने स्नान किया था और समाहित हो गये थे ॥३२-३३॥ फिर वृद्ध कालेश्वर लिङ्ग का भली

भाँति पूजन किया था और वहाँ से भी गमन करके चले गये। मन्दाकिनी के तट पर परम रम्य स्थल है जो मुनि और सिद्धों के द्वारा सेवित है। वहाँ पर मध्यमेश्वर नाम वाले परमोत्तम मोक्ष लिङ्ग विराजमान हैं जहाँ पर ब्रह्मा आदि देव और सनकादि मुनिगण वहाँ पर भगवान् की सेवा के लिये रहा करते हैं ॥३४-३५॥

उपासते परं लिङ्गं शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।
मन्दाकिन्यां मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम् ॥३६
घण्टाकर्णह्रदे स्नात्वा लिङ्गं तद्विमलं शिवम् ।
प्रतिष्ठाप्य मुनिश्रेष्ठो लब्धवाञ्ज्ञानमुत्तमम् ॥३७
घण्टाकर्णह्रदे तत्र दृष्ट्वा व्यासेश्वरं शिवम् ।
यत्र यत्र मृतो वाऽपि वाराणस्यां मृतो भवेत् ॥३८
ततः सत्यवतीसूनुः कपर्दीश्वरमीश्वरम् ।
द्रष्टुं जगाम विप्रेन्द्रा लिङ्गं तत्पारमेश्वरम् ॥३९
पिशाचमोचनं नाम तत्र तीर्थमनुत्तमम् ।
रुद्रलोकस्य सोपानमिति प्राह महामुनिः ॥४०
ये द्रक्ष्यन्ति कपर्दीशं कृतार्थास्ते न संशयः ।
मानुषीं तनुमाश्रित्य रुद्रा एव न संशयः ॥४१
तस्मिंस्तीर्थे मुनिः स्नात्वा सतर्प्य च सुरान्पितॄन् ।
कपर्दीश्वरमीशानं सपूज्य प्रययौ मुनिः ॥४२

वे सभी भगवान् शिव की दर्शनाकांक्षा रखने वाले होकर ही उनकी उपासना किया करते हैं। व्यास मुनि ने भी मन्दाकिनी में स्नान करके मध्यमेश्वर प्रभु का दर्शन किया था ॥३६॥ फिर घण्टाकर्ण ह्रद में स्नान करके वहाँ पर विमल शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके श्रेष्ठ मुनि ने उत्तम ज्ञान का लाभ लिया था। जहाँ-जहाँ पर भी मृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य वाराणसी में ही मृत हुआ करता है ॥३७-३८॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके अनन्तर सत्यवती के पुत्र महामुनि ईश्वर कपर्दीश्वर का दर्शन प्राप्त करने के लिये उस पारमेश्वर लिङ्ग के समीप में गये थे। वहाँ पर

पिशाच मोचन नामक एक उत्तम तीर्थ है। महामुनि ने यही कहा था यह तीर्थ रुद्र लोक मे पहुँचने का सोपान है। जो कपर्दीश्वर प्रभु का दर्शन करेंगे वे निश्चित रूप से कृतार्थ हो जाया करते हैं—इसमें संशय बिल्कुल भी नहीं है। वे लोग मानुषी शरीर को आश्रय लेते हुए भी साक्षात् रुद्र ही होते हैं—इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं होता है। उस तीर्थ मे मुनीन्द्र ने स्नान किया था और फिर सुरों तथा पितृगणों का तर्पण किया था। इसके अनन्तर कपर्दीश्वर का भली भाँति किया और फिर वहाँ से प्रस्थान कर गये थे ॥३९-४०-४१-४२॥

॥ दक्षेश्वर माहात्म्य ॥

पुनर्जगाम भगवान्कृष्णद्वैपायन प्रभुः ।
द्रष्टु दक्षेश्वर देव भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥१
यच्छिवावज्ञया पाप जात दक्षप्रजापतेः ।
तस्य पापस्य मोक्षाय तस्मिंल्लिङ्गे द्विजोत्तमा. ॥२
आराध्य देवदेवेशं बहून्यब्दशतानि वै ।
तस्य प्रसन्नो भगवान्देवदेव. सहोमया ॥३
ददौ माहेश्वरं योग तस्मै दक्षाय धीमते ।
लब्ध्वा स परम योग तस्मिंल्लिङ्गे लय गतः ॥४
ततः प्रभृति तल्लिङ्ग योगिभिः सेव्यते द्विजाः ।
योग ददाति सर्वेषा देवो दक्षेश्वर. शिवः ॥५
गङ्गाया प्रयत. स्नात्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वर शिवम् ।
प्राप्नोति परम योगमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥६
स्नात्वा सत्यवतीसूनुर्गङ्गाया प्रयतो द्विजाः ।
दृष्ट्वा दक्षेश्वर देव ययौ पञ्चाग्निलोचनम् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—फिर भगवान कृष्ण द्वैपायन प्रभु दक्षेश्वर देव का दर्शन करने के लिये गये थे जो कि अपने भक्तों की सिद्धियों के प्रदान

करने वाले है ॥१॥ दक्ष प्रजापति को भगवान् शिव की आज्ञा से जो पाप हुआ था । हे द्विजोत्तमो ! उस पाप से मोक्ष पाने के लिये उस लिङ्ग मे देव देवेश्वर की बहुत-से सैंकडो वर्षों तक आराधना करके उन की उपासना की । फिर देवो के देव उमादेवी के साथ प्रसन्न हो गये थे ॥२-३॥ फिर भगवान् ने प्रसन्न होकर उस धीमान् दक्ष के लिये माहेश्वर योग प्रदान कर दिया था । उस परमोत्तम योग को प्राप्त करके वह उसी लिङ्ग मे लय को प्राप्त हो गया था ॥४॥ हे द्विजो ! तभी से लेकर योगियो के द्वारा उस लिङ्ग की सेवा की जाया करती है और वे देव दक्षेश्वर शिव सभी को वह योग दिया करते हैं ॥५॥ द्वैपायन मुनि ने यह कहा है कि भागीरथी गङ्गा मे प्रयत होकर स्नान करे और फिर दक्षेश्वर भगवान् शिव का दर्शन करके परम योग को प्राप्त कर लिया करता है ॥६॥ हे द्विजगण ! सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने प्रयत होकर गङ्गा मे स्नान किया था और इसके पश्चात् दक्षेश्वर देव का दर्शन किया और इसके पीछे वे त्रिलोचन प्रभु के स्थान पर चले गये थे ॥७॥

हेतुना केन दक्षस्य निन्दाऽभूच्छ्वाकरी पुरा ।
कारण वद तत्सूत श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥८
आसीद्ब्रह्मसुतो दक्ष पुन प्राचेतसोऽभवत् ।
शप्तो देवेन रुद्रेण क्रोधाच्छ्रमारेत्वजया ॥९
वैर निधाय मनसि शम्भुना सह सुव्रता ।
दक्ष प्राचेतसो यज्ञमकरोज्जाह्नवीतटे ॥१०
तस्मिन्यज्ञे सम हूता इन्द्राद्या देवतागणा ।
ऋषयो मुनय सिद्धा राजान प्रथितौजस ॥११
ब्रह्मा च विष्णुना सार्धमाहूतस्तेन धीमता ।
देवान्सर्वांश्च भागार्थमाहूतान्पश्यसत्तम ॥१२
दृष्ट्वा शिवेन रहितान्दक्ष प्रत्येवमब्रवीत् ।
अहो दक्ष महामूढ दुर्बुद्धे किं कृत त्वया ।
देवा सर्वे समाहूता शङ्करेण विना कथम् ॥१३

अन्तर्यामी स विश्वेशः सर्वेषामेव देहिनाम् ।
भोक्ता स सर्वयज्ञानां शङ्करः परमार्थतः ॥१४

ऋषियों ने कहा—पूर्व काल में किस हेतु से दक्ष प्रजापति को शङ्कर भगवान की निन्दा हुई थी। हे सूत ! उस कारण को बतलाने की कृपा करिए उसके श्रवण करने की हमारी बड़ी प्रबल इच्छा है। ॥८॥ श्री सूतजी ने कहा—दक्ष ब्रह्माजी का पुत्र था और फिर वह प्राचेतस हो गया था। शम्भु की अवज्ञा के होने से क्रोध से रुद्र देव ने उस दक्ष को शाप दे दिया था ॥९॥ हे मुनिगो ! शम्भु भगवान के साथ मन में वैर रखकर प्राचेतस दक्ष ने जाह्नवी के तट पर यज्ञ किया था ॥१०॥ उस यज्ञ में इन्द्र आदि देवतागण सब बुलाये गये थे और समस्त ऋषि-गण-मुनिगण-सिद्ध और प्रसिद्ध ओज वाले राजा लोग भी बुलाये गये थे ॥११॥ उस धीमान ने भगवान विष्णु के साथ ब्रह्माजी भी बुलाये गये थे। पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने समस्त देवों को अपना भाग ग्रहण करने के लिये बुलाया था। जब उन देवों को शिव से रहित उन्होंने देखा था तो ब्रह्माजी दक्ष से यह बोले—॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अहो ! दक्ष ! तुम महान् मूढ़ हो तेरी बहुत ही दुष्ट बुद्धि है। यह तूने क्या किया है। बिना भगवान शङ्कर के ये समस्त देवगण क्यों बुलाये गये हैं ? ॥१३॥ वह विश्वेश अन्तर्यामी हैं जो सभी देहधारियों के अन्दर विराजमान रहा करते हैं। यह सब यज्ञों के भोग करने वाले परमार्थ से भगवान् शङ्कर ही होते हैं ॥१४॥

एते च मुनयः सर्वे तव माहात्म्यकारिणः ।
न जानन्ति परं भावं महादेवस्य शूलिनः ॥१५
एते च देवाः सशक्रा आगता यज्ञभागिनः ।
तन्मायामोहिताः सर्वे न जानन्ति पिनाकिनम् ॥१६
यस्य पादरजःस्पर्शाल्लब्धत्वं प्राप्तवानहम् ।
शार्ङ्गिणाऽपि सदा मूर्ध्ना धार्यते च निशाकरः ॥१७

यस्य वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणाङ्गाद्भवाम्यहम् ।
यस्याऽज्ञाऽखिल विश्वं सूर्यो भ्रमति सर्वश ॥१८
चन्द्रश्च तारकाश्चैव ग्रहाश्च भुवनानि च ।
धर्माधर्मव्यवस्था च वर्णाश्चैवाऽऽश्रमाणि च ॥१९
तिष्ठन्ति शासनात्तस्य देवदेवस्य शूलिन ।
सा च शक्ति परा गौरी स्वेच्छाविग्रचारिणी ॥२०
तव पुत्रीति दुर्बुद्धे मन्यसे तमसाऽऽवृत ।
कस्ता जानाति विश्वेशीमीश्वरार्धशरीरिणीम् ॥२१

ये सब मुनिगण तुम्हारी सहायता करने वाले हैं और शूली महादेव का जो परम भाव है उसको नहीं जानते हैं। ये इन्द्र आदि देवगण यज्ञ के भाग ग्रहण करने वाले यहां पर आ गये है। ये सभी उनकी माया से मोहित हुए है और इनमे किसी को भी भगवान पिनाकी की महिमा का किञ्चि मात्र भी ज्ञान नही है। जिसके चरणो से स्पर्श की हुई रज के छू लेने मात्र से मैने ब्रह्मत्व को प्राप्त किया है। शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाले भगवान विष्णु के द्वारा भी उनके चरणा की रज को सदा शिर के द्वारा धारण किया जाया करती है तो भला बताइये शिव से पर अन्य कौन है ? ॥१६॥१७॥ जिनके वाम अङ्ग से भगवान् विष्णु समुत्पन्न हुए है और दक्षिण अङ्ग से मैं पैदा हुआ हूँ और जिसकी आज्ञा शिरोधार्य कर सूर्य देव सर्वदा सम्पूर्ण विश्व मे भ्रमण किया करते हैं। उसी देवो के देव भगवान शूली के शासन से ये सब चन्द्र-तारा ग्रह और भुवन धर्म और अधर्म की व्यवस्था सब वर्ण तथा समस्त आश्रम स्थित रहा करते हैं। और वह गौरी स्वेच्छा विग्रह का धारण करने वाली उनकी ही परा शक्ति स्वरूपा है ॥१८॥१९॥२०॥ हे दुष्ट बुद्धि वाले ! तू तम से ही समावृत होकर उसको अपनी पुत्री समझ रहा है। कौन है जो उस विश्व की स्वामिनी और महेश्वर के अर्ध शरीर को धारण करने वाली को जानता है अर्थात् ऐसा कोई भी नही है॥२१॥

अज्ञान ही है और तुम्हारे विनाश का कारण है जोकि किसी विशेष हेतु से ही तुमको हो गया है—ऐसा ही मुझे निश्चित रूप से प्रतीत हो रहा है ॥३१॥३२॥ इस प्रकार से दधीचि मुनि के वचन का श्रवण करके विचक्षण दक्ष ने सब शक्र आदि देवों की सन्निधि में ही दधीचि मुनि से हे विप्रो ! कहा था ॥३३॥ दक्ष ने कहा—हे द्विजोत्तम ! मैं नारायण भगवान से अन्य किसी भी देव को नहीं देखता हूँ। शिव ही सब वस्तुओं के कारण नहीं है—ऐसा मुझे निश्चय है ॥३४॥ केवल एक नारायण ही सबके कारण हैं और भगवान विष्णु से अन्य कोई भी कारण नहीं हैं—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है। उमा देवी के साथ जो देव है वही बुधों के द्वारा सोम ऐसा कहा जाता है भगवान विष्णु कभी नहीं कारण है—ऐसा दधीचि ने कहा था ॥३५॥

तस्माद्य सर्वदेवानामधिकश्चन्द्रशेखरः ।
इज्यते सर्वयज्ञेषु कथं दक्ष न पूज्यते ॥३६
यज्ञस्य पालको विष्णुरिति यन्निश्चितं त्वया ।
भविष्यत्यन्यथैवाऽनु पश्यत कमलापतेः ॥३७
एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विषन्ति महेश्वरम् ।
भवन्तु वेदबाह्यास्ते तमोपहृतचेतसः ॥३८
पाषण्डाचारनिरता सर्वे निरयगामिनः ।
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते दरिद्रा शूद्रयाजकाः ॥३९
सर्वस्मादधिको रुद्रः पशुपाशविमोचकः ।
पराङ्मुखस्तु युष्माकं मा भूदिज्याकरी गतिः ॥४०
इति शप्त्वा ययौ विप्रो दधीचिर्मुनिपुङ्गवः ।
स्वाश्रमं मुनिभिर्जुष्टमोंकारं नर्मदातटे ॥४१
एतस्मिन्नन्तरे गौरी परव्योमात्मिका शिवा ।
दक्षयज्ञस्य वृत्तान्तं श्रुत्वा देवर्षिमुखात् ॥४२
प्राह विश्वाधिकं रुद्रं प्रणतार्तिप्रभञ्जनम् ।
निरीक्षमाणं देवेशी परानन्दैकविग्रहम् ॥४३

दधीचि ने कहा—भगवान् शिव तो सभी यज्ञों में यजन किये जाया करते हैं। हे दक्ष ! तुम्हारे द्वारा उनका यजन फिर क्यों नहीं किया जा रहा है ? ॥३६॥ यह तुम्हारा जो निश्चित है कि यज्ञ के पालक भगवान विष्णु है यह बात भी अभी शीघ्र कमलापति के देखते देखते अन्यथा ही हुई जाती है ॥३७॥ और ये सब ब्राह्मण जो महेश्वर भगवान् से द्वेष किया करते हैं वे सब तम से उपहत चित्त वाले वेद बाह्य हो जायेंगे ॥३८॥ ये सब पाषण से पूर्ण आचार में ही निरत हैं और नरकों के गमन करने वाले ही हैं तथा कलियुग के सम्प्राप्त होने पर ये शूद्रों को यजन कराने वाले दरिद्र हो जांयगे ॥३९॥ सबसे अधिक भगवान रुद्र देव ही हैं जो पशु पाशों के विमोचन करने वाले हैं। जो पराङ्मुख आप जैसे हैं आपको इच्छा करने वाली गति कभी नहीं होगी ॥४०॥ वे मुनियों में महान् श्रेष्ठ दधीचि विप्र—इस प्रकार से शाप देकर वहाँ से चले गये थे। और नर्मदा के तट पर मुनियों के द्वारा सेवित ओङ्कार को जपते हुए अपने आश्रम को वे चले गये थे ॥४१॥ इसी बीच में पर व्योमात्मिका शिवा गौरी ने देव ऋषि के मुख से दक्ष के यज्ञ का वृत्तान्त सुन लिया था और विश्वाधिक रुद्र देव से जोकि प्रणतों के आर्त्तियों का भङ्ग करने वाले हैं। परमानन्द स्वरूप विग्रह वाले हैं और सभी कुछ देखने वाले हैं देवेशी ने कहा—॥४२॥४३॥

योऽय प्राचेतसो दक्ष. पिता मे पूर्वजन्मनि।
आवामवज्ञाय कथं यज्ञ कर्तुं प्रचक्रमे ॥४४
देवाः सर्वे समाहूता विष्णुना सह शंकर।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च मरुद्गणाः ॥४५
ऋषयो मुनयः सिद्धा दैतेया दानवाश्च ये।
राजानश्च महाभागा गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥४६
अवज्ञाशरिणस्तस्य यज्ञं शीघ्रं विनाशय।
तेन मे जायते प्रीतिरतुला भक्तवत्सल ॥४७

एव देव्या वच श्रुत्वा देवदेव पिनाकधृत् ।
असृजत्तत्क्षणाच्छंभुर्वीरभद्र महाबलम् ॥४८॥
सहस्रसिंहवदन प्रलयाग्निसमप्रभम् ।
सहस्रबाहु जटिल दुष्टाना च भयकरम् ॥४६

श्री देवी ने कहा—जो यह प्राचेतस दक्ष है वह मेरे पूर्व जन्म मे पिता था । वह हम दोनो की अवज्ञा करके कैसे यज्ञ करने मे संलग्न हो गया है ॥४२॥ हे शङ्कर ! विष्णु देव के साथ अन्य सभी देवों को बुलाया है जिनम अब आदित्य है वसुगण रुद्रगणसाध्य तथा मरुद्गण भी हैं-ऋषि-मुनि-सिद्ध-सिद्ध-दैतेय और दानव भी हैं । सब मही भाग नृप हैं तथा गन्धर्व और किन्नर भी हैं ॥४५॥४६॥ हे भक्त वत्सले ! उस अवज्ञा करने वाले के यज्ञ को आप बहुत ही शीघ्र विनष्ट कर दवें । इससे मुझे बहुत अधिक प्रीति होगी ॥४७॥ इस तरह से कहे हुए देवी के वचनों को सुनकर देवा के देव पिनाकधारी प्रभु ने उसी क्षण मे शम्भू न महान् बलवान् वीरभद्र का सृजन किया था । उसका वदन एक सहस्र सिंहों क महान था और प्रलय काल की अग्नि के समान प्रभा से युक्त था । एक सहस्र उसकी बाहुएँ थी मस्तक पर जटाएं थी तथा वह वीरभद्र दुष्टो के लिये महान भयङ्कर था ॥४८॥४६॥

भक्ताना वरद देव सूर्यसोमाग्निलोचनम् ।
उमाकोपोद्भवा देवी भद्रकाली भयकरी ॥५०
अन्याश्च देव्यो रुद्राश्च शतशः रोमसभवा ।
भद्रकाल्या सह तदा वीरभद्रो महाबल ॥५१
प्रहितो देवदेवेन दक्षयज्ञजिघांसया ।
गत्वा स यज्ञ दक्षस्य भस्मसादकरोद्द्विजा ॥५२
दक्षस्तदद्भुत कर्म दृष्ट्वाऽथ भयविह्वल ।
गतस्तच्छरण शीघ्र वीरभद्रस्य शूलिन ॥५३
उवाच वीरभद्रस्त दक्ष प्राचेतस द्विजा ।
तस्य पापविशोधाय वारुण्यामृतवारिधि ॥५४

गच्छ वाराणसी दक्ष सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
अनुग्रहार्थं लोकाना यत्र तिष्ठति शकर. ॥५५
अनुग्रहाद्भगवतो देवदेवस्य शूलिन. ।
अनेनैव शरीरेण तत्र मोक्ष गमिष्यसि ॥५६

वह वीर भद्र शिव भक्तो को वरदान देने वाला और सूर्य तथा और अग्नि के समान नेत्रो वाला देव था। उमा देवी के कोप से समुत्पन्न देवी महेश्वरी भद्र काली थी जो बहुत ही अधिक भयङ्करी थी ॥५०॥ अन्य भी बहुतसी देवियो और रोमो से समुत्पन्न सैकडो ही रुद्र थे उस समय मे भद्रकाली के साथ महान बल वाले वीर भद्र को दक्ष के यज्ञ को विध्वस करने की इच्छा से देवो के देव ने वहा पर भेजा था। हे द्विजो ! उस वीरभद्र ने वहा पहुँचकर दक्ष के यज्ञ को भस्मी भूत कर दिया था ॥५१॥५२॥ प्रजापति दक्ष ने उस अत्यन्त अद्भुत कर्म को देखा तो वह भय से विह्वल हो गया था। वह शीघ्र ही शूली वीरभद्र के शरणागति मे प्राप्त हो गया था। हे द्विजो ! वीरभद्र ने प्राचेतस दक्ष से कहा था जो वीरभद्र उसके पापो का विमोचन करने के लिए इस करुणामृत के सागर के समान ही हो गये थे ॥५३॥५४॥ वीरभद्र ने कहा—हे दक्ष! अब आप सब पापो के विनाश करने वाली वाराणसी मे शीघ्र चले जाइये जहा पर लोको के ऊपर अनुग्रह करने के लिये शङ्कर भगवान स्वय विराजमान रहा करते है ॥५५॥ देवो के भी देव शूली भगवान के अनुग्रह से इसी शरीर से तेरा मोक्ष वहा पहुँचने पर हो जायेगा ॥५६॥

वीरभद्रस्य वचन श्रुत्वा दक्षो महामति. ।
गत्वा वाराणसी शीघ्र सर्वसङ्गविवर्जित: ॥५७
प्रतिष्ठाप्य महालिङ्ग गङ्गातीरे मनोरमे ।
आराध्य परया भक्त्या तस्मिँल्लिङ्गे लय गत ॥५८
दक्षेश्वरस्य माहात्म्य कथितं मुनिपुङ्गवा: ।
त्रिलोचनस्य माहात्म्य साप्रत वर्ण्यते मया ॥५९

श्री सूतजी ने कहा—महामति मान दक्ष ने वीर भद्रगण वचन सुनकर वह सब सज्ञा से रहित होकर शीघ्र ही वाराणसी पुरी में चला गया था। वहाँ पर परम मनोरम गङ्गा के तट पर एक महालिङ्ग की प्रतिष्ठा की थी। वहां पर परम भक्ति से आराधना करके वह उसी लिङ्ग में लीन हो गया था ॥५७॥५८॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! मैंने यह दक्षेश्वर प्रभु का माहात्म्य आपके सामने वर्णित कर दिया है। अब आगे मेरे द्वारा भगवान् त्रिलोचन के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ॥५९॥

॥ त्रिलोचन माहात्म्य ॥

त्रिलोचनात्परं लिङ्गं वाराणस्यां न दृश्यते ।
सदा सन्निहितो नित्यं यस्मिंल्लिङ्गे शिवः स्थितः ॥१
यानि स्थितानि लिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः ।
दृष्टान्येव भवन्त्येव दृष्टे लिङ्गे त्रिलोचने ॥२
असंख्यातानि पापानि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
कृतानि नाशयत्येव देवदेवस्त्रिलोचनः ॥३
मायापाशेन बद्धानां सर्वेषां प्राणिनामपि ।
मुक्तिं ददाति परमां देवदेवस्त्रिलोचनः ॥४
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं सर्पमेखलमण्डितम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण कोटिलिङ्गार्चनं फलम् ॥५
त्रिलोचनं सुरपूज्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
ययौ कामेश्वरं द्रष्टुं सिद्धलिङ्गमनुत्तमम् ॥६
ददौ दुर्वाससे यत्र देवदेवो महेश्वरः ।
प्रसन्नो विविधाः सिद्धिः सर्वेषामपि दुर्लभाः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इस वाराणसी पुरी में भगवान के त्रिलोचन लिङ्ग से महान अन्य कोई भी लिङ्ग नहीं है जो वहाँ पर दिखलाई देता हो। जिस लिङ्ग में सदा ही भगवान शिव स्थित रहा करते हैं ॥१॥

हे द्विजोत्तमो ! वाराणसी पुरी में जो अन्य जितने भी शिव के लिङ्ग विराजमान हैं उन सबका दर्शन केवल एक ही त्रिलोचन लिङ्ग के दर्शन करने पर ही होजाया करते हैं ॥२॥ देवों के देव भगवान त्रिलोचन जितने भी परम हैं उन सबका तुरन्त नाश कर दिया करते हैं चाहे वे असंख्यात और ज्ञान से अथवा अज्ञान से किसी भी तरह से किये गये हों। देव देव त्रिलोचन प्रभु माया के पाश से बद्ध समस्त प्राणियों को परम मुक्ति प्रदान कर दिया करते हैं ॥३॥४॥ पश्चिम दिशा की ओर मुख वाले—सर्पों की मेखला से मण्डित वह लिङ्ग है। उस लिङ्ग के दर्शन मात्र से ही कोटिलिङ्गों के अर्चन का फल प्राप्त हो जाया करता है ॥५॥ श्री कृष्ण द्वैपायन मुनि ने त्रिलोचन प्रभु का पूजन भली भांति किया था और इसके पश्चात् कामेश्वर सब लिङ्गों में उत्तम लिङ्ग के दर्शन प्राप्त करने के लिए वहाँ से आगे गमन कर गये थे ॥६॥ जहाँ पर देवों के देव महेश्वर ने प्रसन्न होकर अनेक सिद्धियाँ दुर्वासा मुनि को प्रदान की थीं जो देवों को भी परम दुर्लभ होती हैं ॥७॥

अन्यश्चापि वरो दत्तो देवदेवेन शूलिना ।
कृताना क्रियमाणाना सर्वेषा तपसामपि ॥८

क्रोधो नाशकर प्रोक्तो ह्यन्यर्थव मुनेस्तु ते ।
तस्य दक्षिणदिग्भागे कामकुण्डमिति स्मृतम् ॥९

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या दृष्ट्वा कामेश्वर शिवम् ।
ब्रह्महत्यादिभि पापैर्मुक्तो याति परा गतिम् ॥१०

अन्यान्यपि च लिङ्गानि वाराणस्या स्थितान्यपि ।
सख्यामपि न जानाति तेषा देवश्चतुर्मुख ॥११

को वा वदति माहात्म्यमृते देवान्महेश्वरात् ।
नन्दीश्वरो वा जानाति प्रसादाग्दिरिजापते ॥१२

अथ सत्यवतीसूनुर्दृष्ट्वा देवी शिवा पराम् ।
विशालाक्षी द्विजश्रेष्ठा यत्र सन्निहिता शिवा ॥१३

ता दृष्ट्वा विधिवद्भक्त्या सपूज्य च महामुनि ।
परानन्दात्मिका गौरी स्तुति मत्वा चकार स ॥१४

देव देव शूली ने अन्य भी वरदान दिया था जो किये हैं और जो भी इस समय म किये जा रहे हैं उन सब तपो का नाश करने वाला क्रोध होता है ऐसा कह गया है। अतएव मुनिवर आपका यह सब किया हुआ तप व्यर्थ ही हो जाया करताहै क्यो कि आप मे बडा भारी उग्र क्रोध विद्यमान है। इसलिये उसके दक्षिण दिशा के ओर एक काम कुण्ड नाम वाला सरोवर कहा जाता है विद्यमान है ॥८॥९॥ उस कुण्ड म मनुष्य भक्तिभाव से स्नान करके और कामेश्वर प्रभु शिव का दर्शन करके ब्रह्म हत्या आदि महा पातको से भी मुक्त हो जाया करता है तथा परमगति को प्राप्त कर लेता ॥१०॥ इनके अतिरिक्तअन्य भी शिवलिङ्ग वाराणसी मे स्थित हैं उन सबकी सख्या को चतुर्मुख देव भी नही जानते हैं इतनी अधिक सख्या है॥११॥ उन सब सबके माहात्म्य को महेश्वर देव के बिना अन्य कौन कह सकता है अर्थात् किसी मे भी ऐसी सामर्थ्य नही है। केवल एक नन्दीश्व रही गिरिजा पति की कृपा से उसको जानता है ॥१२॥ इसके अनन्तर सत्यवती के पुत्र पराशिवा देवी का दर्शन करने के लिये गये थे जहा पर हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! विशालाक्षी शिवा स्वय सन्निहित रहा करती हैं। यहा मुनि ने उनका दर्शन करके भली भाति से उनका अभ्यर्चन किया था तथा गौरी को परानन्दात्मिका मान कर उन महा मुनि ने उनका स्तवन भी किया था ॥१३।१४॥

विशालाक्षि नमस्तुभ्य परब्रह्मात्मिके शिवे ।
त्वमेव माता सर्वेषा ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥१५
इच्छाशक्ति क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्वमेव हि ।
ऋजवी कुण्डलिनी सूक्ष्मा योगसिद्धिप्रदायिनी ॥१६
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मी सरस्वती ।
सती दाक्षायणी विद्या सर्वशक्तिमयी शिवा ॥१७

अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैकैकपाटला ।
उमा हैमवती चापि कल्याणी चैव मातृका ।।१८।।
ख्याति: प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ।
गणाम्बिका महादेवी नन्दिनी जातवेदसी ।।१९।।
सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता ।
आयती नियती रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ।।२०।।
कालरात्री महामाया रेवती भूतनायिका ।
गौतमी कौशिकी चाऽऽर्या चण्डी कात्यायनी सती ।।२१।।

श्री व्यासदेव जी ने कहा था—हे विशाल नेत्रों वाली भगवती! आपको मेरा प्रणाम है। हे शिव! आप तो परब्रह्म के ही स्वरूप वाली है। ब्रह्मा आदि समस्त वेदों की आप ही माता है।।१५।। इच्छा शक्ति-ज्ञान-शक्ति और क्रिया शक्ति आप ही तो है। आप ऋजवी सूक्ष्मा कुण्डलिनी हैं जो योग की सिद्धियों को प्रदान करने वाली होती है।।१६।। स्वाहा-स्वधा-महाविद्या-मेधा लक्ष्मी-सरस्वती-सती दाक्षायणी-सर्व शक्तिमयी शिवा-अपर्णा-एक पर्णा-ऐकैक पाटला-उमा-हैमवती-कल्याणी-मातृका आप ही हैं।।१७–१८।। ख्याति-प्रज्ञा-महाभागा और लोक में प्रसिद्ध गौरी भी आप ही हैं। गणाम्बिका-महादेवी नन्दनी-जात वेदसी-सावित्री-वरदा-पुण्या पावनी-लोकविश्रुता-आयती-नियती-रौद्री-दुर्गा-भद्रा-प्रमाथिनी-कालरात्री-महामाया-रेवती-भूतनायिका-गौतमी-कौशिकी-आर्या-चण्डी-कात्यायनी-सती भी आप ही हैं अर्थात् ये सब आपके ही भिन्न रूप हैं।।१९–२०–२१।।

वृषध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी ।
महेन्द्रोपेन्द्रमाता च पार्वती सिंहवाहना ।।२२।।
एवं स्तुत्वा विशालाक्षी दिव्यैरेतैः सुनामभिः ।
कृतकृत्योऽभवद्व्यासो वाराणस्यां द्विजोत्तमाः ।।२३।।
वाराणस्यां विशालाक्षी गङ्गा विश्वेश्वरः शिवः ।
भक्तिः पशुपतौ तत्र दुर्लभं हि चतुष्टयम् ।।२४।।

य पश्यति विशालाक्षी स्नात्व गङ्गाम्भसि द्विजाः ।
अश्वमेघसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ।२५।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यमिति किंचिन्मयोदितम् ।
य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि यानि माहेश्वरं पदम् ।२६।

वृषध्वजा-वृषधरा-परमा-ब्रह्मचारिणी महेन्द्रोपेन्द्रमाना-पार्वती-सिंहवाहनामी आप ही हैं। इस प्रकार से उस विशालाक्षी का दिव्य सुन्दर नामों के द्वारा स्तवन करके व्यासदेव हे द्विजो। उस वाराणसी पुरी में कृतकृत्य हो गये थे ।२२ २३। वाराणसी पुरी में ये चार वस्तुऐं बहुत ही दुर्लभ हैं जो अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकती हैं—एक तो विशालाक्षी देवी—दूसरी भागीरथी गङ्गा—तीसरी विश्वेश्वर शिव और चतुर्थ पशुपति भगवान् में भक्ति ।२४। हे द्विजो ! जो पुरुष गङ्गा के परम पावन जल में अवगाहन करके विशालाक्षी भगवती जगदम्बा का दर्शन किया करता है वह एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों के पुण्य फल को उत्तम रूप से प्राप्त कर लिया करता है।२५। वाराणसी पुरी का माहात्म्य बहुत विशाल है। मैंने तो यहाँ पर कुछ थोड़ा सा ही बतला दिया है। जो भी इस माहात्म्य का श्रवण करता है अथवा इसको पढ़ता है वह सीधा महेश्वर भगवान् के पद को प्राप्त किया करता है ।२६।

। शिव भक्त महिमा ।

अन्यद्रत्नमिदं वक्ष्ये शृणुध्व मुनिपुङ्गवा ।
शिवेन कथितं माहात्म्यं स्कन्दाय पृच्छते ।१।
देवदेव महादेव शशाङ्कृतशेखर ।
भर्ग विश्वेश्वरेशान कारुण्यामृतवारिधे ।२।
कस्य प्रसीदसि क्षिप्रं केन वा जायते भवान् ।
योगस्त्वद्विषय को वा ज्ञान त्वद्विषय च किम् ।३।
सर्वमेतन्महादेव पुत्रस्नेहाद्वदस्व मे ।४।

मद्भक्त सर्वदा स्कन्द मत्प्रियो न गुणाधिक ।
सर्वाशी सर्वभक्षी वा सर्वाचारविलोपक ।५।
मत्परो वाङ्मन कायैर्मुक्त एव न सशय ।
नाहं प्रसन्नस्तपसा न दानेन न चेज्यया ।६।
तुष्टोऽहं भक्तिलेशेन क्षिप्रं यच्छे परं पदम् ।
त्रिपुण्ड्रधारी सततं शान्तो रुद्राक्षकङ्कण ।७।
निर्दम्भ सत्यसकल्पो भक्त स्यादुत्तमो मम ।
सूर्यवह्नीन्दुभक्तानामुत्तमो वैष्णव पर ।८।

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं अब एक अन्य ज्ञान के विषय मे बतलाऊँगा। आप लोग उसका श्रवण करिए सेनानी स्कन्द के पूछने पर उनको साक्षात् भगवान् शिव ने ही स्वयं इसको कहा है।१। स्कन्दजी ने कहा—हे देवो के भी देव ! आप तो महान् देव हैं और आपने चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण कर लिया है। हे भर्ग ! आप इस विश्व के ईश्वर के भी ईशान हैं तथा करुणारूपी अमृत के महासागर है।२। आप कृपा कर यही बतलाइये कि आप किस के ऊपर बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं और जिसके द्वारा आपका ज्ञान प्राप्त किया जाता है ? आपके विषय का योग क्या है और आपसे सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान क्या होता है ? ।३। हे महादेव ! यही सब कुछ आप मुझे अपना पुत्र समझकर स्नेहपूर्वक बताने की कृपा कीजिये ।४। ईश्वर ने कहा—हे स्कन्द ! मेरा भक्त सर्वदा मेरा हृदय हुआ करता है। कोई गुणों मे अधिक हो वह मेरा प्रिय नही होता है चाहे सभी कुछ का अशन करने वाला हो, भले ही सर्वभक्षी हो और सभी आचारो का विलोप ही क्या न करने वाला हो किन्तु मन-वाणी और शरीर से मुझमे ही परायण रहने वाला हो तो वह निश्चय ही मुक्त हो जाया करता है—इसमे कुछ भी संशय नही है। मैं अधिक तपश्चर्या से—दान से तथा इज्या से कभी प्रसन्न नहीं हुआ करता हूँ। मैं तो केवल भक्ति के लेशमात्र से ही सन्तुष्ट हो जाया करता हूँ और उस अपने भक्त को शीघ्र ही परम पद प्रदान

कर दिया करता हूँ। जो त्रिपुण्ड्र को धारण करने वाला हो, निरन्तर शान्त रहता हो और रुद्राक्ष का कङ्कण रखता हो —तथा दम्भ से रहित और सत्य सङ्कल्प हो वही मेरा उत्तम भक्त होता है। सूर्य-अग्नि-चन्द्र-इनके भक्तों मे वैष्णव पद एव उत्तम होता है ।५। ।६। ।७। ।८।

वैष्णवाना सहस्रेभ्य शिवभक्तो विशिष्यते ।
यदि पापरत क्रूर स्वाश्रमाचारवर्जितः ॥९
मम भक्तो यदि भवेत्पूज्यो मान्य स एव हि ।
येऽपि दम्भ समाश्रित्य भक्तानामुपजीविका ।१०।
ससारात्तेऽपि मुच्यते किं पुनर्मत्परा जना ।
मद्भक्ताना च माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वत ।११।
जानेऽह त्व च जानासि नन्दो जानाति व गुह ।
मार्गस्थो वाऽप्यमार्गस्थो मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ।१२।
मम भक्तो यदि भवेत्सर्वस्मादधिको हि स ।
भक्त प्रियो मे सतत यथा त्व क्रौञ्चसूदन ।१३।
तस्मात्तत्पूजनाद्वत्स पूजितोऽह न सशयः ।
मद्भक्त द्वेष्टि यो मोहात्स मा द्वेष्टि सनातनम् ।१४।

सहस्रों वैष्णवों से शिवभक्त विशिष्ट होता है। यदि पापों मे रत हो—क्रूर हो और अपने आश्रम के आचार से भी वर्जित हो यदि वह मेरा भक्त है तो वह परम पूज्य और मान्य ही हुआ करता है। जो भी कुछ लोग दम्भ का सहारा लेकर भक्तों के उप जीविका होते हैं वे भी इस ससार से मुक्त हो जाया करते हैं फिर जो मेरे ही स्वानार्चन मे तत्पर रहा करते हैं उनकी तो बात ही क्या है। मेरे जो भक्त हैं उनका माहात्म्य को तात्त्विक रूप से कौन जानता है अर्थात् कोई भी नहीं जाना करता है ।९। ।१०। ।११। मैं जानता हूँ और तुम जानते हो—नन्दी अथवा गुह जानता है। मार्ग मे स्थित अथवा अमार्ग म रहने वाला हो—पण्डित हो या मूर्ख हो ।१२। यदि वह मेरा भक्त है तो वह सबसे अधिक प्यारा है। मेरा भक्त मुझे सदा ही प्यारा होता है जैसे हे क्रौञ्चसूदन !

तुम मेरे प्यारे हो ।१३। हे वत्स ! इसीलिए उस मेरे भक्त के पूजनार्चन से मैं ही साक्षात् पूजा गया होता हूँ—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो मोह के कारण से मेरे भक्त से द्वेष करता है वह मुझ सनातन से ही द्वेष किया करता है क्योंकि मेरे भक्त बहुत ही प्रिय और प्राणों के समान होते हैं ।१४।

त पूजयति यो भक्त्या स मां पूजितवान्गुह ।
भक्तिरष्टविधा स्कन्द सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥१५॥
तामहं कथयिष्यामि भक्तिं भवविनाशिनीम् ।
मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायाश्चानुमोदनम् ॥१६॥
स्वयमभ्यर्चनं भक्त्या ममार्थे चाङ्गचेष्टितम् ।
मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥१७॥
ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मां नोपजीवति ।
भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन्म्लेच्छोऽपि वर्तते ॥१८॥
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान्स यतिः स च पण्डितः ।
तस्मै दानं सदा देयं तस्माद्ग्राह्यं षडानन ॥१९॥
सकृदभ्यर्चयेन्मां यो भक्तिलेशसमन्वितः ।
स महापातकैर्मुक्तो मम लोके महीयते ॥२०॥
स्वहस्ताहृतपुष्पाणि मामुद्दिश्य प्रयच्छति ।
तद्दानं सर्वदानानामुत्तमं परिपठ्यते ॥२१॥

हे गुह ! जो मेरे भक्त की पूजा करता है उसने भक्तिभाव से मेरा ही पूजन किया हुआ समझना चाहिए हे स्कन्द ! वह भक्ति आठ तरह की होती है जो कि सभी शास्त्रों में पढ़ी गयी है ।१५। मैं अब उसी संसार के बन्धन का विनाश करने वाली भक्ति के विषय में बतलाता हूँ। मेरे भक्तजनों के ऊपर वात्सल्य अर्थात् हार्दिक अनुराग पूजा का अनुमोदन करना—स्वयं ही भक्ति से यजन करना—मेरे लिये अङ्ग चेष्टित—मेरी कथा के श्रवण करने में भक्तिभाव—स्वर नेत्र और अङ्गों की विक्रिया का होना—मेरा ही नित्य स्मरण करना और जो मुझको

उपजीवित रहता है—यही आठ प्रकार की भक्ति होती है जिसमें इस भक्ति का लेशमात्र भी विद्यमान है वही विप्रेन्द्र—मुनि, श्रीमान् यति और वह ही पण्डित है। उसको ही सदा दान देना चाहिये। हे षडानन! उससे ग्रहण करना चाहिए।१६।।१७।।१८।।१९। जो मुझको एकबार ही अभ्यर्चित कर देता है वह भक्ति के लेश से युक्त होता है। वह महान् पातकों से मुक्त होकर मेरे लोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है। अपने हाथ से लाये हुए कुसुमों को जो मेरा उद्देश्य करके समर्पित किया करता है वह दान अन्य सभी दानों से उत्तम परिगठित किया जाता है।२०।।२१।

मयि भक्तिः सदा कार्या भवपाशविमोचनी ।
भक्तिगम्यस्त्वहं वत्स मम योगो हि दुर्लभः ।२२।
योगात्सञ्जायते ज्ञानं योगो मय्येकचित्तता ।
ज्ञानं स्वरूपमेव स्याच्चिद्रूपमजमव्ययम् ।२३।
आनन्दमजरं शुद्धमज्ञानेन निरोहितम् ।
वेदान्तवाक्यबोधेन तच्चाज्ञानं निवर्तते ।२४।
ज्ञानं नैवाऽऽत्मनो धर्मो न गुणो वा कथचन ।
ज्ञानस्वरूप एवाऽऽत्मा नित्यः सर्वगतः शिवः ।२५।
अहमात्मा समस्तानां भूतानां परमेश्वरः ।
एक एव पदार्थश्च कल्पितो मयि षण्मुख ।२६।
अद्वैतमेकं परममात्मानं ज्ञानविग्रहम् ।
नानात्मानं प्रपश्यन्ति मायया मोहिता जनाः ।२७।
नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका ।
सदसद्भ्यामनिर्वाच्या मिथ्याभूता सनातना ।२८।

हे वत्स! मेरी भक्ति सदा ही करनी चाहिये क्योंकि यह भव के पाशों का विनाश कर देने वाली होती है। मैं भक्ति के ही द्वारा गम्य होता हूँ और मेरा योग तो अत्यन्त दुर्लभ होता है।२२। योग से ज्ञान समुत्पन्न हो जाता है और यह योग मुझमें एक चित्तता का होना ही

होता है। ज्ञान तो मेरा स्वरूप ही होता है जो चिद्रूप अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला—अव्यय-आनन्द-अजर-और शुद्ध है जो कि अज्ञान के द्वारा ही तिरोहित (छिपा हुआ) रहा करता है। वेदान्त के वाक्यों के अवबोध होने से वह अज्ञान निवृत्त होता है।२३।।२४। ज्ञान आत्मा का धर्म और कोई गुण नहीं है प्रत्युत यह आत्मा ज्ञान स्वरूप वाला ही होता है—वह नित्य है—सर्वगत और शिव है।२५। मैं ही समस्त भूतों का आत्मा एवं परमेश्वर हूँ हे षण्मुख! और—एक ही पदार्थ मुझमें प्रकल्पित है।२६। माया से मोहित जन अद्वैत—एक—ज्ञान के विग्रह वाले परमात्मा को अनेक आत्माओं वाला देखा करते हैं।२७। मेरी माया न सद्रूप वाली है और न असद् रूप वाली है तथा वह माया उभयात्मिका भी नहीं है। वह मेरी माया सद् और असद् से अन्य ही स्वरूप वाली होती है तथा मिथ्याभूता है और सनातनी भी है अर्थात् सर्वदा से चली आने वाली है।२८।

विज्ञानमेवमखिलं विश्वाकारमबुद्धयः।
पश्यन्ति ज्ञानिनस्त्वेकमात्मरूपमिदं जगत्।२९।
अहमात्मा विभुः शुद्धः स्फटिकोपलसन्निभः।
उपाधिरहितः शान्तः स्वयंज्योतिः प्रकाशकः।३०।
आत्मन्येवाखिलं भाति शुक्तिकारजतं यथा।
शुक्तितत्त्वपरिज्ञानात्तन्नाशस्तद्वदात्मनि।३१।
कर्तृत्वं नैव भोक्तृत्वमात्मनोऽस्ति कदाचन।
अहङ्काराविवेकेन कर्तृत्वमिति निश्चितम्।३२।
आत्मनो नित्यमुक्तस्य निर्विभागस्य षण्मुख।
नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमित्याहुर्वेदवादिनः।३३।
कर्तृत्वं करणस्यैव नात्मनोऽस्ति हि तत्त्वतः।
न तेन लिप्यते ह्यात्मा पुण्यापुण्याख्यकर्मणा।३४।

जो बुद्धि से रहित होते हैं वे समस्त विश्व के आकार वाला विज्ञान को ही देखा करते हैं और जो ज्ञानी होते हैं वे इस जगत् को एक ही

आत्मरूप देखते हैं ।२९। मैं आत्मा हूँ—एक हूँ—विभु-शुद्ध-स्फटिक के समान हूँ—उपाधि से रहित-शान्त स्वयं ज्योति और प्रकाशक हूँ ।३०। जिस तरह से सीप मे रजत (चांदी) का भ्रम उसके चकचिक्य के कारण मे हो जाया करता है वैसे ही यह सम्पूर्ण आत्मा मे ही विभात हुआ करता है । जब शुक्ति के तत्त्व का परिज्ञान हो जाता है तो यह रजत का भ्रम दूर हो जाया करता है उसी तरह से तत्त्वज्ञान होने से उसी की भाँति आत्मा मे उसका नाश हो जाया करता है ।३१। इस आत्मा मे कभी भी न तो कर्त्तृत्व होता है अर्थात् यह किसी भी कर्म का कर्त्ता नहीं होता है और भोक्तृत्व इस आत्मा मे होता है अर्थात् यह किसी भी कर्म का जब कर्त्ता ही नहीं है तो भोगने वाला भी नहीं हुआ करता है । यह कर्त्तृत्व आत्मा मे अहङ्कार और अविवेक से ही हुआ करता है—यही निश्चित है ।३२। हे करमुख ! यह विभाग से रहित है—नित्य मुक्त है, इसको कुछ भी कर्त्तव्य नहीं होता है ऐसा ही वेदो के ज्ञाता पुरुष कहा करते हैं ।३३। सात्विक रूप मे आत्मा की कर्त्तृत्व और करणत्व कुछ भी नहीं होता है जो कुछ भी कर्म होता है उसमे यह आत्मा-धर्म भी लिप्त नहीं हुआ करता है चाहे वह कर्म पुण्य स्वरूप हो । किसी भी प्रकार के कर्म से आत्मा लिप्त नहीं होती हैं ।३४।

बुद्ध्यादयो गुणा सर्वे ह्यभूदनुस्वेरहङ्कृति ।
अहङ्काराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ ३५
सूक्ष्मेभ्य पञ्च भूतानि तेभ्य स्थूलमिद जगत् ।
चतुर्विंशतमव्यक्त पुरुष पञ्चविंशक ॥ ३६
न तस्य कार्यं करण क्रियारूप च विद्यते ।
स्वाशानात्मवित सर्वमात्मन्येवेति च श्रुति ॥३७
इति मद्विषय ज्ञान कथित तव पुत्रक ॥ ३८

बुद्धि आदि ये सब गुण हैं । बुद्धि से अहङ्कार हुआ था और अहङ्कार से सूक्ष्म तन्मात्रायें होती हैं और इन्द्रियां हुआ करती हैं ।३५। उन्ही सूक्ष्म तन्मात्राओं से पाँच भूत होते हैं और उन्ही पञ्च-भूतों से यह सम्पूर्ण स्थूल जगत उत्पन्न हुआ करता है । यह अव्यक्त चौबीस संख्या वाला होता है और पच्चीसवां यह पुरुष हुआ

करता है। मन बुद्धि अहङ्कार-पाँच तन्मात्रा-पञ्चभूत-ग्यारह इन्द्रियाँ ये २४ हुए।२६। उनको न तो कार्य है और न करण है और न वह क्रिया रूप ही है, अपने ही अज्ञान से ये सब आत्मा में कहे गये हैं—ऐसी श्रुति है।२७। यही मेरे से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। हे पुत्र यही मैंने आपको बतला दिया है।२८।

भूतकार्यमिद देहमापद्रोगाकुल परम् ।
विपयै पीड्यते देव सुखदुःखात्मकै सदा ॥१
अभिभूतो यदा योगी दु खैरध्यात्मसम्भवै ।
किमुपाय तदा तस्य यदा वै भौतिकस्य च ॥२
ब्रह्माधिदैविकस्यापि योगससिद्धये प्रभो ।
यातनायोपसर्गाणा प्रसादाद्योगिना वद ॥३
सात्त्विका राजसा विघ्नास्तामसास्त्विह योगिनाम् ।
योगनाशकरा सर्वे भवन्ति भवतामपि ॥४
प्रातिभाश्रवणावार्तादर्शनास्वादवेदना ।
उपसर्गा भवन्त्येते सात्त्विकास्तु षडेव हि ॥५
दरिद्रोऽहमह चाऽऽढ्य शूरोऽह दुर्बलस्तथा ।
मूर्खोऽह च सुविद्वांश्च सुरूपोऽहमरूपवान् ॥६
दीनोऽह क्षपणश्चाह सुखी भोग्यहमेव च ।
अकुलीन कुलीनश्च कण्टक कण्टकोज्झित ॥७

श्री स्कन्द देवजी ने कहा—यह देह तो भूतों का ही कार्य है और आपत्ति तथा रोगों से परम व्याकुल रहा करता है। यह शरीर विषयों के द्वारा जो सुख-दुःख स्वरूप सदा पीड़ित रहा करता है ॥१॥ जिस समय में अध्यातम सम्भव दुःखों से योगी सदा अभिभूत रहा करता है उस समय में जबकि ऐसी परिस्थिति हो तो इस भौतिक का क्या उपाय है।२। हे प्रभो अधि दैविक की भी योग की ससिद्धि के लिये बतलाइए। योगियों की उपसर्गों की यातना के लिये भी प्रसन्नता से बतलाइये।३। श्री ईश्वर ने कहा—यहाँ पर योगियों के विघ्न सात्त्विक-राजस और तामस हुआ करते हैं। ये सभी आपको योग

के त्रास करने वाले होते है ।४। सात्त्विक उपसर्ग केवल छै ही हुआ करते हैं जो प्रातिभ-श्रवण-वार्त्ता-दर्शन-आस्वाद वेदन्त सून है ।५। मैं दरिद्र हूं और मैं शूर वीर हूं और दुर्बल हूं—मैं मूर्ख हूं और बडा विद्वान् हूं—मैं सुन्दर रूप वाला हूं और अरूप वाला हूं—दाता हूं और कृष्ण हूं—मैं सुखी और भोगी हूं—अकुलीन हूं और कुलीन हूं—कण्टक और कण्टकोज्झित हूं ।६।।७।

मदीय सर्वमेतद्धि वस्त्वित्यादिप्रजल्पनम् ।
अहङ्कारमय किंचिद्यत्तत्कृत्स्न हि राजमम् ।।८
अन्धत्व चैव बाधिर्यं पङ्गुत्व दुष्टरोगता ।
शिरोरोगो ज्वर शूलयक्ष्ममूर्छाभ्रमादय ।।९
राजसास्तामसा सर्वे तमोहकारसयुता ।
व्याधयो मिश्रभावेन पीडयन्तीह देहिनम् ।।१०
केवल जाड्यभावेन मूढत्व मोहन तथा ।
अज्ञानत्व च मूकत्वमित्याद्यास्तामसा स्मृता ।।११
गुह्यका यातुधानाश्च किंनरोरगराक्षसा ।
देवदानवरौद्राश्च दैत्या मातरजा गणा ।।१२
तामसास्तु ग्रहा भूता वायुभूता नर सदा ।
पीडयन्तीह विघ्ना हि योगाभ्यासरत ग्रहै ।।१३
एवमाद्युपसर्गाणां वारणाय च धारणाम् ।
वक्ष्यामि विधिया वत्स योगिना सिद्धिहेतवे ।।१४

यह समस्त वस्तु जान म ही हैं—इत्यादि प्रजल्पन जो कुछ भी अहङ्कार से परिपूर्ण है वह सम्पूर्ण राजस अर्थात् रजोगुण से युक्त है ।८। अन्धापन-वधिरता-पगलापन होना दुष्ट रोग का हो जाना-सिर मे रोग-ज्वर-शूल-राजयक्ष्मा- मूर्छा-भ्रम प्रभृति ये सब तम और अहङ्कार से युक्त राजस तथा तामस हैं । ये व्याधियाँ मिश्र भाव से देह धारी को पीडा दिया करती हैं ।९।।१०। केवल जाड्य भाव से मूढता तथा मोह का होना-अज्ञान होना और मूक होना इत्यादि सब तामस

कहे गये है ।११। गुह्यक-यातुधान-किन्नर-उरग-राक्षस-देव-दानव-रौद्र-दैत्य और सप्तक गुण-ग्रहभूत तथा वायुभूत तामस हैं जो मनुष्य को सदा ग्रहों के द्वारा जो योग के अभ्यास मे रत है उसको पीड़ा दिया करते हैं और ये सभी विघ्न होते हैं ।१२॥१३। इस प्रकार के उपसर्गों के निवारण करने के लिये हे वत्स ! योगियों की सिद्धि के लिये विविध प्रकार की धारणा को मैं बतलाता हू ।१४।



॥ सात्विक–राजस विघ्नादि कथन ॥

त्वगादिसप्तधातूनामेकीभूत विचिन्तयेत् ।
प्रणव कण्ठनासाग्रे सबीज वह्निदीपितम् ॥१५
वारणेषु च सर्वेषु उपसर्गेषु योगवित् ।
एतदेव चरेन्नित्यमुपसर्गादयो ययु ॥१६
पित्तरोगाभिभूतो वा योगी योगपरायण ।
ध्यानमेतत्प्रकुर्वीत तथाऽन्यच्छृणु पुत्रक ॥१७
सुवृत्त चोडुनाथस्य चाक्षर तत्र चिन्तयेत् ।
सुधाभिलषित ध्यायें त्स्वस्य मूर्ध्नि शिवात्मकम् ॥१८
प्रविश्य ब्रह्मरन्ध्रेण देहं निर्वाणज स्मरेत् ।
शीतलेन सुगन्धेन हृत्तत्त्व चापि तेन वै ॥ १९
पैत्ति हाश्चोपसर्गाश्च भानुना तिमिर यथा ।
विषज्वरजराद्याश्च नश्यन्त्यभ्यासतो ध्रुवम् ॥ २०
नाशयेदन्धता योगी दिव्यदृष्टि प्रजायते ।
उत्क्षिप्यापानमन्य च चन्द्रदैवत्यया पिबेत् ॥ २१

त्वक् आदि जो शरीर मे सात धातुयें है वे सभी एकीभूत है—या विचिन्तन करना चाहिए और कण्ठनासाग्र मे बीज के सहित ह्निमदीपित प्रणव है । योग के सच्चा पुरुष को सभी उपसर्गों से वरण रने में यही नित्य चरण करना चाहिए तो सभी उपसर्ग आदि चले

जाते है ।१५॥१६। अथवा कोई योगाभ्यास मे तत्पर पुरुष जो योगी है पित्त के रोग से अभिभूत न होवे तो उसको ध्यान करना चाहिए । हे पुत्र ! तथा अन्य भी श्रवण करो ।१७। यहाँ पर उडुनाथ के सुवृत्त अक्षर का चिन्तन करना चाहिए । सुधा से अभिलाषित शिवात्मक का अपने मूर्धा मे ध्यान करें ।१८। ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा प्रवेश करके देह को निर्वाणज स्मरण करें और उसके द्वारा शीतल सुगन्ध से हृत्तत्व का भी स्मरण करे ।१६। पैत्तिक जो उपसर्ग हैं और विष ज्वर जरा आदि है वे सब योग के अभ्यास से भानु के द्वारा अन्धकार के ही समान निश्चय ही नष्ट हो जाया करते है ।२०। योगी अन्यता का विनाश कर दिया करता है और दिव्य दृष्टि हो जाया करती हैं । अपान का और अन्य का उत्क्षेप करके चन्द्र दैवश्यया से पान करना चाहिए ।२१।

पीत्वा पार्थिवतत्त्वेन स्तम्भं वायोर्विनाशयेत् ।
पुष्टिरेवातुला तस्य स्थिरत्वं रुजहीनता ॥ २२
हृत्तत्वं च सुपीताभममरत्वं तथा स्मरन् ।
श्रोत्रमाकाशवाय्वोश्च अनैक्त्वं विचिन्तयत् ॥ २३
मोचयेत्तु पुनर्वायुं वधिरत्वविनाशनम् ।
शृणोति दूरतं सर्वं श्रुतधारी भवेत्सदा ॥ २४
वियन्मयोऽय सचारी सतताभ्यासयोगत ।
सरोजं रसनायां च तद्द्वद्वारं सकर्णिकम् ॥ २५
स्मृत्वा मध्ये पुनर्ध्यायेच्छुक्लवर्णां स्वरस्वतीम् ।
जडत्वं च शिरोरोगं मुखरोगान्विनाशयेत् ॥ २६
प्रज्ञा चैवं स्मृतिर्मेधा कवित्वं बुद्धिरुत्तमा ।
स्तम्भनं दुष्टसत्त्वानां सर्ववायूद्भयत्सदा ॥ २७
हृत्सरोजगतं देवमष्टादशभुजैर्युतम् ।
नीलारुणं महाकायं निट्वचन्द्रजटाधरम् ॥ २८

पार्थिव तत्त्व के द्वारा पान करके वायु का जो स्तम्भ है उसका विनाश कर देना चाहिए । उससे अतुल पुष्टि हो जाती है और उसको

स्थिरता तथा रोग हीनता भी हुआ करती है।२२। और गुणीनाथ हृतत्त्व का तथा अमरत्व का स्मरण करता हुआ श्रात्र और आकाश वायु की एकता का चिन्तन करे।२३। फिर उस वायु का मोचन करे तो बधिरता का विनाश हो जाया करता है। वह पुरुष सदा श्रुतधारी होता है और दूर से ही सभी कुछ का श्रवण कर लिया करता है।२४। निरन्तर अभ्यास के योग से वह विषमय स०जरण करने वाला सरोज को रसना में वर्णिका के सहित उसके दृष्टा स्मरण करके पुनः ध्यान करे कि शुक्ल वर्ण वाली सरस्वती देवी है। वह जड़ता सिर का रोग और शूल के रोगों का विनाश कर दिया करता है।२५॥२६। इस इस प्रकार से प्रज्ञा-स्मृति मेधा-कवित्व और उत्तम बुद्धि-पुष्ट सत्ता का स्तम्भन हो जाता है और सदा सब वायुओं को जीत लेवे।२७। अठा-रह भुजाओं से युक्त देव को हृदय रूपी कमल में स्थित का स्मरण करे जो नील और अरुण वर्ण वाले हैं—महान् परम विशाल विग्रह से युक्त हैं तथा तीन नेत्रों से संयुक्त एवं जटाओं में चन्द्रमा को धारण किये हुए हैं।२८।

सिंहचर्माम्बर भीम सर्वाभरणभूषितम्।
भुजङ्गहाराभरण सवकङ्कणनूपुरम्॥ २९
ज्वालामालाकुल दीप्त आभासितदिगाननम्।
अभेद्य विजय रौद्रमक्षोभ्य त्रिदशेश्वरम्॥ ३०
कपालमालिन घोरं भीम दंष्ट्राकरालिनम्।
अरुत्रैर्व्यग्रकर देवममोघैर्वह्निकारणं॥ ३१
स्मरणाद्यजनाद्वै व तैजसैर्विघ्ननाशनम्।
शूल मुन्दरवज्र पुदण्डकार्मुकशक्त्यसि॥ ३२
पद्मान्ते दक्षिणे भागेऽविनाश परमेश्वरम्।
परिघध्वजखङ्गाङ्करङ्कुश च धनुर्गदाम्॥ ३३
ज्वालाननेन पाशेन वामभागेऽभयप्रदम्।
अनेन ध्यानयोगेन सर्वविघ्नान्निवारयेत्॥ ३४

ईश्वर चिन्तयेत्स्थाणुं ज्ञानमानन्दविग्रहम् ।
उभावपि स्थिरीकृत्य योगी मोक्षाय कल्पते ।। ३६
वाह्ये चित्तं समारोप्य वायो परमकारयत् ।
ततो द्वाराणि संयम्य ब्रह्मरन्ध्रे लय गत. ।। ४०
लक्षमाधाय तत्रैव योजयेन्मयि षण्मुख ।
घृत घृतेष्वेव यथा नियुक्त प्रयाति चैवयादविशेषभावम् ।
तथैव लीनो न भवेत्स भूय परे चतुर्थेत्वनया च युक्त्या ।।४१

जो योग का ज्ञाता है और योग से युक्त आत्मा वाला है वह परम निर्वाण को प्राप्त किया करता है । पद्म मे आदित्य मण्डल को और फिर सौम्य पावक को तथा हृदय रूपी गुहा मे आवास करने वाले आत्मा का महामुनि को चिन्तन करना चाहिए और इसके अनन्तर सुनिर्मल-परम शान्त-ईश देव का ध्यान करना चाहिए ।।३६।।३७।। सम्पूर्ण इस जगत को व्याप्त करके समवास्थित और काल तथा अकाल से विवर्जित विपद्देश मे अथवा हृदय रूपी कुभज मे विराजमान ईश्वर का योग के ज्ञाताओ मे श्रेष्ठ योगी आनन्द के विग्रह वाले स्थाण्ड ज्ञान स्वरूप ईश्वर का चिन्तन करे । दोनो को स्थिर करके योगी मोक्ष को प्राप्त किया करता है । ।।३८।।३९।। वायु के बाहर मे चित्त को समारोपित करके परम करे । इसके पश्चात द्वारो का संयम करके ब्रह्म रन्ध्र मे लय को प्राप्त हो जाता है हे षण्मुख ! वही पर लक्ष का आधान करके मुझ मे योजित करे । घृत जैसे घृत मे मिल जाता है उसी भाँति ऐक्य हो जाने से नियुक्त होकर अविशेष भाव को प्राप्त किया करता है । उसी भाँति से इसी युक्ति के द्वारा पुनः चतुर्थ परमे वह लीन हो जाया करता है ।।४०।।४१।।

।। हरोत्पत्त्यादि कथन ।।

ततः ससर्ज भगवान्देवोऽसावन्त्मनः सुतान् ।
सनातन च सनक सनन्दनमथापि च ॥१
शभु सनत्कुमारं च पञ्च तान्पद्मसभवः ।
न सृष्टौ दधिरे बुद्धि शिवैकध्यानतत्पराः ॥२
सृष्टौ तेष्वनपेक्षेषु मोहाविष्टः प्रजापतिः ।
तपस्तताप परम न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥३
गते वहुतिथे काले समभूत्क्रोधमूर्छितः ।
प्राणात्मकः समुद्भूतो ललाटाद्ब्रह्मणो हरः ॥४
केनापि हेतुना विप्राः सूर्यकोटिसमप्रभः ।
निश्चक्राम ततो भित्वा भाल भगवतो विधेः ॥५
रोदयित्वाऽब्जजन्मान तस्माद्रुद्र इति स्मृतः ।
अन्यानि सप्त नामानि शृणुध्व मुनिपुंगवाः ॥६
भवः शर्वस्तथेशानः पशूना पतिरेव च ।
भीमश्चोग्रो महादेव इति नामानि सत्तमाः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् इन देव ने अपने पुत्रों का सृजन किया था । सनातन सनक-सनन्दन और शम्भु सनत्कुमार इन पाचो को पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने समुत्पन्न किया था । ये सबके सब एक मात्र भगवान शिव के ध्यान मे ही तत्पर रहा करते थे और इन्होंने सृष्टि की रचना करने में अपने बुद्धि को नही लगाया था ।।१।।२।। सृष्टि की रचना करने के कार्य में वे जब सबके सब अनपेक्ष हो गये थे तो प्रजापति मोह से एक दम आविष्ट हो गये थे । फिर उन्होंने परम घोर तपश्चर्या की थी और फिर उनको कुछ भी ध्यान नही रहा था ।।३।। जब वहुत काल व्यतीत हो गया तो ब्रह्मा जी क्रोध से मूर्च्छित हो गये थे । उसी समय मे उनके ललाट से प्राणात्मक हर समुद्गत हो गये थे ।।४।। हे विप्रो ! किसी भी हेतु से करोड़ो सूर्यो के समान प्रभा वाले

वे भगवान विधि के भाल का भेदन करके निकले थे ॥५॥ अग्र जन्मो के वे रोदन करते हुए निकले थे इसी कारण से उनको रुद्र कहा गया है। हे मुनि पुङ्गवों ! अन्य जो सात नाम है। उनको भी आप श्रवण कीजिये ॥६॥ हे सत्तमो ! उनके ये सात नाम है–भव–शर्व–ईशान–पशुपति–भीम–उग्र और महादेव ॥७॥

भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योम सूर्यश्च चन्द्रमाः ।
अष्टमी दीक्षितस्तत्र मूर्तिरीशस्य शूलिनः ॥८
याभिर्व्याप्तमिद विश्व विश्वस्यास्य जगन्मय. ।
तेन विश्वेश्वरो देव इति नाम्ना शिव स्मृतः ॥९
प्रजा सृजेति निर्दिष्टश्चन्द्रमौलिर्विरञ्चिना ।
ससर्ज मनसा रुद्रानात्मतुल्यान्महेश्वर. ॥१०
नीलकण्ठास्त्रिनेत्रांश्च जटामुकुटमण्डितान् ।
वृषध्वजान्वीतरागाञ्जरामरणवर्जितान् ॥११
सर्वज्ञाञ्शतकोटीस्तान्सर्वानुग्राहिणः परान् ।
दृष्ट्वा तान्विविधान्रुद्रान्विरञ्चिः प्राह शङ्करम् ॥१२
जरामरणनिर्मुक्तामीदृशी मा सृजः प्रजाम् ।
सृजस्वान्या सुरेशान प्रजा मृत्युसमन्विताम् ॥१३
ब्रह्माणमब्रवीच्छंभुर्नास्ति मे तादृशी प्रजा ।
ततः प्रभृति विश्वात्मा न प्रासूत शुभा प्रजाः ॥१४

ईशम्भु की आठ मूर्तियां हैं—भूमि—जल—अनल—वायु—व्योम—सूर्य—चन्द्रमा और आठवी मूर्ति दीक्षित है। जिन आठ मूर्तियो के द्वारा इस विश्व का जगन्मय विश्व व्याप्त है। इसीसे विश्वेश्वर देव "शिव"—इस नाम से कहे गये हैं ॥८॥९॥ विरञ्जि ने चन्द्र मौलि शङ्कर भगवान से निर्देश दिया था कि तुम प्रजा का सृजन करो। उस समय में महेश्वर भगवान ने अपने ही समान रुद्रों का मनसे सृजन किया था। ये सबके सब नीले कण्ठो वाले—तीन नेत्रों के धारण करने वाले—जटा और मुकुटों से अण्डित थे—वे वृषध्वज—वीतराग और जरा तथा मृत्यु से वर्जित थे ॥१०॥११॥ वे सर्वज्ञ शतकोटि-सब पर

अनुग्रह करने वाले और पर थे। उन सब विविध प्रकार के रुद्रों को देखकर ब्रह्माजी ने भगवान शङ्कर से कहा था ॥१२॥ जो प्रजा जरा और मरण से रहित हो ऐसी प्रजा का सृजन मत करो। हे सुरेशान! अन्य ऐसी प्रजा की रचना करो जो मृत्यु से समन्वित हो ॥१३॥ शम्भू भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा—मेरी प्रजा इस प्रकार की नहीं है। तब से लेकर विश्वात्मा ने फिर शुभ प्रजा को प्रसूत नहीं किया था ॥१४॥

रुद्रैरात्मसमुद्भूतैः क्रीडायुक्तस्तदाऽभवत् ।
स्थाणुर्वन्निश्चलो यस्मात्स्थित स्थाणुरिति स्मृतः ॥१५
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ।
द्रष्टृत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥१६
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे ।
स एव भगवानीशो विश्वेशो नीललोहितः ॥१७
ततस्तमाह भगवान्ब्रह्मा संवीक्ष्य शंकरम् ।
अनुगृह्य यथा मां त्वं पुनस्त्वे दत्तवान्वरम् ॥१८
अद्य तत्सफलं जातं चिन्तितं यन्मयेप्सितम् ।
एवं विश्वेश्वरं शंभुं समाभाष्य चतुर्मुखः ॥
स्तोत्रेणानेन तुष्टाव शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥१९
नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर ।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥२०
नमोऽस्तु ते महेशान नमः शान्ताय हेतवे ।
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ॥२१

उस समय मे भगवान् शम्भु अपनी आत्मा से समुत्पन्न रुद्रों के साथ क्रीडा युक्त हो गये थे। वे स्थाणु के समान एकदम निश्चल थे इसी कारण से उनको स्थाणु—इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ ज्ञान-वैराग्य—ऐश्वर्य—तप—सत्य—क्षमा—धृति—द्रष्टृत्व—आत्म संबोध—अधिष्ठातृत्व—ये दश अव्यय हैं जो भगवान् शङ्कर मे नित्य ही स्थित रहा करते हैं। वह ही भगवान ईश विश्व के ईश और नील

लोहित है ॥१६॥१७॥ इसके पश्चात् भगवान ब्रह्माजी ने उन शङ्कर को देखकर उनसे कहा था। तुम मुझ पर अनुग्रह करके ऐसा करो। मैंने पुत्रत्व होने मे तुमने वरदान मुझको दिया था। अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा—ऐसा कृपा करके मुझे वरदान प्रदान किया था। आज वह वरदान सफल हो गया है और जो मैंने सोचा था वह मेरा अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो गया है। इस प्रकार से विश्वेश्वर शम्भु से भगवान चतुर्मुख ने कहकर अपने मस्तक पर दोनों हाथों को जोड़ते हुए रखकर इस निम्नलिखित स्तोत्र के द्वारा उनका स्तवन किया था— ॥१८॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महा देव! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार अर्पित है। हे परमेश्वर! आपके लिये मेरा प्रणाम है। शिव देव के लिये और ब्रह्म के रूप वाले आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥२०॥ हे महेशान! आपको मेरा प्रणाम है। परमशान्त स्वरूप और हेतु रूप आपके लिए मेरा प्रणाम है। आप प्रधान-पुरुष के ईश है और योग के अधिपति हैं। ऐसे आपके लिए मेरा वारम्वार नमस्कार है॥२१॥

नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ।
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥२२
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय च ।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥२३
नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ।
वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये ॥२४
नमः शुद्धाय बुद्धाय योगिनां गुरवे नमः ।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते ॥२५
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ।
त्र्यम्बकाय च देवाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥२६
नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने ।
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥२७

नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे ।
नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥२८

कालस्वरूप-रुद्र-महाग्रास तथा शूलधारी आपके लिए मेरा नमस्कार है । पिनाक धनुष को हाथ मे धारण करने वाले त्रिनेत्र मे लिए मेरा नमस्कार है और वारम्वार प्रणाम है ॥२२॥ त्रिमूर्त्ति आपके लिये मेरा नमस्कार है । ब्रह्मा के जनक आपके लिए मेरा प्रणाम है । ब्रह्म विद्या के अधिपति और ब्रह्म विद्या के प्रदान करने वाले के लिए मेरा प्रणाम है ॥२३॥ वेदो के रहस्य स्वरूप और काल के भी काल आपके लिए नमस्कार है । आप वेदान्त के सार के भी सार हैं तथा वेदो की आत्म मूर्त्ति हैं ऐसे आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥२४॥ शुद्ध-बुद्ध और योगियो के गुरुदेव आपकी सेवा मे मेरा प्रमाण समर्पित है प्रहीण शोक वाले अनेक भूतो के द्वारा परिवृत आप के लिए मेरा नमस्कार है । ब्रह्मण्य देव तथा ब्रह्म के अधिपति आपको मेरा प्रणाम है । त्र्यम्बक देव परमेष्ठी आपके लिए मेरा प्रणाम है ॥२५॥२६॥ दिगम्बर (नग्न) आपको प्रणाम है । मुण्ड और दण्डी, आपके लिए नमस्कार है । अनादि मल से हीन तथा ज्ञान जानने के योग्य आपके लिये नमस्कार है ॥२५॥२६॥२७॥ तार और तीर्थ के लिए तथा योग की ऋद्धि के हेतु-धर्म से अधिगमन करने के योग्य और योगगम्य आपको नमस्कार है ॥२८॥

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नम ।
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥२६

त्वयैव सृष्टमखिल त्वय्येव सकल स्थितम् ।
त्वया सह्रियते विश्व प्रधानाम्य जगन्मय ॥३०

त्वमीश्वरो महादेव पर ब्रह्म महेश्वर ।
परमेष्ठी शिव शान्त पुरुषो निष्कलो हर ॥३१

त्वमक्षर पर ज्योतिरोंकारः परमेश्वर ।
त्वमेव पुरुषोऽनन्त प्रधान प्रकृतिस्तथा ॥३२

भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहंकार एव च।
यस्य रूप नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥३३
यस्य द्यौरभवन्मूर्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः।
आकाशमुदर तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥३४
सतापयति यो नित्यं स्वभाभिर्भासयन्दिश.।
ब्रह्मतेजोमयं विश्व तस्मै सूर्यात्मने नम ॥३५

अपक्ष से रहित आपको नमस्कार है और निराभास आपके लिये प्रणाम है। विश्व रूप ब्रह्म परमात्मा के लिये नमस्कार है ॥२९॥ हे जगन्मय ! आपने ही इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और आपसे ही यह समस्त विश्व स्थित रहा करता है। आपके द्वारा इस विश्व का सहार किया जाता है जो कि प्रधानाख्य है। ३०॥ आपही महादेव हैं–ईश्वर हैं—परम ब्रह्म और महेश्वर हैं। आपही परमेष्ठी—शान्त–शिव–पुरुष–निष्कल और हर है ॥३१॥ आप अक्षर—परम ज्योति—ओङ्कार और परमेश्वर हैं। आपही पुरुष है जोकि अनन्त है—तथा आपही प्रधान प्रकृति हैं ॥३२॥ आपही भूमि-जल अनल-वायु व्योम और अहङ्कार हैं। आप ब्रह्म की संज्ञा वाले है जिनके रूप को मैं नमस्कार करूँगा ॥३३॥ जिसका मूर्धा द्यौ हुआ था—पृथ्वी चरण हुए और दिशाऐं भुजाऐ थी। आकाश जिसका उदय है उस विराट् के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥३४॥ जो अपनी दीप्तियों के द्वारा समस्त दिशाओं को भासित करते हुए नित्य ही संतप्त किया करते हैं और ब्रह्म ने जो मय विश्व हैं उन आप सूर्यात्मा के लिए मेरा नमस्कार है॥३५॥

हव्य वहति यो नित्य रौद्री तेजोमयी तनुः।
कव्य पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नम. ॥ ३६
आप्याययति यो नित्य स्वधाम्ना सकलं जगत्।
पीयते देवतासघैस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥ ३७
विभर्त्यशेषभूतानि योऽन्तश्चराति सर्वदा।
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्य तस्मै वाय्वात्मने नम ॥

सृजत्यशेषमेवेद यः स्वकर्मानुरूपत. ।
स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः ॥ ३६
यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया ।
आत्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ४०
विभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम् ।
ब्रह्माण्ड योऽखिलाधारं तस्मै शेषात्मने नमः ॥ ४१
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिणम् ।
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ ४२

जो नित्य ही हव्य का हवन किया करते हैं वही तेजोमयी रौद्री तनु है और पितृगणों के लिये कष्ट का वहन किया करते हैं उस वह्नि रूप के लिये प्रणाम है ।३६। जो इस सम्पूर्ण जगत् को नित्य ही अपने धाम के द्वारा आप्यायित किया करते हैं और देवता सब्यों के द्वारा देख्य किया करते हैं। उन आप चन्द्रात्मक के लिये मेरा नमस्कार है। ।३७। जो सब भूतों का भरण किया करते हैं और जो सर्वदा अन्त करण मे अन्तर्यामी रूप से चरण किया करते हैं ऐसी जो महेश्वर शक्ति हैं उस वायु के स्वरूप वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है ।३८। जो अपने २ कर्मों के अनुरूप ही इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करते हैं। और स्वात्मा में ही अवस्थित है उन चार मुखो वाले के स्वरूप धारी आपको मेरा नमस्कार समर्पित है ।३६। जो अपनी माया के द्वारा इस समस्त विश्व को समावृत करके शेष की शय्या पर क्षीर सागर मे शयन किया करते हैं और आत्मानुभूति के योग के द्वारा ही सोते रहा करते हैं उन विश्वात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम है ।।४०।। इन चौदह भुवनो को जो अपने शिर पर नित्य ही धारण किया करते हैं जो यह सबका आधार ब्रह्माण्ड है उसे आप धारण कर के विराजमान हैं उन शेषात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम समर्पित है ।।४१।। जो परान्तमे दिव्यैकसाक्षी परानन्द का पान करके अनन्त महिमा वाले नृत्य किया करते हैं उनके रुद्रात्मा आपके लिये मेरा नमस्कार है ।।४२।।

योऽन्तरा सर्वभूताना नियन्ता तिष्ठतीश्वर ।
त सर्वसाक्षिण देव नमस्ते परमात्मने ॥ ४३
यस्य केशेषु जीमूता नद्य सर्वाङ्गसधिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै व्योमात्मने नम ॥ ४४
य विनिद्रा यतश्वासा सतुष्टा समदर्शिन ।
ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नम ॥ ४५
यस्य भासा विभातीद सदह् तमस परम् ।
तत्त्व सदा निराकार चिद्रूप पारमेश्वरम् ॥ ४६
यथा सतरते माया योगी सक्षीणकल्मष ।
अपरान्तामपर्यन्ता तस्मै विद्यात्मने नम ॥ ४७
नित्यानन्द निराधार निष्फल परम शिवम् ।
प्रपद्ये परमात्मान भवन्त परमेश्वरम् ॥ ४८
एव स्तुत्वा महादेव ब्रह्मा तद्भावभावित ।
प्राञ्जलि प्रणतस्तस्थौ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४९

जो समस्त प्राणियो के अन्दर नियन्ता होकर ईश्वर समावस्थित रहा करते है उन्ही सबके साक्षी रूपी देव परमात्मा के लिये नमस्कार है ॥४३॥ जिनके कशो मे मेघ हैं और जिसकी सब सन्धियों मे नदियाँ हैं जिसकी कुक्षि मे य चारो समुद्र विद्यमान रहा करते हैं उन व्योमात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ जिस ज्योति को जगत निद्रा वाले–यतश्वासो वाले सन्तुष्ट और समदर्शी युञ्जान होकर अर्थात् योगाभ्यास करते हुए देखा करते हैं उन योगात्मा आपके लिये मेरा नमस्कार है। ॥४५॥ जिसकी दीप्ति से यह सम्पूर्ण विकसित हुआ करता है उस तमसे परे- निराकर तत्त्व को जो सदा चिद्रूप पारमेश्वर है। जिसके द्वारा योगी सक्षीणक मष वाला माया का सतरण किया करता है जो कि माया अपरान्ता और अपर्यान्ता है उस विद्यात्मा के लिये मेरा प्रणाम है ॥४६॥४७॥ नित्य ही आनन्द स्वरूप निराधार निष्कल परम पर मात्मा आप परमेश्वर शिवकी म शरणागति मे जाता हू ॥४८॥ इस

प्रकार से उनके ही भाव से भावित होने वाले ब्रह्माजी ने महादेवजी की स्तुति करके सनातन ब्रह्म को ग्रहण करते हुए प्रणत और प्रञ्जलि होकर वहीं पर स्थित हो गये थे ॥४९॥

ततस्तस्य महादेवो नित्ययोगमनुत्तमम् ।
ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावे वैराग्यं च ददौ हरः ॥ ५०
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च उपस्पृश्य महेश्वरः ।
व्याजहार महादेवः सोऽनुगृह्य पितामहम् ॥ ५१
यत्त्वयाऽभ्यर्थितो ब्रह्मन्पुत्रत्वेऽहं मया कृतम् ।
त्वमिदानीं ममाऽऽदेशात्सृजस्व विविधाः प्रजाः ॥ ५२
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन्ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽहं न संशयः ॥ ५३
स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः ।
ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तमः ॥ ५४
ममैव हृदयाद्रुद्रः संजातः कामरूपधृक् ।
ब्रह्मविष्णुहराख्यानां यः परः परमेश्वरः ॥ ५५

इसके पश्चात् हर महादेवजी ने उनको नित्य एवं परमोत्तम योग-ऐश्वर्य और ब्रह्मसद्भाव वैराग्य प्रदान किया था ॥५०॥ महेश्वर प्रभु ने अपने परमशुभ करों से उन ब्रह्माजी का उपस्पर्श किया था और उनसे परम अनुग्रह करके ही पितामह से महादेवजी ने कहा था। हे ब्रह्मन्! जो आपने मेरी अभ्यर्थना की थी। वही मैंने उनके पुत्र होने के रूप में उपस्थित होने का कार्य किया है। अब आप मेरे आदेश से विविध भाँति की प्रजा का सृजन करिए ॥५१।५२॥ हे ब्रह्मन्! मैं तीन प्रकार से ब्रह्मा विष्णु और हर इन नामों से भिन्न २ स्वरूप वाला हो गया हूँ। सर्ग रक्षा और लय के गुणों में युक्त होता हुआ भी मैं निर्गुण ही हूँ—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥५३॥ वह आप मेरे आगे पुत्र हैं जो सृष्टि की रचना करने के ही लिये निर्मित किये गये हो आप मेरे ही दक्षिण अङ्ग से समुत्पन्न हुए हैं और मेरे वाम अङ्ग से

पुरुषोत्तम हुए है। मेरे ही हृदय से रुद्र उत्पन्न हुए हैं जो काम रूप को धारण करने वाले है। ब्रह्मा-विष्णु और हर नामा वाला मे जो पर है वह परमेश्वर हूँ ॥५४॥५५॥

त महान्त महादेव ब्रह्मज्ञानन्ति सूरय ।
एव ब्रह्माणमाभाष्य दत्वा च विविधान्वरान् ॥ ५६
अन्तर्हितो महादेव पश्यत पद्मजन्मन ।
अनुग्रहात्ततस्तस्य तस्माज्ज्ञानोदयो भवेत् ॥ ५७
ततश्च पाशविच्छित्ति शिव एव भवेत्तत ।
नश्यन्ति व्याधयस्तस्य गलगण्डग्रहादय ॥ ५८
ऐहिकी लभते सिद्धि चिरजीवित्वमेव च ।
सर्वपापविनिर्मुक्त शिवलोके महीयते ॥ ५९

हे ब्रह्मन् ! उन महान् महादेव को सूरिगण जानते हैं। इस रीति से ब्रह्माजी से कहकर और अनेक वरदान देकर पद्मजन्मा ब्रह्माजी के देखते हुए महादेवजी अन्तर्धान हो गये थे। इसके अनन्तर उनके ही अनुग्रह से उन ब्रह्माजी के हृदय मे ज्ञान का उदय हो गया था। और इसके पश्चात् शिव ही पाशविच्छिति हो गये थे। उसकी सब गलगण्ड ग्रहादि व्याधियाँ नष्ट हो जाती है ऐहिकी सिद्धि को प्राप्त करता है और चिरजीवित्व भी प्राप्त किया करता है। वह सब पापों से छुटकारा पाकर अन्त मे शिवलोक मे अधीष्ठित हुआ करता है ॥५६॥५९॥

॥ ब्रह्म पद्मयोनित्वादि कथन ॥

कथ स भगवाञ्शम्भु सर्वस्याऽद्योऽपि सन्विभु ।
चतुर्मुखस्य पुत्रत्वमगमत्केन हेतुना ॥ १
दक्षिणाङ्गभवो ब्रह्मा महादेवस्य शूलिन ।
कथ तत्पद्मयोनित्व विरञ्चेरिति नो वद ॥ २

आसीदेकार्णवे घोरे नष्टे वै सचाराचरे ।
देवाश्च दानवाश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥ ३
निर्विद्यन्ते तदा तस्मिन्सजाते प्रतिसचरे ।
नारायणो महायोगी शेते तस्मिंस्तमोमये ॥ ४
योगनिद्रां समासाद्य शेषाहिशयने द्विजा ।
उद्भूत पङ्कज तस्य नाभौ भगवतो हरे ॥ ५
दिव्यगन्धसमोपेत शतयोजनविस्तृतम् ।
तस्यैव शयनस्थस्य दिव्य वर्षशत मतम् ॥ ६
ब्रह्मा जगाम त देश यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तम ।
समुत्थाप्य च त ब्रह्मा करेण मधुसूदनम् ॥
मायया मोहितो ब्रह्मा तमुवाच सुरेश्वरम् ॥ ७

ऋषियो ने कहा—हे भगवान् ! यह भगवान् शम्भु, जब सबके आदि म रहने वाले विभु है तो वे किस कारण से ब्रह्माजी के पुत्रत्व को प्राप्त हुए थे ॥१॥ शूली महादेवजी के दक्षिण अङ्ग से समुत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी हैं तो विरञ्चि से पद्म से समुत्पन्न होना कैसे हो गया था- यह सब हमारे सामने आप वर्णित कीजिए ॥२॥ श्री सूत ने कहा—जब यहा पर एकार्णव ही था अर्थात् केवल एक समुद्र था और वह भी परम घोर रूप वाला था सभी चर और अचर नष्ट हो गये थे । उस समय मे उस प्रति सञ्चर के हो जाने पर कोई भी विद्यमान नही रहा था न तो कोई देव ही थे-न दानव थे-न मुनिगण थे और न मनु गण थे । उस तमोमय काल म केवल एक महायोगी भगवान् नारायण ही शयन किया करते हैं ॥३॥४॥ हे द्विजो ! शेष नाग की शय्या पर योग निद्रा से प्राप्त होकर वे भगवान् नारायण शयन कर रहे थे । उनकी नाभि मे एक पद्म उत्पन्न हुआ था और वे भगवान् श्री हरि थे ॥५॥ वह पद्म साधारण पद्म नही था । वह तो परम दिव्य गन्ध से युक्त था और सौ योजन के विस्तार मे युक्त था । इस प्रकार शयन मे स्थित उनको दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गय थे ॥६॥ ब्रह्माजी उस देश मे गये

थे जहा पर परम पुरुषोत्तम शयन किये हुए थे। ब्रह्माजी ने कर के द्वारा उन मधुसूदन को उठाया था और माया से मोहित होकर ब्रह्माजी ने उन सुरेश्वर प्रभु से कहा था ॥७॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे शेते कोऽत्र भवानहो।
ब्रह्मोत्युक्तेऽब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्माण तेजसां निधि ॥ ८
न जानासि कथ मूढ मामन्तर्यामिण विभुम्।
सर्वस्याऽऽद्य सुरश्रेष्ठ जानीहीत्यब्रवीद्विभु ॥९
एवमुक्त्वा पुनश्चक्री जानन्नपि पितामहम्।
को भवानिति त प्राह ब्रह्मा हरिमथाब्रवीत् ॥ १०
अह वै सर्वभूतानामाद्य सर्वजगत्पति ।
ब्रह्माण मा परं देवं जानीहि पुरुषर्षभ ॥ ११
चराचरात्मक विश्व मयि तिष्ठति सर्वदा।
मय्येव विलयश्चान्ते पुनरेव न सशय ॥ १२
एव पितामहेनोक्तो भगवान्कमलापति ।
प्रविष्टो ब्रह्मणो देह तत्र लोकान्ददर्श स ॥ १३
विस्मित कमलाकान्तो निर्गतश्च विधेर्मुखात्।
सहस्रशीर्षा पुरुष पुनर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ १४

इस परम घोर एकार्णव मे जो आप शयन कर रहे हैं ये आप कौन हैं—यह बतलाओ—ऐसा कहने पर तेजो के निधि भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा था—हे मूढ ! क्या तुम नही जानते हो और तुम मुझको क्यो नही जानते हो मैं तो सबका अन्तर्यामी और विभु हू। मैं तो सभी का आद्य सुरो म श्रेष्ठ हू। विभु ने कहा—अच्छा, अभी मुझे जान लो ॥८॥९॥ इस प्रकार से कहकर फिर चक्री भगवान् ने जानते हुए भी पितामह से पूछा था कि आप कौन हैं ? इसके उत्तर म ब्रह्मा जी ने श्री हरि से कहा था ॥१०॥ मैं सब भूतो का आद्य हू और इस समस्त जगत का स्वामी हू। हे पुरुषो मे परम श्रेष्ठ ! मुझको ब्रह्मा समझो जो कि परम देव है ॥११॥ यह सम्पूर्ण चर-अचरात्मा विश्व

मुझमें ही स्थित रहा करता है और अन्त मे मुझमे ही विलय को प्राप्त हो जाया करता है इसमे कुछ भी सशय नही है ॥१२॥ इस प्रकार से पितामह के द्वारा भगवान् कमलापति से कहा गया था तो उस समय मे वे ब्रह्माजी के देह म प्रविष्ट हो गये थे और वहा पर सभी लोगो को देखा था। कमलाकान्त विष्णु यह देखकर बहुत ही विस्मित हो गये थे और फिर वे विधाता के मुख से बाहिर निकल गये थे। सहस्र शीर्षो वाले पुरुष फिर ब्रह्माजी से बोले ॥१३॥१४॥

विधे त्वमपि मद्देह प्रविश्याशु विलोकय ।
चराचरात्मकाँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ १५
ततो विरिञ्चिर्भगवानुदरे कमलापते ।
प्रविश्य भुवनान्सर्वान्दृष्ट्वाऽभूद्विस्मितो विधि ॥ १६
नापश्यन्निर्गमद्वारे पिहितानि च चक्रिणा ।
ततोऽसौ नाभिपद्मस्य नालमार्गमविन्दत ॥ १७
तेन मार्गेण निर्गत्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।
रेजे पङ्कजमध्यस्थो देवदेव पितामह ॥ १८
तमब्रवीद्गदापाणिर्ब्रह्माणममितद्युति ।
लीलार्थमेतत्सकल पितामह कृत मया ॥ १९
न मात्सर्यात्सुरश्रेष्ठ द्वाररोधो मया कृत ।
त्वमेव जगतो मान्य सर्वस्याऽऽद्य पितामह ॥ २०
पुनस्त्वे त्वामह याचे देहि मे कमलासन ।
पद्मयोनिरिति ख्याति मत्प्रितार्थं गमिष्यसि ॥ २१

हे ब्रह्मन् ! आप भी मेरे देह म प्रविष्ट होकर शीघ्र ही देखिए। जहा पर चरा चरात्मक सब लोक विद्यमान हैं जिनम सभी देव-असुर और मनुष्य हैं ॥१५॥ इसके अनन्तर फिर भगवान् कमलापति के उदर मे प्रवेश करके उन्होंने समस्त भुवनो को देखा था सो ब्रह्माजी को अत्यधिक विस्मय उत्पन्न हो गया था ॥१६॥ भगवान् चक्रीने सभी द्वारो को बन्द कर दिया था अतएव ब्रह्माजी को अपने बाहिर निकलने

का कोई भी द्वार ही नही मिला था। तब वे नाभि पद्म के नाल पर प्राप्त हो गये थे ॥१७॥ ब्रह्म के ज्ञाताओं मे परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी उसी मार्ग से बाहिर निकल कर आये थे और देवों के देव ब्रह्माजी उस कमल के मध्य मे स्थिर होकर परम शोभित हुए थे ॥१८॥ अपरिमित द्युति वाले गदापाणि ने उन ब्रह्माजी से कहा था —हे पितामह ! लीला के ही लिये मैंने यह सभी कुछ किया है ॥१९॥ मैंने किसी मत्सरता की भावना से द्वारों का अवरोध नहीं किया था। आप ही जगत् के मान्य सबके आदि मे होने वाले पितामह है ॥२०॥ हे कमलासन ! मैं आपसे याचना करता हू कि आप पुत्रत्व मे प्राप्त हो वही मुझे दीजिए। मेरे प्रिय के लिये आप पद्म योनि हैं—इस प्रसिद्धि को प्राप्त हो जायेंगे ॥२१॥

ततः स्वयंभूर्विश्वादिश्चक्रिणे वरमुत्तमम् ।
दत्त्वा प्रहर्षमगमत्सर्वभूतात्मको विभुः ॥ २२
ततस्तमब्रवीद्विष्णुः नाऽऽवाभ्यां विद्यते परम् ।
त्वन्मय मन्मय सर्वमेका मूर्तिर्द्विधा स्थिता ॥ २३
एवं निगदितो विष्णुर्ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
विरञ्चे य प्रतिज्ञा ते निष्फलैव भविष्यति ॥ २४
किं न पश्यसि विश्वेशं स्वयंज्योतिः सनातनम् ।
सर्वात्मकमुमाकान्तमनादिनिधनं परम् ॥ २५
गच्छाऽऽवाभ्यां परं देवमधिकं शरणं विधे ।
एवं हरेर्निगदितं श्रुत्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् ॥ २६
आवाभ्यामधिकः कश्चिद्विद्यतेति मुधा हरे ।
मापसे निद्रयाऽऽविष्टस्त्यज मोहं महामते ॥ २७

इसके पश्चात् विश्व के आदि स्वयम्भू ने भगवान् चक्री को यह उत्तम वरदान दिया था और सर्वभूतात्म विभु परम प्रहर्ष को प्राप्त होगये थे ॥२२॥ इसके अनन्तर फिर ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से कहा था कि हम दोनों से पर कोई भी विद्यमान नहीं है। त्वन्मय और मन्मय

अर्थात् तुम्हारे स्वरूप में रहने वाली और मेरे रूप में रहने वाली सब एक ही मूर्त्ति हैं केवल दो रूपों में ही स्थित रहा करती हैं ॥२३॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा जब भगवान् विष्णु से इस प्रकार से कहा गया तो भगवान् विष्णु ने कहा—हे विरञ्चे ! यह तो आपकी प्रतिज्ञा निष्फल ही हो जायेगी ॥२४॥ क्या आप स्वयं ज्योति सनातन विश्व के ईश को नहीं देख रहे हैं ? वे सबकी आत्मा-उमादेवी के स्वामी अनादि निधन और परम हैं ॥२५॥ हे विधे ! अब आप हम दोनों से पर अचिन्त्य देव की शरण में गमन करो। इस प्रीति से भगवान् श्री हरि के कथन का श्रवण कर ब्रह्माजी ने उनसे कहा—॥२६॥ हम दोनों से भी कोई अधिक विद्यमान है हे हरे ! यह तो सर्वथा मिथ्या ही है। हे महामते ! आप निद्रा से आविष्ट होकर ही ऐसा कह रहे हैं। आप इस मोह का त्याग कर दीजिए ॥२७॥

मेघ विधे यदज्ञात्वा परे भाव महेश्वरे ।
अस्तीति नान्यथाऽह ते ब्रवीमि कमलासन ॥ २८
मोहितात्मा न सदेहो मायया परमेष्ठिन ।
मायी विश्वात्मको रुद्रो मायाशक्तिस्तु शाकरी ॥ २९
यस्मात्सर्वमिद ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम् ।
महाभूतेन्द्रियै सर्वै प्रथम सम्प्रसूयते ॥ ३०
सर्वैश्वर्येण सपन्नो नाम्ना सर्वेश्वर स्वयम् ।
सर्वैर्मुमुक्षुभिर्ध्येय शभुराकाशमध्यग ॥ ३१
योऽग्रे त्वां विदधे पुत्र तव वेदाश्च दत्तवान् ।
यत्प्रमादात्त्वया लब्ध प्राजापत्यमिद पदम् ॥ ३२
एको वहूना जन्तूना निष्क्रियाणा च सत्क्रिया ।
य एक बहुधा बीज करोति स महेश्वर ॥ ३३
जीवैरेभिरिमाँल्लोकान्सर्वनिको य ईशते ।
य एको भगवान्रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ ३४

सदा जनाना हृदये संनिविष्टोऽपि य परै ।
अलक्ष्यो लक्षयन्विश्वमधितिष्ठति सर्वदा ॥ ३५

भगवान् विष्णु ने कहा—हे विधे ! ऐसा मन कहे महेश्वर मे परम भाव को आप जानते नही है । हे कमलासन ! हम दोनों से भी पर कोई देवेश्वर हैं—यह मैं आपको अन्यथा अर्थात् मिथ्या नही बोल रहा हूँ ।२८। आप परमेष्ठी की माया से मोहित आत्मा वाले है अतएव आप उनके स्वरूप को नही जानते है किन्तु मेरे इन कथन मे बिल्कुल भी सन्देह नही है । विश्वात्मक रुद्रार्य हैं अर्थात् माया वाले है और माया शक्ति ही शाङ्करी है ॥२६॥ जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न हुआ है हे ब्रह्मन् ! उन्ही से विष्णु—रुद्र और इन्द्र आदि महाभूत और सब इन्द्रियो से प्रथम ही सम्प्रसूत हुआ करते हैं ॥३०॥ वे सभी प्रकार से ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं और उनका स्वय सर्वेश्वर है । वे सभी मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यान करने के योग्य हैं ऐसे वे आकाश के मध्य मे गमन करने वाले शम्भु देव हैं ॥३१॥ जिन्होने अपने आपको पुत्र बनाया था और आपको वेदो का ज्ञान प्रदान किया था । यह प्रजापत्यके पद को भी उन्ही के प्रसाद से आपने प्राप्त किया है ॥३२॥ जो एक ही बहुत से जन्तुओं की सत्क्रियाओ का करने वाला है । जो एक ही है और बहुत प्रकार के बीज को किया करता हैं वही महेश्वर है।३३। इन जीवो के इन समस्त लोको का वह एक ही शासन करने वाला ईश है । वे ही एक भगवान् रुद्र हैं और दूसरा कोई भी नही है ॥३४॥ सर्वदा मनुष्यो हृदयो म सन्निविष्ट भी है तथापि वह दूसरे के द्वारा अलक्ष्य रहा करते है और स्वय वे सम्पूर्ण विश्व को देखते हुए ही अधिष्ठित रहा करते हैं ॥३५॥

यस्तु कालात्मयुक्तानि कारणान्यपि लीलया ।
अनन्तशक्तिरेकात्मा भगवानधितिष्ठति ॥३६
यस्य शम्भो परा शक्तिर्भावगम्या मनोहरा ।
निर्गुणा स्वगुणैरेव निगूढा निष्कला शिवा ॥३७

एष देवो महादेवो विज्ञेयः सर्वदा जनैः ।
न तस्य परमं किंचित्पदं समधिगम्यते ॥३८
अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मलः ।
अनन्तः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥३९
उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ।
अनन्तमहिमा भूमिरपरिच्छिन्नवैभवः ॥४०
अनेन विचित्रकृत्येन प्रथमं सृज्यते जगत् ।
अन्तकाले पुनश्चेदमस्मिन्प्रलयमेष्यति ॥४१
दृश्यश्च पतितैर्मूढैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ।
भक्तैरन्तर्बहिश्चापि पूज्यः सभाव्य एव च ॥४२

जो कालात्मक कारणों को भी, अपनी लीला से अधिक न रहा करते हैं क्योंकि वे अनन्त शक्ति वाले और एकात्मा भगवान् हैं ॥३६॥ जिन भगवान शम्भू की शक्ति पर है। वह भाव गम्या एवं परम मनोहरा है। शम्भु देव की वह शक्ति निर्गुणा है और अपने ही गुणों के द्वारा वह निगुणा है—निष्कला एवं शिवा है ॥३७॥ यही देव महादेव हैं जो सर्वदा जनों के द्वारा जानने के योग्य हैं। उनका जो कुछ परम पद है वह समधिगत नहीं किया जाया करता है ॥३८॥ यह आदि हैं और आदि अन्त से रहित हैं तथा स्वभाव से ही परम निर्मल हैं। वे भगवान् शम्भू अनन्त-परिपूर्ण-स्वेच्छा के अधीन रहने वाले तथा चराचर स्वरूप हैं ॥३६॥ उत्तरोत्तर भूतों का उत्तर एवं निरुत्तर हैं। वे अनन्त महिमा की भूमि हैं तथा अपरिच्छन्न वैभव वाले हैं ॥४०॥ विचित्र कृत्यों वाले इनके ही द्वारा यह जगत् सर्वप्रथम सृजित हुआ करता है और अन्त काल जब उपस्थित होता है तो उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् इसी में प्रलय को प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥ जो पतित-मूढ़-कुत्सित और दुर्जन हैं तथा मेरे भक्त हैं उनके द्वारा वे दृश्य भी होते हैं—पूज्य एवं सम्भाव्य हुआ करते हैं ॥४२॥

तदीयं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम् ।
अस्मदाद्यैः सुरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः ॥४३

तत परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दमव्ययम् ।
तन्निष्टैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यते व्रतमास्थितैः ।४४
बहुनाऽत्र किमुक्तेन ब्रह्मन्सर्वेश्वरे शिवे ।
भक्तिरेव सदा कार्या यया युक्तो विमुच्यते ।।४५
प्रसादादेव सा भक्ति प्रसादो भक्तिसम्भव ।
यथेहाङ्कुरतो बीज बीजतो वा यथाऽङ्कुर ।।४६
तस्य प्रसादलेशेन पशो पाशपरिक्षय ।
तस्मात्पशुपति शम्भु पशवस्त्वस्मदादय ।।४७
सर्वेषां मुक्तिद शम्भुस्तेषां भावानुरूपत ।
गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जायमानस्तथा पर ।।४८
बालो वा तरुणो वाऽथ वृद्धो वा मुच्यते पर ।
तिर्यग्योनिगत कश्चिन्मुच्यते नारकी पर ।।४९

उन भगवान शम्भु के अनन्त रूप हैं। वे स्थूल भी हैं—सूक्ष्म भी हैं—और उससे भी पर रूप वाले हैं। अस्मादादि के द्वारा जो सुर हैं स्थूल रूप ही दृश्य है। जो सूक्ष्म उनका रूप है वह तो योगियों के द्वारा ही दर्शन के योग्य होता है ।।४३।। उनसे भी पर जो नित्य ज्ञान और आनन्द एवं अव्यय उनका रूप है वह तो उनमें ही परायण एवं शम्भु में दृढ निष्ठा रखने वाले और व्रतों में समास्थित भक्तों के द्वारा ही दिखाई दिया करता है ।।४४।। हे ब्रह्मन्! यहाँ पर बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है। सर्वेश्वर भगवान् शिव में ही सदा भक्ति करनी चाहिए जिसके द्वारा मुक्त मनुष्य इस भव बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है ।।४५।। वह भगवान् शम्भु की भक्ति उनके प्रसाद से ही हुआ करती है और उनका प्रसाद भक्ति से हुआ करता है जिस तरह से बीज से अंकुर हुआ करता है और उस अंकुर से फिर बीज उत्पन्न हुआ करता है ।।४६।। उनके प्रसाद के लेश मात्र से ही पशु के पाशों का परिक्षय हो जाता है। इसीसे भगवान शम्भु पशु पति कहे जाते हैं और अस्मदादि गण सब पशु हैं ।।४७।। उनके भावों के अनुरूप भगवान शम्भु

सबको मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। कोई तो गर्भ में स्थित रहते हुए ही मुक्त हो जाया करता है तथा कोई ज्वयमान होकर के मुक्त हो जाता है। चाहे बाल हो—तरुण हो अथवा वृद्ध हो सभी मुक्त हो जाया करते है। कोई शम्भु के प्रसाद से तिर्यग्योनि में रहने वाला भी मुक्त हो जाता है और जो नारकी होता है वह भक्ति के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त कर लिया करता है ॥४८॥४६॥

अपरस्तूदरप्राप्तो मुच्यते स्वपदक्षयात् ।
कश्चित्क्षीणपदो भूत्वा पुनरावर्त्य मुच्यते ॥५०
कश्चिदूर्ध्वगतस्तस्मिन्स्थित्वा स्थित्वा विमुच्यते
तस्मान्नैकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिष्यते ॥५१
ज्ञानभावानुरूपेण प्रसादेनैव निर्वृ ति ।
त्वमेका भगवन्मूर्तिरन्या नारायणी परा ॥५२
रौद्री तृतीया कथिता जगत्संहारकारिणी ।
एतासां प्रेरक शंभु स्वे स्वे कार्ये चतुर्मुख ॥५३
निर्गुणोऽपि गुणाध्यक्षः स्वतन्त्रैश्वर्यविग्रहः ।
तमीश्वर महादेव न पश्यसि कथं विधे ॥५४
दिव्यं ददामि ते चक्षुर्येन पश्यसि तं शिवम् ।
विष्णोर्भगवतो ब्रह्मा दिव्यं चक्षुरवाप्य तु ॥५५
अपश्यत्स महादेवं प्रत्यक्ष पुरतः स्थितम् ।
ब्रह्मा लब्ध्वा परं ज्ञानमैश्वरं निर्गुणं परम् ॥५६

दूसरा उदर में प्राप्त हो स्वपद के क्षय से मुक्त हो जाता है और कोई क्षीणपद होकर पुनः आवृत्ति करके अर्थात् जन्म ग्रहण करके मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ कोई ऊर्ध्वगत उसमें स्थित-स्थित रहता हो हुआ विमुक्त हो जाया करता है। इस कारण से नरों की जो मुक्ति होती है अनेक प्रकार से होती है तात्पर्य यह है कि मुक्ति के प्राप्त करने का एक ही नहीं अनेक मार्ग होते हैं ॥५१॥ ज्ञान के भाव के अनुरूप प्रसाद से ही निर्वृति होती है। भगवान् की मूर्ति भी अनेक है—

अन्यापरा नारायणी मूर्त्ति है—तीसरी रौद्री कही गयी है जो इस जगत् के संहार के करने वाली है। हे चतुर्मुख! इन सबको प्रेरणा देने वाले अपने अपने कार्य में भगवान शम्भु ही हैं। ॥५२॥५३॥ वे स्वयं गुणों से रहित हैं तथापि गुणों के अध्यक्ष हैं और स्वतन्त्र ऐश्वर्य के विग्रह वाले हैं। हे विधे! उन ईश्वर महादेव को आप क्यों नहीं देखते हैं। ॥५४॥ अब मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ जिससे आप उन भगवान शिवको देख लेंगे। भगवान् विष्णु से ब्रह्माजी ने दिव्य चक्षु की प्राप्ति करके उन्होंने फिर प्रत्यक्ष रूप में अपने ही समक्ष में स्थित महा देवजी का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया था ब्रह्माजी ने परम ज्ञान का लाभ प्राप्त किया था और परम निर्गुण ऐश्वर्य को प्राप्त किया था ॥५५॥५६॥

तमेव शरणं गत्वा संस्तूय विविधैं स्तवैः ।
प्रीतो भूत्वा महादेवश्चतुर्मुखमथाब्रवीत् ॥५७
स्तोत्रैर्बहुविधैर्भक्त्या तापिनोऽहं विधे त्वया ।
मुक्तो भविष्यसि क्षिप्रं मत्समश्च न संशयः ॥५८
मयैव सृष्ट सृष्ट्यर्थं त्वमेव च जनार्दन ।
वरं ददामि ते ब्रह्मन्वरयस्व यथेप्सितम् ॥५९
एवं शम्भोर्निगदितं श्रुत्वा चैव पितामहः ।
विष्णुं निरीक्ष्य पुरतः स्थितमाह महेश्वरम् ॥६०
भगवन्देवदेवेश सर्वज्ञ गिरिजापते ।
त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा मद्दा सुतम् । ६१
त्वन्मायामोहितः शम्भो न वेद्मि त्वां परं शिवम् ।
नमामि तव पादाब्जं योगिनां भवभेषजम् ॥६२
श्रुत्वा विरञ्चेर्वचनं देवदेवः पिनाकधृक् ।
ब्रह्माणमब्रवीत्पुत्र ममालोक्याथ चाक्रणम् ॥६३

तब तो ब्रह्माजी उन्हीं की शरणागति में प्राप्त हो गये थे और फिर उन्होंने श्री महादेवजी की अनेक स्तवों के द्वारा स्तुति की थी। इस पर

महादेवजी परम प्रसन्न हो गये और ब्रह्माजी से बोले—॥५७॥ ईश्वर ने कहा—हे विधे ! आपने बहुत से स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करके और भक्ति की भावना मुझसे तोषित कर दिया है। अब आप शीघ्र ही विमुक्त हो जायगे और मेरे ही समान भी हो जायगे—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥५८॥ मैंने ही इस विश्व की सृष्टि के लिए आपका सृजन किया है हे ब्रह्मन् ! मैं वरदान देता हू आपका जो भी अभीष्ट हो उसे और वरदान प्राप्त कर लीजिए ॥५९॥ पितामह ने इस प्रकार का कथन शम्भु भगवान का श्रवण करके और सामने विष्णु देखकर आगे स्थित महेश्वर से कहा है ॥६०॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान् ! देवदेवेश ! आप गिरजा के स्वामी और सर्वज्ञ हैं। मैं तो अपना पुत्र चाहता हूँ अथवा आपके ही समान मेरे सुत होवे ॥६१॥ हे शम्भो ! मैं तो आपकी माया से मोहित हो रहा हूँ अतएव आप परात्पर शिव को मैं नहीं जानता हू। मैं आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हू जो आपका पादपद्म योगियों के संसार का भेषज है ॥६२॥ पिनाकधारी देवदेवमें विरञ्चि के वचन को सुनकर इसके अवभार चक्री को देखकर पुत्र ब्रह्मा जी से कहा—॥६३॥

प्रार्थित यत्त्वया ब्रह्म स्तत्करिष्यामि पुत्रक ।
अहमंशेन भविता पुत्रस्तव पितामह ॥६४
ज्ञान मद्विषय क्षिप्र भविष्यति तवानघ ।
सृज त्व मत्प्रसादेन चराचरमिद जगत् ॥६५
त्व योगीश्वर शार्ङ्गी ममैवांशो न संशय ।
साहाय्ये भविता ब्रह्मन्ममाऽऽदेशात्तवानघ ॥६६
एव दत्त्वा वर शम्भुर्ब्रह्मणे द्विजसत्तमा ।
अथाब्रवीद्धृषीकेश प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् ॥६७
वर वरय दास्यामि तव नारायणाव्यय ।
नाऽऽवाभ्या विद्यते भेदो मच्छक्तिस्त्व न संशय ॥६८
त्वन्मय मन्मय सर्वमव्यक्त पुरुषात्मकम् ।
ज्ञानज्ञेयात्मक विश्व त्वन्मय मन्मय हरे ॥६९

ज्ञाताऽहं ज्ञानरूपस्त्वं मन्ताऽहं त्वं मतिर्हरे ।
प्रकृतिस्त्वं सुरश्रेष्ठ पुरुषोऽहं न संशयः ।।७०

हे पुत्र ब्रह्मन् ! आपने जो प्रार्थना की है उसे हे पुत्र ! मैं करूँगा ! हे पितामह ! मैं अपने अंश से तुम्हारा पुत्र बनूँगा । हे अनघ ! मेरे विषय में तुमको बहुत ही शीघ्र ज्ञान होगा । मेरे प्रसाद से अब आप इस चराचर जगत् का सृजन करो ।।६४।।६५।। यह जो योगीश्वर शार्ङ्ग धारी है यह भी मेरा ही एक अंश है—इसमें संशय नहीं है । हे ब्रह्मन् ! आप तो निरुपाय है । यह भी मेरे आदेश से आपकी सहायता में होंगे ।।६६।। इस तरह से शम्भु भगवान् ने हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माजी को वरदान देकर उसके पश्चात् अपने सामने में ही स्थित ऋषीकेश से शम्भु ने कहा—हे अव्यय नारायण ! आपभी वरदान माँग लीजिए । मैं आप को भी दूँगा । हम दोनों में कोई भेद नहीं है । आप भी मेरी ही शक्ति है—इसमें संशय नहीं है । यह पुरुषात्मक अव्यक्त त्वन्मय और सर्व-मन्मय ही है अर्थात् तुम्हारा और मेरा ही स्वरूप है । हे हरे ! यह विश्व ज्ञान के द्वारा ही ज्ञेयात्मक है जो कि त्वन्मय और मन्मय है मैं तो ज्ञाता हूँ और आप ज्ञान रूप हैं । हे हरे ! मैं तो मन्ता हूँ और मति हैं । हे सुरश्रेष्ठ ! आप प्रकृति हैं और मैं पुरुष हूँ—इसमें संशय नहीं है ।।६७।।६८।।६९।।७०।।

त्वं चन्द्रमा अहं सूर्यः शर्वरी त्वमहं दिनम् ।
त्वमेव माया विश्वस्य मायाऽहं परमा विभो ।।७१
एवं शम्भोर्वचः श्रुत्वा वासुदेवो निरञ्जनः ।
अब्रवीत्परमात्मानं महादेवं द्विजोत्तमाः ।।७२
निश्चला त्वयि मे भक्तिर्भवत्वव्यभिचारिणी ।
वरं त्रिमूर्तिभंगवन्करोमि सुरपूजित ।।७३
एवमस्त्वित्यथाऽभ्येत्य समालिङ्ग्य च शार्ङ्गिणम् ।
पाणिभ्याममलाभ्यां देवादित्युक्त्वाऽन्तर्हितो हरः ।।७४

अभवद्ब्रह्मण पुत्रो यथा देवस्त्रिलोचन ।
तथा सर्वमशेषेण कथित मुनिपुंगवा ॥७५

आप चन्द्र हैं तो मैं सूर्य हूं । आप रात्रि हैं और मैं दिन हूं । आपही इस विश्व की माया हैं और मैं परमा विभो माया हूं ॥ ७१॥ निरञ्जल वासुदेव इस प्रकार के शम्भु के वचन का श्रवण कर हे द्विजोत्तमो ! परमात्मा महादेवजी से वे बोले—॥७२॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे भगवान आपमें मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति होवे । हे सुर पूजित ! इसके अतिरिक्त अन्य वरों को प्राप्त कर मैं करूंगा ॥७३॥ इसने अनन्तर ऐसा ही होवे—यह इतना कहकर शार्ङ्गी भगवान् का उन्होंने आलिङ्गन किया था और कहा था कि मेरे आदेश से इस समस्त विश्व का आप परिपालन करिए । इतना कहकर भगवान् हर वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ॥७४॥ किस तरह से त्रिलोचन देव ब्रह्माजी के पुत्र हुए थे यह सब पूर्ण रूप से हे मुनि श्रेष्ठो ! मैंने वर्णित कर दिया है ॥७५॥

॥ गौरी पृथक् शरीरत्वादि कथन ॥

अथ भगवती गौरी शंकरार्धशरीरिणी ।
परब्रह्मात्मिका नित्या परमाऽऽकाशमध्यगा ॥१
सर्वशक्तिमयी शान्ता निर्गुणा निरुपद्रवा ।
आदिमध्यान्तरहिता सर्वोपाधिविवर्जिता ॥२
स्वभाभिर्भासयन्तीद विश्वमेतत्सुरेश्वरी ।
नित्यानन्दा निरातङ्का निर्विभागा निरञ्जना ॥३
पृथक्शरीरमकरोत्कथ सा परमेश्वरी ।
वय तच्छ्रोतुमिच्छाम सूत वक्तुमिहार्हसि ॥४
विश्वेश्वरान्महादेवाद्वर लब्ध्वा पितामह ।
प्रजा ससर्ज भगवान्न व्यवर्धन्त ता प्रजा ॥५

दु खितोऽभूत्तदा ब्रह्मा प्रजा दृष्ट्वा तु दुर्बला ।
नेनेऽकृतार्थमात्मान प्रादुर्भूतस्ततो हर ।।६
ब्रह्माणमब्रवीच्छम्भुर्ज्ञातं त्वद्दु खकारणम् ।
सर्वत शर्मणे यत्र भविष्यति तवानघ ।।७

ऋषियों ने कहा— भगवती गौरी शङ्कर भगवान की अर्द्ध शरीरिणी कैसे हुई थी ? वह तो परम ब्रह्मात्मिका नित्या और परमाकाश के मध्य मे रहने वाली है। वह सर्वशक्ति मयी—शान्ता—निर्गुणा और निरूप हवा हैं। वह आदि मध्य और अन्त से रहिता हैं तथा सब प्रकार की उपाधियों से रहिता है ।।१।।२।। वह सुरेश्वरी इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी विभाओं से भासित किया करती हैं। वह नित्य ही आनन्द स्वरूपिणी निरातङ्का निर्विभागा और निरञ्जना हैं ।।३।। उस परमेश्वरी ने कैसे पृथक् शरीर को लिया था ? हम यही श्रवण करने की इच्छाऐं रखते हैं। हे सूतजी यह बताने को परम सुयोग्य है ।।४।। सूतजी ने कहा—पितामह ने विश्व के ईश्वर महादेव जी से वर प्राप्त करके भगवान् परमेष्ठी ने प्रजा का सृजन किया था किन्तु वर्जित नहीं हुई थी ।।५।। उस समय में ब्रह्माजी बहुत ही दु खित हुए थे जब कि उन्होंने अपनी रची हुई प्रजा को दुर्बल देखा था। तब उन्होंने अपने आपको असफल ही समझ लिया था । उसी समय म भगवान् हर प्रादुर्भूत हो गये थे ।।६।। भगवान् शम्भु ने ब्रह्माजी से कहा था कि हमने तुम्हारे दु ख का कारण जान लिया है। हे अनघ ! सभी ओर से यहां पर आपके कल्याण के लिए होगा ।।७।।

क्रियता वै तथेत्युक्त्वा कर्तुं समुपचक्रमे ।
अर्धनारीश्वरो देव स्वय विश्वेश्वर शिव ।।८
नारीभागान्महादेव ससर्ज पृथगीश्वरीम् ।
ब्रह्मात्मिका परा शक्ति कोटिबालार्कभामुराम् ।।९
न तस्या विद्यते जन्म जातेति किल भाति या ।
पर भाव न जानन्ति यस्या ब्रह्मादय सुरा ।।१०

यस्यास्तु शक्तिभिर्वाच्या ब्रह्माण्डाना च कोटयः ।
भर्तुरङ्गाद्विभक्तेव दृष्टा साऽथ विरञ्चिना ॥११
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा विश्वेश्वरी पितामह ॥१२
त्वा नमामि शिवा शान्तीमीश्वरार्धशरीरिणीम् ।
अनाद्यनन्तविभवा मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१३
जन्ममृत्युजरातीता जन्ममृत्युजरापहाम् ।
क्षेत्रज्ञशक्तिनिलया परमाकाशमध्यगाम् ॥१४

करी उस प्रकार से कहकर करना आरम्भ कर दिया था। विश्वेश्वर शिव देव स्वयं अर्ध नारीश्वर हो गये ॥८॥ नारी भाग से महादेव ने ईश्वरी का पृथक सृजन किया था जो ब्रह्मात्मिका-करोड़ों काल सूर्य के समान भासुरा पराशक्ति थी ॥९॥ उसका जन्म नहीं है क्योंकि अमुत्पन्न हुई-एसी प्रतीत ही होती है। जिसके परम भाव को ब्रह्मा आदिक सुर भी नहीं जानते हैं ॥१०॥ जिसकी शक्तियों से करोड़ों ब्रह्माण्डों को कहना चाहिए विरञ्चि ने भर्त्ता के अङ्ग से विभक्ता होती हुई है। उसको देखा था ॥११॥ पितामह ने प्राञ्जलि होकर विश्वेश्वरी से कहा था ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ईश्वर के अर्ध शरीर वाली-शान्ता—शिवा आपको मैं नमस्कार करता हूं। आप अनाद्यन्त विभव-वाली—मूल प्रकृति और ईश्वरी हैं। आप जन्म मृत्यु और जरा से परे हैं और प्राणियों के जन्म—मृत्यु और जरा का अपहरण करने वाली हैं। क्षेत्रज्ञ शक्ति की निलया है तथा आप परमाकाश के मध्य में गमन करने वाली अर्थात् स्थित रहने वाली हैं ॥१३॥१४॥

ब्रह्मेन्द्र विष्णुनमितानष्टमूर्त्यङ्गिनीमजाम् ।
प्रधानपुरुपातीता सावित्री वेदमातरम् ॥ १५
ऋग्यजु सामनिलयामूर्ज्वी कुण्डलिनी पराम् ।
विश्वेश्वरी विश्वमयी विश्वेश्वरपतिव्रताम् ॥ १६
विश्वसहारकरणीं विश्वमायाप्रवर्तिनीम् ।
सर्गस्थित्यन्तकरिणीं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणीम् ॥ १

पाहि मां देवदेवेशि शरणागतवत्सले ।
नान्या गतिर्महेशानि मम त्रैलोक्यवन्दिते ॥ १७
त्वं माता मम कल्याणि पिता सर्वेश्वर शिव ।
सृष्टोऽहं त्रिपुरघ्नेन सृष्ट्यर्थं शंकरप्रिय ॥ १८
विविधाश्च प्रजा सृष्टा न वृद्धिमुपयान्ति ता ।
तत परं प्रजा सर्वा मैथुनप्रभवा किल ॥ २०
संवर्धयितुमिच्छामि कृत्वा सृष्टिमत परम् ।
शक्तीनां खलु सर्वासां त्वत्त सृष्टि प्रवर्तते ॥ २१

आप ब्रह्मा इन्द्र और विष्णु के द्वारा वन्दिता हैं तथा अष्टमूर्ति भगवान् शिव की अर्द्धाङ्गिनी और अजा हैं। आप प्रधान पुरुष से भी अतीत हैं और वेदों की माता आप सावित्री हैं ।१५। ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद इनका आप निलया हैं। आप ऊर्ध्वी पर कुण्डलिनी हैं। आप इस विश्व की ईश्वरी हैं—विश्वमयी और विश्वेश्वर प्रभु की पतिव्रता हैं ऐसी आपको मैं प्रणाम करता हूं ।१६। आप विश्व का संहार करने वाली हैं तथा विश्व की माया का प्रवर्त्तन करने वाली हैं। आप सर्ग और स्थिति एवं अन्त के करने वाली हैं। तथा व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाली हैं ।१६। हे शरणागतों पर प्यार करने वाली ! हे देव देवेश्वरी ! मेरी रक्षा करो। हे त्रैलोक्य द्वारा वन्दिते ! हे महेशानि ! मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है। हे कल्याणि ! आप मेरी माता हैं और मेरे पिता सर्वेश्वर शिव हैं। हे शङ्कर प्रिय ! त्रिपुरारि ने मुझे सृष्टि करने के लिए ही सृष्ट किया है। मैंने अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन किया है किन्तु वे वृद्धि को प्राप्त नहीं होती हैं। इसके पश्चात् सभी प्रजा मैथुन से समुत्पन्न हुई थी ।१८।१६।२०।। इससे आप सृष्टि करा मैं वर्धन करने की इच्छा करता हूं। समस्त शक्तियों की सृष्टि तो आप से ही प्रवृत्त होती है ।२१।

नैव सृष्टं त्वया पूर्वं शक्तीनां सदृशं शिवे ।
सर्वेषां देहिनां देवि सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥ २२

त्वमेव नात्र सदेहस्तस्मात्त्व वरदा भव ।
मम सृष्टिविवृद्धयर्थममेनैनेन आश्रते ॥ २३
मम पुत्रस्य दक्षस्य पुत्री भव शुचिस्मिते ।
प्रार्थिता वै तदा देवी ब्रह्मणा मुनिपुंगवा ॥ २४
एका शक्तिं भ्रुवोर्मध्यात्मसर्जाऽऽत्मसमप्रभाम् ।
आह तां प्रहसन्प्रेक्ष्य देवी विश्वेश्वरो हर ॥ २५
ब्रह्मणो वचनाद्देवि कुरु तस्य यथेप्सितम् ।
आदाय शिरसा शम्भोराज्ञां सा परमेश्वरी ॥ २६
अभवद्दक्षदुहिता स्वेच्छया ब्रह्मरूपिणी ।
पुनराद्या परा शक्तिः शम्भोर्देहमथाविशत् ॥ २७
अर्धनारीश्वरो देवो विमानीति हि न श्रुति ।
ततः प्रभृति विप्रेन्द्रा मैथुनप्रभवा प्रजा ॥ २८
एवं व कथिता विप्रा देव्या सभूतिरुत्तमः ।
पठेद्य शृणुयाद्वापि संततिस्तस्य वर्धते ॥ २९

हे शिव ! आपने पूर्व में शक्तियों के पुत्र का सृजन किया था। हे देवि ! सब ब्रह्मादिकों को अन्त ही गति के प्रदान करने वाली हैं। ॥२३॥ आप ही हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस कारण से वरदान देने वाली होइए। मेरे शाश्वत वंश से मेरी सृष्टि के विवर्धन करने के लिए हे शुचिस्मिते ! मेरे पुत्र प्रजापति दक्ष की आप पुत्री होइए। हे मुनि पुङ्गवो ! उस समय में ब्रह्माजी के द्वारा देवी की प्रार्थना की गयी थी ।२३।२४। उस देवी ने अपने ही समान प्रभाववाली एक शक्ति का भ्रुकुटियों के मध्य से सृष्ट किया था और उस देवी को देखकर हँसते हुए विश्वेश्वर हर बोले ! हे देवि ! ब्रह्माजी के वचन से उनका जो भी यथेप्सित हो उसे पूर्ण कर दो। भगवान् शम्भु की आज्ञा को शिर से स्वीकार करके वह परमेश्वरी ब्रह्म रूपिणी अपनी इच्छा से ही दक्ष की पुत्री हो गई थी। फिर वह माया पूर्ण शक्ति भगवान् शम्भु के देह में समाविष्ट हो गई थी ।२५।२६।२७। वह देव अर्द्ध नारीश्वर

शोभित होत है—यह हमारी श्रुति है तभी से आरम्भ करके हे विप्रेन्द्र! मैथुन के द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रजा हुई थी।२८। हे विप्रो! इस प्रकार से आप सबके सामने मैंने देवी की उत्तमा सम्भूति का वर्णन कर दिया है। जो इसको पढ़े या सुनेगा उसकी सन्तति की वृद्धि होगी।२६।

—

।। सुरासुर सृष्ट्यादि कथन ।।

स्वयभुवा समादिष्ट पूर्व दक्ष प्रजापति ।
प्रजा सृजेति सर्गादौ ससर्ज च सुरासुरान् ।। १
प्रजापतेर्वीरणस्य कन्याऽसिक्नीति विश्रुता ।
पत्नि दक्षोऽसृजत्कन्या असिक्न्या वै प्रजापति ।। २
ददौ च दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।। ३
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वद्ददौ दक्ष प्रजाति ।। ४
साध्या विश्वा च सकल्पा मुहूर्ता च ह्यरुन्धती ।
मरुत्वती वसुर्भानुर्लम्बा जामीति ता दश ।। ५
धर्मस्य पत्न्यस्तत्वतास्तासा सततिरुच्यते ।
साध्या वभूवु साध्याया विश्वाया विश्वदेवता ।। ६
सकल्पायास्तु सकल्पो मुहूर्तास्तु मुहूर्तजा ।
अरुन्धत्यास्त्वरुन्धत्या नरत्वत्या मरुत्वत ।। ७

श्री सूतजी ने कहा—स्वयम्भू भगवान् ने सबसे पूर्व में दक्ष प्रजापति को समादिष्ट किया था। सर्ग के आदि में यही आदेश दिया था कि प्रजा का सृजन करो और सुरों तथा असुरों का सृजन किया था।१। प्रजापति वीरण की एक कन्या असिक्नी थी और इसी नाम से वह

विश्रुत थी। प्रजापति दक्ष ने असिक्नी मे षष्टि कन्याओं का सृजन किया था। दश तो धर्म के लिये दे दी थी और तेरह कश्यप के लिये दी थीं। सत्ताईस सोम को दी थी और चार आरिष्ट नेमि को प्रदान की थीं।२।३। दो बहु पुत्र को और दो धीमान् कृशाश्व को प्रदान की थी। उसी भाँति दक्ष प्रजापति ने दो अङ्गिरा मुनि को प्रदान की थी।४। वे दश ये थी—साध्या-विश्वा-सकल्पा-मुहूर्ता-अरुन्धती-मरुत्वती-वसु-भानु-लम्बा-जामी।५। धर्म की ये दश पत्निया थी अब उनकी सन्तति बतलायी जाती हैं। साध्या में साध्यगण समुत्पन्न हुए थे और विश्वा मे विश्व देवता उत्पन्न हुए थे।६। सङ्कल्पा से सङ्कल्प उत्पन्न हुआ और मुहूर्त मुहूर्ता से समुत्पन्न हुए थे। अरुन्धती मे अरुन्धत्य और मरुत्वती मे मरुत्वत् हुये थे।।७।।

वसोस्तु वसव प्रोक्ता भानोस्ते भानव स्मृता ।
लम्बाया घोषनामानो नागवीथीस्तु जामिजा ॥ ८
ज्योतिष्मन्तस्त्रयो देवा व्यापका सर्वतोदिशम् ।
वसवस्ते समाख्याता सर्वभूतहितैषिण ॥ ९
आपो नलश्च सोमश्च ध्रुवश्चैवानिलोऽनल ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ॥ १०
ध्रुवस्य पुत्र काल स्यात्सर्वलोकभयङ्कर ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य धर्मस्यैषा तु सन्तति ॥ ११
अदितिश्च दितिश्चैव दनुरित्यपरा मता ।
अरिष्टा सुरसा प्रोक्ता स्वधा सुरभिरेव च ॥ १२
विनता च तथा ताम्रा कद्रू क्रोधवशा त्विरा ।
मुनेश्च पत्नयस्त्वेता कश्यपस्य द्विजोत्तमा ॥ १३
अशुर्धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।
विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान्विष्णुरेव च । १४
तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
आदित्या अदिते पुत्रा प्रोक्ता वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १५

वसु से वसुगण हुए तथा भानु से भानव उत्पन्न हुए बतलाये गये है। लम्बा से घोष नाम वाले तथा जामि से नागवीथी हुए।८। तीनों देव ज्योतिष्मान् है और सब दिशाओ मे व्यापक हैं। जो वसुगण समाख्यात हुए हैं वे समस्त प्राणियो के हितैषी है। आप-धव-सोम-ध्रुव-अनिल-अनल-प्रत्यूष-प्रभास-ये ही आठ वसुगण कहे गये है।६।१०। ध्रुव का पुत्र काल है जो सभी लोगो को भय करने वाला है। प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा है—यही कर्म की सन्ततियाँ है।११॥ अदिति—दिति और अपरा दनु मानी गयी हैं। अरिष्टा सुरसा-स्वधा-सुरभि-विनता-ताम्रा-कद्रू-क्रोधवशा-इरा कश्यप मुनि की ये हे द्विजोत्तमो! पत्नियां थी।१२।१३। अंशु-धाता-भग-त्वष्टा-मित्र-वरुण-अर्यमा विवस्वान्-सविता-पूषा-अंशुमान् और विष्णु हैं। तुषिता नाम वाले वे है जो पूर्व मे चाक्षुष मनु के अन्तर मे थे।१४। आदित्य अदिति के पुत्र है जो वैवस्वमन्वन्तर मे कहे गये हैं।१५।

पुनश्च दिति सूते कश्यपान्मुनिपुंगवात् ।
हिरण्यकशिपुं त्वेकं हिरण्याक्षमनन्तरम् ॥ १६
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ ब्रह्मणो वरदर्पित ।
शक्राद्या देवता सर्वास्तेन दैत्येन बाधिता ॥ १७
ब्रह्माणं शरणं गत्वा प्रोचु प्राञ्जलय सुरा ।
देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुरोत्तम ॥ १८
हिरण्येन दैत्येन शस्त्रास्त्रै सूदिता वयम् ।
दाराश्चापहृतास्तेन वज्रादीन्यायुधानि च ॥ १६
आयस्वास्मान्भयत्रस्तान्शरणं नान्यदस्ति न ।
एवं सुरैर्निगदितं श्रुत्वा देव पितामह ॥ २०
देवै सह ययौ तूर्णं यत्रास्ते विष्णुरव्यय ।
संस्तूय विविधै स्तोत्रैरब्रवीत्कमलासन ॥ २१

दिति ने दो पुत्र प्रसूत किये थे जो कि मुनि पुङ्गव कश्यप से समुत्पन्न हुए थे। एक तो हिरण्यकशिपु था। और दूसरा हिरण्याक्ष था।

।१६। जो यह हिरण्यकशिपु था वह ब्रह्माजी के वरदान से हर्षित हो गया था। शक्र आदि देवता उस दैत्य ने बाधित कर दिये थे।१७। सब सुरगण हाथ जोडकर ब्रह्माजी की शरणागति मे पहुंचकर बोले—देवों ने कहा—हे देवों के देव! आप तो जगत् के नाथ हैं। हे चतुर्मुख! आप सब सुरो मे श्रेष्ठ हैं।१८। हिरण्यकशिपु दैत्यने दारुण असत्रों द्वारा हम सबको सूदित करा दिया है। उसने हमारी स्त्रियों का हरण कर लिया है और वज्र आदि सब आयुध भी छीन लिये हैं। ।१९। इस भय से परम त्रस्त हैं हमारी आप रक्षा कीजिए। हमारा आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है। इस प्रकार से सुरो के द्वारा कथित को श्रवण कर पितामह उन समस्त देवगणो के साथ शीघ्र ही वहाँ पर गये जहाँ पर अव्यय भगवान् विष्णु विराजमान थे। अनेक स्तवों के द्वारा संस्तवन करके कमलासन ने कहा—।२०।२१।

हिरण्यकशिपुर्देव मद्वरेणातिगर्वित ।
बाधते सकलान्देवान्मुनीन्निर्धूतकल्मषान् ॥ २२
यस्त हनिष्यति क्षिप्र न त पश्यामि माधव ।
त्वमेव हन्ता तस्येति मत्वा वयमुपागता ॥ २३
हन्तुमर्हसि त शीघ्र देवाना कार्यसिद्धये ।
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमीरित त्रिदिवौकसाम् ॥ २४
नरस्यार्धतनु कृत्वा सिंहस्यार्धतनु तथा ।
नृसिंहरूपी भगवान्हिरण्यकशिपो पुरे ॥ २५
आविर्भूय भगवान्देवो नारायण प्रभु ।
मुक्त्वानाद महाघोरमसुराणा भयङ्करम् ॥ २६
हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा नृसिंहमतिभीषणम् ।
वधाय प्रेषयामास प्रह्लादादीन्महासुरान् ॥ २७
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च सह्लादो ह्लाद एव च ।
हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वार प्रथितोजस ॥ २८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देव! हिरण्यकशिपु मेरे द्वारा वरदान

प्राप्त कर अत्यन्त गर्वित हो गया है वह समस्त देवो को बाधा देता है और जो निर्धूतकल्मष मुनिगण हैं उनको भी सताता है।२२। हे माधव जो कोई उसको शीघ्र ही मार देगा ऐसा अन्य कोई भी मैं नहीं देख रहा हूँ। केवल आप ही उसके दमन करने वाले है—यही समझकर हम सब आपकी समाधि मे उपस्थित हुए हैं।२३। देवो के कार्य की सिद्धि के लिये आप उसका शीघ्र ही दमन करने मे समर्थ होते हैं। देवो की कथित उस बात का श्रवण करके भगवान् नारायण ने आधा शरीर नर का तथा आधा सिंह का शरीर धारण किया और नरसिंह रूपी भगवान् हिरण्यकशिपु के नगर मे आविर्भूत हो गये थे। वे साक्षात् भगवान् देव नारायण प्रभु ही थे। उन्होंने महान् घोर नाद किया था जो सभी असुरों को अत्यन्त भयकर प्रतीत हो रहा था। हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त भीषण भगवान् नृसिंह को देखा था। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थ जिनके नाम प्रह्लाद-अनुह्लाद-संह्लाद और ह्लाद थे। ये सभी प्रथित ओज वाले थे।२४।

नरसिंहेन ते सार्धं युयुधुर्दानवास्तदा ।
प्रह्लादः प्राहिणोद्ब्राह्ममस्त्रं तं नरकेसरिम् ॥२९
वैष्णवास्त्रमनुह्लादः कौमारं च तथाऽपरः ।
प्राहिणोद्ध्लाद आग्नेयं तथा चान्ये महासुराः ॥३०
चत्वार्यस्त्राणि सम्प्राप्य भगवन्तं नृकेसरिम् ।
बभूवस्तानि भग्नानि यथा वज्राहता द्रुमाः ॥३१
गृहीत्वा चतुरः पुत्रान्हस्ताभ्यां नरकेसरिः ।
चिक्षेप गगनाद्भूमौ गृहीत्वैव पुनः पुनः ॥३२
एवं तान्व्यथितान्दृष्ट्वा हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
जाज्वल्यमानः कोपेन ययौ यत्र नृकेसरिः ॥३३
विनिवृत्तोऽथ सङ्ग्रामात्प्रह्लादो दैत्यराट् ततः ।
ज्ञात्वा तु भगवद्भावं नृसिंहस्यामितौजसः ।
ध्यात्वा नारायणं देवं वारयामास दानवान् ॥३४

एप नारायणो योगी परमात्मा सनातन ।
ध्यातव्यो न तु योद्धव्यो भवद्भिरिति निश्चितम् ॥३५
पुत्रोदितमनादृत्य हिरण्यकशिपुः पुन. ।
युयुधे हरिणा सार्धं यावद्वर्षशतत्रयम् ॥३६
अथ विश्वात्मको विष्णु· क्रोधसंरक्तलोचनः ।
नखैर्विदारयामास हिरण्यकशिपु तदा ॥३७

उस समय मे भगवान् नरसिंह के साथ उन दानवो ने युद्ध किया था। प्रह्लाद ने उन नरकेशरी प्रभु पर ब्रह्म अस्त्र का प्रहार किया था ॥२९॥ अनुह्लाद ने वैष्णवास्त्र का प्रक्षेप किया था तथा दूसरे ने कौमार अस्त्र चलाया था। ह्लाद ने आग्नेय अस्त्र चलाया था और अन्य असुरो ने जो बडे महान् थे दूसरे २ अस्त्रो से प्रहार किया था ॥३०॥ ये चारो अस्त्र भगवान नरसिंह जी के पास पहुँच कर सब के सब भग्न हो गये थे जैसे वज्र से द्रुमहत हो जाया करते हैं ॥३१॥ नरकेशरी ने उन चारो पुत्रो को हाथो से पकड लिया था और उनको ले लेकर बारम्बार आकाश से भूमि में गिरा दिया था। इस प्रकार से उन अपने पुत्रों को व्यथित देखकर हिरण्यकशिपु स्वय क्रोध से जाज्वल्यमान होकर वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर भगवान् नृसिंह देव विराजमान थे। ॥३२-३३॥ फिर दैत्यराट् प्रह्लाद सग्राम से विनिवृत्त हो गया था क्यो कि उसने अपरिमित ओज वाले भगवान नृसिंह जी का मनवद्भाव जीन लिया था। नारायणदेव का ध्यान करके उसने दानवो को निवारित किया था ।३४। उसने सब दानवों से कहा था कि यह परमात्मा-सनातन योगी नारायण हैं। इनका ध्यान करना चाहिये और इनसे आपको युद्ध नही करना चाहिए यह निश्चित बात है ।३५। इस पुत्र के कथन का निरादर करके हिरण्यकशिपु ने पुन हरिभगवान के साथ तीन सौ वर्ष तक घोर युद्ध किया था ।३६। इसके अनन्तर विश्वात्मक भगवान् विष्णु ने क्रोध से लाल नेत्र बनाकर उसी समय में अपने परम तीक्ष्ण नखों से हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण कर दिया था ॥३७॥

।। हिरण्याक्ष बधादिक कथन ।।

हते हिरण्यकशिपौ प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
हिरण्याक्षं महाबाहु राज्ये समभियोजयत् (?) ।।१
सोऽपि देवान्रणे जित्वा स्वर्गात्ते वै पलायिता ।
हिरण्याक्षे महादेव तपसाऽऽराध्य चान्तकम् ।।२
लेभे पुत्र महाबाहु सर्वामरनिपूदनम् ।
हिरण्याक्षभयाद्देवा शार्ङ्गिण शरण गताः ।।३
दृष्ट्वाऽथ भगवान्देवान्हिरण्याक्षवधाय वै ।
वाराह रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपूदितः ।।४
हते तस्मिन्हिरण्याक्षे प्रह्लादो वैष्णवाग्रणी ।
त्यक्त्वा तु तामसी वृत्ति स्वकीय राज्यमास्थित ।।५
ततः कदाचिद्देवाना मायया मोहितोऽभवत् ।
कचन ब्राह्मण दृष्ट्वा कृशाङ्ग गृहमागतम् ।।६
अवज्ञामकरोद्दैत्य शप्तस्तेनाग्रजन्मना ।
बल यस्य समाश्रित्य दैत्य मामवमन्यसे ।।७

श्री सूतजी ने कहा—हिरण्यकशिपु के निहत् हो जाने पर दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद राज्य पर महाबाहु हिरण्याक्ष को समभियोजित किया था ।।१।। उसने भी देवों को रण में जीतकर उनको स्वर्ग से भगा दिया था । हिरण्याक्ष ने अन्तक महादेवजी को तपस्या के द्वारा आराधना कर के सब देवों को मार देने वाले महाबाहु पुत्र को प्राप्त किया था । हिरण्याक्ष के भय से समस्त देवगण भगवान् शार्ङ्गी के शरण में प्राप्त हुए थे ।।२-३।। भगवान् ने हिरण्याक्ष के वध के लिये समागत देवों को देखकर वाराह का स्वरूप धारण करके उस हिरण्याक्ष को भगवान् ने मार दिया था ।।४।। उस हिरण्याक्ष के मारे जाने पर वैष्णवों में अग्रणी प्रह्लाद ने तामसी वृत्ति का त्याग कर दिया था और अपने राज्यासन *पर समासित हो गया था ।।५।। इसके पश्चात् किसी समय में देवों की* माया से यह मोहित हो गया था । किसी कृश अङ्ग वाले घर में आये

हुए ब्राह्मण को देखकर दैत्य ने उसकी अवज्ञा कर दी थी। फिर उस ब्राह्मण ने उसको शाप दे दिया था—हे दैत्य! जिसके बल का समाश्रय करके तू मेरा अपमान कर रहा है ॥६-७॥

भक्तिर्विनश्यतु क्षिप्रं तव देवे जनार्दने।
इति दत्त्वा ययौ विप्रः स्वाश्रमं मुनिपुङ्गवाः ॥८
अथ दैत्यपतिर्युद्धमकरोद्विष्णुना सह।
पितुर्वधमनुस्मृत्य देवाश्चान्ये विनिर्जिताः ॥९
अनुग्रहाद्भगवतः पूर्वस्माद्दैत्यराट् पुनः।
त्यक्त्वा मायामयं सर्वं शार्ङ्गिणं शरणं ययौ ॥१०
अभिषिच्यान्धकं राज्ये योगयुक्तोऽभवत्स्वयम्।
अथ देवो महादेवः शरण्यः सर्वदेहिनाम् ॥११
केनापि हेतुना भिक्षामकरोद्ब्राह्मणैः सह।
संस्थाप्य मन्दरे देवीं गिरिजां गिरिजापतिः ॥१२
सनारायणकान्देवानकरोत्यार्श्वगाञ्छिवः।
स्त्रीरूपधारिणो देवाः सेवन्ते पार्वतीं तदा ॥१३
संस्थाप्य नन्दिप्रमुखानसंख्यातान्गणेश्वरान्।
भैरवं च समादिश्य नन्दिनं द्वारदेशतः ॥१४

उन देव जनार्दन में तेरी भक्ति बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जायगी—इस प्रकार से शाप देकर वह विप्र हे मुनि पङ्गवो! अपने आश्रम में चला गया था ॥८॥ इसके अनन्तर दैत्यपति ने भगवान् विष्णु के ही साथ युद्ध किया था। उसने अपने पिता के वध का अनुसरण किया था और सब देवों को भी विनिर्जित कर दिया था ॥९॥ भगवान् के पहिले अनुग्रह से पुनः दैत्यराट् ने सब मायामय का त्याग कर दिया था और वह भगवान् शार्ङ्गी की शरण में चला गया था ॥१०॥ राज्यासन पर अन्धक का अभिषेक करके स्वयं योग में युक्त हो गया था। इसके अनन्तर देव महादेव सभी देहधारियों के शरण्य हैं ॥११॥ किसी हेतु उन्होंने ब्राह्मणों के साथ भिक्षाटन किया था और गिरिजापति ने देवी

गिरिजा को एक मन्दिर मे सस्थापित कर दिया था ।।१२।। शिव ने नारायण के सहित सब देवो को पार्श्ववर्त्ती कर दिया था। सब देवगण सती का रूप धारण करने वाले होकर सदा पार्वती की सेवा करते थे ।१३।। वहाँ पर नन्दी प्रमुख असरुय गणो को और गणेश्वरो को सस्थापित करा दिया था और भैरव को भी आदेश दे दिया था तथा द्वारदेश पर नन्दी को नियुक्त कर दिया था ।।१४।।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो मन्दर चान्धकासुरः ।
आहर्तुकामः शर्वाणी त दृष्ट्वा कालभैरवः ।१५।
ताडयामास शूलेन पपात भुवि मूर्च्छित ।
पुनरुत्थाय वेगेन गदामादाय दैत्यराट् ।१६।
भैरव ताडयामास तथा चान्यान्गणेश्वरान् ।
दृष्ट्वा तदद्भुत युद्ध विष्णुर्दानवमर्दन. ।१७।
असृजच्छक्तयो दिव्यास्ताभिर्दैत्य पराजित ।
ततो वधाय भगवान्रुद्रो मन्दरपर्वतम् ।१८।
प्राप्तो यत्र स्थिता देवी देवै सह गणेश्वरै ।
दृष्ट्वा विश्वंभर देवी शीघ्रं परमया मुदा ।१९।
ननाम शिरसा भक्त्या भर्तुश्चरणपङ्कजम् ।
प्रणम्य दण्डवद्विष्णु यद्वृत्त तन्न्यवेदयत् ।२०।
श्रुत्वा तद्विस्मितो भूत्वा देव्या सह वरासने ।
उपविष्टस्तदा सर्वे देवा. प्राञ्जलय तास्थित ।२१।

इसी बीच मे वह अन्धकार सुर मन्दरगिरि पर प्राप्त हो गया था। वह शर्वाणी का आहरण करना चाहता था। उसको काल भैरव ने देख लिया था। ।।१५।। भैरव ने शूल से ताडित किया था और वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर गया था। फिर वह दैत्यराट् बडे वेग से उठकर गदा लेकर आक्रमण करने के लिये आया था ।।१६।। उसने गदा से भैरव पर तथा अन्य गणेश्वरो पर प्रहार किया था। उस अद्भुत युद्ध को देखकर दानवो के मर्दन करने वाले विष्णु ने दिव्य शक्तियो का

करिए जिससे यह दैत्य मर जावे इस प्रकार के श्रीहरि को वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने काल भैरव को उस बलवान् दैत्य के वध के लिये भेजा था। इसके पश्चात् वह काल भैरव प्रभु शम्भु शिव की आज्ञा का परिपालन करके सहसा शूल को ग्रहण करके दैत्य के युद्ध मे पहुँच गये थे। शूल के अग्रभाग से उसका निर्भेदन करके अपनी आत्म-लीला से वे नृत्य करने लगे थे। शूल के अग्रभाग मे उस दैत्य के स्थापित करने पर ब्रह्माद्य मुनिगण ने उस समय मे अनेक स्तोत्रो के द्वारा स्तवन किया था और उस समय मे सब लोक परम प्रसन्न हो गये थे। ।२२। से ।२७।।

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं समाहिता य विदुरीशतत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं कालं कविं योगवियोगहेतुम् ।२८।
दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्तं भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ।२९।
जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे विभागहीनामलतत्त्वरूपम् ।
त्वमग्निरेको बहुधा विभज्यसे वाय्वादिभेदैरखिलात्मरूप ।३०
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ।३१
एकान्तरात्मा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वमात्मतत्त्वं परमार्थशब्दं भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ।३२
त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदविदेषु सिद्धः स्वायंभुवोऽशेषविशेषहीनः ।३३।
त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्ताधियज्ञः ।
प्रजापतिर्भगवानेकरूपो नीलग्रीवस्तूयसे वेदविद्भिः ।३४।
नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ।३५।

अंधक ने कहा—मैं एक भगवान् को नमस्कार करता हूँ जिनको परम समाहित होकर लोग ईश तत्व को जान पाते हैं। आप परम पुरा-

तन-पुण्य-स्वरूप-अनन्त रूप वाले-काल-रवि और योग तथा वियोग के हेतु है ॥२८॥ देष्ट्रा से कराल-दिवलोक में नृत्य करते हुए—अग्नि को मुख में धारण करने वाले—ज्वलन (अग्नि के स्वरूप वाले—सहस्रशिर-अक्षि पादों से युक्त आप एक रुद्र भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ।२९। हे जय आदि देव और असरों के द्वारा पूजित चरण वाले ! आप विभाग से हीन अमल तत्व रूप वाले हैं। आपको एक ही पुराण पुरुष—आदित्य के समान वर्ण वाले और तम से परे कहते है। आप इसको निरन्तर देखा करते हैं और परिपालन किया करते हैं। आप ही अन्तक हैं और योगी गणों के द्वारा सेवित है ॥३०॥३१॥ आप एक ही अन्तरात्मा है और बहुत से रूपों मे विनिविष्ट हैं। देहों मे रहते हुये भी आप देहादि विशेषता से रहित हैं आप ही आत्म तत्व है—आप परमार्थ तत्व हैं। कुछ लोग आपको ही शिव ही कहा करते हैं ॥३२॥ आप अक्षर परम ब्रह्म है—आप परम पवित्र और आनन्द स्वरूप है तथा प्रणव के नाम वाले हैं। आप ईश्वर हैं जो वेदों के वेत्ता हैं उनमे आप सिद्ध हैं। आप स्वायम्भुव और समस्त विशेषताओं से हीन हैं ॥३३॥ आप इन्द्र रूप हैं—वरुण-अग्नि भी आपके ही रूप हैं। आप हंस-प्राण-मृत्यु और अन्धाधिपत्त हैं। आप प्रजापति भगवान् अनेक रूपों वाले हैं आप नीली ग्रीवा वाले हैं तथा वेदो के ज्ञाताओं के द्वारा आपका संस्तवन किया जाया करता है ॥३४॥ जगतो से अनादि आप ही नारायण हैं। आप ही पिता मह और प्रपितामह हैं। आपको वेदान्त और गोपनीय उपनिषदों मे गाया गया है। आप सदा शिव और परमेश्वर हैं ॥३५॥

नमः परस्तात्तमसः परस्मै परात्मने पञ्चपरान्तराय ।
त्रिमूर्त्यतीताय निरञ्जनाय सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ।३६।
त्रिमूर्त्तये ऽनन्तपदात्ममूर्त्तये जगन्निवासाय जगन्मयाय ।
नमो ललाटार्पितलोचनाय नमो जनानां हृदि संस्थिताय ।३७
फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यं मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्म ।
ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय नमः परान्ताय भवोद्भवाय।

सहस्रचन्द्रार्कघमूहमूर्तये नमोऽग्निचन्द्रार्कत्रिलोचनाय ।
नमोऽस्तुते सोमायनमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यबाहवे ।३६
नमोऽतिगुह्याय गुहान्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ।४०
स्तवेनानेन भगवान्प्रीतो भूत्वाऽथ भैरव. ।
अवरोह्य च शूलाग्रादुवाच परमेश्वरः ।४१।
त्वयाऽहं स्तोत्रवर्येण तोषितो दैत्यपुङ्गव ।
प्रीतोऽस्मि तव दास्यामि गाणपत्यं हि दुर्लभम् ।४२।

सबसे भी पर—परम स्वरूप वाले—परमात्मा पञ्चपरात्पराय—त्रिमूर्ति से भी अतीत—निरञ्जन और सहस्र शक्तियों से आसन पर संस्थित आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥ त्रिमूर्ति—अनन्त परात्म-मूर्ति—जगत् के निवास—जगन्मय—ललाट में अर्पित नेत्र वाले के लिये नमस्कार है और जनो के हृदय में संस्थित के लिये नमस्कार है ॥३७। सर्पराजों के हार पहिनने वाले आपके लिये प्रणाम है। आपके चरण कमलों को मुनीन्द्र और सिद्ध समर्चित किया करते हैं ऐश्वर्य और धर्म के आसन पर समवस्थित आपके लिये नमस्कार है और परान्त एवं मन के उत्पन्न करने वाले आपको नमस्कार है ॥३८॥ एक सहस्र चन्द्र और सूर्य के समूह के समान देदीप्यमान मूर्ति वाले और अग्नि तथा चन्द्र एवं सूर्य के नेत्रों वाले आपकी सेवामें नमस्कार है। सोमायन मध्यम के लिये नमस्कार है। देव हिरण्य बाहु के लिये प्रणाम है ॥३९॥ अत्यन्त गुह्य—गुहान्तराय और वेदान्त के विज्ञान के द्वारा निश्चित होने वाले के लिए नमस्कार है। तीनों कालों में हीन एवं अमल धाम के तेज वाले के लिये प्रणाम है। महेश के लिये एवं शिव के लिये नमस्कार है ॥४०॥ इस प्रकार की संस्तुति से भगवान् भैरव प्रसन्न होकर उन्होंने शूल के अग्रभाग से नीचे उस दैत्यको उतार कर परमेश्वर ने कहा—हे दैत्यों में श्रेष्ठ ! आपके इस स्तोत्रों में परम श्रेष्ठ के द्वारा तुमने मुझको

अनन्तर भैरव ने उनका दर्शन करके बड़े ही आनन्द से उसका परिष्वजन किया था।४८। फिर उन भैरव और शार्ङ्गी की एक ही मूर्त्ति हो गई थी जो कालाग्नि भैरव है वे ही स्वयं नृहरि है।४६।

भगवान्नृहरिर्योऽसौ स एव किल भैरव. ।
नृहरे पूजनान्नून प्रीतो भवति भैरवः ॥ ५०
पूजनाद्भैरवस्यैव नृहरिः पूजितो भवेत् ।
ये पश्यन्ति तयोर्भेदं मायया मोहिता जनाः ॥ ५१
निरये ते विपच्यन्ते यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ५२
तस्मात्पूज्या सदा मूर्ती रुद्रनारायणात्मिका ।
प्रीता भूत्वा भगवती भवत्यज्ञानहारिणी ॥ ५३
एव सक्षेपत. प्रोक्तो मयाऽन्धकवधो द्विजा. ।
प्रादुर्भावो भैरवस्य तस्य चैव पराक्रम. ॥ ५४
इम यः पटतेऽध्यायं महादेवस्य सनिधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवस्यानुचरो भवेत् ॥ ५५

जो भगवान् नृहरि हैं वह ही काल भैरव हैं। नृहरि भगवान् के अभ्यर्चन करने से भगवान् भैरव भी निश्चय ही प्रसन्न हो जाया करते हैं क्योंकि दोनो मे कोई भेद ही नही है।५०। भैरव के पूजन से भी भगवान् नृहरि पूजित हो जाया करते हैं। जो लोग उन दोनो मे कोई भेद देखा करते है वे माया से मोहित ही मनुष्य हुआ करते हैं। ।५१। ये मनुष्य नरक मे यातनाओ का विपाक भोगा करते हैं जब तक भूत सप्लव होता है नरक मे ही पडे रहा करते हैं।५२। इस कारण से सर्वदा रुद्र नारायणात्मिका मूर्ति का पूजन करना चाहिए। भगवती परम प्रसन्न होकर अज्ञान के हरण करने वाली हो जाती है।५३। हे द्विजो ! इस प्रकार से मैंने यह अन्धक का वध परम सक्षेप मे ही बता दिया है। भैरव का प्रादुर्भाव होना उसी का पराक्रम है अर्थात् उस दैत्य के पराक्रम के कारण ही भगवान् भैरव का प्रादुर्भाव हुआ था अन्यथा नहीं होता। इस अध्याय को जो भगवान् महादेवजी की

सन्निधि में बैठकर जो पढ़ा करता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर अन्त में भगवान् शिव का ही अनुचर हो जाया करता है ।५५।



।। प्रह्लाद राज्यारोहण तथा इक्ष्वाकु वंश कथन ।।

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
अन्धके निहते दैत्ये तत्र राज्ये स्थितः स्वयम् ।। १
कृत्वा स सुचिरं कालं राज्यं परमधार्मिकः ।
राज्ये विरक्तो मतिमान्क्षमादिगुणसंयुतः ।। २
राज्ये मतिमता श्रेष्ठो ह्यभिषिच्य विरोचनम् ।
तपोवनं गतः सोऽय वासुदेवपरायणः ।। ३
विरोचनश्च निहतो देवदेवेन चक्रिणा ।
बलिस्तस्याभवत्पुत्रो दैत्यो धर्मपरायणः ।। ४
बद्ध्वा नीतः स पातालं देवदेवेन चक्रिणा ।
बाणासुरस्तस्य सुतो भक्तो विश्वेश्वरे शिवे ।५
दत्तं भगवता तस्मै गाणपत्यमनुत्तमम् ।
तारश्च शम्बरश्चैव कपिलः शङ्करस्तथा ।। ६
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च बाणस्यैते सुता द्विजाः ।
कश्यपात्सुरसा जज्ञे खेचरान्मुनिपुंगवाः ।। ७

श्री सूतजी ने कहा—हिरण्यकशिपु का पुत्र दैत्य श्रेष्ठ प्रह्लाद अन्धक दैत्य के निहत हो जाने पर वहाँ राज्यासन पर स्वयं ही स्थित हो गया ।१। उस परम धार्मिक ने बहुत समय तक राज्य का शासन करके वह मतिमान् राजशासन करने से विरक्त हो गया था और शम आदि गुणों से युक्त बन गया था ।२। फिर उस राज्यासन पर मतिमानों में परम श्रेष्ठ प्रह्लाद ने विरोचन को अभिषिक्त कर दिया था और वह स्वयं भगवान् वासुदेव की भक्ति में परायण होकर तपोवन में चला

गया था।३। देवों के देव भगवान् ने विरोचन को निहित कर दिया था। उसका पुत्र वलि धर्मपरायण दैत्य हुआ था। देवदेव भगवान् चक्रधारी ने उसको भी बाँधकर पाताल में पहुचा दिया था। उसका पुत्र बाणासुर हुआ था जो भगवान् विश्वेश्वर शिव का परम भक्त था। भगवान् ने परमोत्तम गाणपत्य यह प्रदान कर दिया था। हे द्विजो ! बाणासुर के तार शम्बर-कपिल शङ्कर स्वर्भानु वृषपर्वा ये इतने पुत्र हुए थे। हे मुनि पुङ्गवो ! सुरसा ने कश्यप मुनि से खेचरों का जन्म दिया था।४।५।६।७।

अनन्ताद्या काद्रवेया बलिनो बलवत्तरा ।
गन्धर्वाञ्जनयामास तथाऽरिष्टा तु कश्यपात् ॥ ८
विनता जनयामास विख्याती गरुडारुणौ ।
पश्वादीन्स्थावरान्तांश्च तथाऽन्यान्सुपुवुर्द्विजा ॥ ९
स्थावरांश्चङ्गमांश्चैव समुत्पाद्याथ कश्यप ।
पुन सतानवृद्ध्यर्थं तताप परम तप ॥ १०
तपःप्रभावात्सभूतौ वत्सरश्चासित सुतौ ।
नैध्रुवो वत्सराज्जातो रैम्यश्चैव महामति ॥ ११
सुमेधा सुषुवे पुत्रान्नैध्रुवान्कुण्डपायिन ।
असितादेकपर्णाया समभूद्देवलो मुनि ॥ १२
आराध्य देवल शभु परा सिद्धिमवाप्तवान् ।
शाण्डिल्यो देवलाज्जात एतेऽपत्यास्तु काश्यपा ॥ १३
तृणविन्दुस्तु राजर्षि कन्यामिलविलाभिधाम् ।
पुलस्त्याय ददौ तस्या विश्रवा समजायत ॥ १४

ये काद्रवेय अनन्ताद्य हैं ये बलधारी और विशेष बलवान् थे। अरिष्टा नाम वाली पत्नी ने कश्यप ऋषि से गन्धर्वों को समुत्पन्न किया था।८। विनता ने परम विख्यात गरुड और अरुण इन दोनों को जन्म ग्रहण कराया था। हे द्विजो ! पशुओं से आरम्भ करके स्थावरों में अन्त तक और अन्यों को भी प्रसूत किया था।९। कश्यप मुनि ने

स्थावरों को और जङ्गमों को समुत्पन्न करके पुन सन्तानों की वृद्धि के लिये परम तपश्चर्या की थी ।१०। उस तप के प्रभाव से वत्सर और असित ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । वत्सर से नैध्रुव उत्पन्न हुआ था और महामनि रैभ्य पैदा हुआ था ।११। नैध्रुव से सुमेधा ने कुण्डपाभी पुत्रा को समुत्पन्न किया था । एकपर्णा के आसत्र से देवल मुनि समुत्पन्न हुए थे ।१२। देवल ने शम्भु की समाराधना करके परम सिद्धि प्राप्त की थी । देवल से शाण्डिल्य उत्पन्न हुए । ये कश्यप की सन्तनियां हैं तृणबिन्दु राजर्षि ने इलविला नाम वाली कन्या को पुलस्त्य मुनि को प्रदान कर दी थी उसी से विश्रवा समुत्पन्न हुआ था ।१३।१४।

पुष्पोत्कटा तथा वाका कैकसी देववर्णिनी ।
चतस्र पत्नयस्तस्य पौलस्त्यस्य महात्मन ॥ १५
कुबेरो देववर्णिन्या कैकस्या रावणस्तथा ।
कुम्भकर्ण शूर्पणखा तथैव च विभीषण ॥ १६
पुष्पोत्कटायामभवस्तनय पुत्राश्च कन्यका ।
महोदर प्रहस्तश्च महापार्श्वस्तथाऽपर ॥ १७
तथा कुम्भनसी कन्या तस्य विश्रवसो द्विजा ।
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबल ॥ १८
वाकायामभवन्पुत्रा राक्षसा क्रूरकर्मिण ।
भूता मृगा पिशाचाश्च सर्वे वै दंष्ट्रिणस्तथा ॥ १९
पौलस्त्या इति ते सर्वे मरीचे, कश्यप सुत ।
भृगो सकाशादभवच्छुक्रो दैत्यगुरुर्महान् ॥ २०
प्राप्ता सञ्जीविनी विद्या येन शुक्रेण धीमता ।
महादेव समाराध्य पुरा बदरिकाश्रमे ॥ २१

महात्मा पुलस्त्य की चार पत्नियाँ हुई थी । एक का नाम पुष्पोत्कटा था — दूसरी वाका थी—कैकसी और देव वर्णिनी थी । देववर्णिनी पत्नी के उदर मे कुबेर पैदा हुए और कैकसी के गर्भ से रावण उत्पन्न हुआ था तथा साथ ही छोटे भाई कुम्भकर्ण और विभीषण हुए और

एक वहिन शूर्पणखा हुई थी ।१५।१६। पुष्पोत्कर मे तीन पुत्र और कन्या हुई थी । उनके नाम ये है—महोदर-प्रहस्त और महापार्श्व । उस विश्रवा कुम्भनखी एक कन्या भी हुई थी । नकामे त्रिशिरा दूषण-विद्युज्जिह्व-महावल ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो क्रूर कर्मो के करने वाले राक्षस थे । भूत-मृग और पिशाच ये सभी देष्ट्राधारी थे ।१७।१८। ।१९। सभी पौलस्त्य हैं और मरीचिका कश्यप पुत्र था । भृगु के सकाश से महान् दैत्य गुरु शुक्र हुए थे ।२०। जिस परम श्रीमान् शुक्र ने सञ्जीविनी विद्या प्राप्त करली थी और पहिले वदरिकाश्रम मे शुक्राचार्य ने श्री महादेवजी की समाराधना करके ही सञ्जीविनी विद्या उनके प्रसाद से प्राप्त करली थी ।२१।

जरामरणनिर्मुक्तो वज्रकायो महामुनि ।
योगाचार्य इति ख्यातः प्रसादाद्गिरिजापतेः ॥ २२
अनसूया तु सुषुवे क्रमात्पुत्रत्रयं द्विजा. ।
दत्तात्रेय चन्द्रमसं तथा दूर्वाससं मुनिम् ॥ २३
आत्रेया इति ते ख्याता निरपत्यस्तथा क्रतु. ।
वसिष्ठाय ददौ कन्या नारदो मुनिपुंगवा. ॥ २४
अरुन्धतीमरुन्धत्या शक्तिर्नाम वभूव ह ।
शक्तेः पराशरस्तस्मात्कृष्णद्वैपायनो मुनि. ॥ २५
द्वैपायनाच्छुको जज्ञे पञ्च पुत्राः शुकस्य ते ।
भूरिश्रवा. प्रभु शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ २६
कन्या कीर्तिमती नाम वशा एते प्रकीर्तिता. ।
कश्यपाददितिर्लेभे भास्कर तेजसाऽधिकम् ॥ २७
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया भानोर्भार्याः स्मृतास्त्विमाः ।
सूते सूर्यान्मनुं संज्ञा यस्य वंशेऽभवन्नृपाः ॥ २८

भगवान् गिरिजापति के प्रसाद से यह महामुनि जरा (वृद्धता) और मरण से निर्मुक्त होकर वज्रकाय हो गये थे तथा योगाचार्य नाम से ख्यात हुए थे ।२२। द्विजो ! अनसूया ने क्रम से तीन पुत्रों को प्राप्त किया

या। वे तीनों दत्तात्रेय-चन्द्रमा और दुर्वासा मुनि थे।२३। ये सब आत्रेय-इस नाम से ही स्यात हुए थे और ऋतु मुनि अपत्य (सन्तान) से ही वही रह गये थे। हे मुनिपुङ्गवो! नारदजी ने वसिष्ठजी के लिये कन्या प्रदान करदी थी।२४। उस कन्या का नाम अरुन्धती था। उस अरुन्धती मे शक्ति नाम वाला हुआ था। शक्ति से पराशर हुए तथा उन पराशर मुनि से कृष्णद्वैपायन मुनि ने जन्म ग्रहण किया था।२५। द्वैपायन मुनि से शुक समुत्पन्न हुए थे और उन शुक मुनि के पाच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था। उन पाचों के नाम—भूरिश्रवा-प्रभु शम्भु कृष्ण और पाचवा गौर था।२६। एक कन्या थी जिसका नाम कीर्त्तिमती था ये सब वश कीर्तन कर दिये गये हैं। कश्यप मुनि से अदिति ने तेज से अत्यधिक तेजस्वी भास्कर को प्राप्त किया था।२७। सज्ञा-राज्ञी-प्रभा और छाया ये भानु देव की भार्या ये कही गयी हैं। सज्ञा ने सूर्य देव से मनु को प्रसूत किया था जिसके वश मे नृप हुए थे।२८।

यम च यमुना चैव राज्ञी रेवन्तमेव च।
प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सार्वाणिमेव च ॥ २६
शनि च तपती चैव विष्टि चैव यथाक्रमम्।
इक्ष्वाकुर्नभरश्चैव धृष्ट- शर्यातिरेव च ॥ ३०
नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्ट- करुपस्तथा।
पृषध्वजो महातेजा नव वैवस्वता समा ॥ ३१
इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च कन्या एतास्त्रय (!) स्मृताः।
इक्ष्वाकोश्चभवत्पुत्रो विकुक्षिरिति विश्रुत ॥३२॥
तस्य पुत्रशत त्वासोत्ककुत्स्थो ज्येष्ठ ईरित।
तस्मात्सुयोधनो जज्ञे पृथुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥३३॥
विश्वकस्तस्य पुत्रोऽभूद्मकस्तस्य वै सुत.।
तस्माच्छ्र्यातिरभवद्युवनाश्वश्च तत्सुत ॥३४॥
श्रावस्तिस्तस्य पुत्रोऽभूच्छ्रावस्ती येन निर्मिता।
तस्मात्कुवलय- ख्यातो धुन्धुमारिस्ततोऽभवत् ॥३५॥

राज्ञीभार्या ने यम को और यमुना को जन्म दिया था और रेवन्त को भी उत्पन्न किया था। प्रभाभार्या ने सूर्य देव से प्रभात को तथा छायाभार्या ने सावर्णि को समुत्पन्न किया था।२६। शनि को तपती को और विष्टि को यथाक्रम से उत्पन्न किया था। इक्ष्वाकु-नाभाग धृष्ट-शर्याति-नरिष्यन्त-प्रांशु-रिष्ट-करुष वृषध्वज महातेजा ये भी सम वैवस्वत हैं।३०।३१। इला ज्येष्ठा वरिष्ठा ये तीन कन्यायें बतायी गयी हैं। राजा इक्ष्वाकु का विकुक्षि नाम वाला विश्रुत पुत्र हुआ था।३२। उसके एक सौ पुत्र थे। उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़ा कहा गया है। उस ककुत्स्थ से सुयोधन उत्पन्न हुआ था और उस सुयोधन का पुत्र पृथु हुआ था।३३। उसका पुत्र विश्वक और विश्वक का पुत्र दमक उत्पन्न हुआ था। उससे शर्याति हुआ और इसका पुत्र भुवनाश्व हुआ था। युवनाश्व का पुत्र श्रावस्ति तथा इसके द्वारा ही श्रावस्ती पुरी की रचना की गयी थी। उनमें कुवलय की उत्पत्ति हुई थी जोइसी नाम से ख्यात था इसके पश्चात् धुन्धुमारि समुत्पन्न हुआ था।३४।३५।

धुन्धुमारेस्त्रय पुत्रा दृढाश्वाद्या महौजस ।
दृढाश्वस्य च दायादो हरिश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ॥३६॥
रोहितस्तस्य पुत्रोऽभूद्रोहितस्यापि तत्सुत ।
धुन्धुस्तस्मादभूत्पुत्रो धुन्धो पुत्रो बभूवतु ॥३७॥
सुदेवो विजयश्चैव कुरुत्रो विजयात्स्मृत ।
वृकोऽथ कुरुकाज्जज्ञे तस्माद्बाहुरभूत्सुत ॥३८॥
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूत्पौत्रस्तस्यांशुमान्स्मृत ।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु तस्माज्जज्ञे भगीरथ ॥३९॥
प्रीतोऽभूत्तपसा शम्भुर्ददौ वरमनुत्तमम् ।
गङ्गा बभार शिरसा रक्षार्थं जगता हर ॥४०॥
दशायुतानां वर्षाणि द्विसहस्र शतद्वयम् ।
महादेवाद्वर लब्ध्वा राज्य कृत्वा भगीरथ ॥४१॥

विरक्तो राज्यभोगेभ्यो विश्वं मत्वेन्द्रजालवत् ।
जावाल समनुप्राप्य यत्तज्ज्ञानं शिवात्मकम् ॥४२॥

धुन्धुमारि के तीन पुत्र हुए थे जो दृढाश्वाद्य महान् ओज वाले थे। दृढाश्व का दाय ग्रहण करने वाला फिर हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुआ था ।३६ उस हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित हुआ था। रोहिताश्व का पुत्र धुन्धु था। उस धुन्धु के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनका नाम सुदेव और विजय था। विजय से कुरुक उत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र वृक हुआ था और उसका पुत्र बाहु उत्पन्न हुआ था ।३७।३८। बाहु का पुत्र सागर पैदा हुआ था और उसका पौत्र अंशुमान् हुआ था। इस अंशुमान् का पुत्र राजा दिलीप था। इस दिलीप से भागीरथ ने जन्म ग्रहण किया था। भगवान् शम्भु भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न हो गये थे और उसको उत्तम वरदान प्रदान किया था। भगवान् हर ने जगती की रक्षा करने के लिये अपने सिर पर गङ्गा को धारण किया था ।३६।४०। एक लाख दो सहस्र दो सौ वर्ष तक महादेवजी वरदान प्राप्तकर भगीरथ ने राज्य किया था ।४१। राज्य के भोगों से विरक्त होकर इस विश्व को महेन्द्र के जाल के ही समान जावाल समनुप्राप्त करके जो शिवात्मक ज्ञान था उसी को प्राप्त किया था ।४२।

मुनेरनुग्रहाल्लब्ध्वा परां सिद्धिं गतो नृप ।
श्रुतस्तस्याभवत्पुत्रो नाभागस्तत्सुतोऽभवत् ॥४३॥
सिन्धुद्वीपस्ततो जज्ञे अयुतायुस्ततोऽभवत् ।
ऋतुपर्णस्तु तत्पुत्रः सुदामा तत्सुतोऽभवत् ॥४४॥
यस्मै दत्तं भगवता गाणपत्यमनुत्तमम् ।
कल्माषपादस्तत्पुत्रः क्षेत्रजस्तत्सुतोऽश्मकः ॥४५॥
ऋषेर्वासिष्ठाद्विप्रेन्द्रान्मूलकस्तत्सुतोऽभवत् ।
नकुलस्याभवत्पुत्रो नाम्ना शतरथो नृप ॥४६॥
अभूदिलविलस्तस्माद्वृद्धशर्मा ततोऽभवत् ।
तस्माद्विश्वसहो नाम खट्वाङ्गस्तत्सुतोऽभवत् ॥४७॥

दीर्घबाहुस्ततो जज्ञे रघुस्तस्याभवत्सुत ।
रघोरजस्तु विख्यातो राजा दशरथस्तत ॥४८॥
तस्य पुत्राश्च चत्वारो धर्मज्ञा लोक विश्रुता ।
रामोऽथ भरतश्चैव तृतीयो लक्ष्मण स्मृत ॥४९॥

मुनिवर के अनुग्रह से इस ज्ञान की प्राप्ति करके नृप ने परा सिद्धि प्राप्त करली थी। इसका पुत्र श्रुत हुआ था और इसका पुत्र नाभाग उत्पन्न हुआ था।४३। उससे फिर सिन्धु द्वीप समुत्पन्न हुआ था। इससे अयुतायु ने जन्म प्राप्त किया था। अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ था।४४। जिसके लिये भगवान् ने उत्तम गाणपत्य पद प्रदान किया था। इसका पुत्र कल्माषपाद हुआ था। उसका पुत्र क्षेत्रज अश्मक हुआ था।४५। हे विप्रेन्द्रो! ऋषि वसिष्ठ से नकुल उनका पुत्र हुआ था। नकुल का शतरथ नाम से विश्रुत नृप पुत्र उत्पन्न हुआ था।४६। उससे इलविल उत्पन्न हुआ था तथा इसका भी पुत्र वृद्धशर्मा उत्पन्न हुआ था। वृद्धशर्मा का पुत्र विश्वसह और इसका पुत्र खट्वाङ्ग हुआ था।४७। इससे दीर्घबाहुने जन्म प्राप्त किया था और दीर्घबाहु का पुत्र रघु हुआ था। रघु का पुत्र तो परम विख्यात है जिसका राजा दशरथ पुत्र रूप में प्रसूत हुए थे।४८। उन महाराज दशरथ के चार ही पुत्र हुए थे जो परम धर्मज्ञ और लोकों में प्रसिद्ध थे। राम भरत और तीसरा लक्ष्मण थे।४९।

चतुर्थश्चैव शत्रुघ्नो रामो नारायणः स्वयम् ।
धर्मज्ञ सत्यसङ्कल्पो महादेवपरायण ॥५०
सीता तस्याभवद्भार्या पार्वत्यंशसमुद्भवा ।
जनकेन पुरा गौरी तपसा तोषिता यत ॥५१
जनकाय ददौ शम्भु प्रीतो धनुरनुत्तमम् ।
तदनुर्भञ्जयामास जनकस्य गृहे स्थितम् ॥५२
दृष्ट्वा पराक्रम तस्य रामस्य गुणशालिन ।
जनक प्रददौ तस्मै सीता ब्रह्मविदा वर ॥५३
पित्रा प्रीतोऽभिषेकार्थं रामो राज्यस्य वै यदा ।
वारयामास कैकेयी तदा राज्ञ प्रिया वधू ॥५४

राजस्त्वया वरो दत्त पूर्वमेव यत प्रभो ।
राजान मत्सुत तस्माद्भरत कर्तुमर्हसि ॥५५
इति तस्या वच श्रुत्वा राज्ये तमभिषिच्य स ।
प्रेषयामास त राम वन प्रति सलक्ष्मणम् ॥५६

चौथे पुत्र शत्रुघ्न थे । श्रीराम तो स्वय नारायण थे । जो धर्मज्ञ—सत्य सत्त्व वाले—महादेव जी की भक्ति मे परायण थे ॥५०॥ सीता उनकी भार्या थी जो साक्षात् पार्वतीजी के अश मे ही समुत्पन्न हुई थी क्योकि महाराज जनक ने तपस्या के द्वारा गौरीदेवी को सन्तुष्ट किया था । भगवान् शम्भु ने जनक नृप के लिये परम प्रसन्न होकर उत्तम धनुष दिया था । जनक के घर मे स्थित उसी धनुष को श्रीराम ने तोड दिया था । गुणशाली श्रीराम के पराक्रम को देखकर, महाराज जनक ने जोकि ब्रह्म वेत्ताओ म परम श्रेष्ठ थे उन श्रीराम के लिए सीता को देदिया था ॥५१॥५२॥५३॥ जिस समय मे राज्य के अभिषेक के लिए श्रीराम का निश्चय किया था उस समय मे राजा की प्यारी वधू केकयी ने वारण कर दिया था । उसने राजा से कहा था—हे प्रभो! हे राजन्! आपने पहिले ही क्योकि मुझे वरदान दिया है । अतएव मेरे पुत्र को ही आप राजा बनाने के लिये सामर्थ हैं । उसके इस वचन को सुनकर राज्य मे उसका अभिषक उसने कर दिया था । फिर राजा ने श्रीराम को वन मे लक्ष्मण के सहित भेज दिया था ॥५१॥५२॥५३॥ ५४॥५५ ।५६॥

वन गत्वा निवसतो भार्या दृष्ट्वाऽथ राक्षस ।
रावणो नाम पौलस्त्यो नीत्वा लङ्का पुनर्ययौ ॥५७
अदृष्ट्वा ता तत सीता दु खितौ रामलक्ष्मणौ ।
मख्य वानरराजेन गत्वा दाशरथी द्विजा ॥५८
सुग्रीवस्य सखा वीरो हनुमान्नाम वानर ।
गत्वाऽथ रावणपुरीमपश्यज्जनकात्मजाम् ॥५९
अश्रुपूर्णेक्षणा सीतामिन्दीवरनिभाननाम् ।
विश्वासार्थं ददौ तस्यै रामस्यैवाङ्गुलीयकम् ॥६०

दृष्ट्वाऽङ्गुलीयकं सीता प्रहृष्टा च तदाऽभवत् ।
समाश्वास्य ततः सीता प्रययौ राघवान्तिकम् ॥६१
रामस्तमागतं दृष्ट्वा प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ।
श्रुत्वा तद्वचनाद्वृत्तं युद्धाय कृतनिश्चयः ॥६२
सेतुं कृत्वाऽथ रक्षोभिर्युद्धं कृत्वा महामनाः ।
निहत्य रावणं रामो भ्रातृभिः सह सुव्रत ॥६३

वन मे जाकर निवास करने वाले श्री राम की भार्या को देखकर राक्षस रावण ने जोकि पौलस्त्य था लङ्का मे ले जाकर गमन किया था ॥५७॥ उस सीता को वहा पर न देखकर राम और लक्ष्मण दोनो बहुत ही दुखित हुए थे। हे द्विजो! उन दशरथ के पुत्रो ने राजा सुग्रीव के साथ मुख्य अर्थात् मित्रता की थी ॥५८॥ उस वानर राज सुग्रीव का एक सखा परम वीर हनुमान् नाम का वानर था। वह हनुमान् रावण की पुरी लङ्का मे गया था और वहाँ पर उसने जनकात्मजा को देखा था ॥५६॥ वह जनक की आत्मजा अश्रुओ से परिपूर्ण नेत्रो वाली थी और इन्दीवर के समान उसका मुख था। हनुमान ने जानकी जी को विश्वास दिलाने के लिये कि मैं श्रीराम का ही एक सेवक हू और उन्होने मुझको भेजा है उन जानकी के लिये श्रीराम के द्वारा ही दूई अगूठी दी थी ॥६१॥ उस समय मे उस अगुलीयक को देखकर जानकी परम प्रसन्न हुई थी। वह हनुमान सीताजी को भली भाति समाश्वासन देकर पुन श्री राघवेन्द्रजी के समीप मे वापिस आगये थे ॥६१॥ श्रीराम ने हनुमान को जानकी जी की सूचना लेकर वापिस आया हुआ जब देखा था तो प्रसन्नता से उनके नेत्र खिल गये थे। हनुमान के मुख से सम्पूर्ण लङ्का का वृतान्त श्रवण करके उन्होंने युद्ध के लिये निश्चय कर लिया था कि रावण के साथ अब युद्ध ही करना होगा ॥६२॥ फिर महान् मन वाले श्रीराम ने राक्षसो के साथ युद्ध करके तथा समुद्र में सेतु बाँधकर तथा रावण को मारकर श्रीराम ने जो सुव्रत थे उस जानकी को भाइयो के साथ वापिस

ले आकर अपने पास समवस्थित कर दिया था जोकि अबतक लङ्का मे अशोक वाटिका मे स्थित रहा करती थी ॥६३॥

आनयामास तां सीतामशोकवनमध्यगाम् ।
प्रतिष्ठाप्य महादेवं सेतुमध्येऽथ राघवः ॥६४
लब्धवान्परमां भक्तिं शिवे शिवपराक्रमः ।
रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक् ॥६५
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ।
अभिषिक्तस्ततो राज्ये रामो राजीवलोचनः ॥६६
पालयन्पृथिवीं सर्वां धर्मेण मुनिपुङ्गवाः ।
अयजद्देवदेवेशमश्वमेधेन शङ्करम् ॥६७
तस्य प्रसादात्स्वपदं प्राप्तवानथ राघवः ।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं रामस्य चरितं मया ॥६८
इदं विस्तरतो विप्राः प्रोक्तं वाल्मीकिना पुनः ।
कुशाश्वौ कोमलाङ्गाख्यौ पुत्रौ रामस्य सुव्रतौ ॥६९

श्री राघव ने सीता जी को अशोक वाटिका से लाकर वहां पर सेतु के मध्य मे श्री महादेव की प्रतिष्ठा की थी ॥६४॥ श्री शिव के पराक्रम से युक्त श्रीराम ने भगवान् शिव मे परमाधिक भक्ति को प्राप्त किया था। वे श्री महादेव पिनाक धनुष के धारण करने वाले श्रीरामेश्वर महादेव के ही नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥६५॥ उन श्रीरामेश्वर महादेव जी के केवल दर्शन ही कर लेने भरसे ब्रह्म हत्या से छुटकारा पा जाया करता है। इसके पश्चात् श्रीराम का राज्यासन पर अभिषेक किया गया था और फिर राजीव के समान नत्रो वाले श्रीराम ने धर्म के साथ हे मुनि पुङ्गवो ! सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया था तथा भगवान शङ्कर का अश्वमेध यज्ञ के द्वारा यजन किया था ॥६६॥६७॥ उन्ही के प्रसाद से श्रीराघवेन्द्र प्रभु ने पद को प्राप्त किया था। इस प्रकार से मैंने यह श्रीराम का चरित्र बहुत ही संक्षेप से वर्णित कर दिया है। फिर वाल्मीकि मुनि ने इसी श्रीराम के चरित्र को बहुत

विस्तार के साथ कहा था। श्रीराम के दो परम सुव्रत पुत्र हुए थे। एक का नाम कुश था और दूसरे का नाम लव था। ये ही दोनों ही लव कुश के नामों से प्रसिद्ध थे ॥६८॥६९॥

सत्यसन्धौ महावीर्यौ महादेवपरायणौ ।
अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् ॥
नलस्तस्याभवत्पुत्रो नभस्तस्याभवत्सुत ॥७०
ततश्चन्द्रावलोकश्च तारापीडस्ततोऽभवत् ।
ततश्चन्द्रगिरिर्नाम भानुजित्तत्सुतोऽभवत् ॥७१
एते सर्वे नृपा प्रोक्ता इक्ष्वाकुकुलसंभवा ।
धर्मात्मानो महासत्त्वा कीर्तिमन्तो दृढव्रता ॥७२
इमं य पठते नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥७३

ये दोनों भाई लव और कुश परम सत्य प्रतिज्ञा वाले थे—महान् वीर्य—पराक्रम से युक्त थे—और श्री महादेव जी भक्ति भाव में परायण थे। कुश से अतिथि नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और उस अतिथि का पुत्र निषध नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र नल हुआ था तथा उस नल के नभ नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। फिर इसके चन्द्राव लोक हुआ था। चन्द्रावलोक के पुत्र का नाम तारापीड हुआ था। फिर उससे चन्द्रगिरि ने जन्म प्राप्त किया था और इसके पुत्र का नाम भानुजित था। ये सभी नृप जो मेरे द्वारा बतलाये गये हैं वे सब इक्ष्वाकु राजा के कुल में ही जन्म लेने वाले हुए थे। ये सभी परमधर्मात्मा और महान् सत्व वाले थे तथा कीर्ति से युक्त एवं दृढ़ व्रत वाले हुए थे ॥७०॥७१॥७२॥ इस महाराज इक्ष्वाकु के उत्तम वंश को जो भी कोई पुरुष नित्य ही पढ़ा करता वह सभी प्रकार के महान् पातकों से निर्मुक्त हो जाया करता है और अन्त में सूर्यलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥७३॥

॥ शिव महिमादि कथन ॥

चतुर्ष्वपि च वेदेषु पुराणेषु च सर्वशः ।
श्रीमहेशात्परो देवो न समानोऽस्ति कश्चन ॥१
ब्रह्मा विष्णुर्बलारातिः सर्वे यस्य वशे स्थिताः ।
उत्पत्तिः सर्वदेवानां स एव ध्येय उच्यते ॥२
नास्ति शम्भोः परो धर्मो नाप्यर्थः शंकरात्परः ।
शिवादन्यत्सुखं नास्ति मोक्षो नैव हरात्परः ॥३
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥४
स्रष्टृत्वं ब्रह्मणो येन ध्येयत्वं येन शार्ङ्गिणः ।
विष्णुत्वं येन शक्रस्य तस्मादस्य परो न हि ॥५
केचिल्लोका महेशानं त्यक्त्वा केशवकिंकराः ।
तत्र किं कारणं सूत वद संशयनाशक ॥६
अन्तकाले स्मरन्त्येव प्रायेण गरुडध्वजम् ।
विद्यमाने शिवे विष्णौ प्रभौ श्रीपार्वतीपतौ ॥७

श्री सूतजी ने कहा—चारों वेदों में और पुराणों में सर्वत्र श्रीमहेश से पर अन्य कोई भी देव नहीं है और न उनके समान ही कोई देवता है ॥१॥ ब्रह्मा विष्णु और बलाराति सभी जिनके वश में स्थित रहा करते हैं और समस्त देवों की वही उत्पत्ति है और वही सबके ध्येय कहे जाया करते हैं ॥२॥ शम्भु भगवान् से पर कोई धर्म नहीं है न शङ्कर से पर कोई अर्थ ही है। भगवान् शिव से अन्य कोई भी सुख नहीं है और न हर से पर कोई मोक्ष ही होता है ॥३॥ जिस समय में चर्म के सदृश आकाश को मानव वेष्टित कर लिया करते हैं उस समय में शिव को न जानकर दुःख का अन्त होगा ॥४॥ जिनसे ब्रह्मा का सृष्टत्व—शार्ङ्गी का ध्येयत्व और विष्णुत्व का पद प्राप्त हुआ है तथा शक्र को विष्णुत्व मिला है उस शम्भु से पर अन्य कोई भी नहीं है ॥५॥ ऋषियों

ने कहा—कुछ लोग महेश भगवान् को त्याग करके, केशव भगवान् के ही चिह्न होते है हे सूत जी ! आप तो संशय के विनाश करने वाले है। यह बतलाइये कि वहाँ पर क्या कारण होता है ॥६॥ अन्तकाल मे प्राय करके लोग भगवान् गरुड ध्वज का ही स्मरण किया करते हैं जबकि श्री पार्वती के पति भगवान् शम्भु प्रभु विष्णु के आगे विद्यमान रहने पर ऐसा क्यों होता है ?॥७॥

यदा यदा प्रसन्नोऽभूतिद्भक्तिभावेन धूर्जटि ।
विष्णुनाऽऽराधितो भक्त्या तदाऽसौ दत्तवान्वरान् । ८
त्वत पर प्रभु नैव प्रायेण ज्ञानस्यति स्फुटम् ।
विरला केचिदेतद्धि निष्ठा वेत्स्यन्ति तत्त्वत ॥९
हेतुना तेन विप्रेन्द्रा शिव जानन्ति केचन ।
प्रायेण विष्णुनामानि गृणन्ति वरदानत ॥१०
विष्णो स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।
शम्भुप्रसाद एवैष नास्ति कार्या विचारणा ॥११
य शम्भु तत्त्वतो वेत्ति स तु नारायण स्वयम् ।
यस्तु नारायण वेत्ति स शक्रो विबुधेश्वर ॥१२
य इन्द्र वेत्ति देवेश लोकपालो जलाधिप ।
एव सर्वाल्लोकपालाञ्जानाति स इहामर ॥१३
वेदाञ्जानाति यस्त्वन्स ऋषिर्वेदविस्स्वयम् ।
ऋषीन्यो वेत्ति सम्यक्त्वात्स एव ब्राह्मणोत्तम ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—जब जब भगवान् धूर्जटि भक्ति भाव से प्रसन्न हो जाते हैं और विष्णु ने भक्ति भावा से उनकी आराधना की थी उस समय मे इन्होंने विष्णु को वरदान दिया था ॥८॥ आपसे पर प्रभु प्राय करके स्फुट रूप से नही जाने जायगे। कोई विरले ही तात्विक रूप से निष्ठा का ज्ञान प्राप्त करेंगे ॥९॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसी हेतु से कुछ ही लोग भगवान् शिव का ज्ञान प्राप्त किया करते हैं। प्राय करके विष्णु के नामों को ही वरदान से लोग ग्रहण करते हैं ॥१०॥ भगवान विष्णु

के नामों का स्मरण मात्र से ही समस्त पापों का क्षय हो जाया करता है—यह भी भगवान् शम्भु का ही प्रसाद है—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥११॥ जो शिव को तात्विक रूप से जानता है वह तो स्वयं नारायण ही है। जो नारायण को जानता है वह देवों का स्वामी शक्र ही है ॥१२। जो देवेश इन्द्र को जानता है वह लोक पाल कहाविय हैं। इस प्रकार से सब लोकपालों को जानता है वह यहाँ अमर है ॥१३॥ जो यजन करने के योग्य देवों का ज्ञान रखता है वह सदा वेद ज्ञाता स्वयं ऋषि हैं। जो भली भाँति से ऋषियों को जानता है वह ही उत्तम कोटि का ब्राह्मण है ॥१४॥

सर्वदेवमयं विप्रं यो जानाति स वेदवित् ।
रहस्यं वेत्ति वेदस्य स एव हरवल्लभः ॥१५
जन्मादिकारणं शंभुं विष्णुं ब्रह्मादिपूर्वजम् ।
न जानन्ति महामूर्खा विष्णुमायाविमोहिताः ॥१६
आसीत्प्रतर्दनो नाम राजा परमधार्मिकः ।
सप्तद्वीपपतिः पृथ्वीप्रभुरेकः प्रतापवान् ॥१७
शूरः पुण्यमनिर्भोगी दाता वेदार्थपालकः ।
रक्षिता सर्वसेतूनां ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः ॥१८
तस्य राज्ये सदा देवा गृह्णन्ति हविरुत्तमम् ।
न पाखण्डी न वा बौद्धस्तस्य राज्येऽभवज्जनः ॥१९
कदाचित्स पुरीं त्यक्त्वा क्रीडार्थं निर्गतो बहिः ।
तदा ददर्श द्वारे राजा विस्मयमागतः ॥२०
पृष्ट कस्त्वं सुतो यान किं कार्यं च तवेप्सितम् ।
कृपं ज्ञास्यामि तत्सर्वं विजानीयो भवान्वद ॥२१

और विष्णु की माया से विमोहित ही हो जाया करते है ॥१६॥ एक प्रतर्दन मध्य वाला परम धार्मिक था वह सातो द्वीपो का स्वामी प्रताप वाला तथा पृथ्वी का एक ही प्रभु था ॥१७॥ वह शूरवीर पुण्यमति वाला भोगी वाला—वेदो के अर्थों का प्रतिपालन करने वाला सभी सेतुओं की रक्षा करने वाला—परम ब्रह्मण्य और ब्राह्मणो से प्यार करने वाला था ॥१८॥ उसके राज्य मे देवगण सदा ही उत्तम हवि को ग्रहण किया करते थे। न तो वह पापण्ड वाला था और न बौद्ध था। उसके राज्य मे ऐसा कोई अन्य मनुष्य भी नही था ॥१९॥ किसी समय मे वह अपनी नगरी नगरी को छोडकर क्रीडा करने के लिये बाहिर निर्गत हो गया था। उस समय मे उसने क्षपण अर्थात् बौद्ध सन्यासी को देखा था। उसे देखकर उसको बहुत अधिक विस्मय हुआ था ॥२०॥ उसके द्वारा उस क्षपणक से पूछा गया था कि वह कौन है और कहाँ को जा रहा था, एव उसका वहाँ क्या कार्य था तथा उसका ईप्सित क्या था ? वह अब कहाँ को जायगा और उसकी जाति क्या है—राजा ने उससे यह भी कहा था कि आप यह सभी बातें बतलाइये ॥२१॥

राजन्वणिगह शान्तो यति. शीलव्रत स्थित. ।
मदीयाऽन्वलसलग्नाः सन्त्यत्र वणिज. परे ॥२२

को धर्म किं नु तत्र त्व ज्ञायते केन वक्ति कः ।
अय पन्था. कथ प्राप्त. कस्मात्र प्रकटो भवान् ॥२३

अहिंसा परमो धर्मस्तत्सरव यत्तनोर्दम. ।
बुध्यते बौद्धजैनाभ्या वक्ता तस्य जिनो मतः ॥२४
वेदवेदाङ्गवेत्तारो याज्ञिका वैष्णवा द्विजाः ।
माहेश्वरा महापूज्या न व्यक्तोऽह भयान्नृप ॥२५
ततो राजा परा चिन्ता प्राप्तो दुःखितमानसः ।
धिग्राज्य मम दुर्बुद्धेर्वदवाह्योऽस्ति मत्पुरे ।.२६
एत हन्मि यदा पाप तदेतन्मानिनी प्रजा ।
कथयिष्यति शान्तारमा हतो राज्ञा कुबुद्धिना ॥२७

एतस्मिन्निहते किस्याद्भवन्ति बहवस्तथा ।
दयाशब्द पुरस्कृत्य ह्यधर्मो विचरिष्यति ॥२८

क्षपणक ने कहा—हे राजन् ! मैं वणिक हूँ, परम शान्त मति हूँ और शील व्रत में स्थित रहने वाला हूँ तथा मेरे अञ्जल में रहने वाले दूसरे वणिक भी हैं ॥२२॥ राजा ने कहा—तुम्हारा धर्म क्या है और उस धर्म में क्या व्रत हैं ? क्या आप जाने जाते हैं किसके द्वारा कौन बोलता है ? यह मार्ग कैसे प्राप्त हुआ था और किस कारण से प्रकट नहीं हुए थे ॥२३॥ क्षपणक ने कहा—अहिंसा ही मेरा परम धर्म है। तनुका दमन जो है वही परम तत्त्व है। बौद्ध और जैनों के द्वारा ही जाना जाता है। उसका वक्ता जिन भगवान ही माने गये हैं ॥२४॥ हे नृप ! यहाँ पर वेदों और वेदाङ्गों के वेत्ता—याज्ञिक और वैष्णव द्विज हैं महेश्वर का पूजक—महापूज्य हैं। भय से ही मैं व्यक्त नहीं हुआ हूँ।२५। सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् राजा को बहुत अधिक चिन्ता हुई थी और उसका मन अत्यन्त दुःखित हो गया था। मेरे जैसे राजा के राज्य को धिक्कार है कि दुर्बुद्धि मेरे पुर में एक यह वेद बाह्य पुरुष विद्यमान है ॥२६॥ इसको मैं जब मारता हूँ तो यह भी पाप होता है और तब यह मानिनी प्रजा कहेगी कि कुबुद्धि राजा ने एक परम शान्त क्षपणक को मार दिया है ॥२७॥ इसके मार डालने पर क्या होगा तथा बहुत हो जाते हैं। दया शब्द को आगे करके अधर्म विचरण करेगा ॥२८॥

वेदबाह्या प्रजा राज्ञा शासितु नैव शक्यते ।
तदा तत्पापभागी स्यादित्याह भगवान्मनु ॥२९
त्यक्त्वा राज्य तपस्तेपे ततो राजा प्रतर्दन. ।
सावित्री मनसा ध्यात्वा नित्यमेकाग्रमानसः ॥३०
तत कतिपयाहोभिर्ब्रह्मा प्रत्यक्षता गत ।
महता तपसा तुष्ट इद वचनमब्रवीत् ॥३१
पुत्र प्राप्तोऽस्मि गतोय वर वरय सुव्रत ।
कथ त्व निर्घृणे चित्ते राज्य त्यक्त वनस्त्वया ॥३२

वेदा प्रमाण वक येव जानात्येव च यत्प्रजा ।
शङ्कामात्र भवेन्नं न वेदप्रामाण्यगोचरम् ॥३३
इति याचे वर देव किमन्येव वरेण मे ।
याचे निष्कण्टक राज्य सप्तद्वीपावनीपति ॥३४

वेदो से बाहर जब सब प्रजा हो जायेगी तो राजा के द्वारा शासन नही की जा सकती है। उस समय मे उसके पाप का भागी होता है—एसा भगवान् मनु ने कहा है ॥२६॥ सूतजी ने कहा—इसके पश्च त् राजा प्रतदन ने राज्य को त्याग करके तपस्या करने लगा था। उसने सावित्री देवी का मन से ध्यान करके वह नित्य ही एकाग्र मन वाला रहता था।३०। इसके अनन्तर कुछ दिनो के बाद ब्रह्माजी प्रत्यक्ष ा को प्राप्त हो गये थे। ब्रह्माजी महान तप से परम सन्तुष्ट हो गये थ और यह वचन उससे बोले—ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! हे सुव्रत ! मैं परम सन्तुष्ट हो गया हूँ तुम वरदान माग लो। तुम राज्य मे क्यो खेद को प्राप्त कर रहे हो ? चित्त मे खिन्नता का क्या कारण है ? आपने राज्य का परित्याग क्यो कर दिया है ? ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—वेद प्रमाण को बतलाता है और उसकी प्रजा सब जानती ही है। वेद ही प्रमाण का गोचर है और उसमे शङ्कामात्र भी नही होती है ॥३३॥ हे देव ! मैं यही वरदान चाहता हू। मुझे अन्य वरदान से कुछ भी प्रयोजन नही है। मैं तो सातो द्वीपो की भूमिका स्वामी अपना निष्कण्टक राज्य चाहता हूँ यही आप से मैं याचना करता हूँ ॥३४॥

एवमस्त्विति सप्रोच्य ब्रह्माऽन्तर्धानमाययो ।
प्रतदनोऽपि राजर्पि सन्तुष्ट पृथिवीपति ॥ ५
तत प्रभृति तद्राज्ये सर्वो धर्मो व्यवस्थित ।
वेदवेदाङ्गवेत्तारो ब्राह्मणा संसितव्रता ॥३६
अग्निहोत्रादि यज्ञाश्च यतयो ब्रह्मचारिण ।
शैवा नानाविधा पुण्या वैष्णवा शुभलक्षणा ॥३७
तस्य राज्ये महापुण्ये न पापण्डो न हैतुकी ।
वर्णाश्रमाचारवता क्रिया सर्वास्तदाऽभवन् ॥३८

उत्सवा विष्णुभक्तानां शिवपूजा गृहे गृहे ।
सर्वे देवान्मानयन्ति न कश्चिद्द्वेष्टि मानवः ॥३६
तर्कवेदान्तमीमांसाव्याख्यानानि गृहे गृहे ।
वेदनिर्घोषवद्राज्यं यज्ञस्तम्भाः स्थले स्थले ॥४०
अनेकभोगसंयुक्ता हृष्टाः पुष्टाः स्त्रियः सती. ।
रक्षन्ति पतयः पुण्या यथा वृद्धपुरस्कृताः ॥४१

सूतजी ने कहा—"ऐसा ही होगा"—यह कह कर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये थे । प्रतर्दन राजा भी पृथिवी पति परम सन्तुष्ट सन्तुष्ट हो गया था ॥३५॥ तब से ही आरम्भ करके उसके राज्य में सब धर्म व्यवस्थित हो गया था । सब ब्राह्मण वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता और मखित यज्ञों वाले थे । यति और ब्रह्मचारी अग्निहोत्रों को करते थे तथा यज्ञ होते थे । शैव भी अनेक प्रकार के एव पुण्यमय थे और वैष्णव शुभ लक्षणों वाले हैं ॥३३-३७॥ उसके महान पुण्य राज्य में कोई भी पाखण्डी और हेतु भी नहीं था । उस समय मे वर्णों और आश्रमो वालों की सभी क्रियाएं होती थी ॥३८॥ विष्णु के भक्तों के उत्सव होते थे तथा घर-घर मे शिव की पूजा हुआ करती थी । सभी लोग देवों को मानते थे और मनुष्य किसी से भी द्वेष नहीं किया करता था ॥३६॥ घर-घर मे तर्क-वेदान्त-मीमांसा के व्याख्यान हुआ करते थे । उसका राज्य वेदों के निर्घोष वाला था और स्थल-स्थल मे यज्ञों के स्तम्भ बने हुये थे ॥४०॥ अनेक भोगों से संयुक्त हृष्ट और पुष्ट स्त्रियाँ सब सती थीं । जिस प्रकार से वृद्ध पुरस्कृत होते हैं वैसे ही पुण्य पति लोग उनकी रक्षा किया करती हैं ॥४१॥

एवं बहुतिथे काले गते ये दैत्यदानवाः ।
पापिष्ठा हीनकर्माणो म्लेच्छाम्लेच्छा अपि दिवं गताः ॥४२
येषां तु मनति शुद्ध वेदमार्गं हि मन्यते ।
ते सर्वे नरकान्मुक्त्वा प्राप्ता एवामरावतीम् ॥४३
सर्वत्र तु नगीवृन्दं सर्वत्र हरिपूजनम् ।

बिल्वदलैस्तु सर्वत्र पूज्यते गिरिजापतिः ॥४४
कथं तेषां तु पितरो नरके निवसन्ति हि ।
तस्मिन्राज्ये समागत्य किं कुर्युर्यमकिंकराः ॥४५
शृणुध्वमृषयः सर्वे यदासीत्परमाद्भुतम् ।
स्वर्गगामिषु सर्वेषु व्यापाररहिते यमे ॥४६
पूजिताः सर्वलोकेषु सर्वे देवा बभूविरे ।
तदाऽसौ धर्मराड्गत्वा शक्रलोकं महामनाः ।
उवाच सर्वदेवानां पुरतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥४७

सूतजी ने कहा— इस प्रकार से बहुत सा काल व्यतीत हो जाने पर जो भी दैत्य दानव थे वे महा पापिष्ठ—हीन कर्मों वाले और म्लेच्छ थे वे भी स्वर्गलोक को चले गये थे ॥४२॥ जिनकी सन्तति शुद्ध थी वह वेदमणि को मानती थी। वे सब उनके पूर्वज जो नरकों में यातनाऐं भोग रहे थे वे नरकों को सन्तति के पुण्य प्रभाव से परित्याग करके ऐरावती में प्राप्त हो गये थे ॥४३॥ उस राज्य में सभी जगह तुलसी के वृक्ष लगे हुए थे तथा सर्वत्र श्रीहरि का पूजन होता था। सर्वत्र बिल्व पत्रों के द्वारा भगवान गिरिजा के पति का पूजन किया जाता था ।४४। फिर उनके पितर चाहे वे कैसे भी पापी क्यों न हों, कैसे नरकों में निवास कर सकते हैं क्योंकि उनकी सन्तति पूजा परायण थी। उसके राज्य में आकर बिचारे यम के दूत क्या करेंगे क्योंकि वहाँ ऐसा कोई था ही नहीं जिसे वे ले जाकर दण्ड देवें ।४५। सूतजी ने कहा—ऋषिगण सब श्रवण करें जो वहाँ पर परम अद्भुत हुआ था। सभी के स्वर्ग में गमन करने वाले हो जाने पर यमराज तो सर्वथा व्यापार से रहित ही हो गये थे ।४६। सब लोकों में पूजित होकर सभी देव हो गये थे। उस समय में धर्मराज महामना शक्रलोक में गया था और हाथ जोड़कर सभी देवों के सामने स्थित होकर कहने लगा था ।।४७।।

चतुरशीतिलक्षाणां जीवानां या स्थितिः सदा ॥४८
तां नष्टामधुना वेद्मि यदि देवः प्रमाणवान् ।

यस्या कीटादियोनौ य: स्थितो जीवोऽतिपापवान् ॥४९
नरके सयमिन्या वा तत्पुत्रेण स उद्धृत ।
श्राद्धदेवार्चनादीनि करोति श्रुतिनिश्चयः ॥५०
अस्माकं हीनजीवाना को विशेषो यदा श्रुतिः ।
प्रमाणयति तत्त्वेन वय देवा यदाज्ञया ॥५१
पुरोहित तव प्रजा शोभना प्रतिभाति मे ।
पूर्व चार्वाकबोद्धादिमार्गा सदर्शितास्त्वया ॥५२
तेन मार्गेण विभ्रान्ता वेदमार्गबहिष्कृता ।
दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा कुरु द्विजोत्तम ॥५३
न चार्वाको न वै बौद्धो न जैनो यवनोऽपि वा ।
कापालिक कौलिको वा तस्मिन्राज्ये विशेत्क्वचित् ॥५४
वेदा प्रमाणमित्येव मन्यमाना प्रजा शुभा ।
यथ सा चाल्यते तात न शक्य हि शुभाऽधुना ॥
विधिदत्तवरस्याह्मुच्छेत्तु शक्तिमान्कथम् ।५५।

यम ने कहा—चौरासी लाख जीवो की जो स्थिति सदा थी मैं उसको इस समय मे विनष्ट हुई ही समझता हूँ यदि वेद प्रमाण वाले हैं। जिस कीटादि योनियो मे अत्यन्त पाप वाला जो जीव स्थित रहा करता है ॥४८॥४९॥ नरक मे अथवा सयमिनी मे वह जब होता है तो वह उसके पुत्र के द्वारा ही उद्धृत कर दिया जाता है। वह श्राद्ध और देवार्चन आदि किया करता है। इसका ही ऐसा प्रभाव होता है—ऐसा श्रुति का विशेष निश्चय है ।५०। इन्द्र देव ने कहा—जब श्रुति ही ऐसा प्रतिपादन करती है तो हम जैसे हीन जीवो मे क्या विशेषता है। हम देवगण तो उसकी आज्ञा से ही तात्त्विक रूप से प्रमाण किया करते हैं ।५१। हे पुरोहित ! तुम्हारी प्रजा परम शोभना मुझे प्रतीत होती है कि आपने पूर्व मे ही चार्वाक और बौद्ध आदि मार्ग मे सदर्शित कर दिये थे ।५२। उस मार्ग मे विभ्रान्त हुए लोग वेदो के मार्ग से बहिष्कृत हो गये थे। हे द्विजोत्तम ! दैत्य और दानव सभी बाहि

करो ।५३। गुरुजी ने कहा—उसके राज्य मे चर्वाक बौद्ध जैन यवन—का पालिक-कौलिक कोई भी कहीं पर भी कभी भी प्रवेश नहीं करता है। वहाँ की परम शुभ प्रजा वेद ही प्रमाण हैं—ऐसा मानने वाली है। हे तात! वे लोग कैसे विचलित किये जा सकते है। ऐसा किया नहीं जा सकता है। वह इस समय मे सारी प्रजा परम शुभ है ।५४। विधाता के द्वारा दिये हुए वरदान को मैं उच्छेदन करने मे किस तरह से शक्तिशाली हो सकता हूँ ।५५।

दैत्याना दानवानां च दुर्दशांना भवो यदा ।५६।
तदा शुक्रः स्वय तेषा कृपया सोद्यमो भवेत् ।
तस्मात्त्व विप्रशार्दू ल कस्मादस्मानुपेक्षसे ॥५७
असाध्य तव कि मान्य वय त्वच्छरण गताः ।
अस्माकं दुर्जनाः सर्वे वेदकर्मरता कृताः ॥५८
तेषा व्यामोहनाय त्व कुरु यत्न कृपानिधे ।
देवाना रक्षना चैव दैत्याना पापकर्मणाम् ॥५६
एव ब्रुवत्सु देवेषु बृहस्पतिरुदारधी ।
उपाय चिन्तयामास सृष्टेः सरक्षणाय च ॥६०
शृण्वन्तु त्रिदशा. सर्वे ममोपाय वदाम्यहम् ।
देव: कश्चिद्यदि भवेत्कपटी वैष्णवः स्वयम् ॥६१
शङ्खचक्राङ्कितनुस्तुलसीकाष्ठभूषितः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्र च बिभ्राणो हरिनामाक्षर जपन् ॥६२
देवतामात्रनिन्दी च चकृत्वा मतिमीश्वरे ।
शिवद्वेष्टा महापापप्रेरकः शिवनिन्दक ॥६३

इन्द्र आदि ने कहा—जब दैत्यो को दानवों को और बुरी दशा वालो को भव होता है ।५६। दैत्याचार्य शुक स्वय ही कृपा करके उनके कल्याणार्थ उद्यमी होंगे। इससे हे विप्रशार्दूल! आप हमको किस कारण से उपेक्षित कर रहे हैं ।५७। हे मान्यवर! आपके लिये क्या कार्य असाध्य है। हम सब लोग आपके शरण मे प्राप्त हुए हैं। हममे जो

भी दुर्जन हैं व सब वेदमार्ग में रति रखने वाले किये गये हैं ।५८। हे कृपानिधे ! उनके व्यमोहन करने के लिए आप यत्न करिये जो भी दैत्य हैं—राक्षस हैं देव हैं और पाप कर्म करने वाले हैं उनका व्यमोहन करने का प्रयत्न करिये ।५९। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से देवों के बोलने पर उदार बुद्धि वाले बृहस्पति जी ने सृष्टि के संरक्षण के लिये कोई उपचार सोचा था ।६०। गुरुजी ने कहा—हे विद्वानों ! मेरे उपाय को आप सब लोग श्रवण कीजिये । मैं आपको बतलाता हूँ । कोई देव यदि कपटी होता है और स्वयं वैष्णवभी कपटी होता है । चाहे वह शङ्ख-चक्र से अङ्कित तनुवाला हो और तुलसी काष्ठ से भी भूषित हो—ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करने वाला हो श्रीहरि के नाम को जाप रहा हो—देवता मात्र की निन्दा करने वाला हो और ईश्वर में भक्ति न करके शिव का द्वेषी हो तो वह महा पाप का प्रेरक शिव निन्दक हुआ करता है ।६१। ते ।६३ ।

दम्भेन यदि तद्राज्ये शिवनिन्दा कृता भवेत् ।
सदा तत्पूर्वजा सर्वे नरकं यान्ति दारुणम् ॥६४

ततो देवेषु सर्वेषु न कश्चिद्वदत्तथा ।
कथयन्ति स्म चान्योन्यं नैतत्कर्मास्ति सुन्दरम् ॥६५
यश्चाण्डाल शिवं ब्रू यात्साधारण्येन विष्णुना ।
यस्य प्रसादाद्वैकुण्ठ प्राप्तवानीहृत परम् ॥६६
तत श्विनरम हृय प्रावोचेद शचीपति ।
याहि किन्नर मायावी भूत्वा त्वं वैष्णवो भुवम् ॥६७
तत्र गत्वा जनान्सर्वान्ब्रू हि कोऽस्ति शिवो महान् ।
एक एव महाविष्णुर्नाम्यो ध्येयः कदाचन ॥६८
पूर्वं प्रच्छन्नरूपेण स्थित्वा मार्गं प्रदर्शय ।
शनैः शनैर्जना एव भविष्यन्ति च हैतुकाः ॥६९
वेदं प्रमाणमिति नैव वदितव्यं त्वया क्वचित् ।
पर ईशो महाविष्णु शिवःसाम्य च किन्नर ॥७०

यदि उसके राज्य मे दम्भ से शिव की निन्दा की हुई होती है। तब उसके समस्त पूर्वज दारुण नरक मे जाया करते हैं।६४। इसके अनन्तर सब देवों मे कोई भी ऐसा नही बोलता था। वे सब अन्योन्य से कहते थे कि यह कर्म सुन्दर नही है।६५। साधारण विष्णु के समान कौन सा चाण्डाल है जो भगवान् शिव को बतलाता है। जिसके प्रसाद से वैकुण्ठ मे ऐसा पद प्राप्त किया है।६६। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर किन्नर को बुलाकर शचीपति ने कहा—हे किन्नर! तुम मायावी होकर विष्णु भगवान् की भूमि को चले जाओ।६६। वहा पहुच कर सब मनुष्यो से बोलो - महान् शिव कौन है? एक ही महा विष्णु हैं। अन्य कोई भी कभी ध्येय नही है।६८। पूर्व मे प्रच्छन्न रूप से स्थित होकर मार्ग को दिखलाओ। धीरे-धीरे जन इस प्रकार से हैतुक हो जायेंगे।६९। आपको सदा यही बोलना चाहिये कि वेद ही प्रमाण है परन्तु एक महा विष्णु ही है। शिव तो उनका किंकर ही है।७०।

प्रेरितोऽसौ बलात्तेन भीतोऽगच्छच्छनैः शनैः।
दाम्भिकं रूपमास्थाय यथा साधु वदेज्जन ॥७१
सर्ववैष्णवचिह्नानि धृत्वा भ्राम्यति तत्पुरे।
शिष्यान्करोति तत्पूर्वं वदेन्मान्यो न शङ्कर ॥७२
क्वचिद्वदति न ध्येयो न मुख्य इति च क्वचित्।
क्वचिदुत्कृष्टजीवोऽयं क्वचिच्छ्रीविष्णुकिंकरः ॥७३
इति नानाविधा बुद्धिर्नराणां भेदिता यदा।
तदा शिष्यैः परिवृतो राजगेहं विशत्यपि ॥७४
चालितो राजलोकोऽपि विरुद्धं नैव दृश्यते।
विष्णुभक्तो महाञ्शान्तो वेदवेदाङ्गपारवान् ॥७५
उपायनान्यनेकानि हयाश्च स्यन्दनान्वसु।
लोका सर्वे ददत्येव गुप्तं पापं न दृश्यते ॥७६

सूत जी ने कहा—उसके द्वारा प्रेरित हुआ वल पूर्वक वह भेजा । डरते हुए धीरे-धीरे वहाँ गया था उसने दाम्भिक स्वरूप धारण

धरके गया था। जिससे मनुष्य उसको साधु कहें।७१। समस्त वैष्णव के चिह्नों को धारण करके उसके पुर मे भ्रमण करता था। पहिले उन सबको शिष्य करता है फिर कहता है कि शङ्कर मान्य नहीं है।७२। कहीं तो यह कहता है कि शिव ध्यान करने के योग्य नहीं हैं। और वह कहीं भी मुख्य नहीं है। कहीं पर वह कहता था शिव एक उत्कृष्ट श्रेणी का जीव है और कहीं पर कहा करता था वह श्री विष्णु का किङ्कर है।७३। जब इस प्रकार से अनेक प्रकार की मनुष्यों की बुद्धि को मोहित करती थी तब वह शिष्यों से परिवृत होकर राज गृह मे भी प्रवेश करता था।७४। राज लोक भी उसने चालित कर दिया है और विरुद्ध नहीं दिखलाई देता था। विष्णु का भक्त महा वृत्तान्त और वेद-वेदाङ्ग के पार वाला था।७५। अनेक उपायन अश्व—रथ—वसु सभी लोक दिया ही करते हैं और गुप्त पाप नहीं दिखलाई देता है।७६।

एकस्मिन्समये विप्रा एकादश्यामुपोषिता।
जना प्रातश्चक्रपाणि नमस्कर्तुं गता शुभा॥७७
तत्रोपविष्ट शिष्यैः स्वैर्वृतः स्वीयेन तेजसा।
न कश्चिन्मन्यते विप्र यो भस्माङ्कितभालवान्॥७८
एतस्मिन्नन्तरे राजा प्राप्तवाश्चप्रतर्दनः।
वृतो बहुविधैर्विप्रैः कुशहस्तो शुचिव्रतैः॥७९
त्रिपुण्ड्रधारिण केचिदूर्ध्वपुण्ड्रधरास्तथा।
पठन्त शिवसूक्तानि विष्णुसूक्तानि चापरे॥८०
एतैर्बहुविधैर्विप्रैर्वृतो राजोपविश्य स।
उवाच वचन युक्त कोमलाक्षरसयुतम्॥८१
स्वामिन्नागतवान्साक्षाद्भगवान्हरिपार्षद।
वेद पठसि विष्णोश्च भक्तस्त्वद्वेपवार्यपि॥८२

सूतजी ने कहा—हे विप्रो! एक समय मे एकादशी म उपोषित मनुष्य प्रात काल को शुभ लोग चक्रपाणि को नमस्कार करने के लिये गये थे।७७। वहाँ पर बैठा हुआ वह अपने शिष्यों से परिवृत अपने तेज से

किसी भी त्रिपुको नही मानता है जो कि भस्म से अङ्कित ललाट वाला था ।७८। इसी बीच मे श्री प्रतर्दन राजा वहा पर प्राप्त हो गया था । वह राजा हाथो मे कुशा लिये हुए सुचिह्न वाले बहुत से विप्रो मे घिरा हुआ था ।७९। उनमे कुछ त्रिपुण्डधारी ने और कुछ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाले थे । वे सब शिव सूक्तो को याद कर रहे थे तथा दूसरे विष्णु सूक्तो को पढ रहे थे ।८०। इस बहुत सी तरह के विप्रों से परिवृत वह राजा वहाँ पर उपविष्ट हो गया था । फिर राजा ने कोमल अक्षरो से समन्वित युक्त वचन कहा था ।८१। हे स्वामिन् ! यह साक्षात् भगवान् का हरिपार्षद समागत हुआ है वेद का पाठ करता है विष्णु का भक्त है और उनके ही वेष को धारण करने वाला भी है ।८२।

वेद एव परं श्रेयो वेदार्थादधिक न हि ।
प्रमाण वेद एवैको विष्णुवाक्श्रु तिरेव च ।।८३।।
राजन्वेदार्थविज्ञाने बहवो मोहिता जना ।
शिवपूजारता सन्तो नानादैवतपूजका ।।८४।।
एको विष्णुर्न द्वितीयो ध्येय किं त्वितरै सुरै ।
क्रू र च क्रूरकर्माण शकर मन्यते कथम् ।।८५।।
त्वदीया ब्राह्मणा एते ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्किता शुभा ।
तान्दृष्ट्वा प्रीतिरत्यर्थं जायते नृपसत्तम ।।८६।।
एते त्रिपुण्ड्रभाला ये करुद्राक्षमालिन ।
पठन्त शिवसूक्तानि दृष्ट्वा दग्ध पतेद्दिव ।।८७।।
दर्भैर्योपग्रह कोऽय किं वा भस्माङ्गधारणम् ।
रुद्राक्षा का च को रुद्र कानि सूक्तानि तस्य च ।।८८।।
विष्णुरेक परो ध्येयो नान्यो देव कदाचन ।
तदीयायुधचिह्नानि पूज्यो वै वैष्णव सदा ।।८९।।

वैष्णवाभास ने कहा—वेद ही परमश्रेय हैं और अन्य कुछ भी अर्थ से अधिक नही है । एक वेद ही प्रमाण है । यह विष्णु का वचन तथा श्रुति है ।८३। राजन् ! वेदो के अर्थ के विज्ञान मे बहुत से

अज्ञान मोहित हो रहे हैं। कुछ शिव की पूजा में रत है और नाना देवों के पूजक हैं ।८४। एक ही विष्णु भगवान् ध्येय हैं दूसरा कोई भी ध्यान करने योग्य नहीं है। फिर इतर सुरों से क्या प्रयोजन है। महान क्रूर और क्रूर ही कर्मों के करने वाले शङ्कर को क्यों मानते हैं ॥८५॥ ये सब ऊर्ध्वों से अङ्कित आपके ही विप्र हैं जो शुभ हैं हे नृप श्रेष्ठ! उनको देखकर मुझे अत्यन्त ही प्रीति होती है। जो ये त्रिपुण्ड्र भाल वाले हैं और हाथ मे रुद्राक्ष की माला धारी हैं जो कि शिव सूक्त का पाठ कर रहे हैं उनको देखकर दिल लोक मे वज्र गिरता है ।८६।८७। धर्म का उपग्रह यह क्या है अथवा अङ्ग मे भस्म का धारण करना भी क्या हैं। रुद्राक्ष कौन है और रुद्र कौन है और उसके सूक्त क्या हैं ।८८। एक विष्णु ही परम देव है। अन्य कभी भी कोई देव है ही नहीं। उसके ये आयुधों के चिह्न हैं। अतएव वैष्णव जन सदा ही पूजने के योग्य हैं ॥८९॥

अनादिना प्रमाणेन वेदेन प्रोच्यते शिव ।
विष्णोरप्यधिको विप्र सपूज्यो न कथ भवेत् ॥९०॥
शिवादिषु पुराणेषु प्रोच्यते शङ्करो महान् ।
सर्वासु स्मृतिषु ब्रह्मञ्छिवाचारेषु सर्वत ॥९१॥
नानागमेषु पुण्येषु प्रोच्यते ह्यज ईश्वर ।
कठोर वाक्यमेतत्ते भाति चेतसि मेऽशनि ॥९२॥
नैकाग्रमनसस्ते तु येऽर्चयन्तीह धूर्जटिम् ।
श्मशानवासी दिग्वासा ब्रह्मस्तकधृग्भव ॥९३॥
सर्पहार कथ सेव्यो विषधारी जटाधर ।
तस्माद्विष्णु सदा सेव्य सुन्दर कमलापति ॥९४॥
नानारूपाणि रुद्रस्य के जानन्ति नराधमा ।
त्व वैष्णव इवाऽऽभासि वेदार्थ नैव वेत्सि रे ॥९५॥
चिन्तयित्वा ततो राजा विदुषो ब्राह्मणोत्तमान् ।
आहूय निर्णय चास्य करिष्यामीति तत्त्वत ॥९६॥

राजा ने कहा—अनादि प्रमाण वाले वेद के द्वारा भगवान् शिव कहे जाया करते हैं। हे विपुर भगवान् शिव तो विष्णु से भी अधिक पूजा के योग्य होते हैं फिर ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए।९०। शिवे आदिक पुण्यों मे भगवान् शङ्कर महान् कहे जाते हैं। सब स्मृतियों मे हे ब्रह्मन्! सभी निवासारो मे और नाना आगमो मे और पुण्यग्रन्थो मे अज ईश्वर बताये गये हैं। आपका यह वाक्य अत्यन्त ही कठोर प्रतीत होता है और मेरे चित्त म एक वज्र के समान ही आघात पहुंचा रहा है।९१।९२। वैष्णवाभास ने कहा—वे एकाण्वाप्रमन वाले नहीं है जो धूर्जटिका अर्चन किया करते हैं भव श्मशान मे निवास करने वाले—दिगम्बर (नग्न) और ब्रह्म मस्तक को धारण करने वाले है वे सर्पो का हार पहिनने वाले हैं विषधारी और जटा रखने वाले हैं ऐसे शिव का सेवन क्यों करना चाहिए। कमला के स्वामी विष्णु परम सुन्दर हैं।९३।९४। राजा ने कहा—भगवान् रुद्र के अनेक स्वरूप हैं कौन अधम नर उनको जानते हैं। तुम वैष्णव के समान हो भासित हो रहे हो किन्तु अरे! तुम वदो के अर्थ का नहीं जानते हो।९५। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर राजा ने चिन्तन करके उत्तम विप्र द्र ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि आज तात्त्विक रूप से इस बात का निर्णय मैं करूंगा।९६।

॥ कलि प्रवेशादि कथन ॥

गृह गत्वा स्थिरो भूत्वा यावदाह्वयते द्विजान्।
तावदेव कलिः पापो ब्राह्मणेषु विवेश ह ॥१॥
स निद्राजानमाश्रित्य ब्रूते ताहृगमेव हि।
अन्योन्यामर्षयोगेन खण्डयन्ति परस्परम् ॥२॥
मनोभावाश्रिता केचित्केचिद्यथार्थवादिनः।
यो यथा वक्ति तत्तादृगित्थ केचिद्योनिरे ॥३॥

इति कोलाहले वृत्ते याजचेतसि निर्णये ।
जाते लोके नास्तिकता बसव प्रतिपेदिरे ॥४॥
राजा वेत्ति महामूर्ख न तु मायाविनं द्विजम् ।
लोके तु भ्रान्तिमापन्ने राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥५॥
ईश्वरं हन्ति दुष्टात्मा वध्योऽयं मम शास्त्रत ।
परं तु लोको ब्रह्मघ्न मिथ्या मां तु वदिष्यति ॥६॥

सूतजी ने कहा—गृह में जाकर स्थिर होकर जब तक द्विजों का आह्वदन करता है तभी तक पापी कलि ने ब्राह्मणों में प्रवेश कर लिया था ।१। कोई राजा के पास आकर वैसा ही बोलता था और अन्योन्य अमर्ष के योग में परस्पर में एक दूसरे की बात का खण्डन कर रहे थे । ।२। कुछ लोग मूकीभाव का ही आश्रय लेकर स्थित थे और कुछ कुछ यथार्थ वाद के करने वाले थे । जो जैसा कहता था वह उस प्रकार का था । और कुछ इस प्रकार से कह रहे थे ।३। इस तरह से महान् कोलाहल के हो जाने पर राजा के चित्त में निर्णय के होने पर लोक में बहुत से नास्तिकता के भाव को प्राप्त हो गये थे ।४। राजा मायावी द्विज को महामूर्ख नहीं जानता है । लोक के इस प्रकार से भ्रान्ति में प्राप्त हो जाने पर राजा अत्यन्त ही चिन्ता परायण हो गया था ।५। यह दुष्टात्मा ईश्वर का हनन करता है । शास्त्र के अनुसार इसका मुझको वध कर देना चाहिए किन्तु लोक मुझको ब्राह्मण के हनन करने वाला मिथ्या ही कहेगा ।६।

एतस्मिन्समये प्राप्ते लोकपूर्वपितामहा ।
स्वर्गाभ्द्रष्ट्वा ह्यनेकानि नरकाणि प्रपेदिरे ॥७॥
रपा पुत्राश्च पौत्राश्च प्रतिपौत्रास्तथाऽपरे ।
मातामहादिवर्गाश्च सखिसबन्धिबान्धवा ॥८॥
शिवावगणनोद्भूतपातका यमलोकगा
सुकृतं भस्मतां यातं मद्यादङ्गोदकं यथा ॥९॥

एतस्मिन्नेव काले तु कमलाहृदयगम ।
सुत आक्रन्दमकरोच्छोणितौघपरिप्लुत ॥१०॥
लक्ष्मीर्दृष्ट्वाऽस्य तद्रूप विह्वल भयविह्वला ।
प्राप्ताऽऽश्चर्य महाघोर रुरोद भृश खिन्ना ॥११॥
वेदान्तवेद्य पुरुषेश्वर देवदेव
त्रैलोक्यनाथ किमिद त्वयि दृश्यतेऽद्य ।
आकारमात्ररहित पुरुष पुराण
स्त्वय्येव विश्वमिह रज्जुभुजगमात्रम् ॥१२॥
शैला पतन्ति जलधिर्मरुतामुपैति
सूर्यादयो हतरुच पृथिवी पराणु ।
भूतानि चाच्युत विभो विलय प्रयान्ति
त्वद्रोममात्रमपि नैव चलेत्क्षणार्धम् ॥१३॥

श्री सूतजी ने कहा—इस समय के प्राप्त होने पर लोक पूर्व पितामह स्वर्ग से भ्रष्ट हुए अनेकों नरकों मे प्राप्त हो गये थे ।७। जिनके पुत्र-पौत्र-प्रति पौत्र तथा दूसरे मातामह वर्ग वाले सखा सम्बन्धी और बान्धव भगवान् शिव की अवगणना से उद्भूत पातक वाले हो गये थे वे सब यमलोक मे गये थे । उनका सभी सुकृत भस्मी भूत हो गया था जैसे मद्य से गङ्गा का जल भी अपवित्र हो जाया करता है ।८।९। इसी काल म कमला का हृदय गम सुत होता हुआ शोणित के ओघ से परिप्लुत हुआ आक्रन्द करता था । लक्ष्मी ने विह्वल उस रूप को देखा तो वह भय से विह्वला हो गयी थी । उनको महान् आश्चर्य प्राप्त हो गया था और वह अत्यन्त दुखित होकर होकर रुदन करने लगी थी ।१०। ।११। लक्ष्मी देवी ने कहा—हे वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य ! हे ! के ईश्वर ! आप देवों के भी देव है । हे त्रैलोक्य के नाथ ! आज ? यह क्या दिखलाई दे रहा है । आपतो आकार मात्र से रहित पुराण पुरुष हैं । आप मे ही यह विश्व रज्जुभुजङ्ग मात्र स्थित है ।

शैल जलाधि में गिरते हैं और जलाधि अग्नि को प्राप्त होता है। सूर्य्य आदि सब क्षीण कान्ति वाले हो गये हैं—पृथिवी पराणु हो गई। हे अच्युत! हे विभो! भूत सब विलय को प्राप्त हो रहे हैं, आपका रोम मात्र भी आधे क्षण तक नहीं चलता है।१२।१३।

उक्तं त्वया तदपि नदिम तथैव किंतु
मत्स्वामिनोऽत्रगणना न हि शक्यते मे।
कृत्वाऽपि पूज्यतममूर्तिम गिरीश
नो मन्यते तदिह वञ्चमम ममैव ॥१४
सर्वात्मा सर्वशिवकर्ता वक्ता धर्ताऽव्यय प्रभु।
त्वं साक्षी सर्वलोकानां त्वत्तः परतरोऽस्ति कः ॥१५
अस्ति सर्वं वरारोहे मयि तत्तथमेव हि।
श्रीमहेश्वरालभ्य मदीयं न हि किंचन ॥१६
एकः सृजति भूतानि मत्समानि कियन्त्यपि।
तत्त्वं वेदम्यहं देवि मदीया वेचनापरे ॥१७
वेदवेदाङ्गवक्तृणां सहस्राणां प्रजन्मनाम्।
हननान्मुच्यते जीवो न तु श्रीशिवहेलनात् ॥१८
गुर्वङ्गनागमनकृत्मदा मद्यनिषेवकः।
ब्राह्मणस्वर्णहारी च कदाचिन्मुच्यते जनः ॥१९
स्त्रीघ्नो गोघ्नो नृपघ्नश्च तथा विश्वासघातकः।
कृतघ्नो नास्तिको लुब्धः कदाचिन्मुच्यते जनः ॥२०
न तु श्रीरुद्रसामान्यदर्शी मुच्येत बन्धनात्।
विरञ्चिविष्णुशक्रेभ्यः सर्वोत्कृष्टः न जायते ॥२१
विष्णुना यदि वा तुल्यं मुच्यन्ते नैव जन्तवः।
स्वामी मदीयः श्रीकण्ठस्तस्य दासोऽस्मि सर्वदा ॥२२

श्री नारायण ने कहा—हे लक्ष्मी! तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक वैसा ही है किन्तु मेरे स्वामी की अवगणना मुझ से सही नहीं जाती है। इन भगवान् गिरीश की पूज्यतम मूर्ति बाल करके भी जो इनका मान

नही किया करता है वह मुझे वज्र के ही समान आघात करने वाला होता है ॥१४॥ लक्ष्मी देवी ने कहा—आप तो सर्वात्मा है सबके ज्ञाता हैं—सबके कर्त्ता है—वक्ता—धर्त्ता—अव्यय और प्रभु हैं। आप सभी लोका के साक्षी हैं। आप से भी पर तर कौन है ? ॥१५॥ श्री नारायण ने कहा—हे वरारोहे ! सबही है मेरे विषय मे जो कुछ तुमने कहा यह सब ही तथ्य ही है। मैं ने भी महेश से ही वरदान प्राप्त किया है और मेरा अपना वास्तव मे कुछ भी नहीं है ॥१६॥ वे एक ही ऐसे शक्तिशाली महा पुरुष है जो एक अकेले ही मेरे समान कितने ही भूतो का सृजन किया करते हैं हे देवि! उस तत्व को जानता हू और जो मेरे कुछ दूसरे हैं वे जानते है ॥१७॥ वेद वेदाङ्गो के ज्ञाता सहस्रो विप्रो के दमन से जो महा पाप होता है उससे भी जीव मुक्त ही जाया करता है किन्तु श्री शिव की अवहेलना कर ने से जो पाप होता है उससे छुटकारा कभी नही होता है ॥१८॥ गुरु शय्या पर गमन करने वाला और सदा मदिरा के सेवन करने वाला और ब्राह्मण के स्वर्ण का हरण करने वाला जन भी कदाचित मुक्ति पा सकता है स्त्री का हन्ता–गौ का दमन करने वाला नृप को मारने वाला तथा विश्वास का घात करने वाला–कृत को न मानने वाला–ईश्वर की सत्ता को नही मानने वाला और तुच्छजन शायद कभी मुक्त हो सकता है किन्तु भगवान् रुद्र को सामान्य समझने वाला मनुष्य पाप के बन्धन से कभी मुक्त नही होता हे। जो यह कहते है कि शिव ब्रह्मा विष्णु इन्द्र से सर्वोत्कृष्ट नहीं है ! यदि यह भी कहे कि वे विष्णु के तुल्य ही है उस पाप से भी जन्तु मुक्त नही होते हैं। मेरे स्वामी श्रीकण्ठ हैं और म सर्वदा उनका दास ही हू ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

गच्छामस्तत्र वैकुण्ठ यत्र स्वाम्यस्ति ते विभो ।
कैलासपर्वते रम्ये प्रणमाम सदाशिवम् ॥२३
ततस्तै गरुडारूढो गत्वा कैलासपर्वतम् ।
नानाविध स्तोत्रपदै संस्तुत चक्रतु क्षणात् ॥२४
ततो ब्रह्मादयो देवा सिद्धास्तत्राऽऽगता गिरौ ।
रुद्र कौतूहलप्रेप्सु सर्वैस्तै परिवारित ॥२५

भवानीसहितस्तत्र गतो यत्र प्रतर्दन. ।
सर्वैःस्वविमानानां मध्ये तिष्ठति शङ्कर ॥२६

कथयन्तु कथं ह्यते मिलिता. सर्वनिर्जरा ।
किं कार्यं किमपूर्वं वा राजा चिन्तातुर कथम् ॥२७

श्री लक्ष्मी देवी ने कहा—हे विभो ! हे वैकुण्ठ ! चलो वहाँ पर ही गमन करो जहाँ पर आपके स्वामी विराजमान रहते हैं। परम रम्य कैलास पर्वत पर हम लोग सदा शिव प्रभु को चलकर प्रणाम करें ॥२३॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त वे दोनो गरुड पर समारूढ होकर कैलास पर्वत पर गये थे और वहाँ पर अनेक प्रकार के स्तोत्रों के द्वारा स्तवन करके क्षण भरमे ही उनको सन्तुष्ट कर दिया था ॥२४॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा आदि देव और सिद्ध गण भी उस गिरि पर वहाँ समागत हो गये थे। कौतूहल को देखने की इच्छा वाले भगवान् रुद्र देव उन सबके द्वारा परिवारित कर लिये गये थे ॥२५॥ भवानी के सहित भगवान, शम्भु वहाँ पर गये जहाँ राजा प्रतर्दन विद्यमान था। सब देवो के विमानो के मध्य मे भगवान् रुद्र विराजमान थे ॥२६॥ श्रीमहेश ने कहा—आप लोग सब बतलाइये कि किस कारण से ये सब निर्जर (देव) सम्मिलित होकर समागत हुए हैं ? ऐसा क्या कार्य है और क्या कोई अपूर्व बात है ? राजा चिन्ता मे आतुर क्यो है ? ॥२७॥

स्वामिन्प्रतर्दनो राजा विविलब्धवरोऽभवत् ।
वेदमार्गप्रवक्ता च स्वयं तस्य प्रवर्तक ॥२८

सृष्टिरक्षार्थमस्माभि कपट कृतमीश्वर ।
सर्वधातुश्च भवनो हेमन कारित सुरै. ॥२९

तस्मात्स्व महादेव निरोऽय प्रवर्तित. ।
कल्पितो दोषवान्स्माभिस्त्व निन्दापरायण. ॥३०

एतस्मिन्नेव काले तु राजा वृत्तान्तमेयिवान् ।
तीव्र खड्ग समादाय हन्तवान्किर क्रुधा ॥३१

तत्पक्षपातिनो ये च तेषां शीर्षाणि कंधरात् ।
पृथक्कृतानि पश्वाद्या हता अश्वा अनेकश ॥३२
न त वारयते कश्चिद्राजानं पुण्यचेतसम् ।
महादेवेन शमित क्रोधस्तस्य महात्मन ॥३३
ततः कोलाहले शान्ते नन्दी कौतुकपूर्वकम् ।
युयोज हयशीर्षं तच्छरीराणि पृथक्पृथक् ॥३४
शीर्षाणि हयगात्रैश्च सम्यक्संयोज्य बुद्धिमान् ।
उवाच वचनं तथ्यं देवसंसदि शुद्धगी ॥३५
येन वक्त्रेण गिरिशो हेलितस्तन्मुख हय. ।
मुद्राधारणगर्वेण हेलितस्तत्तनुर्हय. ॥३६

देवो ने कहा—हे स्वामिन ! राजा प्रतर्दन विधाता से वरदान प्राप्त करने वाला था । वह वेद के मार्ग का प्रवर्त्तक था ॥२८॥ सृष्टि की रक्षा के लिए हम सबने हे ईश्वर ! कपट किया था । सुरो ने सर्व घाता आपकी अवहेलना कराई थी ॥२६॥ हे महादेव! उसको अब आप क्षमा कर दीजिए । यह विप्रर ही उसका प्रवर्त्तक है । हमने इसको वैष्णव रूप वाला कल्पित कर दिया था यह आपकी निन्दा मे तत्पर हो गया था ॥३०॥ सूत जी ने कहा—इसी काल मे राजा ने वृत्तान्त प्राप्त कर लिया था और तीव्र खड्ग हाथ मे लेकर क्रोध से उस विप्रर को भी मार डाला था ।३१। उसके पक्षपात करने वाले जो भी उनके शीर्षों को कन्धरा से पृथक् कर दिये गये थे । पशु आदि अनेक अश्व मारे गये थे ॥३२॥उस पुण्य चित्त वाले राजा को कोई भी निवारित नही करता है उस महान् आत्मा वाले का क्रोध महादेव जी ने ही शमित किया था ॥३३॥ इसके अनन्तर कोलाहल के शान्त हो जाने पर नन्दी ने कौतुक पूर्वक हयके शीर्ष मे पृथक् २ अङ्गो को योजित कर दिया था ॥३४॥ बुद्धिमान ने शीर्षों को अश्व के गात्रो मे भली भांति संयोजित करके शुद्ध वाणी वाले देवो की संसद मे तथ्य वचन किया था । जिस मुख स

गिरिश थे और हेलित उनका मुख देय था। मुद्रा धारण के गर्व से उसके शरीर वाला हेलित हुआ था ॥३५॥३६॥

जात तदधुना तथ्य राजर्षौ राज्यकर्तरि ।
भविष्यं कथयिष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः ॥३७
घोरे कलियुगे प्राप्ते म्लेच्छव्याप्ते भुवस्तले ।
सर्वाचारपरिभ्रष्टा भविष्यन्ति नराधमाः ॥३८
तदाऽन्ध्रदेशमध्ये तु दाक्षिणात्यो भविष्यति ।
ब्राह्मणो दुर्भगः कश्चिद्विधवाब्राह्मणीरतः ॥३९
तस्य पापिष्ठविप्रस्य व्यभिचारात्सुतोऽनघ ।
भविष्यति गुणान्वेषी दैवादध्ययनात्सुकः ॥४०
पद्मपादुकमाचार्यं वरं वेदान्तवादिनम् ।
अद्वैतागमबोद्धारं प्रणम्य प्रार्थयिष्यति ॥४१
विप्रोऽहं मधुशर्माऽस्मि स्वामिन्मां पाठय प्रभो ।
वेदान्तशास्त्रसर्वं च मह्यं पाठय भो गुरो ॥४२

श्री ब्रह्माजी ने कहा था—जो राज्य कर्त्ता राजर्षि के विषय में औचित्य का वह अब तक बता दिया गया है। आगे जो भविष्य है उसका वर्णन करूँगा। आप लोग परम सावधान होकर उसका श्रवण करिए ॥३७॥ घोर कलियुग के प्राप्त होने पर इस भूमण्डल के म्लेच्छों के द्वारा व्याप्त हो जाने पर अधम नर सभी प्रकार के अच्छे आचरणों से परिभ्रष्ट हो जाएँगे ॥३८॥ उस समय में आन्ध्र देश के मध्य में दाक्षिणात्य होगा। कोई दुर्भग ब्राह्मण विधवा ब्राह्मणी में रति रखने वाला होगा। उस महान् पापिष्ठ विप्र का व्यभिचार से अनघ पुत्र होगा जो गुणों का अन्वेषण करने वाला और दैव वश अध्ययन करने में समुत्सुक होगा ॥३९॥४०॥ वह परम श्रेष्ठ-वेदान्त का वादी पद्मपादुक आचार्य को जो अद्वैतागम को उद्धारक है प्रणाम करके प्रार्थना करेगा ॥४१॥ हे स्वामिन्! हे प्रभो! मैं मधु शर्मा नाम वाला विप्र हूँ। हे गुरुवर! सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र मुझको आप पढ़ाइये ॥४२॥

आचार्य करुणामूर्तिर्विनियेन परिप्लुतम् ।
करिष्यति च शिष्याणामग्रण्यं प्रेमवत्सलः ॥४३
ततो दिने दिने भक्तिं करिष्यति यथा यथा ।
गुरुर्भवति सन्तुष्टः सर्वां विद्यां प्रयच्छति ॥४४
एकदा गुरुणा दृष्टः स्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः ।
अकृत्वा भोजनप्रेप्सुर्भविष्यति निराह्निकः ॥४५
पृष्टोऽसौ गुरुणा तथ्यं गोलको हि वदिष्यति ।
धर्मः साधारणो नाथ कृतोऽयं केन कुप्यसि ॥४६
ततो वक्ष्यत्यथाऽऽचार्यः कस्ते तात प्रसूश्च का ।
ततो मे ब्राह्मणः स्वामिन्ब्राह्मणी च प्रसूर्मम ॥४७
वद मातामहः कस्ते येन प्राप्ता प्रसूस्तव ।
को विधिः कुत्र वा दत्ता तथ्यं शीघ्रं वदान्यथा ॥४८
भस्मसात्त्वां करिष्यामि हीनं ब्राह्मणवर्चसा ।
इत्येवं कथिते सर्वं कथयिष्यति तत्त्वतः ॥४९

प्रेम वत्सल आचार्य करुणा की मूर्त्ति थे विनय से परिप्लुत उसको शिष्यों में सबका अग्रणी उसको कर देंगे ॥४३॥ इसके पश्चात् दिन-दिन में जैसे २ वह भक्तिभाव करेगा गुरुदेव परम सन्तुष्ट होकर अपनी विद्या उसको दे देते हैं ॥४४॥ एक बार गुरुवर ने उसको देखा था कि वह स्नान-सन्ध्योपासना आदि कुछ भी क्रिया न करके ही निराह्निक वह भोजन का प्रेप्सु हो जायगा ॥४५॥ गुरु जी ने उससे यथार्थ बात पूछी थी तो वह गोलक कहेगा । हे नाथ ! धर्म तो साधारण है वह कर लिया गया है फिर किस कारण से कुपित हो रहे हैं ॥४६॥ इसके पश्चात् आचार्य उससे कहेंगे—तेरी माता कौन है और तेरा पिता कौन है । इसके अनन्तर उसने कहा था—हे स्वामिन ! मेरे तात ब्राह्मण थे और मेरी माता भी ब्राह्मणी थी । फिर गुरुजी ने पूछा था—तेरा माता-मह कौन था जिससे तेरी माता प्राप्त हुई थी ? क्या विधि से विवाह हुआ था । वहां पर उसको दिया गया था—यह सब तथ्य ठीक २

बतलाओ अन्यथा अर्थात् सही–सही न बतलाने पर मैं तुमको भस्म कर दूंगा क्योंकि तू ब्राह्मण के वर्चस् से हीन है। इस प्रकार से कहने पर वह सब बुद्ध तात्त्विक रूप से कह देगा ॥४९॥

शाप दास्यत्यथाऽऽचार्य सिद्धान्तो मा स्फुरत्वलम् ।
सिद्धान्ते जडता तेऽस्तु परमद्वैतदर्शने ॥५०
कथं त्वदीया सेवा मे निष्फला स्याद्वद प्रभो ।
इत्यादिबहुनिर्वेदं यदा त्वेष करिष्यति ॥५१
पश्चाद्वदिष्यति स्वामी पूर्वपक्षोऽस्तु ते दृढः ।
सिद्धान्ते सर्वथैवाऽऽस्य मम वाक्यं न चान्यथा ॥५२
मधुना तेन शास्त्राणां पूर्वपक्षो विलोकितः ।
भविष्यति च वेदान्तमन्यथा वक्तुमुद्यतः ॥५३
यथा यथा कलेर्वा प्रचारः सम्भविष्यति ।
तथा तथाऽमुष्माग शिवद्वेष्टुर्भविष्यति ॥५४
पूर्वं तु द्राविडाद्देशात्कर्णाटकतिलङ्गयो ।
कालेर्गोदावरीतीरे प्रसृतोऽयं भविष्यति ॥५५
पूर्णे कलियुगे प्राप्त आर्यावर्ते चलिष्यति ।
मायावादमसच्छास्त्रं वदिष्यन्ति नराधमाः ॥५६

इसके अनन्तर वह आचार्य शाप दे देंगे यह शास्त्र जो तूने पढ़ लिया है उसका सिद्धान्त तुमको पूर्ण रूप से स्फुरित न ही होगा। परम द्वैत दर्शन में सिद्धान्त में तुझे जड़ता होवेगी ॥५०॥ जब यह शिष्य जिस समय में प्रार्थना करेगा कि हे प्रभो ! आपकी इतने दिन तक की हुई मेरी सेवा निष्फल कैसे हो जायगी— यह तो आप मुझे बतला दीजिए। इत्यादि प्रकार का बहुत-सा निर्वेद करेगा तो पीछे स्वामी पीछे कहेंगे कि तेरा पूर्व पक्ष तो सुदृढ़ रहेगा परन्तु सिद्धान्त में अल्पता ही रहेगी क्योंकि मेरे मुख से निकला हुआ वाक्य अन्यथा नहीं होगा। अर्थात् जो शाप मैंने दे दिया है वह असत्य नहीं होगा ॥५१॥५२॥ उस मधु ने शास्त्रों का पूर्व पक्ष देखा था और वेदान्त को अन्यथा करने के लिये

वह उद्यत हो जायगा ॥५३॥ हे देवो ! जैसे जैसे कलिका प्रचार होगा वैसे वैसे ही यह शिव के द्वेष्टा का उन्मर्ष होगा ॥५४॥ सब से पूर्व मे यह द्रविड देश मे होगा और वहा से फिर यह कर्णाटक और कलिङ्ग देशों म होगा तथा शनै शनै गोदावरी ने तट पर यह प्रसून हो जायगा ॥५५॥ कलियुग के पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाने पर यह आर्यावर्त्त मे चलेगा । अधम नर मायावाद असत् शास्त्र को ही बोला करेंगे ॥५६॥

तेषा दर्शनमात्रेण सचैल स्नानमाचरेत् ।
भद्रात्व च यथा विष्टे राहो स्वर्भानुना यथा ॥५७
हरित्व च यथाऽनेके तथैते तत्त्ववादिन ।
योगनिन्दापरा नित्यमग्निहोत्रस्य निन्दका ॥५८
वेदान्तसममित्याहु पुराणानि च ये नरा ।
केवल वेषमात्रेण नरा नरकगामिण ॥५९
सभापर्णे कृते येषा पतेच्च ब्रह्मवचरा ।
वर बौद्धस्तथा जैन कापालिकमतोऽपि वा ॥६०
व्यक्त वदति वेदानामप्रामाण्य तु तैः किमु ।
वेदप्रामाण्यवक्तृत्वाऽभिमानी न च वैदिक ॥६१
ईश्वर वचनाद्भक्ति पर चानीश्वर खल ।
एव जाते तत्र सर्वे यथागतमितो गता ।
प्रतर्दनोऽपि राजर्षि कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥६२
देहान्ते मुक्तिमापन्न परामद्वैतलक्षणाम् ।
तत पर भविष्यन्ति तस्य शिष्या अवश ॥६३

उनके अर्थात् ऐसे अधम मनुष्यो के दर्शन मात्र से ही वस्त्रो के सहित स्नान करना चाहिए अर्थात् दर्शन करने के समय मे जो भी वस्त्र पहिने हुए हो उन सबके ही सहित स्नान करे । विष्टि की जैसी भद्रात्व होती है और राहु को स्वर्भानुता होती है वैसे ही हरित्व है इस प्रकार से अनेक तत्त्ववादी लोग नरकगामी केवल वेष ही वाले नित्य योग निन्दा मे परायण होंगे तथा नित्य ही अग्निहोत्र की निन्दा करने वाले हो जायगे

॥५७। ५८॥ जो नर पुराणों को वेदान्त-शास्त्र के ही समान कहते है वे केवल वेष मात्र से ही नर हैं और नरकों मे गमन करने वाले होते हैं ॥५९॥ जिनके साथ सम्भषाण करने से ही मनुष्य ब्रह्म व संत से पतित हो जाया करता है। इनसे अच्छा तो बौद्ध—जैन अथवा कापालिक ही माना गया है। तात्पर्य यह है कि यह तो बौद्धादि से ही गया बीता है ॥६०॥ जो खुल तौर पर वेदों का अप्रामाण्य कहता है उनमे क्या है। यह अभिमान ही रखने वाला है और वास्तव में वैदिक नही है यह वेदा को प्रामाण्य की तरह कहा करता है। यह ईश्वर को वचन से ही कहता है और खल स्वय अनीश्वर अर्थात् ईश्वर का नहीं मानने वाला होता है ॥६१॥ श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार स होन पर सब जहां से आये थे चले गये थे। राजर्षि प्रतर्दन भी अपने राज्य को निष्कण्टक बनाकर उसका भोग करता था। जब उसके देह का अन्त हो गया तो वह उसी समय म पर अद्वैत लक्षणों वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था। इसमे पश्चात उसके अनेक शिष्य हुगे ॥६२॥६३॥

> गन्यासिवेषमात्रेण कुर्वाणा जीविका निजाम् ।
> राजसेवा प्रकुर्वाणा प्रच्छन्ना कौलिका अपि ॥६४
> अगम्यागमने सक्ता अभक्ष्यस्य च भक्षणे ।
> अपेयनिरता केचिन्नानाभोगसमाकुला ॥६५
> यानारुढा सदा राजसेवाया तत्परा अपि ।
> अद्वैतनिन्दानिरता प्रच्छन्नग्रन्थगौरवा ॥६६
> अन्यदर्शनसिद्धान्त नैव जानन्ति तत्त्वत ।
> तस्य दोषस्य बुद्धया वै पठिष्यन्ति कलौ युगे ॥६७
> अन्यदैवतमानानि यदि हेयानि तत्त्वयम् ।
> वेद पठन्ति पापिष्ठाः स्वय तक वदन्ति हि ॥६८
> मीमासान्यायग्रन्थानालोक्य च पुन पुन ।
> पूर्वपक्ष च सर्वेषा प्रदीप्यन्ति गग गरा. ॥६९

स्वकीय न वदिष्यन्ति यतो नास्ति प्रमाकरम् ।
हसान्परमहसाश्च निन्दिष्यन्ति च जारजाः ।।७

केवल सन्यासियो के वेष मात्र से यह रहा करते है और अपनी जीविका किया करते है । ये राज सेवा करने वाले प्रच्छन्न कौतिक भी होते हैं ।।:४।। ये सब जो गमन करने के योग्य स्त्री नही है उसमें भी आसक्त रहते हैं और अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने मे निरत रहा करते हैं । जो पेय पदार्थ नही है उसका पान किया करते हैं और कुछ तो अनेक प्रकार के भोगो मे सलग्न रहा करते हैं ।।६५।। ये सदा यानो मे समारूढ रहकर भ्रमण किया करते है तथा राज--सेवा मे भी तत्पर रहते हैं । ये अद्वैत वाद की सदा निन्दा करने मे ही निरत रहते हैं और छिपे हुए ग्रन्थो को गौरव वाले होते हैं ।।६६।। ये लोग अन्य दर्शनो के तात्विक रूप से नही जानते हैं । इनमे केवल दोष देखने की ही बुद्धि से कलियुग मे पढा करेंगे ।।६७।। अन्य देवों के नाम यदि देय ही हैं तो क्यो पापिष्ठ लोग वेद को पढते हैं और क्यो तर्क को करा करते हैं ? ।।६८।। मीमांसा शास्त्र के सह ग्रन्थो को देखकर वारम्बार सबके पूर्व पक्षों को ही ग्रहण भत्सरता के साथ करेंगे ।।६६।। और अपना सिद्धान्त कुछ भी नही बतायेगे क्योंकि प्रमा के करने वाला ज्ञात हो उन्हें नही होता है । ये जार से समुत्पन्न हुए लोग हसो की निन्दा करेंगे ।।७०।।

जातमात्र नर कश्चिन्मुण्डयित्वा मठाधिपम् ।
काषायवस्त्रमात्रेण करिष्यन्ति नराधमा. ।।७१
माठापत्य च सेवा च धनसग्रह एव च ।
दासीगमनमीर्ष्या च पक्षपा तत्त्ववादिन. ।।७२
ससारस्सत्त्वमित्येव पर ते तत्त्ववादिन. ।
मायाविलसित विदवामिति मायैकवादिनः ।।७३
शुद्ध तत्त्व न जानन्ति शिव तत्त्व वदन्ति च ।
शब्दमात्रेण ते जाताः कलौ हा तत्त्ववादिन. ।।७४

भविष्यति यदा विप्रा पापाना प्रभव कलौ ।
तथा तथा भविष्यन्ति ह्यदीच्या दम्भवैष्णवा ॥७५
शिवसामान्यवक्तारं शिवसामान्यदर्शिनम् ।
दृष्ट्वा स्नायात्सचैलः सच्छिवसामान्यसाङ्कनम् ॥७६
मधुदर्शितमार्गेण पापिष्ठा वैष्णवाः कलौ ।
भावष्यन्ति ततो म्लेच्छाः शूद्रा यूथवहिष्कृता ॥७७
तस्माच्छृणुध्व विप्रेन्द्रा माहात्म्य पार्वतीपते ।
भक्ति तस्य सदा कर्तुमुद्यता भवत ध्रुवम् ॥७८

आतमात्र किसी मनुष्य को मुण्डित कराकर अधम मनुष्य कापाय वस्त्र मात्र पहिनाकर उसको मठ का स्वामी कर दिया करेंगे ।७१। मठ का अधिपति बनना—सेवा करना धन का संग्रह करना दासियों का गमन करना और ईर्ष्या की भावना रखना—ये ही वे पाँच प्रकार के तत्वों के वादी होते हैं ।७२। यह संसार ही परम तत्त्व है—ऐसा ही ये तत्त्ववादी कहा करते हैं अर्थात् समझते हैं। यह माया का ही विलास है ऐसा माया के ही वादी कहा करते हैं ।७३। ये सब लोग शुद्ध तत्त्व को तो बिल्कुल भी जानते नहीं हैं और इस विषय को ही सत्य कहा करते हैं। ये लोग शब्द मात्र से ही उत्पन्न हुए हैं। कलियुग में हा ! बड़े खेद की बात है कि ये लोग तत्त्ववादी बने हुए हैं ।७४। हे विप्रो ! जिस समय में कलियुग में पापों की उत्पत्ति होगी तो वैसे-वैसे ही उत्तर में दम्भ के द्वारा अपना आडम्बर बनाये हुए वैष्णव हो जायेंगे ।७५। भगवान् शिव को एक सामान्य देव बोलने वाले पुरुष को भगवान् शम्भु को साधारण देव देखने वाले मनुष्य को तथा सदाशिव को सामान्य कहने वाले के सत्नों को देखकर भी वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए ।७६। मधु के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से कलियुग में वैष्णव महान् पापिष्ठ हो जायेंगे। इसके बाद म्लेच्छ-शूद्र और यूथ से बहिष्कृत होंगे ।७७। इसलिए हे विप्रेन्द्रो ! पार्वती के पति का महात्म्य

महेश के ही दास हैं और उन्हीं की अनुकम्पा से युक्त हैं ।५। यथार्थ रूप से श्रुति स्मृति और पुराणों का यही सिद्धान्त है । इन्द्र और उपेन्द्र आदि सब भगवान् महेश के ही किङ्कर हैं ।६। वेदान्त के द्वारा जानने योग्य पार्वती रमण ईशान को जो जानता है वही वैकुण्ठ समस्त देह धारियों के दुःख का हनन करने वाला है ।७।

वैकुण्ठ मन्यते सम्यगीशानं स पुरन्दर ।
य इन्द्रं मन्यते सर्वस्वामिनं स ऋषिर्मतः ॥८॥
स्वर्गलोकं समाप्नोति मुन्याज्ञाप्रतिपालकः ।
अद्वैतं शिवमीशानमज्ञात्वा नैव मुच्यते ॥९॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते श्रीशङ्करपराङ्मुखाः ।
भविष्यन्ति नरास्तथ्यमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥१०॥
रुद्रक्रोधाग्निनिर्दग्धे मन्मथे तस्य भार्यया ।
रत्या विलपिते तस्य सखायोऽप्यतिदुःखिताः ॥११॥
वसन्तादय आगत्य तामूचुः किं विधीयते ।
सर्वलोकेशितुः शम्भोर्वराका गौरवा(का)रणः ॥१२॥
मन्येत घातकः सर्वलोकैकपूज्यो भवेदयम् ।
तथा निघ्नः प्रवर्तेयो येन केनापि हेतुना ॥१३॥
अभ्यापारीतिर्वक्तव्या न चलेद्यदि चिन्तनः ।
तेन मे दुःखशान्तिः स्यात्किंचिन्मात्रं न चान्यथा ॥१४॥

जो पुरन्दर ईशान को सम्यक् वैकुण्ठ मानता है । जो सबके स्वामी इन्द्र को मानता है वह ऋषि माना गया है ।८। मुनि की आज्ञा का प्रतिपालक स्वर्गलोक को भलीभाँति प्राप्त कर लेता है । अद्वैत ईशान भगवान् शिव का ज्ञान न प्राप्त करके कभी भी मुक्त नहीं होता है ।९। अत्यन्त घोर कलियुग के प्राप्त होने पर नर भगवान् शङ्कर से पराङ्मुख हो जायेंगे—इस तथ्य अर्थात् यथार्थ कथन को द्वैपायन मुनि ने बताया है ।१०। रुद्रदेव की क्रोध रूपी अग्नि से कामदेव के निर्दग्ध हो जाने पर उसकी भार्या रति के द्वारा अत्यन्त विलाप करने पर उसके सखा गण भी अत्यन्त दुःखित हो गए थे ।११। वसन्त आदि ने आकर

उस रति से कहा था क्या करना चाहिए। समस्त लोकों के स्वामी शम्भु से वैर का वारण करने में हम सब लोग विचारे क्या है अर्थात् तुच्छ हैं और कुछ भी नहीं कर सकते हैं।१२। रति ने कहा—लोक में यह सबके द्वारा अपूज्य हो जावे और घातक माने जावे—जिस किसी भी हेतु में उस प्रकार का ही विघ्न करना चाहिए।१३। यदि कुछ भी नहीं चलता है तो इनकी अपकीर्ति तो अवश्य ही कहनी चाहिए। इससे ही मेरे हृदय के दुःख की शान्ति किंचिन्मात्र हो जायेगी अन्यथा नहीं होगी।१४।

चतुर्दशसु विद्यासु गीयते चन्द्रशेखर ।
वेदान्ता य च गायन्ति मुनय शसितव्रता ॥१५॥
ब्रह्माद्या देवता सर्वा इन्द्रोपेन्द्रादयस्तथा ।
न्यूनता तस्य यो ब्रूते कर्मचाण्डाल उच्यते ॥१६॥
तेन तुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मा वा यदि गद्यते ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठाया जायते कृमि ॥१७॥
तुल्यता यदि नो शक्या न्यूनतायास्तु का कथा ।
मित्रस्याऽऽनृण्यमिच्छाम सकट प्रतिभाति न ॥१८॥
विचार्येव तदा सर्वे महामोहपुर सरा ।
तपस्तेपुर्महारौद्र सर्वलोकभयकरम् ॥१९॥
कदाचिद्भगवान्ब्रह्मा प्रादुरासीद्दयानिधि ।
मोहो दम्भस्तथा क्रोधो लोभस्ते सेवका कले ॥२०॥
पञ्चमो हेतुवादश्च मघुना सर्व आश्रिता ।
तानुवाच ततो ब्रह्मा वृणीध्व मनसेप्सितम् ॥
मया वाणी च भवता तथाऽह दातुमुद्यत ॥२१

वसन्त आदि ने कहा—चौदहों विद्याओं में भगवान् चन्द्र शेखर गाये जाते हैं। जिनको वेदान्त गान किया करते हैं और शंसित व्रत वाले मुनिगण गाते हैं। ब्रह्मा आदि समस्त देवता तथा इन्द्र उपेन्द्र आदि सब में जो भी शङ्कर भगवान् की न्यूनता बोलता है वह कर्म

चाण्डाल ही कहा जाया करता है ।१५।१६। उनके तुल्य ब्रह्म जन को कभी विष्णु कहे जाते हैं वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा में क्रीडा होकर निवास किया करता है ।१७। जब उनकी तुल्यता ही नहीं बतलायी जा सकती हैं तो फिर उनकी न्यूनता बताने की बात कुछ भी हो ही नहीं सकती है। हम मित्र का आनृण्य चाहते हैं। हमको बड़ा सङ्कट प्रतीत हो रहा है ।१८। सूतजी ने कहा—उस समय में सबने इस तरह से विचार करके महामोह में आगे बढ़े हुए सब महा रौद्र और सब लोकों को महान् भय करने वाला महान् रौद्र तप किया था ।१९। किसी समय में दया के निधि भगवान् ब्रह्माजी प्रादुर्भूत हुए थे। कलि ने मोह-दम्भ-क्रोध-लोभ ये ही सब सेवक थे ।२०। पाँचवा हेतु वाद था। ये सब मधु के द्वारा ही समाश्रित थे। उन सबसे ब्रह्माजी ने कहा था आप सब मन का अभीष्ट वरदान माँग लो। जैसी वाणी आपकी होगी वैसा ही मैं देने को उद्यत हूँ ।२१।

अस्माकं परमं मित्रं कन्दर्पो नाशितः प्रभो ॥२२॥
महादेवेन तेनास्मो आनृण्यं कर्तुमुद्यता ।
भविष्यामो वयं तात रुद्रपूजाभिनिन्दका ॥२३॥
यथा न लभते पूजामस्मत्तश्चन्द्रशेखरः ।
अधुना न भवेदेव भविष्यत्यथ तच्चिरम् ॥२४॥
भविष्याम इति प्रोक्तं भवत्तो नान्यथा क्वचित् ।
ये भवद्वशगा लोकास्तेभ्यः पूजा न धूर्जटे ॥२५॥
प्रार्थितोऽयं वरो दत्तो यथेष्टं कर्तुमर्हथ ॥२६॥
इत्युक्त्वा तानथो ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वे ते मन्त्रयाचक्रु रनिना सह दु गिता ॥२७॥

मोह आदि ने कहा—हे प्रभो ! हम सबका परम मित्र कन्दर्प का महादेवजी ने विनाश कर दिया है। उनसे हम सब आनृण्य करने के लिये उद्यत हैं। हे तात ! हम रुद्र देवकी पूजा के विशेष निन्दा करने के लिये प्रस्तुत होना चाहेंगे। हे तात ! निन्दक होने का ही वरदान

दीजिए।२२।२३। हम ऐसा ही चाहते है कि चन्द्रशेखर हमसे पूजा प्राप्त नहीं करें। ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार की बात इस समय में तो नहीं होगी-हाँ, यह लम्बे समय के पश्चात् हो जायगी। आप लोगों ने यही कहा था कि "हो जायेंगे" अन्यथा कभी भी नहीं है। जो आप जैसे मनुष्य है उनसे ही धूर्जटि प्रभु की पूजा न होगी।२४।२५। यह तुम्हारा माँगा हुआ वरदान दे दिया है। अब आप यथेष्ट करने के योग्य है।२६। सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने यह इतना ही उनसे कहा था और वे वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। उन सबने कलि के साथ मन्त्रणा अत्यन्त दुःखित होते हुए की थी।२७।

भवद्भिरधुना नोक्तं भविष्याम इतीरितम्।
ततो मत्समये प्राप्ते सर्वमेव भविष्यति ॥२८॥
अस्मत्त इति यत्प्रोक्तं तेन चास्मद्वशे स्थिता।
निन्दाकरा भविष्यन्ति नारमान्यो मन्यते न स ॥२९॥
लोभमोहादिसयुक्ता प्राप्ते च मयि दारुणे।
हेतुवाद पुरस्कृत्य शिवभक्ति पराङ्मुखा ॥३०॥
तत कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते।
म्लेच्छैर्ब्राह्मणधेनूना विध्वसनकरे खरे ॥३१॥
अस्वाध्यायवषट्कारे जैनबौद्धादिसकुले।
ब्राह्मणे म्लेच्छमार्गस्थे शूद्रे ब्राह्मणघातिनि ॥३२॥
तदा वसन्त कर्णाटतिलङ्गादिकदूषक।
मधुनामा च विधवाक्षेत्रे विप्राद्भविष्यति ॥३३॥
गोलक स तु पापिष्ठ पद्मपादुकमीश्वरम्।
वेदान्तव्याख्यानरत शिष्यत्वेनार्चयिष्यति ॥३४॥
शास्त्र पूर्ण ततोऽधीत्य स्थित आह्निकवर्जित।
किमग्निहोत्र को यागो हेतुमेव करिष्यति ॥३५॥
गुरुराकर्ण्य तद्वाक्य ब्राह्मणो न भवेदयम्।
इति निश्चित्य त दुष्ट वक्ष्यति श्रुततद्वचा ॥३६॥

मधुनामा तत प्राप्य शाप त दुष्टबुद्धिमान् ।
वादरायणसूत्राणा व्याख्यान स करिष्यति ॥४०॥
मध्वाचार्यस्तो भावाद्दाक्षिणात्यो महान्कलौ ।
तच्छिष्या प्रतिशिष्याश्च नाऽऽर्यावर्ते न चोत्कले ॥४१॥
न गौडे न च गङ्गायास्तीरे गोदावरीतटे ।
नार्बुदारण्यमध्ये च तत्प्रचारो भविष्यति ॥४२॥
यथा यथा कलेर्घोरे प्रचारो हि भविष्यति ।
तथा तथा महाराष्ट्रे हैतुका विरला क्वचित् ॥४३॥

श्री गुरू ने कहा—तुम दुष्ट ने कपट से शास्त्र मुझसे पढा है अत तुम्हे सिद्धान्त की मर्यादा स्फुरित न होगी तुमें सिद्धान्त मे तो अन्धता रहेगी तथा पूर्व पक्ष मे चतुरता होगी। ऐसा ही होगा मगर तेरे शिष्य पापी ही होंगे। मोह से वे सिद्धान्त से हीन होंगे और लोभ के कारण वे नृप के सेवक बनेंगे। क्रोध से क्रूर बोलने वाले—दम्भ से वेष मे सुन्दर दिखाई देने वाले होंगे।३७।३८। हेतु वाद से वे सब शास्त्रों को भी नही जानते है। ये लोग शीघ्र या देर मे घोर नरकों मे ही गमन करेंगे।३९। श्री सूतजी ने कहा—दुष्ट बुद्धि वाला मधुनाम धारी यहाँ स उस शाप को प्राप्त करके वह बादरायण सूत्रों की व्याख्यान करेगा।४०। इसके पश्चात् भाव मे मध्वाचार्य महान् दाक्षिणात्य कलियुग मे हुए थे और उनके शिष्य प्रशिष्य आर्यावर्त और उत्कल म नही है।४१। गौड देश गङ्गा के तीर पर-गोदावरी के तट पर-अर्बुदारण्य के मध्य मे उनका प्रचार नहीं होगा।४२। जैसे कलियुग का घोर प्रचार होगा वैसे २ ही महाराष्ट्र मे कहीं पर विरले ही हेतुक होवें।४३।

ततोऽतिदुष्टसमये महाम्लेच्छैर्म्तिरस्कृते ।
प्रच्छन्न शुत्रनिवासी प्रचार हि करिष्यति ॥४४॥
पश्चवर्षस्तु सन्यासी पठित्वा दुष्टबुद्धिमान् ।
शिष्योपशिष्यसंयुक्तो हेतुवाद करिष्यति ॥४५॥

तत्त्वं संसार इत्येव न बाध्यं सत्य एव हि।
यदन्यत्तत्त्ववादी मिथ्यावादी स उच्यते ॥४६॥
मिथ्याभूत प्रपञ्चोऽयं मया निर्मित इष्यते ।
मायावादिन इत्येते वस्तुतस्तत्त्ववादिनः ॥४७॥
सच्छास्त्रं जैमिनीयं तु कर्मकाण्डप्रवर्तकम् ।
गौतमीयं तु सच्छास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥४८॥
पुरुषप्रकृत्योर्विवेकस्य बोधकं कापिलं मतम् ।
तथा वैशेषिकं शास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥४९॥

इसके उपरान्त अत्यन्त दुष्ट समय में जो महापापियों से निरङ्कुश था पृथ्वी पर प्रच्छन्न पापी प्रचार को करता ।४४। पाँच वर्ष का सन्यासी होकर दुष्ट बुद्धि वाला शिष्यों और उपशिष्यों से संयुत होकर हेतुवाद का करता ।४५। संसार यही तत्व है—यह बाध्य नहीं है प्रमुख सत्य ही है—अतएव वादी ऐसा कहता है और मिथ्यावादी यह कहा जाया करता है ।४६। यह प्रपंच मिथ्याभूत है मेरे द्वारा ही निर्मित किया गया है—ऐसा इष्ट होता है । ये मायावादी हैं और वास्तव में तत्व-वादी हैं ।४७। सत् शास्त्र जैमिनि रचित ही है जो कर्मकाण्ड में प्रवृत्त करने वाला है । गौतम द्वारा रचित भी सत् शास्त्र है जो ईश्वर का प्रतिपादक है ।४८। पुरुष और प्रकृति का बोध कराने वाला कपिल द्वारा रचित सांख्य शास्त्र माना गया है उसी भाँति वैशेषिक शास्त्र भी है जो ईश्वर का प्रतिपादक शास्त्र होता है ।४९।

मन्यन्ते श्रीमहेशान सर्वाण्यव परात्परम् ॥५३॥
पापिष्ठा नैव मन्यन्ते वेदमार्गबहिष्कृता ।
आचार्यं मधुनामान वदन्तो विधवासुतम् ॥५४॥
प्रच्छन्नोऽसौ महादुष्टश्चार्वाको मधुसज्ञक ।
भविष्यति कलौ विप्रा शिवनिन्दाप्रवर्तक ॥५५॥
मोहात्सिद्धान्तवाह्यत्व क्रोधाच्छम्त्रनिषेधनम् ।
लोभेन नृपते सेवा दम्भादन्यप्रतारणम् । ५६॥
गणिकामैथुन कामाद्धेतुवादेन वादिता ।
भविष्यति कलौ विप्रा पोढेय तत्त्ववादिता ॥५७॥

पातञ्जल योग शास्त्र है जिसकी रचना पतञ्जलि महर्षि ने की है। यह शास्त्र शैवशास्त्र अभीष्ट होता है। वेदान्त शास्त्र तो मूर्धन्य शास्त्र होता है अर्थात् सबमे शिरोमणि शास्त्र है जो अद्वैत का बोध कराता है ।५०। सब अर्थात् चारो वेद (ऋग-यजु साम-अथर्व) इन वेदो के छै अङ्ग शास्त्र व्याकरण-छन्द-ज्योतिष-शिक्षा आदि हैं। पुराण और इति छ शास्त्र हैं। स्मृतियाँ-उपस्मृतियाँ-उपपुराण ये सब शुभ हैं। सर्व विद्याओं का अन्यान्य अधिकार से प्रामाण्य होता है। सबमे ही पुरार्थों मे तात्पर्य बताते हैं ।५१।५२। कही पर कुछ विरोध होने पर भी तात्त्विक रूप से शास्त्रो मे परस्पर कोई विरोध नहीं है। ये सभी शास्त्र महेश देव को पर से भी पर मानते हैं। जो पापिष्ठ है और वेद शास्त्र के मार्ग से बहिष्कृत हैं वे ही मानते है। मधुनाम धारी का जो एक विधवा का सुत है आचार्य बतलाने वाले ही घोर पापिष्ठ हैं ।५३। ।५४। यह मधु सज्ञा वाला महान् दुष्ट प्रच्छन्न चार्वाक मतानुयायी है। हे विप्रो ! यह कलियुग मे शिव की निन्दा करने मे प्रवृत्त होने वाला होगा ।५५। मोह से ही शास्त्रो से वाह्य न है और क्रोध से शास्त्र-निषेध है। लोभ से नृपति की सेवा है तथा दम्भ से दूसरे का प्रतारण करना होता है ।५६। काम वासना से गणिका के साथ मैथुन करता है हेतु-वाद से वादिता होगी ॥५७॥

पञ्चवर्ष यतिं कृत्वा क्रमेणाऽऽदाय वालकम् ।
माठापत्य विधास्यन्ति द्रव्यलोभेन नास्तिका ॥५८॥
पारम्पर्य मठस्यैव रक्षिष्यन्त्यभिरागिण ।
भोगासक्ताश्च पापिष्ठा दासीगमनकारिण ॥५९॥
नाम्ना संन्यासिनस्तीर्थे यानारूढा ससेवका ।
नरवाहनमारूढा शिखासूत्रवहिष्कृता ॥६०॥
तत्पक्षपातिनो मूढा गृहस्था शिवनिन्दका ।
मिथ्या वैष्णवमानेन ग्रस्ता निरयगामिण ॥६१॥
वैष्णवा वेषमात्रेण तन्नुमात्रेण वाडवा ।
वादिन क्रोधमात्रेण विद्वासा हेतुवादत ॥६२॥
पठिष्यन्ति च शास्त्राणि केचिद्दूषणसिद्धय ।
स्वकीय गोपयिष्यन्ति परकीयेण पण्डिता ॥६३॥

पाँच वर्ष के बालक को क्रम से लाकर यति बनाकर मन्दिर अधिपति द्रव्य के लोभ से नास्तिक लोग किया करेंगे। अभिरागी ये मठ पर अपनी परम्परा की रक्षा करेंगे। ये पापिष्ठ भोगों में आसक्त और दासी में गमन करने वाले होंगे ५८।५९। तीर्थ नाम से ही संन्यासी हैं और यान पर समारूढ रहते हैं तथा सेवकों को भी साथ में रखा करते हैं। नर वाहन पर आरूढ होते हैं तथा शिखा सूत्र से बहिष्कृत होते हैं।६०। उनके पक्षपात करने वाले मूढ गृहस्थी होंगे जो भगवान् शिव की निन्दा करने वाले हैं। ये लोग मिथ्या ही वैष्णव होने के मान वाले हैं जो वैष्णवत्व के गर्व से ग्रस्त हैं और नरक के गामी हैं। ।६१। वेषमात्र से ही ये वैष्णव हैं तनुमात्र से वाडवा हैं। क्रोध मात्र से ही वादी हैं और हेतुवाद के करने में विद्वान् होंगे।६२। शास्त्रों के कुछ दोष निकालने के ही दृष्टि से पढ़ेंगे। अपने दोषों को तो ये छिपाते हैं और दूसरों के दोषों का उद्धार न करने के निमित्त पण्डित हैं।६३।

महामोहोदय सर्वे रतिमाश्वास्य भामिनीम् ।
प्राचुर्य श्लक्ष्णया वाचा तद्‌गर्वनिवारका ॥६४॥

रते मा कुरु सतापमह मोह कले सखा ।
क्रोध पत्यु परो बन्धुर्लोभमोहौ च देवरौ ॥६५॥
प्राप्ते कलियुगे पूर्णे मोहलोभादयो वयम् ।
वसन्त मधुनामानमवतीण च दक्षिण ॥६६॥
समाश्रित्य ततो हेतुवाद कुटिलबुद्धय ।
करिष्यामो यथा शक्य शिवपूजानिवारणम् ॥६७॥
इति ते रतिमाश्वास्य यथागतमितो गता ।
इति सर्व समाख्यात शिवनिन्दककारणम् ॥६८॥

श्री सूतजी ने कहा—महामोह आदि सबने रति को आश्वासन दिया था जो कन्दर्प की भामिनी थी और उसके दुख का निवारक होते हुए बहुत ही नम्र वाणी से बोले—मोहादिक ने कहा—हे रते ! तुम सन्ताप मत करो । यह मोह कलियुग का सखा है । क्रोध तेरे पति का परम बन्धु है तथा लोभ और मोह ये दोनों तुम्हारे देवर हैं । ।६४।६५। कलियुग के पूर्ण रूप से प्राप्त होने पर मोह लोभ आदि के हम सब दक्षिण में मधुनाम से अवतीर्ण वसन्त का समाश्रय ग्रहण करके कुटिल बुद्धि वाले हेतुवाद को करेंगे जैसे भी शिवकी पूजा का निवारण हो सके किया जायगा ।६६।६७। सूतजी ने कहा— इस तरह से वे रति को समाश्वासन देकर जैसे आये थे वैसे ही सब चले गये यह सब मैंने भगवान् शिवकी निन्दा होने का कारण तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है ।६८।

॥ विष्णु चक्र प्राप्ति कथन ॥

सुदर्शनाख्य यच्चक्र लब्धवास्तत्कथ हरि ।
महादेवाद्भगवत सूत तद्वक्तुमर्हसि ॥१॥
देवासुराणामभवत्सङ् ग्रामोऽद्भुतदर्शन ।
देवा विनिर्जिता दैत्यैर्विष्णु शरणमागता ॥२॥

स्तुत्वा तं विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य पुरतः स्थिताः ।
भयभीताश्च ते सर्वे क्षताङ्गाः क्लेशिता भृशम् ॥३॥
तान्दृष्ट्वा प्राह भगवान्देवदेवो जनार्दनः ।
किमर्थमागता देवा वक्तुमर्हथ सांप्रतम् ॥४॥
वचः श्रुत्वा हरेर्देवाः प्रणम्योचुः सुरोत्तमाः ।
निर्जिता दानवैः सर्वे शरणं त्वामिहाऽऽगताः ॥५॥
गतिस्त्वमेव देवानां त्राता त्वं पुरुषोत्तम ।
हन्तुमर्हसि तान्शीघ्रमवध्यान्वारिजेक्षण ॥६॥
जालंधरवधार्थाय यच्चक्रं शूलपाणिनः ।
महादेववराल्लब्ध्वं जहि तेन महाबलान् ॥७॥

ऋषियों ने कहा—सुदर्शन नाम वाला जो परम प्रसिद्ध चक्र है उसको भगवान् श्री हरि ने कैसे प्राप्त किया था । सुना है यह महादेव जी से ही मिला था सो कैसे प्राप्त हुआ है यह हे सूतजी ! आप कहने के लिये योग्य होते है ।१। सूतजी ने कहा—एक बार देवों का और असुरों का अद्भुत दर्शन वाला महा संग्राम हुआ था । देव लोग सब दैत्यों के द्वारा पराजित होकर श्री विष्णु के शरण मे समागत हुए थे ।२। विविध भाँति के स्तोत्रों के द्वारा उनकी स्तुति करके और प्रणाम करके वे सब भगवान् के आगे स्थित हो गये थे । वे सभी भय से भीत थे—कृश अङ्गों वाले थे और अत्यन्त ही दुःखित थे ।३। देवदेव जनार्दन ने उनको देखकर कहा था—हे देवो ! आप मेरे पास किस लिये आये हो । अब आप यह मुझसे कहो ।४। श्रीहरि के वचन का श्रवणकर सुरोत्तम देवों जनार्दन उनको प्रणाम किया और कहने लगे थे । दानवों के द्वारा हम सब निर्जित हो गये हैं अतएव यहाँ पर हम सब आपकी शरणागति मे समागत हुए हैं ।५। हम देवों की तो आप ही गति हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं हे पुरुषोत्तम ! आप ही हमारे त्राण करने वाले हैं । हे कमलनेत्र ! आप उन अवध्यों को शीघ्र ही हनन करने के लिये समर्थ होते हैं ।६। जालन्धर के वध के लिये शूलपाणि महादेवजी

से जो सुदर्शन चक्र आपने प्राप्त किया था उसी से उन महान् बल वालों का हनन करिए ।७।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भगवान्वारिजेक्षणः ।
अहं देवास्तथा नूनं करिष्यामीति सुव्रताः ।।८
हिमवत्पर्वतं गत्वा पूजयामास शंकरम् ।
लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य स्नाप्य गन्धोदकैः शुभैः ।।६
त्वरिताख्येन रुद्रेण संपूज्य च महेश्वरम् ।
ततो नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् ।।१०
प्रतिनाम च पद्मानि तैरिष्ट्वा वृषभध्वजम् ।
भवाद्यैर्नामभिर्भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे ।।११
भवः शिवो हरो रुद्रः पुष्कलो मुग्धलोचनः ।
अग्रगण्यः सदाचारः सर्वः शम्भुर्महेश्वरः ।।१२
ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
वरीयान्वरदो वन्द्यः शंकरः परमेश्वरः ।।१३
गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैकप्रयोजकः ।
सर्वज्ञः सर्वदेवादिर्गिरिधन्वा जटाधरः ।।१४

भगवान् कमल नेत्र ने उन देवों के उस वचन का श्रवण करके उनसे कहा—हे सुव्रतो ! हे देवो ! मैं निश्चय ही वैसा ही करूंगा ।।८।। फिर श्रीहरि ने हिमाचल पर जाकर भगवान् शंकर का अभ्यर्चन किया था । वहाँ पर शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके और परम शुभ भागीरथी गङ्गा के जल से स्नपन कराकर शुभ गन्धोदकों से त्वरिताख्य रुद्र के द्वारा महेश्वर की भलीभाँति पूजा की थी । इसके अनन्तर सहस्र नाम के द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति की थी । प्रत्येक नाम पर पद्मों को अर्पित किया था और वृषभध्वज का उन कमलों से यजन किया था । भक्ति के साथ भवादि नामों से स्तवन करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया था ।।६।।१०।।११।। भगवान् विष्णु ने कहा—(यह सहस्रनाम है)—भव, शिव, हर, रुद्र, पुष्कल, मुग्धलोचन, अग्रगण्य, सदाचार,

सर्व, शंम्भु, महेश्वर, ईश्वर, स्थाणु, ईशान, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, वरीयान्, वरद, वन्द्य, शङ्कर, परमेश्वर, गङ्गाधर, शूलवर, परार्थैक प्रयोजक, सर्वज्ञ, सर्वदेवादि, गिरिधन्वा, जटाधर ॥१२॥१३॥१४॥

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्वेधा विश्वामरेश्वरः ।
वेदान्तसारसन्दोहः कपाली नीललोहितः ॥१५
ध्यानाहारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्त्ता गणेश्वरः ।
अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः ॥१६
ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः ।
वामदेवो महादेवः पटुः परिवृढो दृढः ॥१७
विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः श्रुतिमन्त्रगः ।
सर्वप्रणवसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥१८
ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः ।
मनोमयो महायोगी स्थिरो ब्रह्माण्डधूर्जटी ॥१९
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः ।
नागचूड सुचक्षुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥२०
दृगायुधः स्कन्दगुरु परमेष्ठी परायणः ।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥२१

चन्द्रापीड़, चन्द्रमौलि, वेधा, विश्वामहेश्वर, वेदान्तसार सन्दोह, कपाली, नीललोहित, ध्यानाहार, अपरिच्छेद्य, गौरीभर्त्ता, गणेश्वर, अष्टमूर्ति, विश्वमूर्ति, त्रिवर्ग, स्वर्ग साधन, ज्ञानगम्य, दृढप्रज्ञ, देवदेव, त्रिलोचन, वामदेव, महादेव, पटु, परिवृढ, दृढ, विश्वरूप, विरूपाक्ष, वागीश, श्रुतिमन्त्रग, सर्वप्रणव, संवादी, वृषाङ्क, वृषवाहन, ईश पिनाकी, खट्वाङ्गी, चित्रवेष, चिरन्तन, मनोमय, महायोगी, स्थिर, ब्रह्माण्ड धूर्जटि, कालकाल, कृत्तिवासा, सुभग, प्रणवात्मक, नागचूड़, सुचक्षुष्य, दुर्वासा पुरशासन, दृगायुध, स्कन्द गुरु, परमेष्ठी, परायण, अनादिमध्यनिधन, गिरीश, गिरिजाधव ॥१५-२१॥

कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमो मृदुः ।
सामान्यो देवकी दण्डी नीलकण्ठ परश्वधीः ॥२२

विशालाक्षो महाव्याघ सुरेश सूर्यतापन ।
धर्मधामा क्षमाक्षेत्र भगवान्भगनेत्रहा ॥२३
उग्र पशुपतिस्तार्क्ष्य प्रियभक्त प्रियवद ।
दाता दयाकरो दक्ष कपर्दी कामशासन ॥२४
श्मशाननिलयस्त्रिप्य श्मशानस्थो महेश्वर ।
लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महौषधि ॥२५
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्य पुरातन ।
नीति सुनीति शुद्धात्मा सोम सोमरत सुधी ॥२६
सोमपोऽमृतप सौम्यो महानीतिर्महास्मृति ।
अजातशत्रुरालोक्य सभाव्यो हव्यवाहन ॥२७
लोककारो वेदकार सूत्रकार सनातन ।
महर्षि कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिविलोचन ॥२८

कुबेरबन्धु श्रीकण्ठ, लोकवन्द्य, उत्तम, मृदु, सामान्य, देवक, दण्डी, नीलकण्ठ, परश्वधी, विशालाक्ष, महाव्याघ, सुरेश सूर्यतापन, धर्मधामा, क्षमाक्षेत्र, भगवान् भगनेत्रहा उग्र, पशुपति, तार्क्ष्य, प्रियभक्त, प्रियवद, दाता, दयाकर, दक्ष, कपर्दी कामशासन, श्मशाननिलय, तिप्रन, श्मशानस्थ महेश्वर, लोककर्त्ता, भूतपति, महाकर्त्ता, महौषधि, उत्तर गोपति, गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन, नीति, सुनीति, शुद्धात्मा सोम, सोमरति, सुधी, सोमप अमृतप सौम्य महानीति, महास्मृति, अजात शत्रु आलोक्य, सम्भाव्य, हव्यवाहन, लोककार, वेदकार, सूत्रकार, सनातन, महर्षि कपिलाचार्य, विश्वदीप्ति, विलोचन ॥२२-२८॥

पिनाकपाणिर्भूदेव स्वस्तिकृत्स्वस्तिद सुधा ।
धात्रीधामा धामकर सर्वग सर्वगोचर ॥२९
ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्ग कर्णिकार प्रिय कवि ।
शाखो विशाखो गोशाख शिवो भिषगनुत्तम ॥३०
गङ्गाप्लवोदको भव्य पुष्कल स्थपति स्थित ।
विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथि ॥३१

सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशय ।
कामदेवः कामकालो भस्मोद्धूलितविग्रह ॥३२
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्त कृतागम ।
समावृत्तो निवृत्तात्मा धर्मपुञ्ज सदाशिव ॥३३
अकल्मषश्चतुर्बाहु सर्वावासो दुरासद ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्ग. सर्वायुधविशारद ॥३४
अध्यात्मयोगनिलय सुतन्तुस्तन्तुवर्धन ।
शुभाङ्गो योगसारङ्गो जगदीशो जनार्दन ॥३५

पिनाकपाणि, भूदेव, स्वस्तिकृत, स्वस्तिद, सुधा, धात्रीधामा, धामकर, सर्वग, सर्वगोचर, ब्रह्मसृक्, विश्वसृक्, सर्ग, कर्णिकार, प्रिय, कवि, शाखा, विशाख, गोशाख, शिव, भिष्टक्, अनुत्तम, गङ्गाप्लवोदक, भव्य, पुष्कल, स्थपति, स्थित, विजितात्मा, विधेयात्मा, भूतवाहनसारथि, सगण, गणकाय, सुकीर्ति, छिन्नसंशय, कामदेव, कामकाल, भस्मोद्धूलित विग्रह, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्त, कृतागम, समावृत्त, निवृत्तात्मा, धर्मपुञ्ज, सदाशिव, अकल्मष, चतुर्बाहु, सर्वावास, दुरासद दुर्लभ, दुर्गम, दुर्ग, सर्वायुध विशारद, अध्यात्मयोग निलय, सुतन्तु, तन्तुवर्धन, शुभाङ्ग योगसारङ्ग, जगदीश, जनार्दन ॥२६-३५॥

भस्मशुद्धिकरो मेरुस्तेजस्वी शुद्धविग्रह ।
हिरण्यरेतास्तरणिर्मरीचिर्महिमालय ॥३६॥
महाह्रदो महागर्त सिद्धवृन्दारवन्दित ।
व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधि ॥३७॥
अमृतात्माऽमृतवपु पञ्चयज्ञ प्रभञ्जन ।
पञ्चविंशतितत्त्वस्थ पराजात परापर ॥३८
सुलभ सुव्रत शूरो वाङ्मयैकनिधिर्निधि ।
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापन ॥३९
आश्रम क्षपण क्षामो ज्ञानवानचलश्चल ।
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेय सुपर्णो वायुवाहन ॥४०

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकर ।
अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दम ॥४१
अविवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारद ।
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतवाहन ॥४२

भस्म शुद्धिकर—मेरु— तेजस्वी—शुद्ध विग्रह—हिरण्य रेता—तरणि—मरीचि—महिमालय—महाह्लद—महावर्त्त—सिद्ध वृन्दार वन्दित—व्याघ्र धर्म धर—व्याली महाभूत—महानिधि—अमृतात्माशअमृतवपु—पक्षयज्ञ—प्रभञ्जन—पक्ष विंशति सत्वस्थ—पारिजात—परापर—सुलभ—सुव्रत—शूर—वाग्मार्थक विधि—निधि—वर्णाश्रम गुरु—वर्णी—शत्रुजित—शत्रुतापन—आश्रम—क्षपण—क्षाम—ज्ञानवान्—अचल—चल—प्रमाण भूत—दुर्ज्ञेय—सुपर्ण—वायुवाहन—धनुर्वेद—धनुर्धर—गुणराशि—गुणराशि-गुणाकर-अनन्त दृष्टि-आनन्द—दण्ड—दमयिता—दम—अविवाद्य—महाकाय—विश्वकर्मा—विशारद—वीतराग—विनीतात्मा—तपस्वी—भूतवाहन ॥३६—४२॥

उन्मत्तवेष प्रच्छन्नो जितकामो जितप्रिय ।
कल्याणप्रकृति कल्प सर्वलोकप्रजापति ॥४३
तपस्वी तारको धीमान्प्रधानप्रभुरव्यय ।
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादि कमलेक्षण ॥४४
वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो नियमो नियमाश्रय ।
राहु सूर्य शनि केतुर्विरामो विद्रुमच्छवि ॥४५
भक्तिगम्य पर ब्रह्म मृगवाणार्पणोऽनघ ।
अद्रिद्रोणिकृतस्थान पवनात्मा जगत्पति ॥४६
सर्वकर्माचलस्त्वष्टा मङ्गल्यो मङ्गलप्रद ।
महातपा दीर्घतपा स्थविष्णु स्थविरो ध्रुव ॥४७
मह सवत्सरो व्याल प्रमाण परम तप ॥१०२
सवत्सरकरो मन्त्र अत्यय सर्वदर्शन ॥४८
अज सर्वेश्वर सिद्धो महारेता महाबल ।

योगी योगी महादेव. सिद्ध सर्वादिरच्युत ॥४९

उन्मत्त वेष—प्रच्छन्न—जितकाम—जितप्रिय—कल्याण प्रकृति—कल्प—सर्वलोक प्रजापति—तपस्वी—तारक—धीमान—प्रधान प्रभु—अव्यय—लोकमान—अन्तर्हितात्मा—कल्पादि—कमलेक्षण—वेदशास्त्रार्थ तत्वज्ञ—नियम—नियमाश्रय—राहु—सूर्य—शनि—केतु—विराम—विद्रुम—छवि—भक्तिगम्य—परब्रह्म—मृग बाणार्पण—अनघ—अद्रि द्रोणि कृत स्थान—पवनात्मा—जगत्पति—सर्व कर्माचल—त्वष्टा—मङ्गल्य—मङ्गल प्रद—महातपा—स्थविष्णु—स्थविर—ध्रुव—अह—सम्वत्सर—व्याप्ति—प्रमाण—परम—तप—सम्वत्सरकार—मनज—प्रत्यय—सर्व दर्शन—अज—सर्वेश्वर—सिद्ध—महारेता—महाबल—योगी—योग—महादेव—सिद्ध—सर्वादि—अच्युत ॥४३—४६॥

वसुर्वसुमना सत्य सर्वपापहरो हर ।
अमृत शाश्वत शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान् ॥५०
कमण्डलुधरो धन्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनि ।
भ्राजिष्णुर्भोजन भोक्ता लोकनेता दुराधर ॥५१
अतीन्द्रियो महामाय सर्वावासश्चतुष्पथ ।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबल ॥५२
महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदर ।
निशाचर प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युति ॥५३
अनिर्देश्यवपु श्रीमान्सर्वाकर्पकरो मत ।
बहुश्रुतो बहुमायो नियतात्माऽभयोद्भव ॥५४
ओजस्तेजोद्युतिधरो नर्तक सर्वनायक ।
नित्यघन्टाप्रियो नित्यप्रकाशात्मा प्रतापन ॥५५
स्पष्ट स्पष्टाक्षरो मन्त्रः षड्ग्राम शारदप्लव ।
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहन ॥५६

वसु—वसुमना—सत्य—सर्व पापहर—हर—अमृत—शाश्वत—शान्त—बाण हस्त—प्रतापवान—कमण्डलु—धर—धन्वी—वेदाङ्ग—

वेदविता—मूनि—भ्राजिपणु— भोजन – भोक्ता—लोकनेता—दुराधर —अतीन्द्रय—महामाय—सर्वावास—चतुष्पथ— कालयोगी महानाद -महोत्साह—महाबल—महाबुद्धि—महावीर्य— भूतचारी—पुरन्दर—निशाचर—प्रेतचारी—महाशक्ति—महाधुति—अनिर्देश्यवपु— श्रीमान् —सर्वाकर्षकर—बहुश्रुत—बहुमाय—मत—नियतात्मा— अभयोद्भव —ओज तेज घुतिधर—नर्तक—नृत्य—स्पष्टाक्षर—मन्त्र—सत्राम—शारहत्लव उगादि—वृत—युगावर्त्त—गम्भीर—वृहे वाहन ॥५०–५६॥

इष्टो विशिष्ट शिष्टेष्ट शरभ सरभो धनु ।
अपा निधिरधिष्ठान विजयो जयकालवित् ॥५७
प्रतिष्ठित प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरि ।
विमोचन सुरगणो विद्येशो विबुधाश्रय ॥५८
वालरूपो बलोन्माथी विकर्ता गहनो गुह ।
करण कारण कर्ता सर्वबन्धप्रमोचन ॥५९
व्यवसायो व्यवस्थान स्थानदो जगदादिज ।
दुन्दुभो ललितो विश्वो भवात्माऽऽत्मनि सस्थित ॥६०
राजराजप्रियो रामो राजचूडामणि प्रभु ।
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्विराट् ॥६१
वीरचूडामणिर्हर्ता तीक्ष्नानन्दो नदीधर ।
आत्माधारस्त्रिशूलाङ्क शिपिविष्ट शिवाश्रय ॥६२
वालखिल्यो महाचारस्तिग्माशुर्वारिधि खग ।
अभिराम सुशरण्य सुब्रह्मण्य सुधापति ॥६३

इष्ट—विशिष्ट—शिष्टेष्ट—शरभ—सरभ—धनु—अपां निधि—अधिष्ठान—विजय—जय कालवित् प्रतिष्ठित—प्रमाणज्ञ — हिरण्य कवच—हरि—विमोचन—सुरगण—विधेश—विबुधाश्रय—वालरूप – बलो माथी—विकर्त्ता—गहन—गुह—करण—कारण —कर्त्ता — सर्व बन्ध प्रमोचन—व्यवसात—व्यवस्थान—स्थानद—जद्वदाद्दिज— दुन्दुभ —ललित —विश्व—भवात्मा—आत्मा मे सस्थित—राजराज प्रिय—

राम—राज चूडामणि—प्रभु—वीरेश्वर—वीरभद्र—वीरासन विधि—विराट्—वीर चूडामणि—हर्त्ता—तीव्रानन्द—नदीधर—आत्माधार—त्रिशूलाङ्क—शिपिविष्ट—शिवाश्रय—वालखिल्य—महात्रार—निग्मांशु—वाविधि—सग—अभिराम—सुशरण्य—सु ब्रह्मण्य—सुधापति ॥५७—६३॥

मधुमान्कौशिको गोमान्विराम सर्वसाधन ।
ललाटाक्षो विश्वदेह सार ससारचक्रभृत् ॥६४
अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी ।
परब्रह्मपदो हस शबरो व्याघ्रकोऽनल ॥६५
रुचिर्वररुचिर्वन्द्यो वाचस्पतिरहर्पति ।
रविविरोचन स्कन्द शास्ता वैवस्वतोऽर्जुन ॥६६
मुक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शान्तराम पुरजय ।
कैलासपति कामारि सविता रविलोचन ॥६७
विद्वत्तमो वीतभयो विश्वकर्माऽनिवारित ।
नित्यो नियतकल्याण पुण्यश्रवणकीर्तन ॥६८
दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दु स्वप्ननाशन ।
उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दु सहोऽभय ॥६९
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मी किरीटी त्रिदशाधिप ।
विश्वगोप्ता विश्वहर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदी ॥७०

मधुमान, कौशिक, गोमान्, विराम, सर्व साधन, ललाटाक्ष, विश्व-देह, सार, समारचक्रभृत्, अमोघदण्ड, मध्यस्थ, हिरण्य, ब्रह्मवर्चसी, परब्रह्मपद, हस, शबर, व्याघ्रक, अनल, रुचि, वन्द्य, वाचस्पति, अहर्पति, रवि, विरोचन, स्कन्द, शास्ता, वैवस्वत अर्जुन, मुक्ति उन्नतकीर्ति, शान्तराम, पुरञ्जय, कैलाशपति, कामादि, सविता, रविलोचन, विद्वत्तम, *भीतभय, विश्वकर्मा, अनिवारित, नित्य, नियतकल्याण, पुण्यश्रवण* कीर्त न, दूरश्रवा, विश्वसर, ध्येय, दु स्वप्न, नाशन, उत्तारक, दुष्कृतिज्ञ,

दुर्धर्ष, दु सह, अभय, अनादि, भू , भुव', लक्ष्मी, किरीटी, त्रिदशाधिप, विश्वगोप्ता, विश्वहर्त्ता, सुवीर, रुचिराङ्गदी ॥६४ ७०॥

जननो जनजन्मादि प्रीतिमान्नीतिमानथ ।
वसिष्ट कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रम ॥७१
प्रणव सत्पथाचारो महाकायो महाधनु ।
जन्माधिपो महादेव' सकलागमपारग ॥७२
तत्त्व तत्त्वविदेकात्मा विभूतिर्भूतिभूषण ।
ऋषिर्ब्राह्मणविद्विष्णुर्जन्ममृत्युजरातिग ॥७३
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञान्तोऽमोघविक्रम ।
महेन्द्रो दुर्भर सेनी यज्ञाङ्गो यज्ञवाहन ॥७४
पञ्चब्रह्मासमुत्पत्तिर्विश्वतो विमलोदय ।
आत्मयोनिरनाद्यन्त पट्त्रिंशो लोकभृत्कवि ॥७५
गायत्रीवल्लभ प्रांशुर्विश्वावास सदाशिव ।
शिशुर्गिरिरत सम्राट् सुषेण सुरशत्रुहा ॥७६
अमेयोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वर ।
स्वयज्योतिरनुज्योतिरचल परमेश्वर ॥७७

जनन, जनजन्मादि-प्रीतिमान्, नीतिमान्, वसिष्ठ कश्यप, भानु, भीम, भीम पराक्रम प्रणव, सत्पथाचार, महाकाय, महाधनु, जन्माधिप, महादेव, सकलागमपारग, तत्त्व, तत्त्ववित्, एकात्मा, विभूति, भूतिभूषण, ऋषि, ब्राह्मणवित्, विष्णु जन्म मृत्यु जरातिग, यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, यज्ञान्त, अमोघ विक्रम, महेन्द्र, दुभर, सेनी, यज्ञाङ्ग यज्ञवाहन पञ्च ब्रह्म समुत्पत्ति, विश्वत, विमलोदय, आत्मयोनि, अनाद्यन्त, षट्त्रिंश, लोकभृत्, कवि । गायत्री के वल्लभ, प्रांशु विश्वावास, सदाशिव, शिशु, गिरिरत, सम्राट, सुषेण, सुर शत्रुओं के हनन करने वाले अमेय, अरिष्टमथन, मुकुन्द, विगतज्वर, स्वय ज्योति, अनुज्योति अचल, परमेश्वर ॥७१ ७७॥

पिङ्गल कपिलश्मश्रु शास्त्रनेत्रस्त्रयीतनु ।
ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानो वीरोत्पत्तिरुपप्लवी ॥७८

भगो विवस्वानादित्यो योगाचारो दिवस्पतिः ।
उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ॥७६
नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानषडाश्रयः ।
पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः ॥८०
हृत्पुण्डरीकमासीनः शुक्रः(क्रे) शानो वृषाकपिः ।
तुष्टो गृहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थशासनः ॥८१
अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः ।
बृहद्ध्वजा ब्रह्मगर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ॥८२
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ।
हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मानुपेन्द्रस्तिमिरापहः ॥८३
अरोगस्तपनाध्यक्षो विश्वामित्रो द्विजेश्वरः ।
ब्रह्मज्योतिः सुबुद्धात्मा बृहज्ज्योतिरनुत्तमः ॥८४

पिङ्गल, कपिलश्मश्रु, धाम्रनेत्र, अयंतनु, ज्ञानस्कन्ध, महाज्ञानी, वीरोत्पत्ति, उपप्लवी, भग, विवस्वान्, आदित्य, योगाचार, दिवस्पति, उदार कीर्ति, उद्योगी, सद्योगी, सदसन्मय, नक्षत्रमाली, नाकेश, स्वाधिष्ठानषडाश्रय, पवित्रपाद, पापो के अरि मणिपूर, नभोगति, हृत्पुण्डरीक में समासीन, शुक्रेशान, वृषाकपि, तुष्ट, गृहपति, कृष्ण, समर्थ, अनर्थ शासन, अधर्म शत्रु, अक्षय्य, पुरुहूत, पुरुष्टुत, बृहद्ध्वज, ब्रह्मगर्भ, धर्मधेनु, धनागम, जगद्धितैषी, सुगत, कुमार, कुशलागम, हिरण्यगर्भ, ज्योतिष्मान्, उपेन्द्र, तिमिरापह, अरोग, तपनाध्यक्ष, विश्वामित्र, द्विजेश्वर, ब्रह्मज्योति, सुबुद्धात्मा, बृहज्ज्योति, अनुत्तम ॥७८-८४॥

मातामहो मातरिश्वा मनस्वी नागहारधृक् ।
पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः ॥८५
निरावरणविज्ञानो विरञ्चो विष्टरश्रवाः ।
आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ॥८६
लोकचूडामणिर्वीरश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ।
व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलानिधिः ॥८७

अलकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तम ।
आशु सप्तपतिर्वेगी प्लवन शिखिसारथि ॥८८
असंतुष्टोऽतिथि शुक्र प्रमाथी पापशासन ।
वसुश्रवा कव्यवाह प्रतप्तो विश्वभाजन ॥८९
जयो जरारिशमनो लोहिताश्वस्तनूनपात् ।
पृपदश्वो नभोयोनि सुप्रतीकस्तमिस्रहा ॥९०
निदाघस्तपनो मेघ पक्ष परपुरंजय ।
सुखो नील सुनिष्पन्न सुरभि शिशिरात्मक ॥९१

मातामह, मातरिश्वा, मनस्वी, नागहार धृक, पुलस्त्य, पुलह, अगस्त्य, जातूकर्ण्य, पराशर, निरावरण विज्ञान, विरञ्च, विश्वरश्रवा, आत्मभू, अनिरुद्ध, अत्रि, ज्ञानमूर्ति, महायशा, लोक चूड़ामणि, वीर, चन्द्र, सत्य परा पराक्रम, व्यालकल्प, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलानिधि, अलकरिष्णु अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम, आशु सप्तपति, वेगी, प्लवन, शिखिसारथि, असन्तुष्ट, अतिथि, शुक्र, प्रमाथी, पाप शासन, वसुश्रवा, कव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन, जय, जरारि के शमन करन वाले, लोहिताश्व, तनूनपात्, पृपदश्व, नभोयोनि, सुप्रतीक, तमिस्रहा, निदाघ, तपन, मेघ, पक्ष, परपुरञ्जय, सुखी, नील, सुनिष्पन्न, सुरभि, शिशरात्मक ॥८५-९१॥

वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहन ।
मनो बुद्धिरहंकार क्षेत्रज्ञ क्षेत्रपालक ॥९२
जमदग्निर्जलनिधिर्विपाको विश्वकारक ।
अधरोऽनुत्तरो ज्ञयो ज्येष्ठो निश्रयसालय ॥९३
शैलो नाम तरुर्दाहो दानवारिररिंदम ।
चामुण्डी जनकश्चार्हनि शल्यो लोकशल्यहृत् ॥९४
चतुर्वेदश्चनुर्भावश्चतुरश्चत्वरप्रिय ।
आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थं देव शिवालय ॥९५

वज्ररूपो महादेवः सर्वरूपश्चराचरः ।
न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो निरञ्जन. ॥६६
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ।
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी दान्तो गुणोत्तरः । ६७
पिङ्गलाक्षोऽय हर्यश्वो नीलग्रीवो निरामयः ।
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्य. सर्वलोकधृक् ।।६८

वसन्त, माधव, ग्रीष्म, नभस्य, बीजवाहन, मन, बुद्धि, अहकार, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्र के पालक, जमदग्नि, जलनिधि, विपाक, विश्वकारक, अघर, अनुत्ता, ज्ञेय, ज्येष्ठ, निःश्रेयसालय, शैल, नाग, तरु, दाह, दानवो अरि, अरिन्दम, चामुण्डी, जनक, चारु, निःशल्य, लोकशल्यहृत्, चतुर्वेद, चतुर्भाव, चतुर, चत्वर प्रिय, आम्नाय, समाम्नाय, तीर्थदेव, शिवालय, वज्ररूप, महादेव, सर्वरूप, चराचर, न्याय निर्वाहक, न्याय, न्यायगम्य, निरञ्जन, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वशास्त्र प्रभञ्जन, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, दान्त, गुणोत्तर, पिङ्गलाक्ष, हर्यश्व, नीलग्रीव, निरामय, सहस्रबाहु, सर्वेश, शरण्य, सर्वलोक धृक् ।।६३-६८।।

पद्मासनः पर ज्योतिः परावरः पर फलम् ।
पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विलक्षण· ॥६६
यज्ञभुग्वरदो देवो वरेशश्च महास्वन. ।
देवासुरगुरुर्देवः शंकरो लोकसभव. ॥१००
सर्ववेदमयोऽचिन्त्यो देवतासत्यसभवः ।
देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रद ॥१०१
देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ।
देवासुराणा वरदो देवासुरनमस्कृतः ॥१०२
देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः ।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवानामात्मसंभवः ॥१०३
ईड्योऽनीश· सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः ।
विबुधाग्रवरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥१०४

शिवध्यानरतः श्रीमाञ्छिखी श्रीपर्वतप्रियः।
वज्रहस्तः प्रतिष्टम्भी विश्वज्ञानी निशाकरः ॥१०५

पद्मासन, परज्योति, परावर, परं फल, पद्मगर्भ, विश्वगर्भ, विलक्षण, यज्ञसुक्, वरद, देव, वरेश, महास्वन, देवासुर गुरु, देव, शङ्कर, लोक सम्भव, सर्व वेदमय, अचिन्त्य, देवता सत्य सम्भव, देवाधिदेव, देवर्षि, देवासुर वर प्रद देवासुरेश्वर, दिव्य, देवासुर महेश्वर, देवों और असुरों को वरदान दाता, देव तथा असुरों के द्वारा नमस्कृत देवासुर महामात्र, देवासुर महाश्रय, सर्व देवमय, अचिन्त्य, देवों का आत्म सम्भव, ईड्य, अनीश, सुर व्याप्त, देवसिंह, दिवाकर, विबुधाग्र प्रवर, श्रेष्ठ, सब देवों से उत्तम से भी उत्तम, शिव ध्यान में रत, श्रीमान्, शिखी, श्री पर्वत को प्यार करने वाले, वज्रहस्त, प्रतिष्टम्भी, विश्व ज्ञानी निशाकर ॥६६-१०५॥

ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः।
नन्दी नन्दीश्वरो नग्नो नग्नव्रतधरः शुचिः ॥१०६
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षो युगावहः।
स्ववशः स्वर्गतः स्वर्गः सर्गः स्वरमयः स्वनः ॥१०७
बीजाध्यक्षो बीजकर्ता, धर्मकृद्धर्मवर्धनः।
दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वरः ॥१०८
श्मशाननिलयस्तिष्य सेतुरप्रतिमाकृतिः।
लोकोत्तरः स्फुटालोकस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः ॥१०६
अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकंधरपातनः।
वीतदोषोऽक्षयगुणोऽन्तकारिः पूषदन्तभित् ॥११०
धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः।
आकारः सकलाधारः पाण्डुरागो मृगो नटः ॥१११
पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः।
समागेयः प्रियः क्रूरः पुण्यकीर्तिरनामगः ॥११२

ब्रह्मचारी, लोकचारी, धर्मचारी, धनाधिप, नन्दी नन्दीश्वर, नग्न,

नग्नव्रतधर, शुचि, लिङ्गाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, युगावह, स्ववश, स्वाति, स्वर्ग, स्वरमय, स्वन, बीजाध्यक्ष, बीजकर्त्ता, धर्मकृत्, धर्मवर्द्धन, दम्भ, अदम्भ, महादम्भ, सर्वभूत महेश्वर, श्मशान निलय, तिष्य, सेतु, अप्रतिमा कृति, लोकोत्तर, स्फुटालोक, त्र्यम्बक, भक्तवत्सल, अन्धक दैत्य के अरि, मखद्वेषी, विष्णु, कन्धरपातन, वीतदोष, अक्षयगुण, अक्षकारि, पूषदन्तभित्, धूर्जटि, खण्डपरशु, सकल, निष्कल, अनघ, आकार, सकलाधार, पाण्डुराम, मृग, नट, पूर्ण पूरयिता, पुण्य, सुकुमार, सुलोचन, साम के द्वारा गाने योग्य, प्रिय, क्रूर, पुण्य कीर्ति, अनामय ॥१०६-११२॥

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।
जीवितान्तकरोऽनन्तो वसुरेता वसुप्रद ॥११३
सद्गतिः सत्कृतिः शान्त कालकण्ठ कलाधरः ।
मानी मन्तुर्महाकालः सद्भूतिः सत्परायणः ॥११४
चन्द्रसञ्जीवन शास्ता लोकगूढो महाधिप. ।
लोकबन्धुर्लोकनाथ. कृतज्ञ कृतभूषण. ॥११५
अनपायोऽक्षरः शान्त सर्वशस्त्रभृतां वर. ।
तेजोमयो द्युतिधरो लोकमायोऽग्रणीरणुः ॥११६
सुविस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
ज्योतिर्मयो निराकारो जगन्नाथो जलेश्वरः ॥११७
तुम्बी वीणा महाशोको विशोकः शोकनाशन. ।
त्रिलोकेशस्त्रिलोकात्मा सिद्धिः शुद्धिरधोक्षज ॥११८
अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशांपतिः ।
वरशीलो वरगुणो गतो गव्ययनो मय. ॥११९

मनोजव, तीर्थकर, जटिल, जीवतेश्वर, जीवितान्तकर, अनन्त, वसुरेता, वसुप्रद, सद्गति, सत्कृति शान्त, कालकण्ठ, कलाधर, मानी, मन्तु, महाकाल, सद्भूति [illegible]

महाधिप, लोकवन्धु, लोकनाथ, कृतज्ञ, कृतभूषण, अनपाय, अक्षर शान्त, सवशास्त्र धारियो मे परमश्रेष्ठ, तेजोमय, श्रुतिधर अथवा धृतिधर, लोकमय, अग्रणी, अग्रणी, अणु, सुविस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरति क्रम, ज्योतिर्मय, निराकार जगन्नाथ, जनेश्वर, तुम्बी, वीणा, महाशोक, विशोक, शोकनाशन, त्रिलोकेश, त्रिलोकात्मा, सिद्धि, शुद्धि, अधोक्षज, अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, विशाम्पति, वरशील, वरगुण, मत, गरयपन, मय ॥११३-११६॥

ब्रह्मा विष्णु प्रजापालो हंसो हंसगतिर्मत ।
वेधा विधाता स्रष्टा च कर्ता हर्ता चतुर्मुख ।१२०।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागति ।
हिरण्यगर्भो गगन पुरुष पूर्वज पिता ॥ १२१
भूतालयो भूतपतिर्भूतिदो भुवनेश्वर ।
सयमो योगविद्धश्रे ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रिय ॥ १२२
देवप्रियो देवनायो दैवज्ञो देवचिन्तक ।
विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धन ॥ १२३
निर्ममो निरहकारो निर्मोहो निरुपप्लव ।
दर्पहा दर्पणो दृप्त सर्वर्तु परिवर्तक ॥ १२४
सप्तजिह्व सहस्रार्चि स्निग्ध प्रकृतिदक्षिण ।
भूतभव्यभवन्नाथ प्रभवो भ्रान्तिनाशन ॥ १२५
अर्थोऽनर्थो महाकोश परकार्यं कपण्डित ।
निष्कण्टक कृतानन्दो मिर्व्याजो व्याजदर्शन ॥ १२६

ब्रह्मा–विष्णु–प्रजापाल–हस–हसगति मतवधा–विधाता–स्रष्टा कर्ता हर्ता–चतुर्मुख–कैलासशिखपूर्वज–पिता–भूतालय–भृतपति–भूतिद–भुवनेश्वर–सयम–योगवित्—श्रद्ध—ब्रमुण्य—ब्राह्मणप्रिय — देवप्रिय—देवनाय–दैवज्ञ—देवचिन्तक–विषमाक्ष—विशालक्ष—वृषद–वृषवर्धन—विर्मम—निरहकार—निर्मोह — निरुपप्लव—दर्पहा—दर्पण—दृप्त—सर्वर्तु परिवर्तक—सप्तजिह्व—सहस्रार्चि—स्निग्ध — प्रकृतिदक्षिण —

भूतभव्य भवन्नाथ—प्रभव—भ्रान्तिनाशन—अर्थ—अनर्थ—महाकोश परकार्यैकपण्डित—निष्कण्टक— कृतानन—निर्व्याज — व्याजदर्शन। ॥१२०।१२६ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्य. कीर्तिस्तम्भः कृतागम. ।
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा लोककर्मकृत् ॥ १२७
श्रीवल्लभः शिवारम्भः शान्तभद्र समञ्जस. ।
भूशयो भूतिकृद्भूतिर्विभूतिर्भूतिवाहन. ॥ १२८
अकातो भूतकायस्थ. कालज्ञानो महापटुः ।
सत्यव्रतो महात्याग इच्छाशान्तिपरायणः ॥ १२९
परार्थवृत्तिवरदो विविक्तः श्रुतिसागर. ।
अनिर्विण्णो गुणग्राही निष्कलङ्क. कलङ्कहा ॥ १३०
स्वभावभद्रो मध्यस्थ शत्रुघ्न' शत्रुनाशन. ।
शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली ॥ १३१
मेखली कञ्चुकी खड्गी माली संसारसारथि ।
अमृत्यु सर्वजित्सिंहस्तेजोराशिर्महामणि' ॥ १३२
असङ्ख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान्कार्यकोविद' ।
वेद्यो वैद्यो वियन्दोप्ता सप्तावरमुनीश्वर. ॥ १३३

सत्त्ववान्—सात्त्विक—सत्य—कीर्तिस्तम्भ—कृतागम — अकम्पित— गुणग्राही—नैकात्मा—लोककर्मकृत्—श्रीवल्लभ—शिवारम्भ—शान्तभद्र— समञ्जस—भूशय—भूति—विभूति—भूति वाहन—अकाय· भूतकायस्थ— कालज्ञान—महापटु—सत्यव्रत—महात्याग—इच्छाशान्ति परायण— परार्थवृत्ति वरद—विविक्त—श्रुतिसागर— अनिर्विण्ण— गुणग्राही— निष्कलङ्क—कलङ्कहा—स्वाभावभद्र—मध्यस्थ—शत्रुघ्न—शत्रुनाशन— शिखण्डी—कवची शूली—जटी—मुण्डी—कुण्डली—मेखली—कञ्चुकी खड्गी—माली—संसार के सारथि—अमृत्यु—सर्वजित्—सिंह—तोजकेः- राशि—महामणि—असङ्ख्येय—अप्रमेयात्मा— वीर्यवान्—कोविद — वेद्य—वैद्य—वियन्दोप्ता—सप्तावर मुनीश्वर। १२७-१३३।

अनुत्तमो दुराधर्षो मधुर प्रियदर्शन ।
सुरेश शरण शर्म सर्व शब्दवता गति ॥ १३४
काल पक्ष करङ्कारि कङ्कणीकृतवासुकि ।
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खल ॥ १३५
द्युमणिस्तरणिर्धन्य सिद्धिद सिद्धिसाधन ।
विवृत्त सवृत शिल्पी व्यूढोरस्को महाभुज ॥ १३६
एकज्योतिर्निरातङ्को नरनारायणप्रिय ।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशन ॥ १३७
स्तव्य स्तवप्रिय स्तोता व्योममूर्तिरनाकुल ।
निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरकृत्रिम ॥ १३८
प्रशान्तबुद्धिरक्षुद्र क्षुद्रहा नित्यसुन्दर ।
ध्येयोऽग्रधुर्यो धात्रीश साकल्य शर्वरीपति ॥ १३९
परमार्थगुरुर्व्यापी शुचिराश्रितवत्सल ।
रसो रसज्ञ सारज्ञ सर्वसत्त्वावलम्बन ॥ १४०

अनुत्तमो—दुराधर्ष—मधुर—प्रियदर्शन—सुरेश—शरण—शर्म-सर्व—शब्दवानो की गति-काल-पक्ष-करङ्कारि क्ङ्कनी कृत वासुकि-महेष्वास—महीभर्त्ता—निष्कलङ्क-विशृङ्खल—द्युमणि—तरणि-धन्य सिद्धिद—सिद्धिसाधन— विवृत-सवृत-शिल्पी- व्यूढोरस्क-महाभुज—एकज्योति-निरातङ्क—नरनारायण प्रिय—निर्लेप—निष्प्रपञ्चात्मा-निर्व्यग्र—व्यग्रनाशन—स्तव्य-स्तव प्रिय—स्तोता—व्योममूर्ति—अनाकुल—निरवद्यपदोपाय-विद्याराशि- अकृत्रिम—प्रशान्तबुद्धि—अक्षुद्र—क्षुद्रहा—नित्यसुन्दर—ध्येय-अग्रधुर्य—धात्रीश—साकल्य—शर्वरीपति-परमार्थ गुरु—व्यापी—शुचि—आश्रितवत्सल—रस-रसज्ञ—सारज्ञ—सर्वसत्त्वा वलम्बन ॥१३४।१४०॥

एवं नाम्ना सहस्रेण तुष्टाव गिरिजापतिम् ।
सपूज्य परया भक्त्या पुण्डरीकैर्द्विजोत्तमा ॥ १४१

जिज्ञासार्थं हरेर्भक्त्या कमलेषु शिवः स्वयम् ।
तत्रैकं गोपयामास कमलं मुनिपुंगवा ॥१४२
हृते पुष्पे तदा विष्णुश्चिन्तयन्किमिदं त्विति ।
ज्ञात्वाऽऽत्मनोऽक्षिमुद्धृत्य पूजयामास शंकरम् ॥ १४३
अथ ज्ञात्वा महादेवो हरेर्भक्तिं सुनिश्चलाम् ।
प्रादुर्भूतो महादेवो मण्डलात्तिग्मदीधिते ॥ १४४
सूर्यकोटिप्रतीकाशस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ।
शूलटङ्कगदाचक्रकुन्तपाशधरो विभुः ॥ १४५
वरकाभयपाणिश्च सर्वाभरणभूषितः ।
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं भगवान्कमलेक्षणः ॥ १४६
पुनर्ननाम चरणौ दण्डवच्छूलपाणिनः ।
दृष्ट्वा शंभुं तदा देवा दुद्रुवुर्भयविह्वला ॥ १४७

इस प्रकार के उपर्युक्त भगवान् शिव के सहस्रनामो का पाठ करने से गिरिजापति की स्तुति की थी और पराभक्ति से भली भाँति पूजन करके हे द्विजोत्तमो ! पुण्डरीको से अभ्यर्चन किया था। श्रीहरि की भक्ति की जानने की इच्छा से कमलो मे भगवान् शिव स्वय ने उनमे एक कमल को गुप्त कर लिया था। हे मुनि श्रेष्ठो ! पुष्प के हृत हो जाने पर उस समय मे विष्णु भगवान् ने चिन्ता की थी कि यह क्या हुआ। अपनी आख को निकाल कर जोकि कमल के ही समान सुन्दर थी जानकर भगवान् शङ्कर की पूजा पूर्ण कर दी थी। १४१-१४३। इसके अनन्तर श्री महादेवजी ने श्री हरि की सुनिश्चल भक्ति को जानकर महादेवजी प्रादुर्भूत हो गये थे और तिग्म दीधिति (सूर्य) के मण्डल से ही उनका प्रादुर्भाव हुआ था। करोडो सूर्यों के समान स्वरूप वाले थे तीन नेत्रो का धारण करने वाले तथा मस्तक म चन्द्र धारण किये हुए थे। शूल–टङ्क–गदा–चक्र–कुन्त और पाश को धारण करने वाले विभु थे।१४४-१४५। भगवान् शिव वरद और अभय दोनो हाथो मे ग्रहण किये हुए थे तथा सब आभूषणो से विभूषित थे। भगवान्

कमलेक्षण ने उन देवों के भी देवेश्वर का दर्शन प्राप्त किया था और फिर उन्होंने शूल पाणि प्रभु के चरणों मे दण्डवत् प्राणिपात किया था। उस समय मे भगवान् शम्भु का दर्शन करके देवगण भय से विह्वल होकर भाग दिये थे। १४६-१४७।

चचाल ब्रह्मभुवन चकम्पे च वसुधरा ।
अधश्चोर्ध्व ततः प्रीते ददाह शतयोजनम् ॥१४८
शम्भोर्भगवतस्तेजस्तद्दृष्ट्वा प्रहसञ्छिवः ।
अब्रवीच्छार्ङ्गिण विप्राः कृताञ्जलिपुट स्थितम् ॥१४६
देवकार्यमिदं ज्ञातमिदानी मधुसूदन ।
दिव्य ददामि ते चक्रमद्भुत तत्सुदर्शनम् ॥१५०
हितार्थं सर्वदेवानां निर्मित यन्मया पुरा ।
गृहीत्वा तद्गुणैर्दैत्याञ्जहि विष्णो ममाऽऽज्ञया ॥१५१
एवमुक्त्वा ददौ चक्र सूर्यायुतसमप्रभम् ।
लोकेषु पुण्डरीकाक्ष इति ख्याति गतो हरिः ॥१५२
पुनस्तमब्रवीच्छम्भुर्नारायणमनामयम् ।
वतानन्यान्सुरश्रेष्ठ वरयस्व यथेप्सितान् ॥१५३
एव शम्भोर्निगदितं श्रुत्वा देवो जनार्दन ।
अब्रवीत्खण्डपरशु प्राञ्जलि प्रणयान्वितः ।।१५४

उस समय मे यह ब्रह्म भुवन चलायमान हो गया था और वसुन्धरा कम्पाय मान हो गयी थी। इसके अनन्तर शम्भु के प्रीत होने पर नीचे और ऊपर के दोनो भाग शत योजन तक दाह से युक्त हो गये थे ।।१४८।। हे विप्रो ! भगवान् शम्भु का तेज देखकर शिव हसते हुए हाथ जोड कर स्थित हुए शार्ङ्गी प्रभु से बोले ! हे मधुसूदन ! इस समय मे जो देवो का कार्य विद्यमान है वह मैंने जान लिया है। मे तुमको परम अद्भुत दिव्य सुदर्शन चक्र प्रदान कर रहा हूँ ॥१४६॥१५०॥ मैंने पहिले देवों के ही हित के कार्य के लिये इसका निर्माण किया था। उसके गुणो से अब हे विष्णो ! मेरी आज्ञा आपको प्राप्त है आप दैत्यो

का दमन करिये ॥१५१॥ इस प्रकार से कहकर सहस्रों सूर्यों के समान प्रभा से समन्वित उस चक्र को प्रदान कर दिया था। लोगों में पुण्डरीकाक्ष—इस ख्याति को तभी से श्री हरि प्राप्त हुए थे ॥१५२॥ फिर शम्भु अनामय नारायण से बोले—हे सुरों में श्रेष्ठ ! अन्य भी अभीप्सित जो भी वरदान तुम्हें चाहिए उनको मुझसे प्राप्त करलो ॥१५३॥ देव जनार्दन ने इस तरह के भगवान शम्भु के कथन का श्रवण करके वे हाथों को जोड़कर प्रणय से सयुत होकर खण्डपरशु प्रभु से बोले ॥१५४॥

भगवन्देवदेवेश परमात्मन्शिवाव्यय ।
निश्चला त्वयि मे भक्तिर्भवत्विति वरो मम ॥१५५
भक्तिर्मयि दृढा विष्णो भविष्यति तवानघ ।
अजेयस्त्रिषु लोकेषु मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥१५६
एवं दत्वा वरं शम्भुर्विष्णवे प्रभविष्णवे ।
अन्तर्हितो द्विजश्रेष्ठा इति देवोऽब्रवीद्रविः ॥१५७
नाम्ना सहस्रं यद्दिव्यं विष्णुना समुदीरितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१५८
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ।
पठन् सर्वभावेन विद्या वा महती भवेत् ॥१५९
जायते महदैश्वर्यं शिवस्य दयितो भवेत् ।
दुस्तरे जलसंघाते यज्जलं स्थलतां व्रजेत् ॥१६०
हारायन्ते महासर्पाः सिंहः क्रीडामृगायते ।
तस्मान्नाम्ना सहस्रेण स्तोतव्यो भगवाञ्छिवः ॥१६१
प्रयच्छत्यखिलान्कामान्देहान्ते च परां गतिम् ॥१६२

श्री विष्णु भगवान् ने कहा—हे भगवन् ! देव देवेश ! हे परमात्मन् हे अव्यय ! मुझे यही वरदान चाहिए कि मेरी निश्चल भक्ति आपके चरणों में होवे ॥१५५॥ ईश्वर ने कहा—हे विष्णो ! आप तो अघों से रहित हैं मेरी दृढ भक्ति आपमें होगी और मेरे ही प्रसाद से आप तीनों

लोकों मे अजेय हो जायेंगे ।।१५६।। श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार प्रभ विष्णु भगवान् विष्णु के लिए शम्भु भगवान् ने वरदान प्रदान करके हे द्विजो ! अन्तर्धान हो गये थे—यह रवि देव ने बतलाया था ।।१५७।। भगवान् विष्णु ने जो शम्भु के सहस्र नामो का समुदीरण किया था वह परम दिव्य था इस शिव सहस नाम को जो भी कोई पढता है या इसका श्रवण किया करता है वह समस्त पापो से विमुक्त हो जाया करता है ।।१५८।। वह सहस्र नाम का वक्ता एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ के यजन का पुण्य फल निश्चित रूप से ही प्राप्त कर लिया करता है । सर्व भाव से इसके पठन करने वाले को महती विद्या प्राप्त हो जाती है ।।१५९।। सहस्र नाम के पढने वाले के पास महान् ऐश्वर्य हो जाया करता है तथा वह फिर भगवान् शिव का प्रिय बन जाता है । इसकी महिमा से जहाँ परम दुस्तर जल का सपात हो वह भी स्थलता को प्राप्त हो जाया करता है ।।१६०।। महान् विषैले सर्प भी हारो के समान आचरण करने वाले हो जाते हैं और सिंह जैसा भी भयानक हिंसक क्रीडा मृग के समान ही आचरण किया करता है । इसी लिये सहस्र नाम के द्वारा ही भगवान् शिव का स्तवन करना चाहिए । इससे परम प्रसन्न होकर भगवान् शिव सम्पूर्ण कामनाओ को प्रदान कर दिया करते है तथा देह के अन्त होने पर परागति दे दिया करते हैं ।।१६१।। ।।१६२।।

।। शिव पूजा विधि ।।

श्रुत शम्भोर्यथा चक्रं प्राप्तवान्पुरुषोत्तमः ।
इदानी श्रोतुमिच्छामः शिवपूजाविधि शुभम् ।।१
शिवपूजाविधि वक्ष्ये सक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।
वक्तु वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण तु ।।२
पुरा मेरुगिरे. शृङ्गे सिद्धगन्धर्वसेविते ।
उक्त सनत्कुमाराय नन्दिना कुलनन्दिना ।।३

तत्राऽर्घ्यो विधिना स्नात्वा समाचम्य यथाविधि ।
पूजास्थानमनुप्राप्य उपविश्याथ बुद्धिमान ॥८
प्राणायामत्रय कृत्वा ध्यायेद्देव सदाशिवम् ।
शरीरशोषण कृत्वा दहन प्लावन ततः ॥९
शैवी तनु समास्थाय न्यासकर्म समाचरेत् ।
योऽय सूत्रात्मको मन्त्रः सर्ववेदात्मक पर. ॥१०
तस्य वर्णाश्च विधिवन्न्यसेत्प्रणवपूर्वकान ।
ब्रह्माणि ततो विन्यस्य ततश्चन्दनवारिणा ॥११
पूजास्थान सुसप्रोक्ष्य द्रव्याणि च मुनीश्वर ।
क्षालन प्रोक्षण चैव प्रणवेन विधीयते ॥१२
स्थापयेत्प्रोक्षणीपात्र पाद्यपात्र तथैव च ।
तथा ह्याचमनीय च ह्यवगुण्ठ्य यथाविधि ॥१३
आच्छाद्य दर्भैर्मतिमास्तेनैवाभ्युक्ष्य वारिणा ।
जल तेषु विनिक्षिप्य द्रव्याणि च तत. क्षिपेत् ॥१४

श्री नन्दिकेश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आज मैं भगवान् शिव की पूजा की विधि को बतलाता हूँ आप उसका श्रवण करिए। मैं इसीलिए यह आपको बतलाता हूँ कि हे मुने ! आप सर्वात्मक श्री महा देव जी के परम भक्त हैं ॥७॥ उसके लिये सर्व प्रथम विधि के सहित स्नान करे और फिर यथा विधि आचमन करके पूजा के स्थान पर प्राप्त होवे और बुद्धिमान् अर्चन को आसन पर समुप विष्ट हो जाना चाहिए ॥८॥ तीन बार प्राणायाम करके सदाशिव प्रभु का ध्यान करना चाहिए। शरीर का शोषण करके फिर इसका दहन और प्लावन करे ॥९॥ शैवी तनु मे समास्थित होकर न्यास कर्म का समाचरण करना चाहिए। जो यह सूत्रात्मक मन्त्र है वह पर और सर्व वेदात्मक है ॥१०॥ उस मनत्र के वर्णो का विधि के सहित प्रणव के साथ न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् ब्रह्मो का विन्यास करके फिर सुगन्धित चन्दन के द्वारा मिश्रित जल से पूजा के स्थान का भली भांति प्रोक्षण

करना चाहिए। हे मुनीश्वर ! जो पूजा के द्रव्य हों उनका क्षालन और प्रोक्षण प्रणव के द्वारा ही करना चाहिए। फिर प्रोक्षणी पात्र और पाद्यपात्र की स्थापना करनी चाहिए। उसी भाँति आचमनीयको यथा विधि अवगुण्ठित करे। मतिमान को दूर्वा से आच्छादन करना चाहिए और उसी जल से अभ्युक्षण करे। और उनमें जल विक्षिप्त करके फिर द्रव्यों को क्षिप्त करे ।।११।।१२।।१३।।१४।।

उशीर चन्दन चैव पाद्यं तु परिकल्पयेत् ।
चूर्णयित्वा सकङ्कोल कर्पूर जातिकाफलम् ॥ १५।
क्षिपेदाचमनीये तु प्रणवेन यथाक्रमम् ।
सर्वत्र चन्दन दद्यादर्घ्यपात्रेऽधुना शृणु ॥ १६
व्रीहीन्यवाश्च पुष्पाणि कुशाग्राणि तथैव च ।
सिद्धार्थानक्षतांश्चैव साज्य च भसित तथा ॥ १७
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकान् ।
प्रक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे प्रणवेन सुधीस्तत ॥ १८
सूत्रेण भवगायत्र्या गायत्र्या च द्विजोत्तम ।
प्रोक्षणीपात्रमादाय सप्रोक्ष्य द्वारपालकौ ॥ १९
पार्श्वतो मा चतुर्बाहु सूर्यायुतसमप्रभम् ।
वानरास्य त्रिनयन पुष्पमालासुशोभितम् ॥ २०
सर्वाभरणशोभाढ्य नन्दीश मप्रपूजयेत् ।
दक्षिणे तु महाकाल घोररूप भयावहम् ॥ २१

उशीर और चन्दन को पाद्य में परिकल्पित करना चाहिए। कङ्कोल के सहित कर्पूर और जाती फल का चूर्ण करना चाहिए ।१५। और यथा क्रम आचमनीय में प्रणव से क्षिप्त करे। अर्घपात्र में सर्वत्र चन्दन देवे और अब आगे जो कुछ करना है उसका श्रवण करो।१६। फिर सुधी पुरुष को व्रीहि यव पुष्प कुशा के अग्रभाग सिद्धार्थ-अक्षत-घृत के सहित भसित-कुश-पुष्प यव व्रीहि बहुमूल तमालक प्रणव के द्वारा इन सबको प्रोक्षणीपात्र में प्रक्षिप्त करे। द्विजोत्तम को सूत्र के

द्वारा-शिव गायत्री के द्वारा और गायत्री मन्त्र के द्वारा प्रोक्षणीपात्रको ग्रहणाकर द्वार माला को सम्प्रोक्षण करना चाहिए ।१७।१८।१६। पार्श्व भाग मे नन्दीश्वर कहते है मुझ को सहस्रो सूर्यों के समान प्रभा वाले-चार बाहुओ से युक्त-वानर के समान मुख से युक्त तीन नेत्रो वाले पुष्पो की माला से सुशोभित सभी आभरणो की शोभा से आढ्य नन्दीश का भली भाँति अर्चन करना चाहिए। दक्षिण भाग मे महाकाल-भयावह घोररूप दाढो से कराल मुख वाले-कालाग्नि के चय के तुल्य का पूजन करना चाहिए ।२०।२१।

दष्ट्राकरालवदन कालाग्निचयसनिभम् ।
पश्चादन्तर्गृंह शभो प्रविश्य सुसमाहित ॥ २२
पश्वपुष्पाञ्जलि दद्याद्ब्रह्मभि पश्वभिमु ने ।
गन्धै पुष्पैर्महादेव भक्त्या सपूजयेद्बु ध ॥ २३
स्कन्द विनायक चैव लिङ्गशुद्धिमथाऽऽरभेत् ।
सूक्तै र्मन्त्रैश्च विधिवन्नमोन्तै प्रणवादिकै ॥ २४
आसन क पयेत्पश्चादैश्वर्यदलपङ्कजे ।
अणिमा पूर्वपत्र स्यात्सर्वज्ञत्वमथेश्वरम् ॥ २५
कर्णिकाया न्यसेद्विप्र वह्नव मण्डल तत ।
सौर सौम्य च विन्यस्य धर्मादीन्वै विदिक्षु च ॥ २६
अधर्मादीस्ततो दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम् ।
तत्वत्रयमथो विद्वास्तत शभु प्रपूजयेत् ॥ २७
स्नापयेद्विधिना देव गन्धयुक्तेन वारिणा ।
पश्चामृत ततो मन्त्रै साधित विधिपूर्वकम् ॥ २८

इसके पश्चात् सुसमाहित होकर भगवान्शम्भु के अन्तर्गृंह मे प्रवेश करके पञ्ज-पुष्पाञ्जलि देदे । हे मुने! पञ्ज ब्रह्मो के द्वारा देना चाहिए । बुध पुरुष को भक्ति के साथ गन्ध और पुष्पा से महादेवजी का पूजन करना चाहिए ।२२।२३। स्कन्द और विनायक देव का भी पूजन करे । इसके अनन्तर लिङ्ग शुद्धि का आरम्भ करना चाहिए । सूक्तो से और

मन्त्रों के द्वारा विधिवत् पूजन करे। जिनमें "मन"-यह तो अन्त में लगावे और अग्नि में प्रणाव लगा देना चाहिए।२४। पीछे ऐश्वर्य हृत-पङ्कज में आसन की कल्पना करनी चाहिए। अणिमा पूर्व पत्र होगा और इसके पश्चात् सर्वशत्व ईश्वर होगे। २५। हे विप्र ! इसके अनन्तर कर्णिका में वह्नि के मण्डल का न्यास करना चाहिए। सौर और सौम्य का विन्यास करे तथा विदिशाओं में धर्म आदि का न्यास करना चाहिए।२६। इसके पश्चात् दिशाओं में अधर्म आदि का न्यास करे और सोम के अन्त में तीनों गुणों को विन्यस्त करना चाहिए। इसके पश्चात् विद्वान तीनों तत्वों का विन्यास करना चाहिए। फिर भगवान् शम्भु का पूजन करना चाहिए।२७। विधि से देव का स्नान करावे और स्नान का जल गन्ध से युक्त ही होना चाहिए। फिर पञ्चामृत का का साधन मन्त्रों से ही करना चाहिए। और विधि विधान के साथ ही उसे करना चाहिए।२८।

स्नापयेत्प्रणवेनैव तथाऽऽदौ पयसा मुने ।
आज्येन मधुना दध्ना तथा चेक्षुरसेन च ॥ २९
जलस्य शुद्धि विधिवन्मन्त्रैः कुर्यादनेकश ।
सद्वाद्य सितवस्त्रेण स्नापयेदिन्दुशेखरम् ॥ ३०
कुशापामार्गकर्पूरजातीचम्पकपुष्पकैः ।
करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः ॥ ३१
आपूर्य पुष्पैः सुशुभैश्चन्दनाद्यैश्च तज्जलम् ।
सद्योजातादिकास्तत्र विन्यसेद्ब्रह्माण सुत ॥ ३२
सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन च ।
शङ्खेन मृन्मयेनाथ शोभितेन शुभेन च ॥ ३३
सकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
पवमानेन रुद्रेण तथा वामीयकेन च ॥ ३४
त्वरितास्येन रुद्रेण नीलरुद्रेण वा पुनः ।
अथर्वशिरसा वाऽपि रुद्रेण च तथैव च ॥ ३५

हे मुने ! प्रणव के ही द्वारा स्नान कराना चाहिए। उसमे आदि मे जल से स्नपन करावे। फिर आज्य से मधु से-दधि से तथा ईख के रस से स्नान करावे।२६। फिर विधि पूर्वक अनेक वार जल की शुद्धि भक्तो के द्वारा करावे। श्वेत वस्त्र से भली भाँति छादम करके ही इन्दु शेखर भगवान् का स्नान कराना चाहिए।३०। हे ब्रह्माजी के पुत्र ! कुशा-अपा मार्ग-कपूर-जाती-चम्पा कर बीर और सित पुष्पों से तथा मालिका और कमलो त्पलो से पूरित करके सुन्दर पुष्पो से और चन्दनादि से उस जल को युक्त करे। उसमे सद्योजातादिक का विन्यास करना चाहिए।३१।३२। सुवर्ण के कलश से-चादी के से-शङ्ख से-मृत्तिका से निर्मित पात्र से किसी से भी जो शोभित हो और शुभ हो कूर्च कोस हित और पुष्पो से युक्त से मन्त्रो के साथ स्नान कराना चाहिए। पवमान रुद्र से-तथा वामीयक से त्वरित नाम वाले रुद्र मे अथवा नील रुद्र मे अथवा अथर्व शिर मे तथा रुद्र से स्नपन करावे।।३३।३४।।

रथन्तरेण पुण्येन श्रीसूक्तेनाथवा मुने।
पौरुषेण च सूक्तेन ज्येष्ठसाम्ना च विष्णुना ।।३६
पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्वापि सूत्रेण प्रणवेन वा।
स्नापयेद्देवदेवेश सर्वयज्ञफलाप्तये ।।३७
वस्त्र यज्ञोपवीते च तथा ह्याचमनीयकम्।
मुकुट च शुभ भद्र तथा वै भूषणानि च ।।३८
मुखवास च नैवेद्य सर्वं वै प्रणवेन च।
तत स्फटिकसकाश देव निष्कलमक्षरम् ।।३९
कारण सर्वलोकाना सर्वलोकमय परम्।
ब्रह्मणा विष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम् ।।४०
वेदविद्भिर्हि,वेदान्तैरगोचरमिति श्रुतम्।
आदिमध्यान्तरहित भेषज भवरोगिणाम् ।।४१
शिवलिङ्गमिति ख्यात शिवलिङ्गे व्यवस्थितम्।
प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिङ्गमूर्धनि ।।४२

पुण्य रथन्तर से हे मुने ! अथवा श्री सूक्त से और पुरुष सूक्त से और ज्येष्ठसाम से विष्णु से पाँच ब्रह्मो मे—सूत्र से अथवा केवल प्रणव से देवेश्वर का स्नपन कराना चाहिए । जिससे सब यज्ञों के पुण्य फल की प्राप्ति होवे ॥३६॥३७॥ वस्त्र-यज्ञोपवीत-आचमनीय भद्र-शुभ मुकुट-तथा भूषण मुखावास ताम्बूलादि-नैवेद्य ये सभी प्रणव से समर्पित करे । इसके पश्चात् स्फटिक के सदृश निष्कल अक्षर देवश को जो सब लोको के कारण सर्व लोकमय परम हैं तथा ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र आदि के द्वारा देवो के भी अगोचर हैं । जो वेदो के ज्ञाताओ के द्वारा वेदान्तो से ही वे गोचर हैं—यह श्रुत है । जो आदि मध्य और अन्त से रहित हैं और जो भव के रोगियो के भेषज हैं वह शिव लिङ्ग इस नाम से विख्यात है और शिव लिङ्ग मे व्यवस्थित हैं । लिङ्ग के मस्तक मे प्रणव मन्त्र से ही पूजन करना चाहिए ॥३८-४२॥

स्तोत्रं स्तुत्वा महादेव प्रणिपत्य प्रदक्षिणम् ।
पुनरर्घ्यं च वै दत्त्वा पुष्पाणि च विकीर्य वै ॥४३
पादयोर्देवदेवस्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।
एव सक्षिप्य कथित ब्रह्मसूनो शिवार्चनम् ॥४४
सर्ववेदेषु यद्गुह्य यथा शम्भोर्मया श्रुतम् ॥४५
सनत्कुमारो भगवाञ्छ्रुतवान्यच्छिवार्चनम् ।
नन्दीश्वराद्भगवतस्तन्मया कथित द्विजा ॥४६
य· पठेत्प्रयतो भक्त्या शिवार्चनविधिक्रमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥४७

स्तोत्रो के द्वारा स्तवन करके और महादेव जी की प्रदक्षिणा एव प्रणिपात करके फिर अर्घ्य देवे और पुष्पो का विकिरण करे ॥४३॥ देवो के देव के चरणो मे प्रणिपात करके विसर्जित करे । हे ब्रह्म सुनो ! इस प्रकार से सक्षेप करके भगवान् शिव का अर्चन कह दिया है । यह सभी वेदो मे भी परम गोपनीय है । जैसा मैंने भगवान् शम्भु से सुना है ॥४३-४५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो ! भगवान् सनत्कुमार ने

जो शिवार्चन भगवान् नन्दीश्वर के मुख से सुना था वह मैंने कह दिया है।।४६।। जो प्रयत होकर भक्ति से इस शिव के अर्चन की विधि के क्रम को पढता है वह सभी पापो से निर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक मे प्रतिष्ठित होता है ।।४७।।

।। दुर्वा-गणपति व्रत कथन ।।

अन्यद्व्रत पापहर धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
उमामहेश्वर नाम व्रत त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।१
पौर्णमास्याममावास्या चतुर्दश्यष्टमी(?) तथा ।
कार्यमेतासु तिथिषु नक्तमेतद्द्विजोत्तमा ।।२
ब्रह्मचारी हविष्याशी सत्यवादी सुसयमी ।
वर्षान्ते प्रतिमा कार्या हेम्ना वा रजतेन च ।।३
पञ्चामृतैस्तु सस्नाप्य पूजयेद्विधिवद्द्विजा ।
वस्त्रै पुष्पैरलकृत्य भक्ष्यैर्नानाविधै शुभै ।।४
ध्वजैर्वितानैश्चमरैर्यथा शोभा प्रकल्पयेत् ।
आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणै ।।५
भक्त्या च दक्षिणा दद्याद्विप्रभक्तांश्च भोजयेत् ।
शैवमेक तु सभोज्य शतभोज्यफल लभेत् ।।६
सत्य सत्य पुन सत्य देवस्य वचन यथा ।
प्रतिमा पूजिता पश्चात्तास्त्र रात्रि सुनिर्मले ।
निधाय सितवस्त्रेण सछाद्य शिरसा नमेत् ।
शङ्खतूर्यादिनिर्घोषे शिवस्याऽऽयतन महत् ।
पुनर्वेद्या सुमस्थाप्य व्रत शम्भोर्निवेदयेत् ।।८

सूतजी ने कहा—अन्य व्रत पापो के हरण करने वाला होता है और धर्म-काम अर्थ और मोक्ष का प्रदान करने वाला होता है । उमा महेश्वर नाम का व्रत त्रैलोक्य मे प्रसिद्ध है ।।१।। हे द्विजोत्तमो ! पौर्णमासी अमावस्या चतुर्दशी अष्टमी इन तिथियो मे रात्रि मे यह व्रत

करना चाहिये ॥२॥ व्रत करने वाला ब्रह्मचारी हविष्य के खाने वाला-सत्य बोलने वाला-सुसयमी होना चाहिए। वर्षान्त मे सुवर्ण से अथवा चाँदी से प्रतिमा बनानी चाहिए ॥३॥ हे द्विजो! पञ्चामृत से स्नान कराकर उसका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए वस्त्रो और पुष्पो से अलकृत करके-शुभ भक्ष्य और नाना प्रकार के शुभ भोग्यो से ध्वजा-वितानो से और चमरो से शोभा की कल्पना करे। भक्ति भाव से आचार्य की पूजा वस्त्र-अलकार-भूषणो से करनी चाहिए ॥४॥५॥ भक्ति से दक्षिणा देवे और जो शिव के भक्त पुरुष हो उनको भोजन कराना चाहिए। एक शिव के भक्त के भोजन कराने से सौ विप्रो के जिमाने के समान फल मिला करता है ॥६॥ यह सत्य है और पुन. सत्य है तथा इसी तरह से सत्य है जैसे देवता के वचन परम सत्य हुआ करते हैं। पूजित प्रतिमा को पीछे सुनिर्मल ताम्र के पात्र मे रखकर सफेद वस्त्र से ढाँककर शिर से उनका नमन करे। शख तूर्य आदि वाद्यो से भगवान् शिव का महत् आयतन बनवावे। पुन उनको वेदी मे सस्थापित करके भगवान् शम्भो के लिये व्रत को निवेदित करना चाहिए ॥७-८॥

शिव प्रदक्षिणीकृत्य पश्चाद्देव क्षमापयेत् ॥९
श्रद्धया य करोतीद व्रत त्रिदशपूजितम् ।
सूर्यायुतप्रतीकाश विमान सार्वकामिकम् ॥१०
आरुह्य स्त्रीसहस्रैश्च गणैर्नानाविधैर्वृतः ।
याति माहेश्वर स्थान यत्र गत्वा न शोचति ॥११
तत्र माहेश्वरान्भोगान्भुक्त्वा कल्पशतत्रयम् ।
तदन्ते वैष्णवान्भोगान्भुङ्क्ते विष्णोः समीपतः ॥१२
पश्चाद्भोगसमायुक्तो ब्रह्मलोके महीते ।
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्ट प्राजापत्यान्समश्नुते ॥१३
तस्माल्लोकाच्च्युतः पश्चात्सर्वलोकनमस्कृत. ।
सोमलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥१४

भगवान् शिवजी की परिक्रमा करके पीछे उनसे इस प्रकार से क्षमापन की याचना करनी चाहिए ॥९॥ जो मनुष्य इस विधि (देवों) के द्वारा इस व्रत को किया करता है वह अयुत (दस हजार) सूर्यों के समान सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले विमान पर समारोहण करके सहस्रों स्त्रियों के सहित और अनेक प्रकार के गणों से परिवृत होकर सीधा माहेश्वर के स्थान को चला जाया करता है वहाँ पर जाकर फिर चिन्ता नहीं किया करता है ॥१०॥११॥ वहाँ पर तीन सौ कल्पों पर्यन्त माहेश्वर भोगों का उपभोग करके उसके अन्त में वैष्णव भोगों को भगवान् विष्णु के समीप में स्थित रहता हुआ किया करता है ।१२। पीछे भोगों से समायुक्त होता हुआ ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर प्राजापत्य भोगों का आनन्द ग्रहण करता है ॥१३॥ उस लोक से भी च्युत होकर पीछे सब लोकों के द्वारा वन्दित हुआ चन्द्रलोक को प्राप्त कर यथोचित भोगों का भोग करता है ॥१४॥

सोमादैन्द्रगन्धर्वयक्षलोकमनुत्तमम् ।
भुक्त्वा तत्र महाभागास्तदन्ते मेरुमूर्धनि ॥१५
तदन्ते लोकपालानां लोकानासाद्य मोदते ।
ततः कर्मविशेषेण पृथिव्यामेकराड्भवेत् ॥१६
उमामहेश्वरं नाम व्रतं सर्वसुखप्रदम् ।
शङ्करेण पुरा गीतं पार्वत्यां षण्मुखस्य च ॥१७
अगस्त्यः षण्मुखाल्लब्ध्वा प्राप्तवान्मे गुरुस्ततः ।
द्वैपायनान्मुनिवरात्प्राप्तवानहमुत्तमम् ॥१८
अन्यच्छूलव्रतं नाम शृणुध्वं मुनिपुंगवाः ।
अमावास्यां निराहारो भवेदब्दं सुसंयमी ॥१९
शूलं पिष्टमयं कृत्वा वर्षान्ते विनिवेदयेत् ।
शिवाय राजतं पद्मं सुवर्णं स्वर्णनिर्मितम् ॥२०
भक्त्या तु विन्यसेन्मूर्ध्नि सम्पूज्य तु पूर्ववत् ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥२१

इस रीति से सोम-गन्धर्व-देवेन्द्र और सर्वोतम यक्ष लोक मे भोग भोगकर इसके अन्त मे सुमेरु गिरि के मस्तक पर रहता है। उसके अन्त मे लोक शुभ कर्मों के प्रवशिष्ट रहने से वह इस पृथिवी में एक रुद्र (सम्राट्) होता है ॥१५॥१६॥ यह उमा महेश्वर नाम वाला व्रत सर्व सुखो का प्रदान करने वाला है। पहिले भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से फिर उन्हो ने षण्मुख को बतलाया था। अगस्त्य मुनि ने षण्मुख जी के मुख से इसको प्राप्त किया था। उनसे मेरे गुरुजी ने इसे प्राप्त किया था। उन महा मुनिवर द्वैपायन जी से मैंने इस उत्तम व्रत को प्राप्त किया था ॥१७॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठो! मुझ से आप लोग एक शूल व्रत का श्रवण करिए। अमावस्या के दिन निराहार रह कर एक वर्ष तक सुसयमी रहना चाहिए ॥१९॥ शूल को पिष्टमय करके वर्षान्त मे निवेदित करे। शिव के लिये राजत (चादी का) पद्म जिसमे सुवर्ण की कर्णिका हो निवेदित करे और मस्तक पर भक्ति से विन्यास करना चाहिए। शेष सब कुछ कृत्य पूर्व व्रत के ही समान होते हैं। इस व्रत के करने वाला ब्रह्म हत्या आदि महापापो से मुक्त हो जाता है और अन्त मे वह परागति को प्राप्त किया करता है ॥२०॥२१॥

लोकान्पूर्वोदितान्प्राप्य तदन्ते पृथिवीपतिः ।
पूर्णमास्याममावास्यामब्दमेकं दृढव्रत. ॥२२
वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्या प्रतिमा विनिवेदयेत् ।
पूर्ववत्फलमाप्नोति व्रतेनानेन वै द्विजाः ॥२३
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासी जितेंद्रियः ।
सर्वभोगसमायुक्त शिवलोके महीयते ॥२४
क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
शिवपूजाऽग्निहवन सतोषाऽस्तेयता तथा ॥२५
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥२६
अन्यद्व्रतं पापहरं शृणुध्व मुनिपुंगवाः ।
षण्मुखस्य पुरा प्रोक्तं देवदेवेन शम्भुना ॥२७

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
प्रणम्य विधिवद्भक्त्या पप्रच्छ गिरिजासुतः । २८

पूर्व में वर्णित लोकों को प्राप्त करके उसके अन्त में पृथिवी का पति होता है । पूर्णमासी-अमावस्या में एक वर्ष तक दृढव्रत वाला पुरुष वर्ष के अन्त में समस्त गन्धों से समन्वित एक प्रतिमा की रचना करावे और उसे विनिवेदित कराना चाहिये । हे द्विजो ! इस व्रत से पूर्व के ही समान पुण्य फल प्राप्त किया करता है ॥२२॥२३॥ अष्टमी और चतुर्दशी में उपवास करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष सब भोगों से समायुक्त होकर शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२४॥ सभी व्रतों में यह धर्म सामान्य है जो दश प्रकार का कहा गया है ॥२५॥ क्षमा-सत्य-दया-दान-शौच-इन्द्रिय-निग्रह-शिवपूजा-अग्नि में हवन-सन्तोष-अस्तेयता ये ही वे दश प्रकार के धर्म के लक्षण माने गये हैं ॥२६॥ हे मुनि पुङ्गवो ! अन्य जो व्रत हैं वे सब पापों के हरण करने वाले ही हुआ करते हैं । इसे आप सुन लीजिए । देवों के देव शम्भु ने पहिले षण्मुख को यह बतलाया था ॥२७॥ गिरिजा के सुत ने कैलास पर्वत की शिखर पर समासीन-जगत् के गुरु देवदेव से प्रणाम करके विधिपूर्वक भक्ति की भावना से यह पूछा था ॥२८॥

केन व्रतेन भगवन्सौभाग्यमतुलं भवेत् ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं मनुजः सुखमेधते ॥२६
तन्मे वद महादेव व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
येन चीर्णेन देवेश नरो राज्यं च विन्दति ॥३०
राज्ञीव जायते नारी अपि दासकुलोद्भवा ।
राजपुत्रो जयेच्छत्रून्गरुड पन्नगानिव ॥३१
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसं प्राप्य सर्वाधिको भवेत् ।
वर्णाश्रमविहीनोऽपि सोऽपि सिद्धिं च विन्दन्ति ॥३२
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
अस्ति दूर्वागणपतेर्व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥३३

भगवत्या पुरा चीर्णं पार्वत्या पद्मया सह ।
सरस्वत्या महेन्द्रेण विष्णुना धनदेन च ॥३४
अन्यैश्च देवैर्मुनिभिर्गन्धर्वैः किन्नरैस्तथा ।
चीर्णमेतद्व्रतं सर्वैः पुराकल्पे षडानन ॥३५

श्रीस्कन्दजी ने कहा—हे भगवन् ! कौनसा ऐसा व्रत है जिसके करने से अतुल सौभाग्य होता है । पुत्र-पौत्र-धन और ऐश्वर्य का सुख मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥२६॥ हे महादेव ! वही मुझे आप सब व्रतों मे उत्तम जो व्रत हो उसको बतलाने की कृपा कीजिये । हे देवेश्वर ! जिस व्रत के चीर्ण कर लेने पर मनुष्य राज्य की प्राप्ति का लाभ लिया करता है ॥३०॥ चाहे दास कुल मे ही क्यों न जन्म ग्रहण किया हो नारी एक रानी के ही समान हो जाया करती है । राजपुत्र अपने शत्रुओं को गरुड जैसे सर्पों को जीत लेता है वैसे ही जीत लेता है ॥३१॥ ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करके सबसे अधिक तेजस्वी हो जाया करता है । कोई वर्णों और आश्रमों से हीन भी हो तो भी सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है ॥३२॥ ईश्वर ने कहा—हे वत्स ! सुनो, मैं व्रतों मे उत्तम व्रत बतलाता हूँ । दूर्वागणपति का व्रत त्रिलोकी मे प्रसिद्ध व्रत होता है ॥३३॥ पहिले इस व्रत को भगवती ने पार्वती और पद्मा के साथ चीर्ण किया था । इस व्रत को सरस्वती देवी ने भी किया था तथा महेन्द्र-विष्णु और धनद (कुबेर) ने भी किया था । इनके अतिरिक्त अन्य देवों ने—मुनियों ने—गन्धर्वों ने तथा किन्नरों ने इस व्रत को किया था । हे षडानन ! पहिले कल्प मे ही सबने इस व्रत को चीर्ण किया था ॥३४॥३५॥

चतुर्थी या भवेच्छुक्ला नभोमासस्य पुण्यदा ।
तस्या व्रतमिदं कुर्यात्कार्तिक्या वा षडानन ॥३६
गजाननं चतुर्बाहुमेकदन्तं विनायकम् ।
विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेमपीठागमस्थितम् ॥३७

तथा हेममयी दूर्वा तदाधारे व्यवस्थिताम् ।
सस्थाप्य विघ्नहर्तारं कलशे ताम्रभाजने ॥३८
वेष्टित रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले ।
पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभिः ॥३९
बिल्वपत्रमपामार्गं शमी दूर्वा हरिप्रिया (?) ।
अन्यैः सुगन्धिकुसुमैं पत्रिकाभिः सुगन्धिभिः ॥४०
फलैश्च मोदकैः पश्चादुपहारं प्रकल्पयेत् ।
यथावदुपचारैस्तु × पूजयामि जगत्पते ॥४१

जो नमो मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी होती है वह परम पुण्य ही होती है उसमे इस व्रत को करना चाहिए अथवा कार्तिक की चतुर्थी मे करना चाहिऐ । षडानन ! गजानन—चार भुजाओ से युक्त एक दाँत वाले त्रिपाटित प्रतिमा बनाकर सुवर्ण से निर्मित करे और विघ्नेश प्रभु को हेम के पीठासन पर स्थित करना चाहिए ॥३६॥३७॥ तथा हेममयी दूर्वा को उनके आधार पर व्यवस्थित करे । फिर विघ्न कर्ता को ताम्र के पात्र कलश मे सस्थापित करे और रक्त वर्ण के वस्त्र से वेष्टित करके सर्व तो भद्र मण्डल मे रक्त वर्ण के कुसुमो से और पाँच पत्रिकाओ से पूजन करना चाहिए ॥३८॥३९॥ बिल्व पत्र—अपामार्ग—शमी—दूर्वा —हरि प्रिया तथा अन्य सुगन्धित पुष्पो से और सुगन्ध वाली पत्रिकाओ से—फलो—मोदको से पीछे उपहार की प्रकल्पना करनी चाहिए । हे जगत्पते ! मैं यथावत् प्राप्त उपचारो से आपका पूजन कर रहा हूँ—यह प्रार्थना करनी चाहिए ॥४०॥४१॥

इत्युक्त्वा श्रद्धया नूनं पूजयेन्द्रिरिजासुतम् ।
एह्येहि देव हेरम्ब विघ्नराज गजानन ॥
उपविश्याऽऽसनं देव सर्वकामप्रदो भव ॥४२
उमासुत नमस्तुभ्यं विश्वव्यापिन्सनातन ।
विघ्नौघं छिन्धि सकलमर्घ्यं पाद्यं ददामि ते ॥४३

गणेश्वराय देवाय उमापुत्राय वेधसे ।
पूजामय प्रयच्छामि गृहाण भगवन्नम ॥४४
विनायकाय शूराय वरदाय गजानन ।
उमासुताय देवाय कुमारगुरवे नमः ॥४५
लम्बोदराय वीराय सर्वविघ्नौघहारिणे ॥४६
उमाङ्गमलसम्भूत दानवानां वधाय वै ।
अनुग्रहाय लोकानां स देवः पातु विश्वभुक् ॥४७
परज्योतिः प्रकाशाय सर्वसिद्धिप्रदाय च ।
तुभ्यं दीपं प्रदास्यामि महादेवात्मने नमः ॥४८
गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥४९

इतना निवेदन करके श्रद्धा से निश्चय ही गिरिजा के सुत का पूजन करना चाहिए। हे देव! हे रम्य! हे विघ्न राज! हे गजानन! आइए आइए। हे देव! आसन पर उपविष्ट होकर समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले हो जाइए। यह आवाहन का मन्त्र है। हे उमा सुत! हे विश्व व्यापिन्! हे गजानन! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है। अन्य मेरे सब विघ्नों के आघ का छेदन कर दीजिए। मैं आपको अर्घ्य और पाद्य अर्पित कर रहा हूँ। यह अर्घ्य और पाद्य का मन्त्र है ॥४२॥४३॥४४॥ गणेश्वर देव-वेधा-उमा के पुत्र के लिए पूजा अर्पित कर रहा हूँ। हे भगवान! आप इसको ग्रहण कीजिए। आपके लिए मेरा नमस्कार है। यह गन्ध का मन्त्र है ॥४४॥ विनायक-शूर-वरद-उमा सुत-देव-और कुमार गुरु के लिए हे गजानन! मेरा नमस्कार है। लम्बोदर-वीर और सब विघ्नों के समुदाय के हरने वाले प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है। यह पुष्प अर्पण करने का मन्त्र है ॥४५॥४६॥ उमा के अङ्ग के मल से समुत्पन्न दानवों के वध के लिये और लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के

लिए है आप सभूत हुए हैं। हे विश्वमुक देव ! वही आप मेरी रक्षा कीजिए ॥४७॥ यह धूप देने का मन्त्र है। परम ज्योति के प्रकाश के लिये और सब प्रकार की सिद्धियो को प्रदान करने के लिए समुत्पन्न आपको मैं यह दीप अर्पित करता हू जोकि आप श्री महादेव जी के आत्मा हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है। यह दीप का मनज है ॥४८॥ गणो के गणपति आपको हम आवाहन करते हैं। आप कवियो मे भी श्रेष्ठ कवि हैं आप यहा पधारिए। हे ब्रह्मणस्पते ! ब्रह्मों के आप ज्येष्ठ राज है। हमारी प्रार्थनाओं का श्रवण करते हुए आप हमारे इस स्थल पर विराजमान होइए यह उपहार मन्त्र है ॥४९॥

गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरीपुत्र गजानन।
व्रत सपूर्णता यातु त्वत्प्रसादादिभानन ॥५०

एव सपूज्य विघ्नेश यथा विभवविस्तरै ।
सोपास्कर गणाध्यक्षमाचार्याय निवेदयेत् ॥५१

गृहाण भगवन्ब्रह्मन्गणराज सदक्षिणम् ।
व्रत त्वद्वचनादद्य सपूर्ण यातु सुव्रत ॥५२

एव य पञ्च वर्षाणि कृत्वोद्यापनमाचरेत् ।
ईप्सितांल्लभते कामान्देहान्ते शाकर पदम् ॥५३

अथवा शुक्लपक्षस्य चतुर्थ्यां सयनेन्द्रिय ।
कुर्तार्द्दर्पनम्र त्वेव सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४
उद्यापन बिना यस्तु करोति व्रतमुत्तमम् ।
तेन शुक्लतिलै कार्यं प्रात स्नान षडानन ॥५५
हेम्ना वा रजतेनापि कृत्वा गणपति बुध ।
पञ्चगव्यैश्च सुस्नाप्य दूर्वाभि सप्रपूजयेत ॥५६
मन्त्रैश्च दशभिर्भक्त्या दूर्वायुक्तै शिखिध्वज ।
इत्येव कथित वत्स वर्वसिद्धिप्रद शुभम् ॥
व्रत दूर्वागणपते किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥५७

हे गणेश्वर ! हे गणाध्यक्ष ! हे गौरी के पुत्र ! हे गजानन ! यह मेरा पूर्णता को आपके अनुग्रह से प्राप्त होवे। यह प्रार्थना कामना है। ॥५०॥ इस प्रकार से विघ्नेश का पूजन करके जो जैसा भी आपके पास वैभव हो उसी के अनुसार भजन करना चाहिए और फिर सब सामान के सहित गणाध्यक्ष प्रभु की प्रतिमा को अपने आचार्य के लिये निवेदित करना चाहिए ॥५१॥ हे भगवान ! हे ब्रह्मन ! इन गणराज प्रभु को आप दक्षिणा के सहित ग्रहण कीजिए। हे सुव्रत ! आज यह मेरा व्रत आप के वचनाशीर्वाद से सम्पूर्णता को प्राप्त हो जावे। यह दान देने का मन्त्र है। इसे बोल कर ही आचार्य को दान देना चाहिए ॥५२॥ इस प्रकार से जो कोई पांच वर्षों तक करके उद्यापन का आरम्भ करता है वह पुरुष इस व्रत के समाचरण से अपने अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और अन्त में भगवान शङ्कर के पद को प्राप्त हुआ करता है ॥५३॥ अथवा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में संयत इन्द्रियों वाला होकर इस प्रकार से तीन वर्ष तक करे तो सर्व सिद्धि को पा जाया करता है ॥५४॥ जो कोई मनुष्य बिना ही उद्यापन के इस उत्तम व्रत को किया करता है उसको हे षडानन ! यह शुक्ल तिथि ही में करना चाहिए और प्रातः काल में स्नान करो। बुध पुरुष को सुवर्ण या चांदी से गणपति की प्रतिमा की रचना करनी चाहिए। पञ्चगव्यों से भली भांति सुस्नपन कराकर फिर दूर्वाओं से उनका पूजन करना चाहिए ॥५५॥५६॥ हे शिखिध्वज ! भक्ति से भगवो के और दूर्वाओं के द्वारा पूजन करें। हे वत्स ! यह इस प्रकार से सब सिद्धियों का देने वाला परम शुभ व्रत मैंने बता दिया है। यह दूर्वा गणपति का व्रत है। अब और क्या मुझसे तुम श्रवण करना चाहते हो ? ॥५७॥

।। शिवालय करणादि फल कथन ।।

मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैः कृत्वा शिवालयम् ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्गो वक्तुमिहार्हसि ।।१

शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।
शिवालयस्य करणादनन्तफलमुच्यते ।।२

अपि लोष्टमयं वाऽपि यः करोति शिवालयम् ।
सर्वयत्नेन विप्रेन्द्रा धर्मकामार्थमुक्तये ।।३

कैलासाख्यं च यः कुर्यात्प्रासाद परमेष्ठिनः ।
मेर्वाख्यं मन्दराख्यं वा तुहिनाद्रिमथापि वा ।
निषधाद्रिं च नीलाद्रिं महेन्द्राख्यं द्विजोत्तमाः
स तत्पर्वतसकाशैर्विमानै सार्वकामिकैः ।।५
गत्वा शिवपद दिव्यं शिववन्मोदते चिरम् ।
महाप्रलयपर्यन्तं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।।६
तदन्ते विषयास्त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्
पतित खण्डितं वाऽपि जीर्णं वा स्फुटित तथा ।।७

ऋषियो ने कहा—मृत्तिका से आदि लेकर रत्नो पर्यन्त एक शिवालय की रचना कराकर जो पुण्य फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उसको आप हमको बतलाने के लिये समर्थ है ।।१।। श्री सूत जी ने कहा—हे समस्त ऋषि गणो ! अब आप परमेष्ठी प्रभु का प्रभाव सुनिये ! शिवालय की रचना करने से अनन्त फल बतलाया जाता है ।।२।। जो भी कोई चाहे लोष्ठमय ही एक शिवालय की रचना करता है हे विप्रेन्द्रो वह सर्व प्रयत्नो से धर्म काम और अर्थ तथा मुक्ति के लिये ही हुआ करता है ।।३।। कैलास नाम वाला जो परमेष्ठी का प्रासाद कोई बनाता अथवा मेरु नाम से युक्त—मन्दर नाम वाला या तुहिन गिरि नाम वाला—निषधाद्रि—महेन्द्र-नीलाद्रि नाम से युक्त शिवालय हे द्विजोत्तमो! कोई बनवाता है जो कि अत्युत्तम हो वह मनुष्य पर्वत के सदृश सर्व

कामिक विमानो के द्वारा ही परम दिव्य शिव पद को जाकर भगवान शिव की ही तरह चिर काल तक परम प्रसन्न रहा करता है। वह महा प्रलय तक वहा पर यथोप्सित भोगो का भोग किया करता है। इसके अन्त मे सब विष्टयों की त्याग करके भगवान शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लिया करता है। चाहे वह पतित खण्डित—जीर्ण अथवा स्फुटित कैसा ही क्यों न होवे ॥४। ५॥६॥७॥

कारयेत्पूर्ववद्यस्तु सुधाद्यै सुमनोहरै ।
प्राकार मण्डप वाऽपि प्रासाद गोपुर तथा ॥८॥
कर्तु रभ्यधिक पुण्य लभते नात्र सशय ।
वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नर कर्म शिवालये ॥९॥
य प्रयाति न सदेह स्वर्गलोके सबान्धव ।
यश्चाऽऽत्मभोगसिद्ध्यर्थमपि रुद्रालये सकृत् ॥१०॥
कर्म कुर्याद्यदि सुख लब्ध्वा सोऽपि प्रमोदते ।
यदाऽशक्तो भवेन्मर्त्य प्रासाद कर्तु मीश्वरे ॥११॥
समार्जनादिभिर्वाऽपि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
समार्जन तु य कुर्यान्मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया ॥१२॥
चान्द्रायणसहस्रस्य फल मासेन लभ्यते ।
शिवस्य पुरतो वह्नि सम्स्थाप्याभ्यर्च्य शकरम् ॥१३॥
जुहुयादात्मनो देह य स याति शिव पदम् ।
शिवक्षेत्रे निराहारो भूत्वा प्राणान्परित्यजेत् ॥१४॥

जो पूर्ववत् उस शिवालय का उद्धार करके प्यार करा देता है और सुधा आदि पुतवा देता है और परम सुन्दर पदार्थों से विरचित करा देता है, उसका प्राकार-मण्डप-प्रासाद और गोपुर बनवा देता है। उस कराने वाले को अधिक पुण्य प्राप्त हुआ करता है—इसम कुछ भी सशय नहीं है। अथवा वृत्ति के लिये मनुष्य शिवालय में कर्म करे। जो ऐसा करता है वह बान्धवों के सहित स्वर्गलोक मे गमन किया करता है—इसमे सन्देह नहीं है। जो आत्म भोगो की सिद्धि के लिये

भी रुद्रालय मे यदि एक बार कर्म करे तो वह सुख प्राप्त करके वह भी परम प्रसन्न होता है। जब मनुष्य असक्त हो कि ईश्वर के प्रासाद का निर्माण न कर सके तो शिवालय मे समाजन आदिकी सेवा करने मे भी समस्त कामनाओ की प्राप्ति कर लिया करता है। जो मनुष्य मृदु सूक्ष्मा मार्जनी से समार्जन किया करता है वह एक मास मे एक सहस्र चान्द्रायण व्रतों का फल प्राप्त कर लिया करता है। भगवान् शिव के आगे वृद्धि की सम्थापना करके शङ्कर का अभ्यर्चन करे और अपने देह की आहुतियां देता है वह भी शिवजी के पद को प्राप्त किया करता है। भगवान् शिव के क्षेत्र मे निराहार होकर जो प्राणो का परित्याग किया करता है वह परमेष्ठी के प्रसाद से शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। ॥८-१४॥

शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादात्परमेष्ठिन ।
अथाऽऽत्मचरणौ छित्वा शिवक्षेत्रे वसेन्नर ॥१५॥
देहान्ते शिवसायुज्य लभते नात्र सशय ।
फल यदश्वमेघस्य तदेव क्षेत्रदर्शनात् ॥१६॥
शताधिक प्रवेशाच्च द्विगुण लिङ्गदर्शनात् ।
तस्माच्छतगुणा पूजा जलस्नान ततोऽधिकम् ॥१७॥
जलस्नानाच्च विप्रेन्द्रा क्षीरस्नान शताधिकम् ।
दध्ना सहस्रमाख्यात मधुना तच्छताधिकम् ॥१८॥
अनन्त सर्पिषा स्नान वाससा तच्छताधिकम् ।
तस्मात्कोटिगुण पुण्य पञ्चत्व शकरालये ॥१९॥
तस्माच्छतगुण पुण्य नियमैर्यस्त्यजेत्तनुम् ।
प्रदक्षिणात्रय कुर्याच्च प्रासाद समन्तत ॥२०॥
सव्यापसव्यव्याजेन मृदु गत्वा शुचिर्नर ।
पदे पदेऽश्वमेघस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥२१॥

इसके अनन्तर जो अपने चरणा का छेदन करके शिव के क्षेत्र मे निवास किया करता है वह देह के अन्त हो जाने पर भगवान् शिव के

सायुज्यपद को प्राप्त किया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। शिव के क्षेत्र के दर्शन का भी ऐसा फल होता है कि जो अश्वमेध यज्ञ करने वाले को हुआ करता है वही उसे होता है।१५।१६। शिवालय में प्रवेश करने से सौ गुना अधिक और शिवलिङ्ग के दर्शन से उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है। उसमें भी शतगुना पूजा का फल होता है और जल से भगवान् शिव का स्नान कराने से उससे भी अधिक फल हुआ करता है।१७। हे द्विजेन्द्रो! जल के द्वारा स्नान कराने से दूध से स्नान कराने में सौ गुना अधिक हुआ करता है। दही से स्नान कराने पर सहस्र गुणा फल कहा गया है और मधु से शत शतगुना अधिक फल होता है। घृत से स्नान कराने पर अनन्त गुना फल होता है। वारा से कराने पर शताधिक फल हुआ करता है। उससे कोटि गुना पुण्य शङ्करालय में पञ्चत्व का होता है।१८।१६। उससे भी करोड़ गुना पुण्य नियमों के साथ रहकर जो शरीर का त्याग किया करता है उसका होता है। प्रासाद में चारों ओर जो तीन प्रदक्षिणा किया करता है। सव्य-अपसव्य व्याज से शुचि मनुष्य भृङ्गमन करके एक-एक पद में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है।२०।२१।

दुर्लभा खलु या मुक्तिरनायासेन देहिनाम्।
जायते कर्मणा येन शृणुध्वं तद्द्विजोत्तमाः ॥२२॥
गोचर्ममात्रं सलिप्य मण्डलं गोमयेन च।
चतुरस्रं विधानेन चाद्भिरभ्युक्ष्य मन्त्रवित् ॥२३॥
अनवृत्य वितानार्धं दद्यर्वाऽपि मनोहरं।
बुद्बुदैरर्धचन्द्रैश्च स्वर्णैरश्वत्थपत्रकैः ॥२४॥
सितैरसितैः पर्चं रक्तैर्नीलोत्पलैस्तथा।
विमानेन विचित्रेण मुक्तादाम्ना द्विजोत्तमा ॥२५॥
सितमृत्तात्रकैश्चैव सुदन्तैः पूर्णकुम्भकैः।
पत्रपल्लवमालाभिर्जयन्तीभिरगुरुैः ॥२६॥

पञ्चाशद्दीपमालाभिर्धूपैश्च विविधैस्तथा ।
पञ्चाशद्दलसयुक्त लिखित्वा पद्मगुत्तमम् ॥२७॥
तद्वद्वर्णैस्तथा चूर्णं श्वेतचूर्णैरथापि वा ।
एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्म विधानत ॥२८॥

देह धारियो की मुक्ति परम दुर्लभ हुआ करती है वह भी अनायास से ही हो जाया करती है। उस कर्म के विषय मे हे द्विजोत्तमो ! अब आप श्रवण कीजिए।२२। गोमय से गोचर्म के परिणाम वाला मण्डल का भली भाँति लेप न करे। चतुरस्त्र के विधान से मन्त्र वेत्ता को जल से अभ्युक्षण करना चाहिए।२३। वितान आदि से अथवा मनोहर ध्वजो के द्वारा उनको विभूषित करना चाहिए। बुद्बुदो से—अर्धचन्द्रो से—स्वर्णो से और अश्वत्थ के पत्तो से—सित-विकसित पद्मो से—रक्त कमलो से—नीलोत्पलो से—विचित्र विमान से—मुक्ताओ की लडियो से हे द्विजोत्तमो ! सितमृत्तिका के पात्रो से-सुलक्षणपूर्ण कुम्भो से-फल और पल्लवो की मालाओ से- वैजयन्तियो के द्वारा- अशुको से-पचास दीपो की माला से-विविध प्रकार की धूपो से-एक पचास दलो से सयुत उत्तम पद्म का लेखन करके उस वर्णो के चूर्णो से अथापि श्वेत चूर्णो से एक हाथ के प्रमाण वाला विधान पूर्वक पद्म की रचना करे। ।२४-२८।

कर्णिकाया न्यसेद्देव देव्या देवेश्वर भवम् ।
पर्णानि विन्यसेद्वर्णं रुद्रं प्रागाद्यनुक्रमात् ॥२९॥
प्रणवादिदमोन्तानि सर्ववर्णानि सुव्रता ।
सपूज्यैव सुरश्रेष्ट गन्धपुष्पादिभि क्रमात् ॥३०॥
ब्राह्मणान्भोजयत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकम् ।
अक्षमालोपवीत च कुण्डले च कमण्डलुम् ॥३१॥
आसन च तथा दण्डमुष्णीष वस्त्रमेव च ।
दत्त्वा तेषा द्विजेन्द्राणा देवदेवाय शम्भवे ॥३२॥

महाचरुं विवेद्यंं कृष्ण गोमिथुनं तथा ।
अन्ते च देवदेवाय दत्वा तद्वर्णमण्डलम् ॥३३॥
यागोपयोगिद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत् ।
ओंकाराद्यं जपेद्धीमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥३४॥
एवमालिख्य यो भक्त्या वर्णमण्डलमुत्तमम् ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समासतः ॥३५॥

उस पद्म की कर्णिका मे देवी के साथ देवेश्वर भव का न्यास करना चाहिए। रूद्र वर्णों से प्राग् आदि के अनुक्रम से वर्णों का विन्यास करे ।२६। हे सुव्रतो ! प्रणव आदि मे और अन्त मे "नमः" शब्द लगाकर सर्व वर्णों का प्रयोग करे। इस प्रकार सुरश्रेष्ठ का भलीभाँति पूजन करके गन्ध आदि का क्रम से अभ्यर्चन करना चाहिए ।३०। वहाँ पर ब्राह्मणो का भोजन कराना चाहिए । कम से कम पचास विप्रो का भोजन करावे और विधि के साथ ही कराना चाहिए। उन विप्रों को अक्षमाता उपवीत-दोकुण्डल कमण्डलु-आसन-दण्ड-उष्णीप-वस्त्र उन द्विजो को देवदेव भगवान् शम्भू का उद्देश्य करके ही अर्पित करे ।३१।३२। महाचरू का निवेदन करके कृष्ण वर्ण की दो गौओं का दान करे और अन्त मे देवदेव के लिये उस वर्ण का मण्डल-भाव के उपयोगी द्रव्यो को भगवान् शिव के लिये विशेष रूप से निवेदित करना चाहिए। धीमान् को प्रत्येक वर्ण के आदि मे ओंकार लगाकर अनुक्रम से जाप करना चाहिए ।३३।३४। जो आदमी इस प्रकार से भक्ति के साथ उत्तम वर्ण मण्डल को लिखकर अभ्यर्चन करे जो फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उसको संक्षेप से बतलाता हूँ ।३५।

साङ्गान्वेदान्यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकान् ।
इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्याय ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥३६॥
ततो विश्वजिता चेष्ट्वा पुत्रानुत्पाद्य मादृशान् ।
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः साग्निरेव ज ॥३७॥
चान्द्रायणादिकान्कृत्वा सर्वान्सन्यस्य वै द्विजा ।
ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमासाद्य यत्नतः ॥३८॥

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगवित्फलमाप्नुयात् ।
तत्फल लभते सर्व वर्णमण्डलदर्शनात् ॥३९॥
येन केनापि चाऽऽलिख्य प्रलिप्याऽऽयतनाश्रमम् ।
उत्तरे दक्षिणे वाऽपि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमा ॥४०॥
चतुष्कोणेऽपि वा चूर्णैरलकृत्य समन्तत ।
विकीर्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्दीपैश्चतुर्विधै ॥४१॥
प्रार्थयेद्देवमीशान शिवलोक स गच्छति ॥४२॥

साङ्गवेदो को यथान्याय विधिपूर्वक पढकर और न्यायानुसार यज्ञ के द्वारा भजन करके जो कि ज्योतिष्टोमादि है क्रम से उन्हे करे ।३६। इसके अनन्तर विश्व जिनके द्वारा यजन करके मुझ जैसे पुत्रों का उत्पादन करे फिर वानप्रस्थ आश्रम मे गमन करना चाहिए । वानप्रस्थ मे दारा के साथ और साग्नि ही गमन करे ।३७। हे द्विजो ! फिर चान्द्रायण आदि व्रतो को करे और सबका अन्त मे भलीभाँति न्यास कर देना चाहिए अर्थात् सन्यास चौथा आश्रम ग्रहण करे । ब्रह्म विद्या का अध्ययन करके यत्नपूर्वक ज्ञान का आपादन करना चाहिए ।३८। ज्ञान के द्वारा ज्ञेय (जानने के योग्य) को देखकर योग का वेत्ता फल को प्राप्त किया करता है । वह सम्पूर्ण फल वर्ण मण्डल के दर्शन से प्राप्त करता [redacted] ।३९। जिस किसी के द्वारा आलेखन करके और आयतन के आश्रम को लीपकर हे द्विजोत्तमो ! उत्तर अथवा दक्षिण में अथवा पृष्ठभाग मे अथवा चतुष्कोण मे चूर्णों से सभी ओर अलकृत करके गन्ध और कुसुम का विकरण करके चारो प्रकार के धूप दीपो से ईशान देव की प्रार्थना करनी चाहिए । वह आदमी शिवलोक को चला जाया करता है ।४०।४१।४२।

तत्र भुक्त्वा महाभोगान्कल्पकोटिशत नर ।
स्वदेहइन्धैश्च शुभै पूरयञ्छिवमन्दिरम् ॥४३॥
क्रमाद्गान्धर्वमासाद्य गन्धर्वैश्च सुपूजित ।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्राजा भवति वीर्यवान् ॥४४॥

आपः पूता भवन्त्येता वस्त्रपूताः समुद्भवाः ।
अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषतः ॥४५

तस्माद्वै सर्वकार्याणि वैदिकानि द्विजोत्तमाः ।
अद्भिः कार्याणि सततं पूताभिः सर्वसिद्धये ॥४६

अहिंसा तु परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां यतः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन कारयेत् ॥४७

यद्दानमभयं पुन्यं सर्वदानोत्तमम् ।
तस्मात्सा परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा ॥४८

मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः ।
यदा दर्शितपन्थानः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥४९

वहाँ पर शिवजी के लोक में महा भोगो का भोग करके मनुष्य एक सौ करोड़ कल्पों तक सुख से रहा करता है। अपने देह की परम शुभ जन्यों से शिव मन्दिर को पूरता हुआ वहाँ निवास करता है। क्रम से गन्धर्व लोक में पहुँचकर गन्धर्वों के द्वारा वन्दित होता है। फिर क्रम से वह इस लोक मे वीर्यवान् राजा होता है। जल पवित्र होते है और ये वस्त्र से भी पूत होकर समुद्भव वाले होते हैं। हे मुनि शार्दूलो ! फेन सहित जल भी शुद्ध होते हैं तथा नदी के जल भी विशेष रूप से पूत माने गये हैं। इसीलिये हे द्विजोत्तमो ! वैदिक सभी कार्य निरन्तर पूत जलों के द्वारा ही करने चाहिए क्योंकि सर्व सिद्धि इसीसे होती है ॥४३॥४४॥४५॥४६॥ क्योंकि समस्त प्राणियो को अहिंसा परम धर्म होता है। इसलिए सभी प्रयत्नो से जलको वस्त्र से पूत करके कार्य मे लाना चाहिए। अभ्य का दान जो होता है वह परम प्रायमय है और यह सभी दानो मे सर्वोत्तम है। अतएव सर्वत्र और सर्वदा हिंसा का परित्याग कर देना चाहिए। मन-वाणी-कर्म समस्त प्राणियो में रति रखने वाले हैं जब ये दर्शित पन्था वाले होते हैं तो वे शिवलोक को गमन किया करते हैं ॥४७-॥४९॥

त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्पापं जायते नृणाम् ।
शिवालये विहत्यैकमपि तत्पापमाप्नुयात् ॥५०
शिवार्थं सर्वदा कार्या पुण्यहिंसा द्विजोत्तमैः ।
यज्ञार्थं पशुहिंसा च राज्ञा दुष्टस्य शासनम् ॥५१
न हन्तव्याः स्त्रियः सर्वा अत्रेश्च कुलसंभवाः ।
ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेय्या वधतो भवेत् ॥५२
स्त्रियः सर्वा न हन्तव्या सर्वैश्चैव द्विजातिभिः ।
सर्वधर्मेषु विप्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि ॥५३
तस्मादहिंसादियुतः शान्तः शिवजनप्रियः ।
भक्तिं शिवे समास्थाय तस्मिञ्जन्मनि मुच्यते ॥५४
विश्वेश्वरे विरूपाक्षे विश्वव्यापिनि विश्वगे ।
सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तिः कार्या मनीषिभिः ॥५५
पुत्रवित्तादिषु यथा सक्तं चित्तं सदा नृणाम् ।
तथा सक्तं विरूपाक्षे दूरं किं शांकरं पदम् ॥५६

त्रैलोक्य के सम्पूर्ण के हनन करने से मनुष्यों को जो पाप समुत्पन्न होता है उतना ही पाप केवल एक शिवालय का विघ्न न करने से हुआ करता है। द्विजोत्तमों को शिवार्थ पुण्य हिंसा सदा करनी चाहिये। यज्ञ के लिये पशु हिंसा सदा करनी चाहिए। यज्ञ के लिए पशुहिंसा और राजा के द्वारा दुष्ट का शासन करे ॥५०॥५१॥ समस्त स्त्रियों का दमन नहीं करना चाहिए। और अत्रि के कुल में सभूत हुए हों उनकी हिंसा न करे। आत्रेयी के वध से ब्रह्म हत्या के समान पाप हुआ करता है ॥५२॥ सभी द्विजातियों के द्वारा सभी स्त्रियों का दमन नहीं करना चाहिए। सब धर्मों में पाप कर्म में रत भी चाहे भले ही होवे ॥५३॥ इस कारण से अहिंसा से युक्त—शान्त शिव जनों के प्रिय पुरुष भले भगवान् शिव में भक्ति को समास्थित करके उसी जन्म में मुक्त हो जाना चाहिए और भक्त पुरुष उसी जन्म में मुक्त हो जाया करता है ॥५४॥ विश्व के ईश्वर—विरूपाक्ष—विश्व व्यापी—विश्वग में अन्य

सभी साधनों का त्याग करके मनीषियों को भक्ति करनी चाहिए ॥५५॥ जिस प्रकार से सदा ही मनुष्यों का चित्त पुत्र और वित्त आदि में समासक्त रहा करता है उसी प्रकार से एक बार भगवान् विरूपाक्ष मे चित्त को समासक्त कर देवे तो भगवान शङ्कर का पद कुछ भी दूर नही है ॥५६॥

भजन्ते ये यथा शम्भु फल तेषा तथाविधम् ।
प्रयच्छति महादेवो भक्तिर्नैवास्ति निष्फला ॥५७
उच्छिष्ट पूजयेदीश मोहान्धो यद्द्विजाधम ।
पिशाचलोके विपुलान्भोगान्भुङ्क्ते स मानव ॥५८
सक्रुद्धो राक्षसस्थानमभक्षी यक्षमाप्नुयात् ।
गानशीलो हि गान्धर्वं नृत्यशीलस्तथैव च ॥५९
ख्यातिशीलस्तथैवेन्द्रमभक्षश्चान्द्रमाप्नुयात् ।
गायत्र्या पूजयेदीशमब्दमेक निरन्तरम् ॥६०
प्राजापत्यमथाऽऽसाद्य सृष्टिकर्ता स्वय भवेत् ।
ब्राह्म च प्रणवेनैव तेनैवाऽऽप्नोति वैष्णवम् ॥६१
श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्ध प्रमोदते ॥६२
य इम पठतेऽध्यायम श्रद्धया शिवसन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । ६३

जो भी जिस प्रकार से भगवान् शम्भु का भजन किया करते हैं उनको उसी प्रकार का फल भगवान शम्भु प्रदान किया करते हैं। भगवान् शिव मे की हुई भक्ति कभी भी निष्फल नही हुआ करती है ॥५७॥ जो अधम द्विज उच्छिष्ट होकर मोह से अन्धा पुरुष शिव का पूजन किया करता है वह मानव पिशाचो के लोक मे विपुल भोगो का भोग किया करता है ॥५८॥ जो सक्रुद्ध होकर अर्चन करता है वह राक्षसो के स्थान को पाता है और अभक्षी यक्षो के स्थान को प्राप्त किया करता है । गानशील पुरुष एव नृत्यशील पुरुष गन्धर्वों के स्थान को पाया

करता है ॥५६॥ रयातिशील पुरुष इन्द्र का स्थान प्राप्त किया करता है और जलका भक्षण करके जो शिव का पूजन किया करता है वह चन्द्रमा का स्थान पाया करता है। गायत्री से निरन्तर एक ही शब्द वर्ष तक ईश की पूजन करना चाहिए ॥६०॥ वह पुरुष प्राजापत्यस्या न प्राप्त कर स्वयं ही सृष्टि का कर्त्ता हो जाया करता है। केवल प्रणव के द्वारा जो भजन करता है वह ब्रह्मा का स्थान प्राप्त किया करता है और उसी से वैष्णव पद भी प्राप्त किया करता है ॥६१॥ श्रद्धा से एक बार भी महेश्वर प्रभु का भली भाँति अभ्यर्चन करके उनके ही लोक की प्राप्ति करके मनुष्य रुद्रों के साथ ही मे प्रमुदित हुआ करता है ॥१६२॥ जो पुरुष इस अध्याय को श्रद्धा से भगवान् शिव की सन्निधि मे पढ़ा करता है वह सभी पापो से निर्मुक्त होकर ब्रह्म लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥६३॥

॥ सर्वात्म रुद्र-पाशुपत व्रत कथन ॥

भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं परमेष्ठिनः ।
कथं सर्वात्मको रुद्रः कथं पाशुपतं व्रतम् ॥१

ब्रूहि सूत महाभाग सर्वमेतदसंशयम् ।
कथं नो जायते प्रीतिः श्रोतुं शिवकथामृतम् ॥२

पुरा ब्रह्मादयो देवा द्रष्टुकामा महेश्वरम् ।
मन्दरं प्रययुः सर्वे शंभोः प्रियतरं गिरिम् ॥३

स्तुत्वा प्राञ्जलयो देवा हरस्य पुरतः स्थिताः ।
तान्दृष्ट्वाऽथ महादेवो लीलया परमेश्वरः ॥४

तेषामपहृतं ज्ञानं ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ।
देवा ह्यपृच्छंस्त देवमात्मानं पुरतः स्थितम् ॥५

आसंस्ते सकृदज्ञानात्तमाहुः को भवानिति ।
अब्रवीद्भगवानीशो ह्यहमेव पुरातनः ॥६
आसं प्रथममेवाहं वर्तामि(?)च सुरोत्तमाः ।
भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥७

ऋषियों ने कहा—हम लोग फिर भी परमेष्ठी के माहात्म्य को सुनना चाहते हैं किस सर्वात्मक भगवान् रुद्र कैसे हैं और पाशुपत व्रत किस प्रकार का होता है ? ॥१॥ हे महाभाग सूत जी ! यह सब संशय से रहित ही आप बतलाइये और यह भी बतलाइये कि शिव के कथा-भूत को सुनतेही प्रीति कैसे उत्पन्न हुआ करती है ? श्री सूतजी ने कहा—प्राचीन काल में ब्रह्मा आदि समस्त देवगण भगवान् महेश्वर के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा वाले हुए थे और वे सब भगवान् शम्भु का जो अत्यन्त प्रिय मन्दर गिरि पर गये थे ॥२॥३॥ सब देवगण भगवान हर के सामने स्थित होकर हाथ जोड़े हुए स्तुति कर रहे थे परमेश्वर महादेव जी लीला से ही उनको देखा था। भगवान शम्भु ने उन ब्रह्मा आदि देवों का ज्ञान अपहृत कर दिया था। देवों ने अपने सामने है हीं समवस्थित उन देवेश्वर से पूछा था क्योंकि वे सब अज्ञान से ही स्थित हो रहे थे। देवों ने कहा—आप कौन हैं ? भगवान ईश ने कहा था कि मैं ही परम पुरातन ईश हूँ। हे सुरोत्तमो ! तब मैं प्रथम में ही था और अब भी मैं वर्त्तमान रहता हूँ। तथा मैं ही लोक में रहूँगा मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी देव नहीं है ॥४॥५॥६॥७॥

व्यतिरिक्तं च मत्तोऽस्ति नान्यत्किंचित्सुरोत्तमाः ।
नित्यानित्योऽहमेवास्मि ब्रह्माऽहं ब्रह्मणस्पतिः ॥८
दिशश्च विदिशश्चैव प्रकृतिश्च पुमानहम् ।
त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् च पङ्क्तिश्छन्दस्त्रयीमयः ॥९
सत्योऽहं सर्वतः शान्तस्त्रेताग्निर्गौरहं गुरुः ।
गौर्यहं च परश्चाहं घोरहं जगतां प्रभुः ॥१०
श्रेष्ठोऽहं सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोऽहमपां पतिः ।
आपोऽहं भगवानीशस्तेजोऽहं वेदिरप्यहम् ॥११

ऋग्वेदोऽहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः ।
अथर्वणोऽथ मन्त्रोऽहं तथा चाङ्गिरसां वरः ॥१२
इतिहास पुराणानि कल्पोऽहं ह्यहम् ।
अक्षरं च क्षरं चाहं क्षान्तिः शान्तिरहं खग ॥१३
गुह्योऽहं सर्ववेदेषु आरण्योऽहमजोऽप्यहम् ।
पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाहं ततः परम् ॥१४

हे सुरोत्तमो ! मुझसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । नित्य और अनित्य मैं ही हूँ । मैं ब्रह्मा हूँ और ब्रह्मा का भी पति हूँ ॥८॥ दिशाऐं-विदिशाऐं—प्रकृति और पुरुष मैं हू । त्रिष्टुप्—जगती—अनुष्टुप् और पङ्क्ति यह त्रयीमय छन्द मे हू और मैं सबसे सत्य-शान्त—त्रेताग्नि—गो तथा गुरु मैं ही हू । मैं ही गौरी हूं तथा हर भी मैं ही हूं-मैं द्यौ तथा जगत् का प्रभु हू ॥९॥१०॥ मैं सभी सत्वो मे परम श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ हूँ और जलो का स्वामी भी मे हू-मे बल है भगवान् ईश-तेज और वेदि हू ॥११॥ मैं ही ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और आत्मभू हूं । तथा अथर्वण मन्त्र और अङ्गिरा के पर भी मैं ही हूं ॥१२॥ सब इतिहास पुराण—कल्प और कल्पना भी मैं ही हूं । अक्षर और क्षर—क्षान्ति—शान्ति और खग मैं हू ॥१३॥ मैं सब वेदो मे भी परम गोपनीय हूँ । मैं ही आरण्य तथा अजभी हूँ । पुस्कर और पवित्र-मेघ्य तथा इससे भी परभी मैं ही हूँ ॥१४॥

बहिश्चाहं तथा चान्तः पुरस्तादहमव्ययः ।
ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१५
बुद्धिश्चाहमहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
एवं सर्वं च मामेव यो वेद स सुरोत्तमः ॥१६
स एव सर्ववित्सर्वः सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वान्ब्राह्मण्येन हवींषि च ॥१७
हविषा यस्तथा सत्यं सत्येन च गुरोत्तमाः ।
धर्मं धर्मेण च तथा तर्पयामि स्वतेजसा ॥१८

इत्यादि भगवानुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
नापश्यस्ते ततो देव रुद्रं परमकारणम् ॥१६
त देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायन्ति शंकरम् ।
सनारायणका देवाः सेन्द्राश्च मुनयस्तथा ॥
ततोर्ध्वबाहवो (?) देवा ह्यस्तुवञ्छंकरं तदा ॥२०

बाहिर और अन्दर भी मैं हूँ। आगे तथा अव्यय मैं हूँ। मैं ही ज्योति स्वरूप और घोर तम भी हूँ। ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर भी मैं ही हूं ॥१५॥ बुद्धि अहङ्कार-तन्मात्राऐं और इन्द्रियाँ भी मैं हू। अर्थात् ये सभी भी मेरा ही एक भिन्न स्वरूप में रहने वाले हैं और मुझसे पृथक् कुछ भी नहीं है। इस प्रकार से सबको जो मुझको ही समझता है वही सुरोत्तम होता है ॥१६॥ वही सबका ज्ञाता-सर्व-सर्वात्मा-सर्वदर्शन होता है। गायों के साथ गौ—ब्राह्मण्य से सब ब्राह्मणों को-हवियों को हवि के साथ तथा सत्य के साथ सत्य को जो हे सुरोत्तमो! देखता है तथा धर्म को धर्म के साथ समझता है मैं उसको अपने तेज से तृप्त किया करता हूँ ॥१७॥१८॥ इस प्रकार से यह सब कहकर भगवान् शिव यहीं पर अन्तर्धान होगये थे। फिर उनने उन देव को नहीं देखा था जो रुद्र परम कारण थे ॥१६॥ देवगण उन्हीं परमात्मा रुद्रदेव शंकर का ध्यान किया करते हैं। नारायण प्रभु के सहित और इन्द्रदेव के सहित समस्त देवगण-मुनिगण ऊर्ध्वबाहु होकर उस समय में भगवान् शंकर का स्तवन करने में संलग्न होगये थे। २०॥

य एष भगवान्रुद्रो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ॥२१
स्कन्दश्चाग्निस्तथा चन्द्रो भुवनानि चतुर्दश ।
भूतानि च तथा सूर्यः सोमाद्यष्टौ ग्रहास्तथा ॥२२
प्राणः कालो यमो मृत्युरमृत परमेश्वरः ।
भूतं भव्यं भविष्यं च वर्तमानं महेश्वरः ॥२३
विश्वं कृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मै नमो नमः ।
ओमादौ च तथा मध्ये भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥२४

अन्ते त्व विश्वरूपोऽसि शीर्षं च जगत सदा ।
ब्रह्मं कस्त्व द्विनिधोर्ध्वमघस्तत्त्व सुरेश्वर ॥२५
शान्तिश्च त्व तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुतं हुतम् ।
विश्व चैव तथाऽविश्व दत्त चादत्तमीश्वर ॥२६
ऋत वाऽप्यथवा देव परमप्यपर ध्रुवम् ।
परायण सता चैव असतामपि शकर ॥२७
अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥२८

देवों ने कहा—जो यह भगवान् रुद्र-ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर के स्वरूप में हैं तथा स्कन्द-अग्नि-चन्द्र और चौदह भुवनों के रूप में वर्त्तमान हैं। जो समस्त प्राणी सूर्य-सोमादि आठ तथा ग्रह हैं—जो प्राण-काल-यम मृत्यु-अमृत परमेश्वर हैं—जो भूत-भव्य और भविष्य हैं ये वर्त्तमान महेश्वर सम्पूर्ण विश्व मय जगत् तथा सब सत्य स्वरूप मे हैं उन्ही शकर के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है। आदि मे ॐ तथा मध्य मे भूर्भुव स्व है तथा अन्त मे आप विश्वरूप हैं एव सदा जगत् के शीर्ष हैं। आप एक ही ब्रह्म है किन्तु दो प्रकार के हैं—ऊर्ध्व मे और अधोभाग मे सुरेश्वर तत्त्व हैं ॥२१-२५॥ आप ही शान्ति हैं-आप ही पुष्टि हैं-आप तुष्टि हैं-अहुत और हुत भी आप ही हैं। ईश्वर आप विश्व-अविश्व-दत्त और अदत्त हैं ॥२७॥ आप ही ऋत हे देव! आप पर और अपर ध्रुव हैं। हे शङ्कर! आप परायण असतो म भी सत्य है ॥२७॥ हम सोम का पान किया और अमृत होगये-हम ज्योति को प्राप्त हुए और देवो का ज्ञान प्राप्त किया था। हृदयन् आराति क्या हमारे लिये हैं हे अमृत! मर्त्यकी धृति क्या है ॥२८॥

एतज्जगद्धेदितव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ।
प्राजापत्य पवित्र वा सौम्यमग्राह्यमग्रियम् ॥२९
आग्नेयेनापि चाऽऽग्नेय वायव्येन समीरणम् ।
सौम्येन सौम्य ग्रसते तेजसा स्वेन लीलया ॥३०

तस्मै नमोऽस्तसहर्त्रे महाग्रासाय शूलिने ।
हृदिस्था देवता. सर्वा हृदि प्राणा प्रतिष्ठिता ॥३१
हृदि त्वमसि योनिस्त्व तिस्रो मात्रा परस्तु स. ।
शिरश्चोत्तरतस्तस्य पादौ दक्षिणतस्तथा ॥३२
स यो जीवोत्तर साक्षात्स आकार सनातन ।
आकारो य स वै देव प्रणवा व्याप्य तिष्ठति ॥३३
अनन्ततार सूक्ष्मश्च शुक्ल वैद्युतमेव च ।
परब्रह्म स ईशान एको रुद्र स एव च ॥३४
भवान्महेश्वर साक्षान्महादेवो न सशय ।
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स ओकार प्रकीर्ति ॥३५

यह जगत् मे भवितव्य है—अक्षर-सूक्ष्म और अव्यय प्राजापत्य अथवा पवित्र सौम्य अग्राह्य और अप्रिय है ॥२६॥ आग्नेय मे भी आग्नय ह और वायव्य से समीरण है–सौम्य से सौम्य है और लीला के द्वारा अपने ही तेज मे ग्रसते हैं। उन अप सहार करने वाले के लिये नमस्कार है तथा महाग्रास भगवान् शूली के लिये प्रणाम है। समस्त देवगण हृदय मे ही जिनके स्थित हैं और हृदय म प्राण प्रतिष्ठित हैं ॥३०॥३१॥ हृदय म आप हैं-आप सबकी योनि हैं—तीन मात्राऐ हैं और वह आप पर हैं। जिसका शिर उत्तर की ओर है तथा पाद दक्षिण की ओर हैं ॥३२॥ वह जो जीवोत्तर साक्षात् सनातन आकार हैं। जो ओङ्कार है वह देव आप ही हैं जो कि प्रणव व्याप्त होकर स्थित रहा करता है ॥३३॥ अनन्ततार और सूक्ष्म-शुक्ल-वैद्युत और परब्रह्म वह ईशान एक ही रुद्र हैं ॥३४॥ आप साक्षात् महेश्वर हैं। आप ही महादेव हैं—इसमे लशमात्र भी सशय नही है। इस प्रकार से जो ऊर्ध्व भाग म उन्नमित कराता है वही ओङ्कार प्रकीर्त्तित हुआ है ॥३५॥

प्राणानयति यत्तस्मात्प्रणव परिभाषित. ।
सर्वं व्याप्नोति यत्तस्मात्सर्वव्यापी सनातन ॥३६

ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् ।
यथाऽन्ये च ततोऽनन्तो रुद्रः परमकारणम् ॥३७
यत्तारयति संसारात्तार इत्यभिधीयते ।
सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति ॥३८
तस्मात्सूक्ष्मः सदा ख्यातो भगवान्नीललोहितः ।
नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् ॥३९
स्कन्दतेऽस्य यतः शुक्रं ततः शुक्रमयीति च ।
विद्योतयति यत्तस्माद्वैद्युतं परिगीयते ॥४०
बृहत्त्वाद्बृंहणाद्ब्रह्म बृंहते च परापरम् ।
तस्माद्बृहति यत्तस्मात्परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ॥४१
अद्वितीयोऽथ भगवांस्तुरीयः शिव ईशते ?) ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशं बभ्रुमीश्वरम् ॥४२

जो प्राणो को नयन किया करता है इसी कारण से उसको प्रणव परिभाषित किया गया है । क्योंकि वह सबमें व्याप्त होकर रहा करता है अतएव वह सर्वव्यापी और सनातन कहा जाता है ॥३६॥ ब्रह्मा और भगवान् हरि ने जिनके आदि को और अन्त को नही प्राप्त किया है और जिस प्रकार से अन्य देवो ने भी नही प्राप्त किया है अतएव रुद्र अनन्त हैं और सबका परम कारण हैं ॥३७॥ जो इस घोर ससार से तार देता है अतएव उसको 'तार"—इस नाम से भी कहा जाया करता है । वह सूक्ष्म स्वरूप होकर सर्वदा शरीरो मे अपना अधिष्ठान किया करते हैं ॥३८॥ इसी कारण से वे सदा ही सूक्ष्म ख्यात हुए हैं ऐसे वे भगवान् नील लोहित प्रभु हैं । प्रधान-पुरुष के अन्वय से ही वे नील और लोहित हैं ॥३९॥ क्योंकि यह इसके शुक्र को स्कन्दित किया करते हैं इसी से वे शुक्रमयी हैं । क्योंकि वह विद्योतित किया करते हैं इसी कारण से उनको वैद्युत गाया जाता है ॥४०॥ बृहत्त्व और बृहण होने से जोकि परापर को बृंहित किया करते हैं ब्रह्म कहा जाता है । उससे जो बृंहित किया करता है इसी कारण से वह—"परब्रह्म"—इस

नाम से कीर्तित किये गये हैं ॥४१॥ अद्वितीय भगवान् तुरीय शिव इस नाम से ईश होते हैं। इस जगत् के ईशान स्वर्द श वभ्र ईश्वर हैं ॥४२॥

ईशानमिन्द्र तस्थुष सर्वेषामपि सर्वदा ।
ईशान सर्वविद्याना यत्तदीशानमुच्यते ॥४३
यदीक्षते च भगवान्निरीक्षयति चान्यथा ।
आत्मज्ञान महादेवो योगी गमयति स्वयम् ॥४४
भगवाश्चोच्यते तेन देवदेवो महेश्वर ।
सर्वल्लोकान्क्रमेणैव वो गृह्णाति महेश्वर ॥
विसृजत्येष देवेशो वासयत्यपि लीलया ॥४५
एष हि देव प्रदिशो नु सर्वा पूर्वो हि जात स उ गर्भे अन्त ।
एव जात स जनिष्यमाण प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुख ।४६।
उपासितव्य यत्नेन तदेतत्सद्भिरव्ययम् ।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥४७
तदग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यत्नत ।
अपर च पर चेति पारायणमिति स्वयम् ॥४८
वदन्ति वाच सर्वज्ञ शकर नीललोहितम् ।
एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुष पिङ्गल शिव ॥४९

सबके ऊपर सर्वदा स्थित रहने वाले इन्द्र भी ईशान हैं। यह सभी विद्याओं के ईशान हैं इसीलिये इनको 'ईशान'—इस नाम से कहा जाता है ॥४३॥ जो भगवान् देखते हैं और अन्यथा नहीं निरीक्षण करते हैं योगी महादेव स्वय आत्मज्ञान को कराया करते हैं ॥४४॥ इसीलिये भगवान् देवो के भी देव महेश्वर कहे जाया करते हैं। जो महेश्वर सर्व लोकों को क्रम से ही ग्रहण किया करते हैं और देवेश विसृजन किया करते हैं तथा सबको निवसित लीला ही से कराया करते हैं ॥४५॥ यही देव सब प्रदिशाये हैं। यह पूर्व में ही जात हुए हैं। यह गर्भ मे अन्दर हैं। यही जात हुए हैं और यही जनिष्य माया भी हैं।

वे मनुष्यों के समक्ष सर्वतोमुख होकर स्थित रहा करते हैं ।।४६।। अत-एव यत्न से अग्रिम प्रभु की सत्पुरुषों को उपासना करनी चाहिए। वह उस स्वरूप वाले हैं जहाँ से मन के साथ वाणी निवृत्त हो जाया करती है अर्थात् मन वाणी की जहाँ तक पहुँच नहीं होती है ।।४७।। यहाँ पर उसी का ग्रहण है जिसको वाणी यत्न से बनाया करती है। वह अपर और पर हैं और स्वयं परायण हैं ।।४८।। वाणी भगवान् शंकर को सर्वज्ञ और नील लोहित कहा करती हैं। इस पिङ्गल पुरुष शिव को हमारा सबका नमस्कार है ।।४६।।

स एक स महारुद्रो विश्व भूत भविष्यति।
भुवन बहुधा जात जायमानमितस्तत ।।५०
हिरण्यबाहुभगवान्हिरण्यामि चेश्वरः।
अम्बिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वज ।।५१
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वभुग्विश्ववाहनः।
ब्रह्माण विदधे योऽसौ पुत्रमग्ने सनातनम् ।।५२
प्रहिणोति स्म तस्मै च ज्ञानमात्मप्रकाशकम्।
तमेक पुरुष रुद्र पुरुहूत पुरुष्टुतम् ।।५३
बालाग्रमात्र हृदयस्य मध्ये विश्वदेव वह्निरूप वरेण्यम्।
तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा शान्ति शाश्वती नेतरेषाम् ५४।
महतोऽपि महीयान्स अणोरप्यणु रव्यय।
गुहाया निहितश्चात्मा जन्तोरस्य महेश्वर ।।५५
विश्व भूत च विश्वस्य कमल स्याद्धृदि स्वयम्।
गह्वरं गननान्तस्थ विश्वान्तश्चोर्ध्वत स्थितम् ।।५६

वह एक ही महारुद्र हैं जो विश्वभूत होंगे। यह भुवन बहुत प्रकार का समुत्पन्न हो गया है और इधर-उधर जायमान है ।।५०।। हिरण्यबाहु भगवान् । हिरण्य भी ईश्वर हैं। अम्बिकापति ईशान हेमरेता वृषध्वज-उमापति विरूपाक्ष विश्वभुक् विश्ववाहन हैं। जिन इनने अग्नि के सना-तन पुत्र ब्रह्माजी को बनाया था ।।५१।।५२।। और उन ब्रह्माजी को

आत्म प्रकाशक ज्ञान प्रेरित किया था अर्थात् अपने आपके स्वरूप के पहिचान लेने का ज्ञान प्रदान किया था । उन एक पुरुष रुद्र-पुरुहूत-पुरुष्टुत-हृदय के मध्य मे बालाग्रमात्र विश्वदेव-वह्निरूप-वरेण्य उनको जो आत्मा मे स्थित देखते हैं वे परमधीर पुरुष हैं और उनको शाश्वती शान्ति रहती हैं अन्य लोगों को नही होती है ॥५३॥५४॥ वह महान् से भी महान् अर्थात् अधिक बड़े है और अणु मे भी अधिक अणु हैं-अव्यय हैं । इस जन्तु की गुहा मे अर्थात् अन्तर्हृदय मे महेश्वर भगवान् निहित रहा करते हैं ॥५५॥ विश्वभून हे और हृदय में स्वय कमल है । गह्वर गगनान्त मे स्थित है और विश्वान्तक पर की ओर स्थित है ॥५६॥

तत्रापि शुभ्रं गगनमोकार परमेश्वरम् ।
बालाग्रमात्र मध्यस्थमृत परमकारणम् ॥५७॥
सत्य ब्रह्म महादेव पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
ऊर्ध्वरेतसमीशान विरूपाक्षमज ध्रुवम् ॥५८॥
अधितिष्ठति यो योनि योनिश्चैव स ईश्वर ।
देहे पञ्चविधात्मान तमीशानं पुरातनम् ॥५९॥
प्राणोऽप्यन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्यस्मिन्क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च
तृष्णा छित्वा हेतुजातस्य मूल भजस्व देव हरमेव केवलम्।६०
परात्परतर चाऽऽहु परात्परतर ध्रुवम् ।
ब्रह्मणो जनक विष्णोर्वह्नेर्वायो सदाशिवम् ॥६१॥
ध्यात्वाऽग्निना च समग्नि विशोध्य च पृथक्पृथक् ।
पञ्च भूतानि सयम्य मात्रागुणविधिक्रमात् ॥६२॥
मात्रा पञ्च चतस्रश्च त्रिमात्रा द्विस्तत परम् ।
एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तेष्ववस्थितम् ॥६३॥

वहा पर भी शुभ्र गगन है और ओंकार परमेश्वर हैं । बाल के अग्र भाग के परिमाण वाले- मध्य मे स्थित ऋत और परम कारण हैं ।५७। सत्य-ब्रह्म-महादेव-पुरुष-कृष्ण पिङ्गल-ऊर्ध्व रेता-ईश-ईशान-

विरूपाक्ष्य-अज-ध्रुव पर वे अधिष्ठित है जो योनि है और वह ईश्वर ही योनि है। देह में पाँच प्रकार के आत्मा को उस ईशान्य पुरातन को अधिष्ठित है प्राण में भी अन्त मन का लिङ्ग कहते हैं। जिसमें क्रोध और जो तृष्णाय तथा क्षमा है। हेतुजात की मूल भूता तृष्णा का छेदन करके केवल देव हर का ही भजन करो।५८।५९।६०। पर से भी पर उनको कहते हैं और विधित रूप से वे परात्पर तर है। वे ब्रह्माजी के भी जनक हैं और विष्णु-वायु और वह्नि के जन्म देने वाले भगवान् सदाशिव हैं। उनका ध्यान करके अग्नि के साथ अग्नि को वाणी को पृथक् २ प्रवेश करना चाहिए। मात्रा की गुण विधि के क्रम से पाँच भूतों का संयमन करके पाँच मात्रा-चार-तीन मात्रा और इसके पश्चात् दो-एकमात्र और अमात्र द्वादश शान्तों में ही स्थित हैं।६१।६२।६३।

स्थित्यां स्थाप्यामृतो (?) भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत् ।
एतद् व्रतं चरिष्यामः समासतः ॥६४॥
अग्निमाधाय विधिवद्दृग्यजु.सामसभवी. ।
उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वयम् ॥६५॥
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
जुहुयाद्विरजा विद्वान्विरजाः स भविष्यति ॥६६॥
वायव. पञ्च शुद्धधर्म वाड.मनश्चरणादय. ।
श्रोत्रं जिह्वा तथा घ्राण मनो बुद्धिस्तथैव च ॥६७॥
शिरः पाणिस्तथा पार्श्वं पृष्ठोदरमनन्तरम् ।
जङ्घे शश्वदुपस्थ च पायुं मेढ्रं तथैव च ॥६८॥
त्वक्च मास च च रुधिर मेदोऽस्थीनी तथैव च ।
शब्दं स्पर्शं च रूप च रसो गन्धस्तथैव च ॥६९॥
भूतानि चैव शुध्यन्तां मद्देहे रमादयस्तथा ।
अन्त.प्राणमनोज्ञानं शुध्यतां मे शिवेच्छया ॥७०॥

स्थिति में स्थाप्यामृत होकर पाशुपत व्रत का समा चरण करना चाहिए। यह पाशुपत व्रत है इसका संक्षेप से समाचरण करूँगा।६४।

ऋक्-यजु और साम वेदों के मन्त्रों से विधि पूर्वक अग्निका समाधान करके उपोषित रहे-शुचि होकर स्नान किया हुआ स्वय शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला होवे ।६५। शुक्ल यज्ञोपवीत धारी तथा शुक्ल ही माला धारी ए। शुक्ल श्रेयन वाला होवे। विरजा विद्वान् हवन करे और विरजा ही हो जायगा ।६६। पाच वायु शुद्धि के लिये वाक्-मन और-चरण आदि-श्रोत्र-जिह्वा-घ्राण-मन तथा बुद्धि-शिर-हाथ-पार्श्व और अनन्तर मे पृष्ठ तथा उदर-दोनों जङ्घाये-उपस्थ-पायु-मेढ् त्वक्-मांस-रुधिर-मेद तथा अस्थियां शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये सब भूत मेरे देह मे शुद्ध होवें। तथा दमादि-अन्त प्राण और मनोज्ञान मेरे सब भगवान् शिवकी इच्छा से शुद्धि को प्राप्त होवे ।६६।७०।

हुत्वा तेन समिद्भश्च वरुणाय यथाक्रमम् ।
उपसहृत्य रुद्राग्नि गृहीत्वा भस्म यत्नत ॥७१॥
अग्निरित्यादिना धीमान्विमृज्याङ्गानि सस्पृशेत् ।
एतत्पाशुपत दिव्य व्रत पाशविमोक्षणम् ॥७२॥
ब्राह्मणाना सता प्रोक्त क्षत्रियाणां तथैव च ।
वैश्यानामपि योग्याना यतीना च विशेषत ॥७३॥
वानप्रस्थाश्रमस्थाना गृहस्थाना सतामपि ।
विमुक्तिर्विधिनानेन दृष्टा वै ब्रह्मचारिणाम् ॥७४॥
अग्निरित्यादिना सम्यग्गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् ।
सोऽपि पाशुपतो विप्रो विमृज्याङ्गानि सस्पृशेत् ॥७५॥
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसभवै ।
पापैर्विमुच्यते सत्य लिप्यते च न सशय. ॥७६॥
वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसयुत ।
भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेन्द्रिय. ॥७७॥

जिसने समिधाओं से वरुण के लिए यथाक्रम हवन करके रुद्राग्नि को उपसहृत करके भस्म को यत्न से ग्रहण करें।७१। "अग्नि"— इत्यादि मन्त्र के द्वारा धीमान् पुरुष को अङ्गों विमार्जन करके उनका

ससर्ग करना चाहिए—यही पाशुपत दिव्य व्रत है जो पाशो से विमोक्षदिया ने वाला है ।७२। यह व्रत सत्पुरुष ब्राह्मणो को बताया गया है और उसी भाँति क्षत्रियो को भी कहा गया है । जो इसके योग्य वैश्य हो वे भी इसको कर सकते हैं । विशेष रूप से यह दिव्ययान व्रत यतियो के लिये ही है ।७३। जो वानप्रस्थ आश्रम मे स्थित हैं उनको सद् गृहस्थो को भी यह समुचित है । इसी विधि से ब्रह्मचारियो की विमुक्ति होते हुए देख गयी है ।७४। "अग्नि" इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्नि होत्र को भलीभाँति ग्रहण करके उसको भी भस्म रूप मे पाशुपत व्रत वाला विप्र ग्रहण कर उससे विमार्जन करके अङ्गो का सस्पर्श करावें ।७५। विद्वान् द्विज भस्म से छन्न हुआ महापातको के करने से होने वाले पापो से विमुक्त हो जाया करता है और सत्य से लिप्त हो जाता है—इसमे सशय नही है ।७६। क्यों कि भस्म अग्निक वीर्य है अतएव भस्म से सम्मत वीर्यवान् होना है । भस्म मे स्नान करमे मे रत विप्र भस्मशायी और जितेन्द्रिय होवे ।७७।

सर्व पापविनिर्मुक्त. शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्तुत्वा देवं समप्रभुः ॥७८॥
भस्मच्छन्नः स्वयं कृत्स्नं विररामाम्बुजासनः ।
अथ तेषां प्रसादार्थं पशूना पतिरीश्वरः ॥७९॥
स गत्वा चोमया सार्धं सांनिध्यमकरोत्प्रभुः ।
अथ निहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुंगवाः ॥८०॥
रुद्राध्यायेन देवेशं देवदेवमुमापतिम् ।
देवोऽपि देवानालोक्य घृणया च वृषध्वजः ॥८१॥
तुष्टोऽस्मीत्याह देवेशो वरं दत्त्वा वरारिहा
क्षणादन्तर्पितः शंभुर्ब्रह्मादीनां प्रपश्यताम् ॥८२॥
इमं यः पठतेऽध्यायं शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
सर्वतीर्थफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥८३॥
सर्वदेवव्रतफलं सर्वस्तोत्रफलं तथा ।
प्राप्नोति सकलं विप्राः श्रद्धया शिवमंदिरे ॥८४॥
गाणपत्य मवा प्रोति देहान्ते मुने पुङ्गवा ॥८५

ऐसा भस्मसेवी पुरुष सब पापों से निर्मुक्त होकर भगवान् शिव के सामुज्य को प्राप्त किया करता है। इतना कहकर ब्रह्मा भगवान् ने भगवान् समप्रभु का स्तवन करके स्वयं पूर्ण रूप से भस्म से ढक कर होकर अम्बु जास्त (ब्रह्माजी) विराम को प्राप्त हो गये थे। इसके अनन्तर उनके प्रसाद के लिये पशुओं के पति ईश्वर ने उमा देवी के साथ गमन करके अर्थात् जाकर प्रभु सान्निध्य किया था। इसके उपरान्त सुर श्रेष्ठों ने सन्निहित हुए रुद्रदेव की स्तुति की थी अपि यह स्तवन देवों के देव देवेश उमापति की रुद्राध्याय के द्वारा ही किया था। तब ने भी देवों को देखकर वृषध्वज प्रभु ने बहुत ही करुणा से उनके ऊपर दृष्टिपात किया था।७८।७९।८०।८१। बहारि के हनन करने वाले देवेश ने कहा था कि मैं परम तुष्ट हो गया हूँ और वरदान भी प्रदान किया था। फिर उन सभी ब्रह्मा आदि को देखते-देखते भगवान् शम्भु एक क्षण मात्र में वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे।८२। श्री सूतजी ने कहा—जो पुरुष परम समाहित और शुचि होकर इस अध्याय को पढ़ता है वह सब तीर्थों के तथा समस्त यज्ञों के यजन करने का फल एवं पुण्य एवं सम्पूर्ण देव व्रतों का फल और सभी स्तोत्रों का फल प्राप्त कर लिया करता है। हे विप्रो! भगवान् शिव की सन्निधि में ही श्रद्धाभाव से करने पर प्राप्त किया करता है। फिर हे मुनि श्रेष्ठो! वह देह के अन्त हो जाने पर गाणपत्य पद को पा जाता है।८३।८४।८५।

॥ शिव माहात्म्य कथन ॥

वक्ष्यामि शिवमाहात्म्यं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ।
यद्भिर्यद्बहुधा शास्त्रं कीर्तितं मुनिपुङ्गवैः ॥१॥
गरगद्रूपमित्याहु मदमद्यापि सम्यिगम् ।
स शिवं मुनयः केचित् प्रपश्यन्ति सूरयः ॥२॥

भूतभावविकारण द्वितीयेन सदुच्यते ।
अव्यक्तेन विहीन स्यादव्यक्तमसदित्यपि ॥३॥
उभे ते शिवरूपेण शिवादन्यन्न विद्यते ।
तयो पतित्वाच्च शिव सदसत्पतिरुच्यते ॥४॥
क्षराक्षरात्मक प्राहु क्षराक्षरपर तथा ।
शिव महेश्वर केचिन्मुनयस्तत्त्वचिन्तका ॥५॥
उक्तमक्षरमव्यक्त व्यक्ताक्षरमुदाहृतम् ।
रूपे ते शङ्करस्यैव तन्नाम्ना परमुच्यते ॥६॥
तयो पर शिव शान्त क्षराक्षरपरो वुधैः ।
उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वर ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिपुङ्गवो ! अब मैं भगवान् शिव के महात्म्य को बतलाता हूँ आप लोग श्रवण करिए। इस माहात्म्य को मुनिश्रेष्ठो ने और शास्त्रो ने बहुत प्रकार से बहुतो ने कीर्तित किया है ।१। केचित तत्त्वज्ञ मुनिगण जिस शिवको सूरिगण देखते हैं सद सद रूप वाला बताया है और सत् तथा असत् भी सस्थित हैं—ऐसा कहा है ।२। द्वितीय भूतभाव विकार से सद्-यह कहलाते हैं । अव्यक्त से विहीन हैं और अव्यक्त असत् है—यह भी बताया है ।३। ये दोना ही शिव के रूप से युक्त हैं क्योंकि शिव से अन्य कोई भी वर्तमान नही है। इसी से पति होने के कारण भगवान् शिव सदसत्पति कहे जाया करते हैं ।४। इनको क्षराक्षर स्वरूप वाले कहते हैं तथा क्षराक्षर पर भी कहते हैं। कुछ तत्त्वो के चिन्तन करने वाले मुनिगण शिवको महेश्वर कहते हैं ।५। ■ और अव्यक्त कहा है और व्यक्ताक्षर कहा है। ये दोनो रूप हैं ान् शङ्कर के ही और उनके नाम से ये परम कहे जाते हैं ।६। इन ा से पर शिव शान्त है। बुधो के द्वारा क्षराक्षर पर कहे जाते हैं। ाथ से महादेव महेश्वर हैं ।७।

समष्टिव्यष्टि यरूप समष्टिव्यष्टिकारणम् ।
वदन्ति केचिदाचार्या शिव परमकारणम् ॥८॥

समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तिं मुनीश्वरा. ।
रूपे ते गदिते शम्भोर्नास्त्यन्यद्वस्तु किंचन ॥९॥
तयो. कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः ।
उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥१०॥

क्षेत्र क्षेत्रज्ञरूपीति शिव कैश्चिदुदाहृतः ।
परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान्परमेश्वर. ॥११॥

चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरय. ।
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं परमेश्वरम् ॥१२॥

न किंचिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।
केचिदेवं प्रशंसन्ति महादेवं मुनीश्वरम् ॥१३॥

वेदार्थतत्त्वविदुष. सम्यक्श्रुत्यनुसारत. ।
प्राणेन प्राणिति ह्यसावपानेन ह्यपानिति ॥१४॥

समष्टि और व्यष्टि जो रूप है वह समष्टि-व्यष्टि का कारण ही होता है । कुछ आचार्यगण भगवान् शिव को परम कारण कहते हैं ।८। हे मुनीश्वरो ! समष्टि को अव्यक्त कहते हैं और व्यष्टि को व्यक्त कहा जाता है । वे दोनों रूप भगवान् शम्भु के ही कहे गये हैं क्योंकि अन्य कोई भी वस्तु है ही नहीं ।९। उन दोनों के कारण होने के भाव से भगवान् शिव परमेश्वर हैं । योगशास्त्र के ज्ञाताओं ने शिव को समष्टि व्यष्टि का कारण बताया है ।१०। कुछ विद्वानों के द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रूप वाले भगवान् शिव को बताया गया है । भगवान् परमेश्वर परमात्मा और पर ज्योति हैं ।११। सूरिगण चौबीस तत्त्वों को ही क्षेत्र शब्द के द्वारा कहा करते हैं और क्षेत्र शब्द से भोक्ता परमेश्वर को कहा है ।१२। मनीषीगण यही कहते हैं कि शिव से अन्य कुछ भी नहीं है । कुछ लोग महादेवजी को मुनीश्वर कह कर प्रशंसा किया करते हैं । वेद वेदार्थ के तत्त्वों के विद्वान् पुरुष भली-भाँति श्रुति के अनुसार प्राणी में प्राण से और जवान से अपान् कहते हैं ।१३।१४।

व्यानेन व्यानिति तथा चोदानेन ह्य् दानीति ।
समानीति समानेन मन्वीति मनसा द्विजाः ॥१५॥
बुद्धया विचारयत्येष पर एव महेश्वरः ।
समस्तकरणैर्युक्तो वर्ततेऽसौ यदा तदा ॥१६॥
जाग्रदित्युच्यते सद्भिरन्तर्यामी सनातन. ।
यदाऽन्त करणैर्युक्त स्वेच्छया विचरत्यसौ ॥१७॥
सुप्त इत्युच्यते ह्यात्मा स्वय तापविवर्जित. ।
न वाह्यकरणैर्युक्तो न चान्त.करणैस्तथा ॥१८॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः पुण्यपापविवर्णितः ।
स स्वरूपे सदा ह्यास्ते सुपुप्त इति गीयते ॥१६॥
स्वप्नान्त चैव वुद्धान्त विचरत्येष शकर ।
नदीतले यथा मत्स्यो गत्वाऽऽगत्य निवर्तते ॥२०॥
श्येनो वाऽथ सुपर्णो वा श्रान्तः पर्वतकन्दरे ।
शेते सहृत्य पक्षौ च प्रत्यगात्मा ह्यय तथा ॥२१॥

घाम से घान और उदान से उदान एव समान से समान हे द्विजो ! मन से मन्वी-ऐसा कहते है । यह बुद्धि से विचार करता है कि महेश्वर पर ही हैं । जब सदा यह समस्त करणो से युक्त वर्त्तमान रहा करते हे ।१५।१६। सत्पुरुषो के द्वारा अन्तर्यामी सनातन जाग्रत— यह कहे जाया करते है । जब यह अन्त करणो से युक्त होकर स्वेच्छा से विचार किया करते है ।१७। स्वय ताप से विवर्जित होकर यह आत्मा सुप्त-ऐसा कहा जाया करता है । न तो यह वाह्य करणो से युक्त है तथा न अन्त करणो से युक्त है ।१८। यह सभी उपाधियो से विनिर्मुक्त है और पुण्य पाप से रहित है । वह सदा स्वरूप मे रहते है और सुषुप्त-इस नाम से गान किये जाया करते है ।१६। यह भगवान् शङ्कर स्वप्नान्त और वुद्धान्त विचरण करते है । नदी के तल मे जैसे मत्स्य जाकर और आकर निवृत्तित हो जाया करता है ।२०। श्येन अथवा सुपर्ण पर्वत की कन्दरा मे श्रान्त होता है और अपने दोनो पक्षो

को स हृत करके शयन किया करता है। उसी प्रकार से प्रत्यगात्मा यह भी है।२१।

जाग्रत्स्वप्नगता भावास्तेषु शान्तो मुहुर्मुहुः ।
संप्रसाद ततः प्राप्य परानन्दमयो भवेत् ॥२२
अविद्ययैव सर्वोऽयं व्यवहारः परात्मनः ।
गुणधर्मौ यदि स्यातां सुषुप्तौ रहितः कथम् ॥२३
सत्या निमित्तभूतायामविद्याया द्विजोत्तमाः ।
बुद्धौ भ्रमन्त्यामात्माऽपि भ्रमतीति जना विदुः ॥२४
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा बुद्धिसन्निधिमत्तया ।
यथा यथा भवेद्बुद्धिरात्मा तद्वदिहेष्यते ॥२५
विद्याविद्यास्वरूपीति शंकरः कैश्चिदुच्यते ।
धाता विधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ॥२६
भ्रान्तिविद्यापरश्चेति शिवरूपमनुत्तमम् ।
अवाप मनसा सोऽयं केचिदागमवेदिनः ॥२७
अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञानं भ्रान्तिरुच्यते ।
आत्माकारेण संवित्तिर्बुद्धिर्विद्येति कीर्त्यते ॥२८

जाग्रत् स्वप्नगत भाव है उनमे यह मुहुर्मुहु शान्त है फिर सम्प्रसाद को प्राप्त करके परानन्दमय हो जाया करते है।२२। परात्मा के विषय मे यह सभी व्यवहार अविद्या से ही हुआ करता है। उनमे यदि गुण और धर्म होते तो वे सुषुप्ति की अवस्था रहित कैसे हो सकते है।।२३। हे द्विजोत्तमो ! निमित्त भूता अविद्या के होने पर बुद्धि मे भ्रम दिखाया करते है। मनुष्य ऐसा जानते है कि यह आत्मा भी भ्रमित होता है।२४।२४। नित्य और सर्वगत आत्मा बुद्धि की सन्निधि मत्त्वा से जैसे २ बुद्धि होती है उसी के समान आत्मा इष्ट हुआ करता है।।२५। कुछ के द्वारा भगवान् शङ्कर विद्या-अविद्या के रूप वाले है—ऐसा कहा जाता है। आदि देव महेश्वर भगवान् लोकों के धाता और विधाता है।२६। भ्रान्ति विद्या पर शिव का अनुत्तम रूप है। [illegible]

आगम के ज्ञाता लोग यह कहते हैं कि वह इन्होंने मन से प्राप्त किया है।२७। बहुत रूपों वाले अर्थों में विज्ञान जो है वह भ्रान्ति-इस नाम से कहा जाता है और आत्माकार से जो भलीभाँति का ज्ञान होता है वही विद्या इस नाम से कीर्तित की जाया करती है।२८।

विकल्परहित तत्त्व परमित्यभिधीयते ।
व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपोति शिव कैश्चिन्निगद्यते ॥२९
धाता च सर्वलोकना विधाता परमेश्वर ।
तयोर्विशनितत्त्वानि व्यक्तिशब्देन सूरय ॥३०
वदन्ति व्यक्तशब्देन प्रकृति च परा तथा ।
कथयन्ति ज्ञशब्देन पुरुष गुणभोगिनम् ॥३१
तत्र यच्छङ्कर रूप नाव्यक्त न च शङ्करात् ।
यो हेतुस्त्रिगुणस्यापि सर्वस्य प्रकृते पर ॥३२
चतुर्विधश्च त्रिविध स एव भगवाञ्छिव ।
स एव सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भव ॥३३
आस्ते सर्वरतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।
योगिनामपि यो योगी कारणाना च कारणम् ॥३४
रुद्राणामपि यो रुद्रो देवतान च देवता ।
ब्रह्माद्या अपि य देवा न विदन्ति महेश्वरम् ॥३५

विकल्पों से रहित जो तत्त्व पर होता वही पर कहा जाता है। कुछ विद्वानों के द्वारा शिव व्यक्त-अव्यक्त रूप वाले है—ऐसा कहा जाया करता है।२९। परमेश्वर सब लोकों के धाता और विधाता हैं। उन दोनों के बीसतत्त्व व्यक्ति शब्द के द्वारा कहे जाते हैं—ऐसा सूरिगण कहते हैं।३०। तथा व्यक्ति शब्द के द्वारा परा प्रकृति को कहते है और ज्ञ'—इस शब्द के द्वारा गुणों का भोग करने वाले पुरुष को कहा करते हैं।३१। उसमें जो शङ्कर भगवान् का रूप है वह शङ्कर अव्यक्त नहीं होता है। जो हेतु इस त्रिगुण (सत्व-रजस्तम) का होता है वह भी सर्व प्रकृति के पर है।६२। वह भगवान् शिव चार प्रकार के तथा तीन

प्रकार के होते है और वह शिवही के रूप है। वह ही समस्त भूतो के आत्मा है और सब प्राणियो के भव की उत्पत्ति है।३३। देव वैसे सभी मे विराजमान रहने वाले है विष्णु के सर्वत्र वर्त्तमान दिखलाई नही दिया करते है जो योगियो के भी योगी हैं और कारणो के भी कारण हैं।३४। सब एकादश रुद्रो के भी जो रुद्र है अर्थात् सर्वोपरि विराजमान देव है और सब देवो के भी जो देव हैं ब्रह्मा आदि महान् देवता भी जिस देव महेश्वर का यथार्थ रूप मे ज्ञान कर पाते हैं वह महेश्वर देव ऐसे ही है।३५।

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरण वाऽपि विद्यते ॥३६॥
यदाऽऽपदो देहभृता भवन्ति प्राणात्ययप्राप्तिकृतस्तदानीम् ।
विहाय देवं जगदेकबन्धुं शिव न चान्य परिहारहेतु ॥३७॥
आस्ते शिशुर्वरान्सर्वान्सर्वेषां देहिना सदा (!) ।
देहभृत्कथ्यते तस्मान्निर्गु णोऽपि महेश्वरः ॥३८॥
भूयानत्र गतः कालस्तत्रैकं जन्म गच्छतु ।
जिज्ञास्यतामियं तावन्मुक्तिरेकेन जन्मना ॥३९॥
भक्त्या भगवत. शंभोरिति देवोऽब्रवीद्रविः ।
सकृत्सस्मरणाच्छंभोर्नश्यन्ति क्लेशसंचया ॥४०॥
मुक्ति प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ।
तस्मात्तडिल्लतालोल मानुष्य प्राप्य दुर्लभम् ॥४१॥
शिवं सपूजर्यन्नित्य भक्त्या ह्यात्मोपलब्धये ।
मोहनिद्राप्रसुप्तेऽस्मिन्पशुपाशशताकुले ॥४२॥

जिन महेश्वर देव का ज्ञान यथार्थ रूप से प्राप्त कर लेने पर इस ससार मे पुनर्जन्म और मरण नही होता है। देह धारियों को जब आपदाएँ होती हैं उस समय मे प्राणो का विनाश कर देने वाली ही हुआ करती हैं। उस काल में जगत् के एक बन्धु शिव देव को छोड़कर अन्य कोई भी परिहार करने का हेतु नही हुआ करता है।३६।३७। सदा समस्त देह धारियो के सबवरो मे शिशु होना है। इसी कारण देह-

निर्गुण भी महेश्वर प्रभु देहधारी हैं—ऐसे कहे जाया करते हैं ।३८। पुन यहा पर जन्म को एक काल प्राप्त होता है। उसमे यह जानना चाहिए कि यह मुक्ति एक ही जन्म से हो जावे ।३६। देव रवि ने यही बताया हैं कि एक ही जन्म मे मुक्ति तभी हो सकती है जब भगवान् शम्भु की भक्ति होवे। क्योकि भगवान् शम्भु के केवल एक ही बार स्मरण करने से सम्पूर्ण क्लेशो के समुदाय नष्ट हो जाया करते है ।४०। और वह स्मरण करने वाला मुक्ति को प्राप्त हो जाया करता है। स्वर्ग की प्राप्ति तो उस मुक्ति के पाने मे विघ्न रूप ही अनुमान किया जाया करता है। इसलिए बिजली की चमक के समान यह मनुष्य का जीवन है जो परम दुर्लभ है। इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करके नित्य ही भक्ति की भावना से आत्मा की उपलब्धि के लिये भगवान् शिव का अच्छी तरह से पूजन करना चाहिए। यह ससार ऐसा है कि इसमे जीवन प्राय मोह की निद्रा मे प्रसुप्त रहता है और यह पशु के सैकडो पाशो से घिरा हुआ होता है ।४१-४२।

पुरुषा कृतकृत्यास्ते ये शिव शरण गता ।
पुत्रदारगृहक्षेत्रधनधान्यार्थमेदिनीम् ॥४३॥
लब्ध्वेमा मा कृथा दर्प रे रमा क्षणभगुराम् ।
त्यक्त्वा क्रोध च काम च लोभ मोह मद तथा ॥४४॥
जना यजध्वमीशान समीहितफलप्रदम् ।
यावन्नाभ्येति मरण यावन्नाभ्येति वै जरा ॥४५॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्य तावदेवार्चयेश्वरम् ।
ये यजन्ति न देवेश विपयासवमोहिता ॥४६॥
शोचन्ते हि मृता पङ्कलग्ना वनगजा इव ।
काल सनिहितापाय सपद पदमापदाम् ॥४७॥
समागमा सापगमा सर्वमुत्पादित गुरु ।
यजन्ति ये विदित्वैव लिङ्गमूर्तिमहेश्वरम् ॥४८॥

लभन्ते विपुलान्कामानिह चामुत्र चाक्षयान् ।
आराधयध्वं विप्रेन्द्रा सर्वज्ञं विश्वतोमुखम् ॥४६॥

वे ही पुरुष कृतकृत्य हैं अर्थात् उन्होंने मनुष्य जीवन को प्राप्त करने का वास्तविक लाभ प्राप्त कर लिया है जो भगवान् शिव के शरणागति में प्राप्त हो गये हैं ।४३। महामूढ मनुष्य ! पुत्र-दारा-गृह—क्षेत्र—धन-धान्य—ऋद्धि और भूमि आदि को प्राप्त करके और इस एक ही क्षण में विनष्ट हो जाने के स्वभाव वाली लक्ष्मी को प्राप्त करके व्यर्थ ही घमण्ड मत करो । काम-क्रोध-लोभ-मोह तथा मद को त्याग करके हे जनो ! भगवान् ईशान का ही भजन करो जो सभी हित फल के प्रदाता हैं । इस मानुष जीवन में जिस समय तक मृत्यु नहीं आती है और जब तक वृद्धता नहीं उपस्थित होती है । जब तक इन्द्रियों में विकलता नहीं होती है तभी तक भगवान् शिव का अर्चन करना चाहिए । जो लोग विषयरूपी मदिरा के कारण मोहित होकर देवेश्वर का भजन नहीं किया करते हैं वे जब मृत होते हैं तो कीच में फँसे हुए हाथी के ही समान शोक किया करते हैं । महाकाल सन्निहित अपायों वाला है और ये सम्पदाऐं परम आपदाओं का ही समागम हैं और अपगमों से युक्त हैं । सर्व गुरु उपस्थित हैं । जो लोग इस तरह का ज्ञान प्राप्त करके लिङ्ग मूर्ति महेश्वर प्रभु का भजन किया करते हैं वे यहाँ संसार में बहुत से मनोरथों का लाभ प्राप्त किया करते हैं और परलोक में भी अक्षय भोगों को प्राप्त करते हैं । हे विप्रेन्द्रो ! इसलिए सर्वज्ञ विश्वतोमुख महेश्वर की आराधना करो ।४३-४६।

क्षिप्रं यास्यथ तेनैव सायुज्यं नात्र संशयः ।
भक्त्या भवं यजेद्यस्तु महापातकवानपि ॥५०॥
सोऽपि याति परं स्थानं त्रिसप्तपुरुषान्वितः ।
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥५१॥
महेशार्चनपुण्यस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
क्रीडन्ति शिवलोके यत्र लिङ्गं कृत्वा व्रजन्ति ये ॥५२॥

सैकत मृन्मय वाऽपि ते भवन्त्येव भूभुज ।
आध्यात्मिक चाऽऽधिदैव दु ख चैवाऽऽधिभौतिकम् ॥५३॥
देवादीना विदित्वैव मोक्षार्थी शिवमर्चयेत् ।
अपारतरपर्यन्ताद्घोरात्ससारसागरात् ।
महामोहजलात्कामक्रोधग्राहात्सुखोर्मिण ॥५४॥
प्राज्ञो वेदान्तविद्योगी निर्ममो निरहकृति ।
एको योगी प्रशान्तात्मा स सतरति नेतर ॥५५॥
दान्त सुसयतो ध्याने निराशो विगतस्पृह ।
सर्वसङ्गविहीनश्च निर्द्वन्द्वो निरुपप्लव ॥५६॥

बहुत शीघ्र ही उसी ही के द्वारा सायुज्य को प्राप्त होता है इसमे कुछ भी सशय नही है। जो भक्ति से भव का भजन किया करता है वह महापातको को भी विनष्ट कर दिया करता है।५०। वह पुरुष भी अपनी इक्कीस प्रस्तो के सहित परम स्थान को प्राप्त होता है। एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सैकडो राजसूय यज्ञ भी महेश भगवान् के अभ्यर्चन के पुण्य की सोलहवी कला को भी प्राप्त नही कर सकते हैं। जहाँ पर छोटे २ शिशु क्रीडा किया करते हैं वहाँ पर लिङ्ग की रचना करके जो गमन किया करते हैं।५१।५२। बालू का अथवा मृत्तिका का जो लिङ्ग बनाते हैं वे भी अगले जन्म मे राजा हुआ करते हैं। देवादिको को भी आध्यात्मिक-आधिदैविक और आधिभौतिक दुख हुआ करता है—ऐसा समझकर मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को भगवान् शिव का ही अभ्यर्चन करना चाहिए। यह ससार अपार तरपर्यंत वाला है और महान् घोर सागर के ही समान है। इसमे महान् जो मोह है वही जल भरा हुआ है और काम तथा क्रोध जो हैं वे ही बड़े-बड़े ग्राह है और सुख जो विषयो मे मिलता है वे ही तरगे है। इस ऐसे महान् भीषण ससार सागर को प्राज्ञ—वेदान्त का ज्ञाता योगी—ममता से रहित—अहङ्कार से शून्य-प्रशान्त आत्मा वाला योगी तैरकर इससे पार जाया करता है अन्य कोई भी

इसको पार नही कर सकता है। दान्त ध्यान मे सुसयत—निराश और सभी प्रकार की इच्छाओ से रहित—सबके सङ्ग से विहीन—निर्द्वन्द्व उपद्रवो से रहित ही इस संसार से पार जाया करता है। ।५३-५६।

सर्वकर्मफलत्यागी जडान्धवधिराकृति ।
मित्रारिपु समो मैत्र समस्तेष्वेव जन्तुपु ॥५७॥
एव सुदुर्लभो मोक्षो न स्याद्योगीव तादृश ।
सर्वो पृथिव्या पाताले मुक्ता प्रकृतिजैर्गुणै ॥५८॥
एव सुदुर्लभ ज्ञात्वा मोक्ष हि बहुसाधनम् ।
पूजयध्व महादेव कर्मयोगेण चान्यथा ॥५९॥
कर्म पूजा जपो होम शम्भोर्नामानुकीर्तनम् ।
कर्मयोगा समाख्याता एतै. पूज्यो महेश्वर ॥६०॥
य य काममभिध्यायेत्तदर्पितमना शिवम् ।
सपूज्य त तमाप्नोति सावित्र्याह यथा पुरा ॥६१॥
तन्नामजापी तत्कर्मरतिस्तग्दतमानस ।
निष्काम पुरुषो विप्रा स रुद्रपदमश्नुते ॥६२॥
य सर्वदाऽर्चयेदीश स रुद्र इव भूतले ।
पापहा सर्वमर्त्याना दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥६३॥

जो मनुष्य सभी कर्मों के फल का त्याग करने वाला है और जैसे कोई महान् जड एव वहिरा हो उसके ही समान आकृति रखने वाला हो वही इससे पार होता है। जो मित्र और शत्रु दोनो मे समान भाव रखता हो अर्थात् सबका ही मित्र जैसा रहे तथा सब प्राणियों के हित करने वाला हो उसी को मोक्ष प्राप्त होता है। यह मोक्ष इस प्रकार से परम दुर्लभ है। वैसा ही योगी जैसा हो जैसा ऊपर बतला चुके हैं उसी को मोक्ष होता है अन्यथा नहीं होता है। सभी लोग पृथ्वी मे-पाताल मे प्रकृतिजन्य गुणो के द्वारा ही मुक्त होते हैं। इस प्रकार से परम दुर्लभ जानकर मोक्ष को बहुत से साधनों वाला

समझना चाहिए। कर्मयोग से श्री महादेव प्रभु का पूजन करो और *अन्य प्रकार से करो ॥५७॥५८॥५९॥ कर्म पूजाजप–होम–शम्भु के शुभ* नामों का कीर्तन–येस भी कर्मयोग कहे गये है। इन्ही के द्वारा महेश्वर प्रभु का पूजन करना चाहिए।६०। जिस जिस काम का उत्तर ध्यान करे वह सब शिव के लिये अर्पित मन वाला होवे। पहिले सावित्री देवी ने कहा हैं कि भगवान् शिव की पूजा करके उसी उसी को प्राप्त कर लिया करता है।६१। हे विप्रो! शिव के नामों का जाप करने वाला—शिव के कर्मों मे रति रखने वाला—शिव के चरणो मे ही मन संलग्न रखने वाला—निष्काम पुरुष ही रुद्र के पद को प्राप्त किया करता है।६२। जो सर्वदा ईश का पूजन किया करता हैं वह भूतल मे रुद्र की तरह से रहता है। वह मनुष्य दर्शन और स्पर्शन से ही सब मनुष्यो के पापो का हरण कर देने वाला होता है। ६३।

॥ अरुन्धती–सावित्री सम्वाद ॥

पतिव्रता महाभागा सावित्री वरवर्णिनी।
यदाह तद्वदास्माक सूत वाक्यविशारद ॥१॥
स्वर्गे ता शोभना दृष्ट्वा गुणै सर्वैरलकृताम्।
अरुन्धत्युरगमा क्षीणा पर्यपृच्छच्छुचिस्मिता ॥२॥
शतश सन्ति सावित्रि देवा स्वर्गनिवासिन।
देवपत्न्यस्तथैवैता सिद्धा सिद्धाङ्गनास्तथा ॥३॥
न तेषामीदृशो गन्धो न कान्तिर्न सरूपता।
नान्येषा विद्यते शोभा यथा ते पतिना सह ॥४॥
न चैवाऽऽवल्पजातानि भ्राजन्ते सुरयोषिताम्।
यथा तव तथा पत्युर्भ्राजन्ते वरवर्णिनि ॥५॥
नास्ति कान्तिर्विमानाना शक्रादीना दिवौकसाम्।
विमानस्यापि ते कान्तिस्तरुणार्कायुतद्युति ॥६॥

तप प्रभावो दानं वा कर्म वा व्रतविस्तरम् ।
युवयोरतन्ममाऽऽचक्ष्व यथावद्वरवर्णिनि ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे वाक्य विशारद सूतजी ! महाभाग वाली पतिव्रता पर वर्णिनी सावित्री ने जो भी कहा था वह आप हमको बतलाइये ।१। सूतजी ने कहा—सब गुणो से अलङ्कृता उसको स्वर्ग मे देखकर जो कि परम शोभा से समन्वित थी सुचिस्मित वाली और सब स्त्रियो मे उत्तम अरुन्धती ने उनसे पूछा था ।२। हे सावित्रि ! स्वर्ग मे निवास करने वाले देवगण सैकडो ही हैं तथा ये देवों की पत्नियां भी हैं—सिद्ध और वहां पर सिद्धाङ्गनाऐ भी हैं किन्तु उनमे ऐसी गन्ध नही है और न उनकी ऐसी सुन्दर कान्ति ही है और सरूपता ही है। अन्यो की ऐसी शोभा भी नही हैं जैसी कि तुम्हारी अपने पतिदेव के साथ मे रहने पर हुआ करती है ।३।४। हे वरवर्णिनि ! आकल्प जात भी सुरो की स्त्रियो के उस प्रकार के भूषमान नही हैं जैसे तुम्हारे और आपके पतिदेव के भूषणादि भ्राजमान हुआ करते हैं ।५। शक्र आदि देवो के विमाना की भी वैसी नहीं है जैसी तरुण सूर्यों की दस हजार सख्या म एकत्रित होने पर जो द्युति होवे आपके विमान की कान्ति है ।६। हे वर वर्णिनि ! आप दोनो का क्या यह तप का प्रभाव है या दान-कर्म और ऋतुओ की अधिकता का प्रभाव ऐसा है। यह आप हमको बतलाइए ।७।

शृणु त्वेतन्महाभागे मत्कृत पूर्वजन्मनि ।
भर्त्रा सह मया भद्रे शम्भोरायतने शुभे ॥८
कृत समार्जन भक्त्या गोमयेनोपलेपनम् ।
स्वर्गप्राप्तिरिय तस्य कर्मण फलमुत्तमम् ॥९
तीर्थोदकै सुगन्धैश्च (?) स्नापितो यदुमापति ।
तेन कान्तिरतीवेंपा देहेऽभूत्त्रिदशेश्वरि ॥१०
मन प्रसाद सौम्यत्व शारीरी या च निर्वृति ।
यत्प्रियत्व च सर्वस्य तद्घृतस्नानज फलम् ॥११

आह् लादः परमस्वास्थ्यमारोग्य चारुवेगता ।
प्राप्तिश्चाशेषकामाणां दधिक्षीरफलं शुभे ॥१२
सौगन्ध्यं यत्परं देहे धूपदानस्य तत्फलम् ।
गीतैर्नृत्यैस्तथा जाप्यैर्नियमैश्च पृथग्विधैः ॥१३
तोषितो भगवानीशस्तस्यैव पुष्टिरुत्तमा ।
स्वर्गेप्सुना सत्यवता मया च शुभदर्शने ॥१४

सावित्री देवी ने कहा—हे महाभागे ! आप अब इसका मुझसे श्रवण कर लीजिए कि जो कुछ मैंने पूर्व जन्म में कर्म किया है। हे भद्रे ! अपने स्वामी के साथ मैंने भगवान् शम्भु के परम शुभ आयतन में भक्ति भावना से समार्जन किया था और गोमय (गोबर) से उपलेपन भी किया था। यह स्वर्ग में प्राप्ति उसी शुभ कर्म्म का उत्तम पुण्य फल है ॥८॥९॥ सुगन्धित तीर्थों के जलों से जो उमापति ने स्नान किया था हे त्रिदशेश्वरि ! उसी से यह ऐसी उत्तम कान्ति मेरे देह में होगई है ॥१०॥ मन में प्रसाद का होना—सौम्यता और जो शारीरिक निर्वृति तथा सबका प्रियत्व जो होना है उस घृत से किये गये स्नान का ही फल है ॥११॥ आह्लाद-परमोत्तम स्वास्थ्य का होना-आरोग्य और चारुवेगता तथा कामों की प्राप्ति हे शुभे ! ये सब दधि और क्षीर का ही उत्तम फल है। हे शुभे ! मेरे देह में जो परमोत्कृष्ट सुगन्ध है वह धूप दान का ही पुण्य-फल है। गीत-जाप्य-नियम जो कि पृथक् प्रकार के हैं उनके द्वारा मैंने भगवान् ईश को तोषित किया था उसी की यह उत्तमा पुष्टि है। हे शुभदर्शने ! मैंने और सत्यवान् ने स्वर्ग की इच्छा की थी ॥१२॥१३॥१४॥

कृतमेतदतो न स्यादावयोर्भोगसङ्क्षयः ।
ये निश्चिता नराः सम्यक्पूजयन्ति महेश्वरम् ॥१५
तेषां ददाति विश्वेशो देवो मुक्तिं सुदुर्लभाम् ॥१६
संयमुक्ताथ सावित्र्या मुनीन्द्रा हृष्टमानसा ।
ब्रह्मस्नुषा दिवेशानी प्रणिपत्येमब्रवीत् ॥१७

सा पूज्या सा नमस्कार्या सा साध्वी सा पतिव्रता ।
या पूजयति सावित्रि सदा हैमवतीपतिम् ॥१८
यमाराध्य दितिः पुत्रांल्लेभे शक्रपुरोगमान् ।
दितिश्च दैत्यान्विविधान्विनता गरुडारुणौ ॥१९
शच्युर्वशीमुखाश्चान्याः सपूज्योमापतिं पुरा ।
प्रापुश्चाभिमतान्कामानस्तमीशं को न पूजयेत् ॥२०
अभिनन्द्याथ ता चैव वसिष्ठार्धशरीरिणी ।
जगाम स्वाश्रम साध्वी सर्वदेवगणार्चिता ॥२१

हमने यही किया है इसीलिये हम दोनों के मोह का लक्षय नहीं होता है। जो विषय किये हुए नर महेश्वर भगवान् का भलीभाँति पूजन किया करते हैं विश्वेश उनको सुदुर्लभ मुक्ति का प्रदान किया करते हैं ॥१५॥१६॥ श्रीसूतजी ने कहा—सावित्री के द्वारा इस प्रकार से कही गयी थी। इसके अनन्तर मुनीन्द्र गण परम हृष्ट मन वाले होते हुए स्थित होगये थे। ब्रह्मस्नुषा ने शिवाईशान दोनो का प्रणिपात करके यह कहा था ॥१७॥ अरुन्धती ने कहा—वह पूज्या है-नमस्कार करने के योग्य है-वह साध्वी और पतिव्रता है। हे सावित्रि ! जो सर्वदा हैमवती के पति की पूजा किया करती है ॥१८॥ जिनका समाराधन करके अदिति के शक्र जिनका अग्रणी है ऐसे पुत्रों की प्राप्ति की थी और दिति ने अनेकों दैत्यों को प्रसूत किया था तथा विनता ने गरुड और अरुड-इन दो पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ शची और उर्वशी प्रधान जिनमे हैं ऐसी अन्य महिलाओं ने पहिले भगवान् उमापति का भलीभाँति पूजन करके अपने अभिमत कामनाओं की प्राप्ति की थी उस ईश को कौन नहीं पूजेगा ॥२०॥ मुनिवर वसिष्ठ जी की अर्धाङ्गिनी देवी अरुन्धती उस सावित्री देवी का इस प्रकार से अभिनन्दन करके वह साध्वी सब देवगणों के द्वारा समर्चित होती हुई अपने आश्रम को चली गयीं थी ॥२१॥

एवं समभ्यर्च्य गौरीशं श्रद्दधानाश्च योषितः ।
लभन्तेऽभिमतान्भोगान्सावित्र्याह यथा द्विजाः ॥२१
ये नराः सकृदप्यत्र पूजयन्ति त्रिलोचनम् ।
ते धन्यास्ते महात्मानस्ते कृतार्थाश्च पण्डिताः ॥२३
धर्मार्थकाममोक्षा लिङ्गार्चा हेतुरुच्यते ।
सर्वेषा प्राणिनां विप्रा इन्द्रियाणां यथा मनः ॥२४
हृत्पद्मकर्णिकावासं तेजोमूर्तिममङ्गिनम् ।
निर्ममा निरहंकारा ध्यायन्ति ज्ञानिनः सदा ॥२५
शैलजं बाणलिङ्गं वा पूजयेद्विधिवत्सदा ।
मृद्दारुघटितं वाऽपि रत्नजं वा गृहाश्रमी ॥२६
साम्राज्यं मनुजैः कैश्चित्स्वाराज्यं च तथा परैः ।
तथा वैराज्यमन्यैश्च लिङ्गमिष्ट्वा तदैश्वरम् ॥२७
शोचन्ते ते परं हीना अभाग्याश्च दिने दिने ।
प्रमादेनापि यैर्नोक्तं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥२८

इस रीति से श्रद्धा करने वाली नारियाँ भगवान् गौरी के पति का अभ्यर्चन करके अभिमत भोगों की प्राप्ति किया करती हैं जैसा कि हे द्विजो ! सावित्री ने कहा है ॥२२॥ जो मनुष्य एक बार भी यहाँ पर त्रिलोचन प्रभु का पूजन किया करते हैं वे पुरुष परम धन्य हैं—महान् आत्मा वाले हैं-कृतार्थ हैं और महान पण्डित हैं ॥२३॥ धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति का हेतु शिवलिङ्ग पूजा ही बतलायी जाती है। सब प्राणियों में विप्र उत्तम होते हैं जिस प्रकार से समस्त इन्द्रियों में मन शिरोमणि है। हृदय रूपी कमल की कर्णिका में आवास वाले असङ्गी-तेजोमूर्ति शिव का निर्मम होकर और अहङ्कार से रहित होते हुए ज्ञानी पुरुष सदा ही ध्यान किया करते हैं ॥२४॥२५॥ शैल से निर्मित या बाणलिङ्ग का जो विधि-विधान के साथ सदा पूजन करता है अथवा मृत्तिका तथा काष्ठ से निर्मित या रत्नों से रचित लिङ्ग का गृहस्थ पूजन किया करता है तो कुछ मनुष्यों के द्वारा साम्राज्य तथा दूसरों के द्वारा स्वराज्य और

अन्यों के द्वारा वैराग्य उस समय में ईश्वर के लिङ्ग का भजन करके किया था। जो हीन हैं प्राप्त वे शोच ही किया करते हैं और दिन-दिन में भाग्य रहित हैं जिन्होंने कभी प्रमाद से भी अपने मुख से "शिव"— इन दो अक्षरों को कभी भी नहीं कहा है ॥२६॥२७॥२८॥

सपूज्ये सर्वसामान्ये स्वाराध्ये सर्वकामदे ।
भवेऽपि सति सीदन्ति भाविनो यत्तदद्भुतम् ॥२९
उपसर्गाः क्षयं यान्ति छिद्यन्ते विघ्नपल्लवाः ।
मनः प्रसन्नतां याति पूज्यमाने महेश्वरे ॥३०
पूजिते सर्वदेवेशे सर्वदेवनमस्कृते ।
पूजिताः सर्वदेवाः स्युर्यतोऽसौ सर्वगो विभुः ॥३१
शिवार्चनरतो नित्यं महापातकसम्भवैः ।
दोषैर्न लिप्यते विद्वान्पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२
किमत्र शास्त्रमालाभिः सक्षेपेणोपदिश्यते ।
व्यापारान्सकलास्त्यक्त्वा पूजयध्वं महेश्वरम् ॥३३
निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः ।
शिवं स्मर शिवं ध्याय शिवं चिन्तय सर्वदा ॥३४
किं वेदैः किमु वा शास्त्रैः किंवा तीर्थादिसेवया ।
शिवः सपूज्यतां नित्यमुपदेशोऽयमुत्तमः ॥३५

भलीभाँति पूजन करने के योग्य—सभी के लिये परम साधारण—अपने द्वारा आराधना करने के योग्य—सभी कामनाओं को प्रदान करने वाले भगवान् भव के विद्यमान रहने पर भी भावी वाले लोग दुःख उठाया करते हैं यह एक परम अद्भुत बात है ॥२९॥ उपसर्ग सब क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और विघ्न पल्लवों का छेदन हो जाता है। महेश्वर भगवान् के पूजन करने पर मन प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है। सर्व देवों के द्वारा वन्दित सर्व देवेश के पूजित होने पर सभी देव पूजित हो जाया करते हैं क्योंकि यह विभु सभी देवों में निवास किया करते हैं ॥३०॥३१॥ भगवान् शिव के अर्चन में नित्य न रहने वाला

विद्वान पुरुष महापातकों से होने वाले दोषों से लिप्त नहीं होता है जैसे पद्म का पत्र जल में लिप्त नहीं हुआ करता है ॥३२॥ इस विषय में शास्त्रों की मालाओं से क्या लाभ है। संक्षेप से ही यह उपदेश दिया जाता है कि सकल व्यापारों को त्याग करके भगवान् महेश्वर का ही पूजन करो ॥३३॥ सर्वदा भगवान् शिव का स्मरण करो—शिव का ध्यान करो और शिव का चिन्तन करो तो कृतान्त के नगर को दूर ही से कर ही दिखलाई दिया करते हैं ॥३४॥ वेदों से क्या प्रयोजन है—शास्त्रों से भी क्या लाभ है अथवा तीर्थ आदि के सेवन से क्या प्रयोजन है केवल नित्य भगवान् शिव का ही पूजन करो। यही सर्वोत्तम उपदेश है ॥३५॥

अयमेव परो धर्मश्चीर्णमेतत्परं तपः ।
इदमेवाखिलं ज्ञानं पूजनं यन्महेशितुः ॥३६
शिवे दत्तं हुतं जप्तं बलिपूजानिवेदितम् ।
एकान्तोऽत्यन्तफलं तद्भवेन्नात्र संशयः ॥३७
कर्मभूमौ हि मनुष्य जन्मना नियुतैरपि ।
स्वर्गापवर्गफलदं कदाचित्प्राप्यते नरैः ॥३८
तदीदृग्दुर्लभं प्राप्य नार्चयन्तीह ये शिवम् ।
तेषां हि हस्ते मूर्खाणां विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥३९
आराधितो हि यः पुंसामैहिकामुष्मिकं फलम् ।
ददाति भगवाञ्छम्भुः करतं न प्रतिपूजयेत् ॥४०
यो यमिच्छति विप्रेन्द्राः समाराध्य महेश्वरम् ।
निःसंशयः तमाप्नोति पुरा कोऽथ राणो यथा ॥४१
दृष्टः संपूजितो ध्यातः संस्मृतो वा स्तुतोऽपि वा ।
यो ददाति नृणां मुक्तिं तस्मात्कैर्नार्च्यते शिवः ॥४२

शिव का अभ्यर्चन ही सबसे परधर्म है। इसका चीर्ण करना ही परम तप है। यह सम्पूर्ण ज्ञान है कि महेश भगवान् का पूजन किया जावे ॥३६॥ भगवान् शिव का उद्देश्य करके दिया हुआ दान-हवन-

जाप-बलि-पूजा जो भी निवेदित किया गया है वह एकान्त रूप अत्यधिक फल प्रदान करने वाला होता—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥३७॥ यह कर्मभूमि है। इसमें मनुष्य योनि अरबों जन्मों के पश्चात् ही प्राप्त होती है शायद कदाचित् ही मनुष्यों के द्वारा मनुष्य जीवन में भी स्वर्ग-अपवर्ग के फल देने वाला प्राप्त किया जाया करता है। तात्पर्य यह है कि शायद कोई ही स्वर्ग और अपवर्ग के फल को प्राप्त किया करता है नहीं तो सभी अपना यह दुर्लभ जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया करते हैं। ३८॥ इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्त करके भी जो मनुष्य इस संसार में आकर भी भगवान् शिव का अभ्यर्चन नहीं किया करते हैं उन मूर्खों के हाथ में विवेक कहाँ पर स्थित रहता है ॥३९॥ पुरुषों में जिसने भी शिव को आराधित किया है तो उस पुरुष को भगवान् शिवलौकिक और पारलौकिक फल प्रदान किया करते हैं। ऐसे भगवान् शिव को कौन महामूढ है जो नहीं पूजा करता है ॥४०॥ हे विप्रेन्द्रो ! जो महेश्वर प्रभु की समाराधना करके जिसको भी चाहता है उसी को वह बिना किसी संशय के प्राप्त कर लिया करता है जैसे प्राचीन काल में वैश्रवण ने प्राप्त कर लिया था ॥४१॥ केवल दर्शन किये हुए—भलीभाँति पूजे हुए—ध्यान किये हुए—संस्मरण किये हुए और स्तवन किये हुए जो शिव मनुष्यों को मुक्ति देता है इससे किनके द्वारा वे शिव अर्चित नहीं किये जाते हैं ॥४२॥

श्वपचोऽपि मुनिश्रेष्ठा शिवभक्तो द्विजाधिक. ।
शिवभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥४३
यद्वा तद्वा शिवे कर्म पुमान्कृत्वा शिवालये ।
लोभात्सङ्गात्प्रमादाद्वा पृथिव्यामेकराड्भवेत ॥४४
कथं वैश्रवणः पूर्वं समाराध्य महेश्वरम् ।
लब्ध तस्मात्कुवेरत्व सूत तद्वक्तुमर्हसि ॥४५
शृणुध्वमृषय सर्वे यदुक्तं कल्पमेऽन्तरे ।
माहात्म्यसूचनकथा शिवस्य परमेष्ठिनः ॥४६

कश्चिदासीद्द्विजोऽवन्त्यां सोमशर्मेति विश्रुतः ।
पुत्रक्षेत्रकलत्रादिव्यापारेषु रतः सदा ॥४७
विहायाथ स गार्हस्थ्यं धनार्थं लोभमोहितः ।
प्रचचार महीं सर्वां सग्रामपुरपत्तनाम् ॥४८
भार्या तस्य विशालाक्षी तस्मिन्गेहाद्विनिर्गते ।
स्वच्छन्दचारिणी नित्यं बभूवानङ्गमोहिता ॥४९

हे मुनि श्रेष्ठो ! स्वपचमी चाहे भगवान शिव का भक्त है तो द्विज से भी अधिक श्रेष्ठ है । शिव की भक्ति से विहीन द्विज भी स्वपच से भी कहीं अधिक अधम हुआ करता है ॥४३॥ शिवालय में जो कुछ भी जैसा-तैसा शिव के लिए कर्म करके मनुष्य चाहे वह लोभ से किया हो या प्रमाद से किया गया हो या किसी सङ्ग से किया हो पृथ्वी में एक राट् होता है ॥४४॥ ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! वैश्रवण ने पहिले किस प्रकार से महेश्वर प्रभु की समाराधना करके उनसे कुबेरत्व के पद को प्राप्त किया था—यह ही आप बतलाने के योग्य होते हैं ॥४५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ऋषि गणो ! आप सब लोग श्रवण करिए जो कुछ सप्तम अन्तर में कहा गया है परमेष्ठी शिव की माहात्म्य के सूचन की कथा है ॥४६॥ कोई एक द्विज जिसका नाम सोम शर्मा प्रसिद्ध था वह अवन्ती पुरी में रहता था। वह सदा ही पुत्र—कलत्र—क्षेत्र आदि व्यापारों में निरत रहा करता था ॥४७॥ उसने अपने गार्हस्थ्य का त्याग कर धन के लिए लोभ से मोहित होकर सम्पूर्ण भूमि पर जिसमें ग्राम—नगर और प्रट सभी थे प्रचरण किया था। उसके घर से विनिर्गत हो जाने पर उसकी विशालाक्षी भार्या अनङ्ग (कामदेव) से मोहित होकर नित्य ही स्वच्छन्द ससाचरण वाली व भगयी थी ॥४८॥४९॥

तस्यां कदाचित्पुत्रस्तु शूद्राज्जातो विधेर्वशात् ।
दुरात्माऽतीव निर्गूढो नाम्ना दुःसह इत्युत ॥५०
सोऽथ कालेन महता व्यसनोपप्लुतोऽभवत् ।
सर्वैर्बन्धुजनैस्त्यक्त पपिपन्थिपथे स्थित ॥५१

पूजोपकरणद्रव्यं (?) स कस्मिश्चिच्छिवालये ।
रजन्यां प्रविवेशाथ व्यसनेन प्रपीडितः ॥५२
यावद्दीपो गतप्रायो वर्तिच्छेदाऽभवत्किल ।
तावत्तेन दशा दत्ता द्रव्यान्वेषणकारणात् ॥५३
प्रबुद्धश्चोत्थितस्तत्र देवपूजाकरो नरः ।
कोऽयं कोऽयमिति प्रोच्चैर्व्याहरन्परिघायुधः ॥५४
स च प्राणभयान्नष्टो विप्रस्तत्रापि मूढधीः ।
न विन्दन्नात्मनो जन्म कर्म वाऽपि सुदुःखितः ॥५५
पुरपालैर्हतोऽवन्त्या मृतः कालादभूत्ततः ।
गान्धारविषये राजा ख्यातो नाम्ना सुदुर्मुखः ॥५६

उस द्विज की भार्या मे से किसी समय मे विधि के वश से एक शूद्र से पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह दुष्ट आत्मा वाला—निर्दुद्ध—और अतीव दुःसह तथा नाम भी दुःसह था ।५०॥ वह विशेष काल के होने पर विदेश मे व्यसनो मे उपप्लुत हो गया था । जब वह परिपल्य मे स्थित देख गया हो सभी बन्धुओ के द्वारा भी परित्यक्त हो गया था ॥५१॥ शिवालय मे पूजा के उपकरण द्रव्य रहते ही हैं । वह एक बार किसी शिवालय में व्यसन से उत्पीडित होकर रात्रि के समय मे प्रविष्ट हुआ था । जब तक दीपक बुझा था और दीपक की बत्ती का छेदन हुआ था तब तक द्रव्य के अन्वेपण करने के कारण से दृश्य दी थी ॥५३॥ वहा पर देवता की पूजा करने वाला मनुष्य जाग उठा । उसने 'यह कौन है—यह कौन है"—ऐसे कहते हुए जोर से चिल्लाया और हाथ मे उसने परिघ ग्रहण कर लिया था ॥५४॥ वही पर वह विप्र प्राणों के भय से मूढ बुद्धि वाला नष्ट हो गया था । उसने अपना जन्म और कर्म को भी प्राप्त नही किया था और अत्यन्त दुःखित हुआ ॥५५॥ अवन्ती पुरी मे वह पुरी के पालन करने वालो के द्वारा मार दिया गया था । इसके उपरान्त कुछ काल मे वह गान्धार देश मे सुदुर्मुख नाम से राजा विख्यात हुआ था ॥५६॥

गीतवाद्यरत स्तब्धो वेश्यापानरुचिर्भृशम् ।
प्रजोपद्रवकृन्मूर्खः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥५७
किं त्वर्चयत्यसौ नित्यं लिङ्गं राज्यक्रमागतम् ।
पुष्पधूपसुनैवेद्यगन्धादिभिरमन्त्रवित् ॥५८
स्मरन्वै पौर्विकं धर्मं शिवस्याऽऽयतनेषु च ।
ददाति बहुशो दीपान्वर्तितैलसमुज्ज्वलान् ॥५९
कदाचिन्मृगयासक्तो ममाराथ स वीर्यवान् ।
पूर्वारिभिर्हतो युद्ध ऐरावत्यास्तटे शुभे ॥६०
शिवपूजाप्रभावेन विध्वस्ताशेषकिल्बिष ।
पुत्रो विश्रवसश्चाभूत्सर्वयक्षाधिपो बली ॥६१
कुबेर इति धर्मात्मा श्रुतिशास्त्रसमन्वितः ।
सपूज्याथ स चेशानं विधिवत्स्वर्धुनीतटे ॥
स्तोत्रेणानेन तुष्टाव भक्त्या सर्वकामदम् ॥६२

वह गान और वाद्य मे रति रखने वाला—परम स्तब्ध और वेश्या तथा मद्यपान करने मे रुचि रखने वाला अत्यधिक था। वह इतना मूर्ख था कि प्रजा मे उपद्रव किया करता था तथा सभी धर्म के कर्मों से रहिष्कृत् हो गया था ॥५७॥ किन्तु वह राज्य क्रम से आगत शिवलिङ्ग का नित्य ही अर्चन किया करता था। वह मन्त्रो का ज्ञाता तो बिल्कुल था ही नही किन्तु बिना ही मन्त्रो के पुष्प—धूम—नैवेद्य और गन्ध आदि के द्वारा अभ्यर्चन करता था ॥५८॥ वह पूर्व जन्म के कर्म का स्मरण करते हुए भगवान् शिव के आयतनो मे बहुत से बत्ती और तैल से समुज्ज्वलित दीपको को अर्पित किया करता था ॥५९॥ किसी समय मे मृगया (शिकार) मे समासक्त हुआ वह वीर्यवान् राजा मर गया था। ऐरावती नदी के शुभ तट पर पहिले शत्रुओ के द्वारा वह युद्ध मे हत किया गया था ॥६०॥ किन्तु भगवान् शिव की पूजा के प्रभाव से उसके समस्त पाप नष्ट हो गये थे और फिर वह विश्रवा मुनि का पुत्र होकर समुत्पन्न हुआ था जो बलवान् समस्त यक्षो का अधिप हो गया था ॥६१॥ वह

कुबेर—इस नाम वाला परम धर्मात्मा हुआ था जोकि श्रुति (वेद) और शास्त्रों के ज्ञान समन्वित था। उसने वधूंनी के तट पर विधि-विधान के साथ भगवान् ईशान की भली भाँति पूजा करके उन समस्त कामनाओं के प्रदाता शिव को भक्ति से इस निम्नलिखित स्तोत्र से स्तवन किया था ॥६२॥

नमाम्यहं देवमजं पुराणमुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।
शशाङ्कसूर्याग्निसमाननेत्रं वृषेन्द्रचिन्हं विलयादिहेतुम् ॥६३
सर्वेश्वरैकं त्रिदशैकवन्धुं ध्यानाधिगम्यं जगतोऽधिवासम् ।
तं ब्रह्माधारमनन्तशक्तिं ज्ञानार्णवं स्थैर्यगुणाकरं च ॥६४
पिनाकपाशाङ्कुशशूलहस्तं कपर्दिनं मेघसहस्रघोषम् ।
सकालकूटं स्फटिकावभासं नमामि शंभुं भुवनैकनाथम् ॥६५
कपालिनं मालिनमादिदेवं जटाधारं भीमभुजगहारम् ।
प्रशासितारं च सहस्रमूर्तिं सहस्रशीर्षं पुरुषं वरिष्ठम् ॥६६
यमक्षरं निर्गुणमप्रमेयं तं ज्योतिरेकं प्रवदन्ति सन्तः ।
दूरंगमं वेदविदां च वन्द्यं सर्वस्य हृत्स्थं पवित्रम् ॥६७
तेजोनिधिं बालमृगाङ्कमौलिं नमामि रुद्रं स्फुरदुग्रवक्त्रम् ।
कालेन्धनं कामदमस्तसङ्गं धर्मासनस्थं प्रकृतिद्वयस्थम् ॥६८
अतीन्द्रियं विश्वभुजं जितारिं गुणत्रयातीतमजं निरीहम् ।
मनोमयं वेदमयं च हंसं प्रजापतीशं पुरुहूतमिन्द्रम् ॥६९
अनाहतं कञ्चनिरूपमाद्यं ध्यायन्ति यं योगविदो यतीन्द्राः ।
संसारपाशच्छिदुरं विमुक्तयै पुनः पुनस्तं प्रणमामि नित्यम् ॥७०

कुबेर ने कहा—मैं उपेन्द्र—वेधा और देवों के राजा के द्वारा सेवित—अज—पुराण देव को नमस्कार करता हूँ। आप चन्द्र-सूर्य और अग्नि के समान नेत्रों वाले हैं और वृषेन्द्र के चिन्ह से युक्त तथा सृष्टि के विलय आदि के हेतु हैं उनको मैं प्रणाम करता हूं। हे भगवान्! आप एक ही सबके ईश्वर हैं—देवों के परम बन्धु—ध्यान के द्वारा ही अधिगमन करने के योग्य और इस जगत् के अधिवास हैं। उन आप•

व्यय के आधार—अनात शक्ति से सम्पन्न-ज्ञान के सागर और स्थैर्य गुण के आकर आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥६४॥ आप पिनाक धनुष, पाश, अंकुश और त्रिशूल इन आयुधों के धारण करने वाले हैं—कपर्दी—सहस्रों मेघों के समान घोष वाले—बालकूरम हाविष से युक्त—स्फटिक मणि के समान भासित—भुवनों के नाथ भगवान् शम्भु को मैं नमस्कार करता हूं ॥६५॥ कपाली—और कपालों की मालाधारी—आदि देव—जटाधारी—भीषण सर्पों के हार को पहिनने वाले—प्रशासिता—सहस्र मूर्तियों वाले सहस्र शीर्षों वाले—वरिष्ठ पुरुष आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करता हूं ॥६६॥ सन्त लोग जिनको अक्षर—निर्गुण—अप्रमेय—एक ज्योति कहा करते हैं। जो वेदों के ज्ञाताओं को बहुत दूर रहने वाले हैं सबके वन्दना करने के योग्य हैं—हृदय में ही स्थित रहने वाले और परम पवित्र हैं ऐसे तेज के निधि और बाल चन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले स्फुरित अग्रमुख वाले भगवान रुद्र से लिए मैं नमस्कार करता हूं। काल के ईंधन-कामनाओं के प्रदान करने वाले—समस्त सङ्ग से रहित—धर्म-धर्म के आसन पर समवस्थित—प्रकृति हृय में स्थित भगवान् रुद्र को प्रणाम करता हूं ॥६७॥६८॥ इन्द्रियों की पहुँच से परे—विश्व के भोग करने वाले—शत्रुओं के जीतने वाले—तीनों गुणों से अतीत—अज—निरीह—मनोमय—वेदमय—हस—प्रजा पतियों के ईश-पुरुहूत-इन्द्र-अनाहत एक ध्वनि और रूप वाले—आद्य—आप हैं जिनको योग के ज्ञाता यतीन्द्र गणध्यान में लाया करते हैं। ससार के पाशों के छेदन करने वाले—विमुक्ति के प्रदान करने वाले उन भगवान शम्भु को मैं बारम्बार नित्य प्रणाम करता हूं ॥६८॥६९॥७०॥

न यस्य रूपं न वलप्रभावो न च स्वभाव. परमस्य पुंसः।
विज्ञायते विष्णुपितामहार्थं रतं वामदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम् ।७१।
शिव समाराध्य यमग्रमूर्ति पपौ समुद्रं भगवानगस्त्यः।
लेभे दिलीपोऽप्यखिलां स चोर्वी तं विश्वयोनिं शरणं प्रवद्ये ।७२।

सम्पूजयन्तो दिवि देवसंघा ब्रह्मेन्द्रमुख्या विविधांश्च कामान् ।
तं स्तौमि नौमीह जपामि शर्वं वन्देऽभिवन्द्यं शरणं प्रपद्ये ।७३।

स्तुत्वैवमीशं विरराम यावत्तावत्सहस्रार्कसमानतेजाः ।
ददौ स तस्मै वरदोऽन्धकारिर्वरत्रयं वैश्रवणाय देवः ।।७४।।

कृत्वाऽधिराजं च ततस्त्रिनेत्रो यशस्विनं गुह्यकराजमत्र ।
ब्रह्माच्युतेन्द्रादिनताङ्घ्रिपद्मो जगाम कैलासममोघवाक्यः ।७५।

सख्यं च दिक्पालपदं चतुर्थं धनाधिपत्यं च दिवौकसां सः ।
तथाऽधिकं चैतदनिन्द्यकीर्तिः सुखी बभूवाप्रतिमप्रभावः ।७६।

दोषाचरेन्द्रश्च तथा दशास्यः सम्पूज्य दोषाकरचारुमौलिम् ।
दोषाकरश्चाप्यजितेन्द्रियश्च मुक्तिं स लेभेऽन्तसमरतदाप ।७७।

जिनका कोई भी रूप नहीं है और न कोई बल का ही प्रभाव है—न स्वभाव है ऐसे यह परम पुरुष हैं। विष्णु और पितामह आदि के द्वारा ही उनका ज्ञान प्राप्त किया जाता है उन आचार्य वामदेव प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ।७१। भगवान् अगस्त्य मुनि ने भगवान् शिव की ही समाराधना करके जो कि अष्टमूर्ति हैं समुद्र का पान कर लिया था। राजा दिलीप ने भी इन्हीं के अनुग्रह से सम्पूर्ण पृथ्वी का लाभ प्राप्त किया था उन्हीं विश्व की योनि प्रभु की शरणागति में प्राप्त होता हूँ।७२। ब्रह्मा इन्द्र जिनमें प्रमुख हैं ऐसे सब देवों के समुदाय ने स्वर्गलोक में अभीष्ट की पूजन करते हुए अपार मनोरथों को प्राप्त किया था उन्हीं भगवान् शिव को मैं नमस्कार करता हूँ—स्तवन करता हूँ—जाप करता हूँ और वन्दना करता हूँ। उन अभि-वन्दना करने के योग्य प्रभु की मैं शरण में जाता हूँ।७३। इस रीति से स्तुति करके जैसे ही कुबेर विरत हुआ था वैसे ही सहस्रों सूर्यों के समान तेज से युक्त प्रभाव वाले शम्भु देव के जो वरदान देने वाले हैं उस वैश्रवण के लिए तीन वर प्रदान किये थे।७४। इसके उपरान्त भगवान् त्रिनेत्र ने उस वैश्रवण को अधिराज बनाकर जो कि परम यशस्वी और

गुह्यकों का राजा या फिर ब्रह्मा—अच्युत-इन्द्र आदि के द्वारा प्रणत चरणों वाले और अमोघ वाद्यों से युक्त प्रभु कैलाश पर्वत पर चले गये थे ।७२। सख्य–हिख्यातवापद–और वह दोनों के धन का आधिपत्य प्राप्त करके उससे भी अधिक अनिन्द्य कीर्ति वाला और अप्रतिम प्रभाव से युक्त वह परम सुखी हो गया था ।७६। द्रोणाचर—इन्द्र तथा दशास्य (रावण) ने चन्द्रदेव को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु शङ्कर का पूजन करके समस्त देवों का निराकरण करके उस अजित इन्द्रियों वाले और दोषों के आकरने भी मुक्ति को प्राप्त कर लिया था ।७७।

स्वर्गस्य मार्गा बहव प्रविष्टास्ते कृच्छ्रसाध्या बहव सविघ्ना ।
निमेषमात्रेण महाफलोऽयमृजुश्च पन्था स्मरण पुरारे ।७८।
दृष्ट तदेवाङ्ग तमत्र मर्त्या माहात्म्यमेश ससुरासुराश्च ।
त्यक्त्वाऽऽत्मयोग च मखक्रियाश्च
यजन्त्यतस्त्र्यम्बकमेव सर्वे ।।७६।।
गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात् ।।८०।
कर्माण्यसकल्पिततत्फलानि सन्यस्य रुद्रे परमात्मरूपे ।
अवाप्य ते कर्ममहीमनन्ते तस्मिल्लँय ये त्वमला प्रयान्ति ।८१।
जानीय (?) नैताद्धि कदा विलीने शुभप्रदे कर्मणि देहबन्ध ।
प्रासाम खण्डे किल भारताख्ये कुलेऽकलङ्के शिवधर्मनिष्ठा ।८२।
स्तोत्रेण येऽपि कश्चिदत्र मत्ता प्रसस्तुवन्ति प्रमथैकनाथम् ।
प्रयान्ति ते लोकेमिहान्धकारे पुरदरोद्गीतमहाप्रभावा ।८३।
एव वैश्रवणो जातो महादेवप्रसादत ।
सर्वमेतदशेषेण कथित मुनिपुगवा ।८४।
य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापै प्रमुच्यते ।
ब्रह्मलोके वसेत्कल्पमिति देवोऽब्रवीद्रवि ।८५।

यों तो स्वर्ग के प्राप्त करने के लिए बहुत से मार्गों को बताया गया है किन्तु वे सभी मार्ग कठिनाई से साधन करने के योग्य हैं और उनमें बहुत से विघ्न भी रहा करते हैं। एक निमिष मात्र में ही महान् फल देने वाला —परमाधिक सरल यही एक सुगम मार्ग है जो भगवान् पुरारि का स्मरण किया जावे।७८। यहाँ पर मनुष्य सुर और असुर सभी ने भगवान् ईश्वर के माहात्म्य में एक परम अद्भुतता देखी है और सभी लोग आत्म योग—यज्ञादि की क्रिया इन सबका त्याग करके एक केवल भगवान् त्र्यम्बक का ही भजन किया करते हैं।७९। देवगण ऐसे अनेक गीतों का गान किया करते हैं कि जो भारत देश की भूमि भाग में वर्तमान प्राणी हैं वे परम धन्य हैं। यह भारत देश की भूमि स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्षप्रद) के मार्ग के ही समान है अर्थात् इसी भूमि में उत्पन्न होकर प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के स्थान की प्राप्ति किया करते हैं। जो भारत में जन्म प्राप्त करते हैं वे परम धन्य हैं। अतएव देवगण की सुरत्व का त्याग करके इस भारत में पुनः पुरुष होकर जन्म ग्रहण करने के इच्छुक रहा करते हैं।८०। परमात्मा के स्वरूप वाले भगवान् रुद्र के चरणों में ही सब असङ्कल्पित फल वाले कर्मों को समर्पित करके वे सब इस कर्मभूमि को प्राप्त करके उस अनन्त में लय प्राप्त कर निर्मल होते हुए प्रयाण किया करते हैं॥८१॥ यह न जानकर कि कब शुभप्रद कर्म के विलीन होने पर देह का बन्धन होता है। अतएव भारत नाम वाले भूखण्ड में किसी कलङ्क से रहित कुल में शिव के धर्म में निष्ठा रखने वाले निवास करें। यहाँ पर इस स्तोत्र के द्वारा जो भी कहीं पर भक्त लोग प्रमथों के एक नाथ प्रभु का स्तवन किया करते हैं वे अन्धकारि भगवान् शिव के लोक में प्रयाण किया करते हैं और इन्द्र के द्वारा उनके महाप्रभाव के गीत गाये गये हैं।८२।८३। श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से वैश्रवण महादेवजी के प्रसाद से ही समुत्पन्न हुआ था। हे मुनि पुङ्गवो! मैंने यह सब पूर्ण रूप से कह दिया है।८४। जो इसको पढ़ता है अथवा श्रवण किया करता

है वह सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। रविदेव ने यह कहा था कि वह अन्त में जाकर ब्रह्मलोक में कल्प पर्यन्त निवास किया करता है। ८५।

।। सुदेव्युपाख्यान ।।

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्यं देवदेवस्य शूलिनः ।
पठतां शृण्वतां सद्योऽघानि हन्ति बहून्यपि ।।१।।
जितारीन्द्रियषड्गर्वा योगिनोऽप्येनहङ्कृताः ।
यजन्ति ज्ञानयोगेन शिवमात्मस्वरूपिणम् ।।२।।
तीर्थोदकैर्विशुद्धा ये दानयज्ञतपोव्रतैः ।
ते यजन्ति महेशानं कर्मयोगेण साधवः ।।३।।
लुब्धा व्यसनिनोऽज्ञास्च न यजन्ति जगत्पतिम् ।
अजरामरवन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः ।।४।।
शिवधर्मरताः शान्ताः शिवशास्त्ररताः सदा ।
दैवात्केऽपीह जायन्ते पृथिव्यां पुरुषोत्तमाः ।।५।।
रूपं न शक्यते तस्य सस्थानं वा कदाचन ।
निर्देष्टुं प्राणिभिः कैश्चिद्द्रष्टुं वाऽप्यकृतात्मभिः ।।६।।
क्रियतां मद्वचः कर्णे शिवे वाऽऽत्मा नियुज्यताम् ।
आदीप्ते भवने कूपं खनितुं नैव शक्यते ।।७।।

श्रीसूतजी ने कहा—देवदेव भगवान् शूली के माहात्म्य को मैं पुनः बतलाता हूँ। इसके पढ़ने और सुनने वालों के अघ सद्य ही नष्ट हो जाया करते हैं चाहे भले ही बहुत—से ही क्यों न होवें।१। षड्वर्ग इन्द्रियों के शत्रुओं के जीत लेने वाले-बिना अहंकार वाले योगीगण भी आत्म स्वरूपी भगवान् शिव का ज्ञान योग के द्वारा यजन किया करते हैं।२। जो साधुगण तीर्थंदकों से और दान-यज्ञ-तप और व्रतों से विशुद्ध हुए हैं

वे भगवान् महेश का कर्मयोग के द्वारा भजन किया करते हैं।३। जो सुब्धक्व्यसनी—अज्ञ जो हैं वे जगत् के पति का यजन नहीं किया करते हैं। वे अजरामर व्रत मूढ नरकोटक स्थित रहा करते हैं।४ भगवान् शिव के धर्म मे रत—शान्त और सदा शिव के शास्त्र मे निरत ऐसे उत्तम पुरुष दैववश कुछ ही इस पृथ्वी मे उत्पन्न हुआ करते हैं।५। किन्ही भी प्राणियों के द्वारा जो अहृतात्मा हैं उन प्रभु का रूप-सस्थान कभी भी निर्दिष्ट करना अथवा देखना नहीं हो सकता है।६। अतएव मेरे वचन को कानो मे स्थान दो और अपनी आत्मा को भगवान् शिव मे नियोजित करदो। जब चारो ओर से भवन मे आग लगकर वह जलने लगता है तो उस समय मे अग्नि के बुझाने के लिये कुये का खोदना सम्भव नहीं हो सकता है जिसके जल से आग बुझाई जा सके।७।

सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुन. पुन.।
असारे दग्ध ससारे सारं यच्छिवपूजनम् ॥८॥
तदस्या दग्धससारग्रन्थेरत्यन्तदुर्भिद.।
पर निर्मूलविच्छेदि क्रियतां तद्भवार्चनम् ॥९॥
मनस्तद्धि कर्मज्ञ शङ्करे यत्प्रवर्तते।
सा वाणी वाक्पति शम्भु या स्तौत्यच्युतमच्युता ॥१०॥
श्रवणौ तौ श्रुतौ याभ्यां श्रूयन्ते तत्कथा शुभा.।
पादौ तौ सफलौ पुंसां शिवायतनगामिनौ ॥११॥
ते च नेत्रे शुभायाल याभ्यां सदृश्यते शिव.।
सफलौ तौ स्मृतौ विप्रास्तत्पूजा कारिणौ करौ ॥१२॥
तदेव सफल कर्म शिवमुद्दिश्य यत्कृतम्।
सेयं लक्ष्मीः पुंसां सेयं भक्तिः समीहिता ॥१३॥
श्रेयस्करी भक्तिमुक्तयोर्यां गिरिजापते.।
रिपवस्तं न हिंसन्ति न च माद्यन्ति मादमाः ॥१४॥

मैं सर्वथा सत्य कहता हूं—हित की बात कहता हूं और सार भूत बारम्बार कह रहा हूं कि इस सार शून्य दग्ध संसार में सार वस्तु केवल एक भगवान् शिव का ही पूजन है ।८। अत्यन्त दुर्भिद इस दग्ध संसार की ग्रन्थि के पर निर्मूल का विच्छेदन करने वाला भगवान् भव का अर्चन ही होता है अतः उसे करो ।६। कर्म के ज्ञाता उस मन को ही जानना चाहिए जो शंकर में प्रवृत्त हो जाता है । वाणी भी वहीं है जो वाणी के स्वामी अच्युत शम्भु को अच्युता होती हुई स्तवन किया करती है ।१०। वे ही श्रवण श्रुत हैं जिनके द्वारा उनकी शुभ कथा सुनी जाया करती है । वे ही पैर मनुष्य के सफल एवं सार्थक हैं जो भगवान् शिव के आयतन तक गमन करने वाले हो । वे ही नेत्र शुभ एवं भूषित हैं जिनके द्वारा शिवेश्वर प्रभु का दर्शन प्राप्त किया जाया करता है । हे विप्रो ! उन भगवान् की पूजा करने वाले करद्वो वे ही कर सफल बताये गये है । कर्म भी वही सफल है जो भगवान् शिव का उद्देश्य करके ही किया गया होवे । पुरुषों की वही लक्ष्मी - परा अर्थात् उत्कृष्ट कोटि वाली है जो यह भक्ति ही कही गयी है ।११।१२।१३। गिरिजापति की जो भक्ति है वही मुक्ति के श्रेय के करने वाली कल्याणकारिणी है उसको रिपुगण हिंसित नहीं किया करते हैं और राक्षस लोग नहीं खाते है ।।१४।

न दशन्ति च नागेन्द्रा नरं रुद्रपरायणम् ।
विपाककटुकान्रम्यान्विषयान्विषसन्निभान् ।।
सत्यज्याऽऽराधयेद्देवं शंकरं लोकशंकरम् ।।१५

अहिंसा सत्यमस्तेयं दया भूतेष्वनुग्रहः ।
यस्यैतानि सदा विप्रास्तस्य तुष्यति शंकरः ।।१६

दृष्ट्वा सपूजितं लिङ्गं भक्त्या यश्चाभिनन्दति ।
तीर्थंत्रिकं वायः कुर्यात्तस्य तुष्यति शंकरः ।।१७

वाङ्मनःकायकर्मेच्छा यस्य भक्तिर्महेश्वरे ।
व्यसनोपहतस्यापि तस्य तुष्यति शंकरः ।।१८

यथा द्विजा हस्तिपदे पदानि सलीयन्ते सर्वसत्त्वोद्भवानि ।
एव धर्मा. शिवधर्मे तु सर्वे सलीयन्ते नात्र चित्र मुनीन्द्राः ॥१६
अल्पाश्रयानल्पफलास्त्वराश्च धर्मानन्यान्प्राहुरिह द्विजेन्द्राः ।
महाश्रयबहुकल्याणरूप वदन्ति सन्त शिवधर्ममेकम् ॥२०
सर्वे वर्णा देवदेवस्य शभोः पूजा कृत्वा सत्यवाक्यानि चोक्त्वा ।
त्यक्त्वा धर्मं दारुण मृत्युलोके यान्ति स्वर्गं मात्र कार्यो विचार.।२१।
ये वामदेव हि यजन्ति नित्य सद्वृत्तशीलाः किल लिङ्गमूर्तिम् ।
ते ध्वस्तदोषा हि भवन्ति मर्त्या भवाम्बुराशि विषम तरन्ति ।२२।

भगवान् रुद्रदेव मे परायण रहने वाले नर नागेन्द्र भी नहीं हुआ करते हैं । विपाक की दशा मे अर्थात् परिणाम प्राप्त करने के समय मे महान् कटुता आरम्भ काल मे बडे ही सुरम्य ऐसे विष के समान विषयो को परित्याग कर लोक के मङ्गल करने वाले भगवान् शकर देव का आराधन करना चाहिए ।१५। अहिसा-सत्य-अस्तेय-भूतमात्र पर दया अनुग्रह-ये गुण जिसके अन्दर विद्यमान हैं हे विप्रो ! उसी पर शकर भगवान् परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करते हैं ॥१६॥ भलीभाँति से समर्चित शिव लिङ्ग का दर्शन कर भक्ति भाव से जो अभिनन्दन किया करता है अथवा जो तौर्यत्रिक (नृत्यगीत) किया करता है उसमे भगवान् शकर परमसन्तुष्ट हो जाया करते हैं ।१७। जिसकी भक्ति महेश्वर प्रभु मे है और वह वाक्-मन-कार्य-कर्म और इच्छा के किसी भी रूप मे हो । चाहे वह व्यसनो से भी उपहत भी क्यो न हो भगवान् शकर उस पर प्रसन्न हो जाते हैं ।१८। हे द्विजो ! जिस तरह से सभी प्राणियो के पैरो के चिन्ह हाथी के पैर के चिन्ह के अन्दर ही समा जाया करते हैं उसी भाँति सभी धर्म भगवान् शिव के धर्म मे हे मुनीन्द्रो ! लीन हो जाया करते हैं—इसमे कुछ भी विचित्रता की बात नहीं है ।१९। हे द्विजेन्द्रो ! अन्य का आश्रय ही अल्प फल वाले ही होते हैं और यहाँ पर अन्य धर्म त्वर कहे गये हैं । सन्त पुरुष एक शिव धर्म को महान् आश्रय वाला और बहुत अधिक कल्याण करने के स्वरूप वाला कहा करते हैं ।२०।

देवदेव शम्भु की पूजा सभी वर्णों वाले करके तथा सत्य वचन कहकर और मृत्यु लोक मे दारुण धर्म को त्याग कर स्वर्ग को जाया करते हैं इस विषय मे कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ।२१। जो नित्य ही वामदेव प्रभु का यजन किया करते हैं और सुन्दर आचरण के स्वभाव वाले लिङ्ग मूर्त्ति को पूजते हैं वे मनुष्य अपने समस्त दोषो को ध्वस्त कर दिया करते हैं और महान् विषम इस ससार रूपी सागर को तैर कर पार हो जाया करते हैं अर्थात् सासारिक बन्धनो से छूटकर सुगति को प्राप्त कर लिया करते हैं ।२२।

तैरिष्टं विविधैर्यज्ञैर्देवर्षिपितृमानवाः ।
तर्पिताः स्युर्जगद्धेतुर्यैरिष्टो भगवान्भवः ॥२३
पर्वतान्दश यद्दत्वा महादानानि षोडश ।
धेनूश्च दश यद्दत्वा यद्दृष्ट्वा लिङ्गमाप्नुयात् ॥२४,
शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु सः ।
स्वपत्नी युवती त्यक्त्वा यथैवान्यासु रज्यते ॥२५
व्याजेनापि हि ये कुर्युः किंचित्कर्म शिवालये ।
न ते यान्तीह नरक पापात्मानोऽपि मानवाः ॥२६
समार्जनादिकर्तारो मार्गशोभाकराश्च ये ।
तेऽवश्य पृथिवीपाला भवन्ति त्रिदशोपमा ॥२७
अस्मिन्नर्थे पुरा वृत्त तच्छृणुध्व द्विजोत्तमाः ।
यच्छ्रुत्वा प्राणिन प्रायो न मोहमुपयान्ति ते ॥२८

देव-ऋषि-पितृ और मानव कोई भी हो उन्होंने विविध प्रकार के यज्ञो के द्वारा यजन किया है जिन्होंने जगत् के हेतु स्वरूप भगवान् भव का यजन किया है वे पूर्णतया सभी प्रकार से तर्पित भी हो जाते हैं ॥२३॥ दश पर्वतों का दान करके और सोलह महादान करके तथा दश धेनुओ का दान करके जो पुण्य-फल प्राप्त होता है वही फल भगवान् के लिङ्ग का दर्शन करके इस मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥२४॥ जो राजा शिव का भक्त नहीं है और अन्य देवो में भक्ति किया

करता है यह इसी प्रकार का होता है जैसा कोई अपनी युवती पत्नी का त्याग करके अन्य स्त्रिया मे रमण किया करता हो ॥२५॥ जो किसी बहाने भी शिवालय मे कुछ कर्म किया करते हैं वे मानव पापात्मा भी हों तो भी वे नरक में नहीं जाया करते हैं ॥२६॥ जो समार्जन आदि कर्मों के करने वाले होते हैं तथा मार्गों की शोभा को करने वाले हैं हैं व अवश्य देवो के ही समान पुरुष हैं और पृथिवीपाल ही हुआ करते हैं ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! इस अर्थ म जो कुछ भी पहिले घटित हो चुका है उसका आप लोग श्रवण करिये। जिसको सुनकर प्राय प्राणी-गण मोह को नही प्राप्त हुआ करते हैं ॥२८॥

स्वायंभुवेऽन्तरे त्वासीद्राजा परमधार्मिक ।
पञ्चालविषये विप्रा नरवर्मेति विश्रुत ॥२९
देवमन्त्रविदुत्साहशक्तियुक्त प्रतापवान् ।
षाड्गुण्यवि-महासत्त्व स्मितपूर्वाभिभाषित ॥३०
तस्य भार्यासहस्राणां दर्शनीयतमा इति ।
दशानामग्रमहिषी सुदेवीत्यभिविश्रुता ॥३१
सर्वलक्षणसपन्ना शचीव वरवर्णिनी ।
भर्तुश्चापि प्रिया साध्वी चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥३२
करोति प्रत्यह राज्ञी भूमिमार्जनादिभि ।
द्वारशोभा मार्गशोभा शिवस्याऽऽयतने शुभे ॥३३
तां तथाऽभिरता दृष्ट्वा तस्य राज्ञ पुरोहित ।
पप्रच्छेद स तत्त्वज्ञो गालवो रहसि स्थिताम् ॥३४
ब्रूहि शुभ्रे महाभागे विमर्यं हरमन्दिरे ।
समाजनरता नित्यमन्यकर्मपराङ्मुखी ॥३५

स्वायम्भुव मन्वन्तर में एक परम धार्मिक राजा हुआ था। हे विप्रो ! वह पाञ्चाल (पजाब) देश म हुआ था और नरवर्मा-इस नाम से प्रसिद्ध था ॥२६॥ वह राजा देव मन्त्र का ज्ञाता और उत्साह शक्ति से युत था तथा महान् प्रताप वाला भी था। वह राजा छह गुणों से

युक्त था—महान् सत्त्व वाला था और मन्द मुस्कान के साथ भाषण करने वाला था ॥३०॥ उसकी एक सहस्र भार्याओं में परम दर्शनीय आकृति वाली और दशों में भी अग्रमहिषी जो थी वह सुदेवी—इस नाम से विश्रुत थी ॥३१॥ वह सुदेवी राजा की पटरानी सभी सुलक्षणों से सम्पन्न थी तथा वह वरवर्णिनी शची के ही समान थी। उसकी कान्ति चन्द्रमा के ही समान थी और वह अपने भर्त्ता की परम प्यारी थी तथा परम साध्वी थी ॥३२॥ वह रानी प्रतिदिन भूमि की सभार्जना आदि के द्वारा शुभ भगवान् शिव के आयतन में द्वार की शोभा और मार्ग की शोभा किया करती थी ॥३३॥ उस रानी को उस प्रकार से अभिरत देखकर उस राजा का पुरोहित गालव मुनि ने उस रानी से एकान्त में स्थित हुई से यह पूछा था ॥३४॥ हे महाभागे! हे सुभ्रु! आप अन्य सभी कर्मों से पराङ्मुखी होकर नित्य ही समार्जन के करने में किसलिये इतनी रत रहा करती हैं—यह मुझे बतलाइये ॥३५॥

सैवामुक्ता तदा तेन मुनिना विनयान्विना।
प्रहस्याऽऽह विशालाक्षी मुनीन्द्रं गालवं प्रति ॥३६
न मेऽन्यत्र परा भक्तिर्यथा समाजर्नादिषु।
तवाहं कथयिष्यामि पुरा कर्म कृतं मया ॥३७
पूर्वमासमहं गृध्री पक्षिणी व्योमचारिणी।
कदाचिद्भ्रममाणा तु गता किष्किन्धपर्वतम् ॥३८
सिद्धविद्याधराकीर्णं हेमकूटमिवापरम्।
आश्चर्यवन्निराबाधं सलिङ्गं यत्र तिष्ठति ॥३९
यस्य सदर्शनादेव स्वर्गं यान्ति मनीषिणः।
सपूज्याथ तमेवेश पुष्पंर्घ्र्पाक्षतादिभिः ॥४०
न्यस्तं केनापि तत्पार्श्वे नैवेद्यं यत्तदैव हि।
तदादानु समागत्य लिङ्गं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४१
क्षुधार्ताऽहं महाभाग नैवेद्यं तु कृतोद्यमा।
तद्गृह्णत्या क्रमाद्विप्र पक्षाभ्यां ---मार्जनम् ॥४२

उस मुनि के द्वारा जब उस रानी से इस प्रकार से कहा गया था तो वह बहुत ही विनय से समान्विता होकर विशाल नेत्रों वाली उससे हँसकर गालव मुनि से कहने लगी थी ॥३६॥ मेरी अन्य किसी भी कर्म मे अधिक भक्ति नहीं है जैसी कि समार्गन आदि के कर्म मे होती है। अब मैं आपको बतलाती हूं जोकि मैंने पहिले जन्म मे कर्म किया है।३७। पहिले जन्म मे मैं व्योम मे सचरण करने वाली गृध्री पक्षिणी थी। किसी समय मे भ्रमण करती हुई किष्किन्धा नाम वाले पर्वत पर पहुँच गई थी।३८। वह पर्वत सिद्ध और विद्याधरो से घिरा हुआ था और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो दूसरा हेमाचल का ही शिखर होवे। वह आश्चर्य से भरा हुआ—निरावाध था जहां पर खलिङ्ग स्थित था जिसके केवल दर्शन से ही मनीषी लोग स्वर्ग को प्रयाण किया करते हैं। उन्ही ईश की पुष्प धूप और अक्षत आदि से भलीभाँति पूजन करके उनके पार्श्व भाग में किसी ने नैवेद्य रक्खा था। उसी समय मे उसको लेने के लिये लिङ्ग की प्रदक्षिणा करके हे महाभाग! मे क्षुधा से अत्यन्त आर्त्त वहाँ आई और उस नैवेद्य को प्राप्त करने का उद्यम करने वाली हुई थी। हे विप्र उसको जैसे ही ग्रहण करने को मैंने झपका मारा तो वहाँ पर मेरे दोनों पंखों से वहाँ की धूलि का समार्जन होगया था ॥३६-४२॥

कृत देवस्य पुरतो दैवयोगात्क्षणात्ततः।
तावत्तत्र समायातस्तस्य देवस्य पूजकः ॥४३
उद्गताऽहं ततः कालान्मृता जाता वसोर्गृहे।
नृपमंगेो च तेनाह प्रदत्ता प्रथमा वधूः ॥४४
दशराज्ञीमहस्राणामुत्तमा मत्प्रभावतः।
मान्या च दयिता राज्ञः पुत्रपौत्रसमन्विता ॥४५
अज्ञानादीश्वरागारे कृतवैयं पांसुमार्जनम्।
दुहिताऽहं वसोर्जाता राज्ञो जातिस्मरा तथा ॥४६
मार्गात्ममार्जनं कृत्वा भविष्यामि न वेद्मि तत्।
एतमुक्तस्तया राज्ञा प्रहृष्टस्तामथाब्रवीत् ॥४७

समाराध्य सुरेशान सर्वद त्रिपुरान्तकम ।
किमाश्चर्य गुणावासे यदेतत्प्राप्तवत्यसि ॥४८
चक्षुषा प्रेक्षण चैव नमन च प्रदक्षिणम् ।
लिङ्गमूर्ते. शिवस्यैव राज्यावाप्तिकर स्मृतम् ॥४९

मैंने देव के ही आगे ऐसा किया था । दैवयोग से एक ही क्षण भर मे तब तक वहाँ पर देवकी पूजा करने वाला वहाँ पर आगया था ।४३। उसी काल मे मैं वहा से उद्गता होगई और मृत होने के पश्चात् वसु के घर मे समुत्पन्न हुई थी । उसने मुझको नृवर्य के लिये प्रथमा वधू के रूप मे दे दिया था ॥४४॥ उसी के प्रभाव से मैं दश सहस्र रानियो मे सर्वोत्तमा रानी हूँ । मैं महामान्या हूँ और राजा की पुत्र-पौत्र से समन्वित प्रिया रानी हूँ ॥४५॥ बिना ही किसी कामना के ईश्वर के आयतन मे इस प्रकार से धूलि का मार्जन कर देने पर मैं वसु की बेटी हुई तथा एक परम श्रेष्ठ राजा की जातिस्मरा अर्थात् परम प्रिया पत्नी होगई हूँ ॥४६॥ यदि कामनाओ से समार्जन करके मैं क्या हो जाऊ गी—इसको मैं नही जानती हूँ । इस तरह रानी के द्वारा कहे गये गालव मुनि ने परम प्रहृष्ट होकर उससे कहा था ॥४७॥ सभी कुछ के प्रदान करने वाले त्रिपुरान्तक सुरेशान का समाराधन करके गुणावास मे जो यह आपने प्राप्त किया है—इसमे क्या आश्चर्य की बात है ? ॥४८॥ केवल चक्षु के द्वारा देखना और प्रक्षिण देवेश को करना नमन करना लिङ्ग मूर्त्ति भगवान् शिव इतना ही सम्मान करना राज्य की प्राप्ति करा देना वाला बताया गया है ॥४९॥

जातिस्मरत्वमैश्वर्य विद्याज्ञान प्रजासुखम् ।
अज्ञानाद्वा भयाद्वाऽपि दृष्ट्वैवेह महेश्वरम् ॥५०॥
नाम्नाऽपि नरकच्छेदः स्मरणाद्वै बुध पदम् ।
पूजानाद्यस्य निर्वाण तमीश को न सश्रयेत् ॥५१॥
फलं प्रमादाज्जायेत ध्रुवं कातेन देहिनाम् ।
अर्थिना त्वखिलान्कामान्सद्यः फलति शकर. ॥५२॥

शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति महेश्वरम् ।
तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा शिवलोकमनामयम् ॥५३॥
चराचरगुरोरस्य शंभोरमिततेजसः ।
न कृता यैर्दृढा भक्तिर्वञ्चितास्ते स्फुटं जनाः ॥५४॥
प्रमादेनापि यैः क्वापि प्रणामः शूलिनः कृतः ।
कल्पान्तेऽपि भवग्रन्थिर्न तेषां जायते पुनः ॥५५॥

जाति स्मरत्व-ऐश्वर्य-विद्या का ज्ञान प्रजा का पुत्र यह सब तो अज्ञान से अथवा भय से यहाँ पर महेश्वर प्रभु को देखकर ही प्राप्त हो जाया करता है। केवल नाम का उच्चारण करने से ही नरकों का छेदन हो जाया करता है और शिव का स्मरण करने से विबुधों का पद प्राप्त होता है। पूजन करने से उस पुरुष को निर्वाण पद प्राप्त हो जाया करता है ऐसे महामहिम देव का कौन मूढ़ है जो समाश्रय ग्रहण नहीं करेगा।५०।५१। देहधारियों को कुछ काल में भगवान् के प्रसाद से फल होता है और निश्चित रूप से हुआ करता है। जो अर्चीनन हैं उनकी सम्पूर्ण कामनाओं को भगवान् शङ्कर तुरन्त ही फलित कर दिया करते हैं।५२। जो नर शठता से भी नित्य ही महेश्वर प्रभु का स्मरण किया करते हैं वे भी अपने शरीर का परित्याग करने के पश्चात् अनामय शिवलोक को प्राप्त कर लिया करते हैं।५३। अपरिमित तेज वाले चर-अचर सबके गुरु भगवान् शम्भु की भक्ति जिन्होंने नहीं की है और दृढ़ भक्ति भाव हृदय में नहीं लाए हैं वे मनुष्य स्पष्ट रूप से वञ्चित ही रह जाया करते हैं।५४।प्रमाद से भी जिन्होंने कहीं पर भी शूली प्रभु को प्रणाम किया है उनको कल्पान्त में भी सांसारिक ग्रन्थि नहीं हुआ करती है।५५।

तावद्भ्रमन्ति संसारे घोरसंसारगा जना: ।
नार्चयन्ति विरूपाक्षं यावदेव महीभृत: ॥५६॥
दानितामपुराणादिनिवपुण्यबाधनम् ।
ये पुण्यं मनुष्येऽत्र भावात् प्राप्नुवन्ति ये नराः ॥५७॥
व्रतोपवासदानेषु तीर्थस्नानेषु सत्तमम् ।

तत्त्या स्यान्न स देह इत्याह परमेश्वर ॥५८॥
विनष्टलोभा विषयेषु निस्पृहा प्रसन्नचिताश्च शिवार्चनोद्यता ।
व्रजन्ति श भो परम सनातन निरामय यत्प्रवदन्ति सूरय ॥५६।
कुल पवित्र पितर समुद्धृता वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजा ।
सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो हृदि स्थितो यस्य सदैव शकर ॥६०॥

तभी तक ये प्राणी इस ससार मे शोक मोह मे परायण होकर भ्रमण किया करते हे जब तक ये शरीरधारी भगवान् विरूपाक्ष की अर्चना नही किया करते हैं।५६। इतिहास और पुराणादि जो भगवान् शिव के विषय मे लिखित पुस्तकें हैं उनका वाँचना जो कोई एक बार भी इस जीवन मे किया करते हैं और इस प्रकार से जो नर भक्ति भाव से श्रवण किया करते हैं। उनको व्रत उपवास और दानो में जो भी कुछ पुण्य-फल प्राप्त होता है वह हो जाया करता है—इसमे लेशमात्र भी सन्देह का कोई भी अवसर नही है—ऐसा परमेश्वर ने स्वय कहा है।५८। विषयों मे लाभ को नष्ट कर देने वाले—नि स्पृह अर्थात् किसी भी प्रकार की कोई भी इच्छा नही रखते हैं प्रसन्न चित्त वाले और शिव के अर्चन में उद्यत रहने वाले मनुष्य भगवान् शम्भु के परम सनातन निरामय पद को प्रणाम किया करते हैं ऐसा सूरिगण कहते हैं।५६। हे द्विजो ! उस पुरुष का कुल परम पवित्र हो जाता हैं—उसके पितृगणों का समुद्धय कर देते हैं—और उसके सम्पूर्ण वसुन्धरा को भी पावित कर दिया है जिनके हृदय मे सनातन-अनादि-अनन्त विग्रह वाले भगवान् शङ्कर सदा ही स्थित रहा करते हैं अर्थात् जो सर्वदा शिव का मन मे ध्यान रक्खा करते हैं।६०।

॥ रक्तासुर वध कथन ॥

पार्वत्या श्रोतुमिच्छामो माहात्म्य रोमहर्षण ।
जघान सा यथा दैत्यान्रक्तासुरपुरोगमान् ॥१॥

प्राणिपत्य महादेवी शङ्करार्धशरीरिणीम् ।
महेन्द्राणीश्वरनुतां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥२॥
एकाक्षरीति विख्याता ब्राह्मी दाक्षायणीति या ।
उमा हैमवती दुर्गा सती माता महेश्वरी ॥३॥
आर्याऽम्बिका मृडानी च चण्डी नारायणी शिवा ।
महालक्ष्मीर्जगन्माता कालिका मेनकात्मजा ॥४॥
नानारूपधरा सैवमवतीर्णे पार्वती ।
धर्मसंस्थापनार्थाय निघ्नती दैत्यदानवान् ॥५॥
परमात्मा यथा रुद्र एकोऽपि बहुधा स्थित. ।
प्रयोजनवशाद्देवी सैवाऽपि बहुधा भवेत् ॥६॥
आसीद्रक्तासुरो नाम महिषस्य सुतो बली ।
महामायो महाबाहुर्हिरण्याक्ष इवापर. ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे रोम हर्षणजी ! अब हम देवी जगदम्बा पार्वतीजी का माहात्म्य श्रवण करना चाहते हैं जिसमें रक्तासुर जिसमें प्रधान था ऐसे दैत्यों का हनन किया था ।१। श्री सूतजी ने कहा—भगवान् शंकर देव की अर्धाङ्गिनी महादेवी को प्रणिपात करके जो महेन्द्राणी और ईश्वर के द्वारा भी वन्दिता हैं और अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हैं ।२। जो एकाक्षरी—इस नाम से विख्यात हैं और जो ब्राह्मी-दाक्षायणी-उमा-हैमवती-दुर्गा सती-माता-महेश्वरी-अम्बिका-मृडानी-चण्डी-नारायणी-शिवा-महालक्ष्मी-जगत् की माता-कालिका-मेनकात्मजा और अनेक रूपों के धारण करने वाली हैं वह ही 'पार्वती' इस नाम से अवतीर्ण होकर आई हैं । उनने धर्म की संस्थापना करने के लिए दैत्य और दानवों का निहनन किया है ।३।४।५। जिस प्रकार से एक ही परमात्मा रुद्र स्थित रहा करते हैं वैसे ही प्रयोजन के वश से यह देवी भी एक ही होते हुए बहुत से स्वरूपों में हो जाया करती हैं ।६। एक रक्तासुर नाम वाला भाई महिषासुर का पुत्र बहुत ही अधिक

बलवान् था । वह महती माया वाला महान् भुजाओं से युक्त बहुत बलवान् था ।७।

स विजित्य सुरान्सर्वान्विष्णिवन्द्राग्निपुरोगमान् ।
त्रैलोक्येऽस्मिन्निरातङ्कश्चक्रे राज्य प्रतापवान् ।।८।।
तस्यैते मन्त्रिणश्चाऽऽसन्रुद्रात्मानो मदोत्कटा. ।
त्रयस्त्रिशद्द्विजश्रेष्ठा. सहस्राक्षौहिणीयुताः ।।९।।
सिंहस्कन्धा महाकाया दुरात्मानो महाबलाः ।
धूम्राक्षो भीमदंष्ट्रश्च कालपाशो महाहनु. ।।१०
ब्रह्मघ्नो यज्ञकोपश्च स्त्रीघ्नो बालघ्न एव च ।
विद्युन्माली च बन्धूकः शङ्कुकर्णो विभावसुः ।।
देवान्तको विषमश्च दुर्भिक्षः क्रूर एव च ।
हयग्रीवोऽश्वकर्णश्च केतुमान्वृषभो गजः ।।१२
शलभः शरभो व्याघ्रो निकुम्भो मणिको बक. ।
सूर्यको विक्षुरो माली कालो दण्डश्च केरलः ।।१३
स कदाचित्समासीनो दैत्यकोटिसमावृतः ।
सदस्यथाब्रवीद्दैत्यान्दानवान्सनरांस्तथा ।।१४
मा यजध्वं स्तुवाध्व च पूज्योऽहं भवतां सदा ।
यस्तु देवान्समातिष्ठेत्स गच्छेद्वध्यता मम ।।१५

उसने सभी सुरों को युद्ध मे जीत लिया था जिनमे विष्णु-इन्द्र और अग्नि सभी पुरोगामी थे । वह ऐसा प्रताप वाला था कि त्रैलोक्य मे निरातङ्क राज्य कर रहा था ।८। उसके रुद्रात्मा मदोत्कट मन्त्री थे । हे द्विज श्रेष्ठो ! ये सब तैंतीस थे जो सहस्रों अक्षौहिणी सेनाओं से समावृत रहा करते थे ।९। इनके स्कन्ध सिंहो के समान थे—इनका शरीर विशाल था—ये सभी बड़े दुरात्मा थे और महान् बलशाली थे । उनके नाम-धूम्राक्ष-भीमदंष्ट्र-कालपाश-महाहनु-ब्रह्मघ्न-यज्ञकोप-स्त्रीघ्न-बालघ्न विद्युन्माली-बन्धूक-शङ्कुकर्ण-विभावसु-देवान्तक-विषम दुर्भिक्ष-क्रूर-

हयग्रीव-अश्वकर्ण केतुमान्-वृषभ-वज्र-धानम शरभ-व्याघ्र-निकुम्भ-मणिक वक-सूर्यंव-विक्षुर माली बाण दण्ड-केरल थे वे। वह किसी समय मे करोड़ों दैत्यों से समावृत हुआ पैदा हुआ था। उसने सभा म सब दैत्यों—दानवों और नरों से कहा था—तुम लोग किसी का भी यजन मत करो—यजन न करो क्योंकि मैं ही सदा आप सब लोगों का पूज्य हूँ। जो कोई भी देवों का पूजनार्चन करेगा मैं उसको मार डालूगा।१०।१५।

> दानयज्ञोपवासांश्च त्यक्त्वा देवर्षिदर्शितान्।
> प्रत्यक्षमोक्ष्यान्भुञ्जध्वं यथेष्ट सुरयोषित ॥१६
> इति दैत्येन्द्रवाक्येण नष्टा यज्ञक्रियास्तदा।
> नाधीयन्ते तदा वेदा न पूज्यन्ते च देवता
> उत्सवा न प्रवर्तन्ते सर्वमासीत्तदाऽऽसुरम्।
> धर्महीनस्ततो लोको म्लेच्छाकुल इवाभवत् ॥१८॥
> धर्मनाशात्सुरेन्द्रस्य बलहानिरजायत।
> ज्ञात्वा हीनबलं शक्र दानवास्तं समाद्रवन् ॥१६
> सोऽभिभूतोऽसुरैर्गाढं त्यक्त्वा राज्यं च देवराट्।
> बृहस्पतिमुपागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥२०
> रक्तासु राज्यनुज्ञाता दैत्या कोटिसहस्रश।
> आबाधन्ते स्म सर्वान् मद्वार्थं न स शय ॥२१

दान यज्ञ-उपवास जो देवों ने और ऋषियों ने दर्शित किये हैं उन सब का त्याग करके प्रत्यक्ष सुखों का भोग करो और यथेष्ट रूप से देवाङ्गना का उपभोग किया करो।१६। इन दैत्येन्द्र के वचन से त्रिलोकी में सभी यज्ञ की क्रियाओं का विनाश हो गया था। उस समय मे कोई भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करते थे और देवताओं का यजन भी नहीं किये जाते थे।१७। कोई भी उत्सव कहीं पर प्रवृत्त नहीं होते थे उस समय में तो महादैत्य के भय से समस्त संसार ही आसुरी प्रकृति

वाला हो गया था। तब तो सब लोक धर्म से हीन म्लेछों के द्वारा ही घिरा हुआ सा हो गया था।१८। धर्म की हानि होने से सुरेन्द्र के बल की कमी हो गयी थी। जब दानवों ने इन्द्र को हीन बल वाला समझ लिया था तो सब दानवों ने उस पर आक्रमण कर दिया था।१६। वह देवों का राजा जब असुरों के द्वारा बहुत अधिक अभिभूत हो गया था तो उसने अपना राज्य का सिंहासन ही त्याग दिया था। इन्द्र ने सुर गुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह वाक्य कहा था—।२०। हे भगवन्! रक्तासुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए करोड़ों सहस्र दैत्यगण सर्वत्र बाधाऐं सब ओर से कर रहे है और—वे सब मेरे वध के लिए ही तैयार हो रहे हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है।२१।

न स्थातुमत्र शक्नोमि न गन्तुं तैस्त्वभिद्रुतः।
सर्वथा योद्धुमिच्छामि यद्भविष्यति ॥२२
नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम्।
यावत्प्रमार्ष्टि न विधिर्मालिऽस्य लिखिताक्षरम् ॥२३
जयमाशास मे प्रह्वन्योत्स्येऽहमरिभिः सह।
मूहर्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम् ॥२४
धिक्तस्य जीवितं पुंसः शत्रूणामाततायिनाम्।
अपकर्तुमशक्तो यो जीवामीत्यधिगच्छति ॥२५
कर्मायत्तं किलैश्वर्यं मदायत्तं च पौरुषम्।
तस्मायुद्धं करिष्यामि ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ॥२६
श्रुत्वैव मघवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत्।
न कालो विग्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥२७
न च खेदस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी।
दैवाद्भवन्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥२८

मैं न तो यहाँ पर ही स्थित रह सकता हूँ और न उनके द्वारा अभिद्रुत हुआ कहीं अन्य स्थान पर ही जाने में समर्थ हूँ। मैं सब प्रकार से युद्ध करने की ही इच्छा करता हूँ फिर जो भी होनहार है

नहीहोगा ।२२। नष्ट होते हुए और युद्ध करते हुए जभी तक मैं रहूँगा तब तक मेरा जीवित शेष रहेगा मैं बराबर युद्ध करता ही रहूँगा जब तक विधाता इसके भाल में लिखे हुए अक्षरों का प्रमार्जन नहीं करते हैं ।२३। हे ब्रह्मन् ! आप मुझे विजय होने का आशीर्वाद दीजिए। मैं अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा। एक मुहूर्त मात्र का समय जाज्वल्यमान रहे वही कल्याण करने वाला होता है और जो समय धूमायित रहे वह अत्यधिक भी अच्छा नहीं हुआ करता है ।२४। उस पुरुष का जीवन ही धिक्कारने के योग्य है जो आततायी शत्रुओं के अपकार करने में असमर्थ होवे और मैं जीवित रहता हूँ—ऐसा मन में समझा करता है ।२५। ऐश्वर्य तो कर्म के ही अधीन हुआ करता है और पौरुष सदायत्त होता है। इस लिए मैं युद्ध करूँगा। निश्चय ही मेरा श्रेय होगा ।२६। इस तरह के इन्द्र देव के वाक्य को सुनकर इसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने उससे कहा था हे शचीपते ! आज तो विग्रह करने की काल ही नहीं है। फिर इस कोप का करना भी तुम्हारा व्यर्थ ही है। आपको इस विषय में खेद भी नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्यों के होने की गति ऐसी ही हुआ करती है। प्राणियों को सम्पाएं और विपदाएं दैव के वश से हुआ करती हैं ।२७।२८।

स्वशक्तिं परशक्तिं च षाड्गुण्यविदुदारधीः ।
देशकालबलोपेताञ्ज्ञात्वा विग्रहमाचरेत् ॥२९॥
देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥३०॥
सम्यग्विज्ञातशास्त्रार्थो राजा विजयमाचरेत् ।
सप्ताङ्गराज्यत्राणं च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥३१॥
कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।
विश्वासयति भूतानि न च विश्वसते क्वचित् ॥३२॥
छिद्रेषु योऽन्विवियाच्छत्रुं च राज्य महदश्नुते ।
साम्प्रतं वृद्धमूर्योऽसौ त्वं देवानवलोकित ॥३३॥

वाला हो गया था। तब तो सब लोक धर्म मे हीन म्लेछो के द्वारा ही घिरा हुआ सा हो गया था ।१८। धर्म की हानि होने से सुरेन्द्र के बल की कमी हो गयी थी। जब दानवो ने इन्द्र को हीन बल वाला समझ लिया था तो सब दानवो ने उस पर आक्रमण कर दिया था ।१९। वह देवो का राजा जब असुरो के द्वारा बहुत अधिक अभिभूत हो गया था तो उसने अपना राज्य का सिंहासन ही त्याग दिया था। इन्द्र ने सुर गुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह वाक्य कहा था—।२०। हे भगवन्! रक्तासुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए करोड़ों सहस्र दैत्यगण सर्वत्र बाधाऐं सब ओर से कर रहे है और—वे सब मेरे वध के लिए ही तैयार हो रहे हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।२१।

न स्थातुमत्र शक्नोमि न गन्तुं तैस्त्वभिद्रुत ।
सर्वथा योद्धुमिच्छामि यद्भविष्यति ॥२२
नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम् ।
यावत्प्रमार्ष्टि न विधिर्भालेऽस्य लिखिताक्षरम् ॥२३
जयमाशंस मे ब्रह्मन्योत्स्येऽहमरिभिः सह ।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम् ॥२४
धिक्तस्य जीवित पुंस शत्रूणामाततायिनाम् ।
अपकर्तुमशक्तो यो जीवामीत्यधिगच्छति ॥२५
कर्मायत्तं किलैश्वर्यं मदायत्तं च पौरुषम् ।
तस्मायुद्धं करिष्यामि ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ॥२६
श्रुत्वैव मघवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत् ।
न कालो विग्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥२७
न च खेदस्त्वया कार्यः कार्याणा गतिरीदृशी ।
दैवाद्भवन्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥२८

मैं न तो यहाँ पर ही स्थित रह सकता हूँ और न उनके द्वारा अभिद्रुत हुआ यहाँ अन्य स्थान पर ही जाने मे समर्थ हूँ। मैं सब प्रकार से युद्ध करने की ही इच्छा करता हूँ फिर जो भी होनहार है

यहीहोगा ।२२। नष्ट होते हुए और युद्ध करते हुए जभी तक मैं रहूँगा तब तक मेरा जीवित शेष रहेगा मैं बराबर युद्ध करता ही रहूँगा जब तक विधाता इसके भाल मे लिखे हुए अक्षरो का प्रमार्जन नही करते हैं ।२३। हे प्रह्लाद ! आप मुझे विजय होने का आशीर्वाद दीजिए। मैं अपने शत्रुओ के साथ युद्ध करूगा। एक मुहूर्त मात्र का समय जाज्वल्यमान रहे वही कल्याण करने वाला होता है और जो समय धूमायित रहे वह अत्यधिक भी अच्छा नही हुआ करता है ।२४। उस पुरुष का जीवन ही धिक्कारने के योग्य है जो आततायी शत्रुओ के अपकार करने मे असमर्थ होवे और मैं जीवित रहता हूँ—ऐसा मन मे समझा करता है ।२५। ऐश्वर्य तो कर्म के ही अधीन हुआ करता है और पौरुष सदायत्त होता है। इस लिए मैं युद्ध करूगा। निश्चय ही मेरा श्रेय होगा ।२६। इस तरह के इन्द्र देव के वाक्य को सुनकर इसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने उससे कहा था हे शचीपते ! आज तो विग्रह करने का काल ही नही है। फिर इस कोप का करना भी तुम्हारा व्यर्थ ही है। आपको इस विषय मे खेद भी नही करना चाहिए क्योंकि कार्यो के होने की गति ऐसी ही हुआ करती है। प्राणियों को सम्पदाऐं और विपदाऐं दैव के वश से हुआ करती हैं ।२७।२८।

स्वशक्ति परशक्ति च षाड्गुण्यविदुदारधी ।
देशकालबलोपेताञ्ज्ञात्वा विग्रहमाचरेत् ॥२९॥
देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥३०॥
सम्यग्विज्ञातशास्त्रार्थो राजा विजयमाचरेत् ।
सप्ताङ्गराज्यत्राण च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥३१॥
कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।
विश्वासयति भूतानि न च विश्वसते क्वचित् ॥३२॥
छिद्रेषु योऽन्विवियाच्छत्रु च राज्य महदश्नुते ।
साप्रत बद्धमूयोऽसौ त्त देवानवलोक्य ॥३३॥

अतो युद्धावकाशं ते न पश्यामि शतक्रतो ।
मत्सहायाश्च ये शूराः शक्तिमन्तो निरुत्सुका ॥३४॥
दुर्धर्षानपि ते शत्रूञ्जयन्त्येव सदा नृपा ।
पुरोधसैवमुक्तस्तु पुनराह पुरंदर ॥३५

षाड्गुण्य को जानने वाला उदार बुद्धि से युक्त पुरुष अपनी शक्ति और परायी शक्ति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही देश—काल और बल से उपेतों को समझकर ही युद्ध करे ॥२६॥ देश और काल से विहीन कर्मों को विपरीत के समान किये हुए कर्म अप्रयत्नों में दर्विके ही तुल्य दूषित हो जाया करते हैं ॥३०॥ जो भली भाँति शस्त्रार्थों को ज्ञात कर लेता है वही राजा विजय प्राप्त किया करता है । अथवा सात राज्य के प्राण करने वाले अङ्गों को समझकर शत्रुओं के साथ विग्रह करे ॥३१॥ हे शचीपते ! जो इसके विपरीत युद्ध किया करते हैं वे नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं । भूतों को विश्वास दिलाता है किन्तु स्वयं कहीं पर भी विश्वास नहीं किया करता है ॥३२॥ जो छिद्रों में शत्रु का अनुगमन किया करता है वही महान राज्य की प्राप्ति किया करता है । इस समय में यह बद्ध मूल है और आप देव के द्वारा अवलोकित नहीं हो रहे हैं अर्थात भाग्य आपके अनुकूल नहीं है । हे शतक्रतो ! अतएव इसीलिए मैं आपके युद्ध का अवसर नहीं समझता हूं । मेरे सहायक जो शूर हैं वे शक्तिमान हैं किन्तु उत्सुकता से रहित हैं । नृप सदा तुम्हारे दुर्धर्ष शत्रुओं को भी जीत ही लेते हैं । इस प्रकार से पुरोहित जी के द्वारा कहे जाने पर फिर—इन्द्र ने कहा—॥३३॥३४॥३५॥

अभिभूतो भृशं दैत्यैर्नाहं जीवितुमुत्सहे ।
शत्रुभिर्वर्तमानस्य मूर्खस्य त्वजितस्य च ॥३६
व्याधितस्य दरिद्रस्य श्रेयो मृत्युर्न जीवितम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन योत्स्येऽहं दानवैः सह ॥३७
नृणां कर्मसमारम्भे श्रेयसी ह्येकचित्तता ।
गुणदोषावुभावेतावेकीकृत्य विचक्षण ॥३८

कार्यमारभते यस्तु तस्य दोषाः पराङ्मुखाः ।
यावद्भयस्य भेतव्य यावद्भयमनागतम् ॥३९

आगत तु भय दृष्ट्वा योद्धव्य वाऽप्यभीरुवत् ।
मृतस्य जीवतो वाऽपि नरस्येह प्रयुध्यतः ॥४०

श्रेय एव महर्धि. स्यात्तस्माद्योत्स्याम्यह परैः ।
तयो. सवदतोरेव ब्रह्माऽऽगत्येदमब्रवीद् ॥४१

मा वपाद कृथा शक्र शरणं व्रज पार्वतीम् ।
या जघ्ने महिष दैत्य रुरु चित्रासुर तथा ॥४२

दैत्यो के द्वारा अभिभूत हुआ मे जो बहुत ही अधिक तिरस्कृत हो चुका हूँ । ऐसी स्थिति मे मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ । जो शत्रुओ के द्वारा घिरा हुआ वर्त्तमान हो—मूर्ख हो और स्त्री के द्वारा जित हो—व्याधि से युक्त हो—दरिद्र हो उसका श्रेय कभी नहीं हुआ करता है और उसकी मृत्यु ही है जीवन नहीं है । यहा पर बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है । मैं तो दानवों के साथ अवश्य ही युद्ध करूगा ॥३६॥३७॥ मनुष्यों के कर्मों के समारम्भ मे एकचित्त का होना ही कल्याणकारी होता है । विचक्षण पुरुष को गुणो और दोषों दोनों को एकीकृत करके ही कार्यों का आरम्भ करना चाहिए ॥३८॥ जो इस रीति से कार्य का आरम्भ किया करता है उसके सब दोष पराङ्मुख हो जाया करते हैं । भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक नहीं आया है । आये हुए भय को देखकर तो अभीरुकी भाँति ही अर्थात् शूरता से युद्ध करना चाहिए । मृत अथवा जीवित मनुष्य का जो युद्ध कर रहा हो श्रेय ही महान् ऋद्धि है । इसीलिये मैं शत्रुओ से युद्ध अवश्य ही करूगा । वे दोनो जब इस प्रकार से सम्वाद कर रहे थे तो वहा पर ब्रह्माजी ने उपस्थित होकर यह कहा था ॥३६॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥ हे इन्द्र ! विषाद मत करो और तुम जगदम्बा पार्वतीजी की शरण मे चले जाओ जो देवी ने महिषासुर को रुद्र और चित्रासुर दैत्य को मार चुकी हैं ॥४२॥

सद्यो रक्तासुरं हत्वा स्व राज्य ते प्रदास्यति ।
एवमुक्त्वा हरिं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥४३
शक्रोऽपि त्रिदशैः सार्धं जगाम हिमवान्गिरिम् ।
स तत्र गत्वा शर्वाणी निर्भयो विगतज्वरः ॥४४
स्तोत्रेणानेन तुष्टाव शिवां शङ्करवल्लभाम् ।
जयाक्षरे जयानन्ते जयाव्यक्ते निरामये ॥४५
जय देवि महामाये जय त्रिदशवन्दिते ।
जय भद्रे विदेहस्थे जयाऽऽद्ये त्रिगुणात्मिके ॥४६
जय विश्वम्भरे गङ्गे जय सर्वार्थसिद्धिदे ।
जय ब्रह्माणि कौमारि जय नारायणीश्वरि ॥४७
जय वाराहि चामुण्डे जयेन्द्राणि महेश्वरि ।
जय मातर्मंङ्गलाक्षि जय पार्वति सर्वगे ॥४८
जय देवि जगज्ज्येष्ठे जयैरावति भारति ।
मृगावति जयानन्ते तेजोवति जयामले ॥४९

यह जगदम्बा तुरन्त ही रक्तासुर को मार कर तुमको तुम्हारा राज्य प्रदान कर देंगी । इस रीति से ब्रह्माजी इन्द्र से कहकर वहां पर ही अन्तर्हित हो गये थे ॥४३॥ इन्द्र देव भी अन्य सब देवों के साथ हिमवान् गिरि पर चले गये । उसने वहां पहुँचकर शर्वाणी की सन्निधि में निडर और विगतज्वर वाला होकर इस निम्न कथित स्तोत्र के द्वारा शङ्कर भगवान् की वल्लभा शिवा का स्तवन किया था । इन्द्र देव ने कहा—हे जयाक्षरे ! हे जय अनन्त वाली ! हे जया व्यक्ते ! हे आमयों से रहित रहने वाली ! हे महामाये ! हे देवि हे देवों के द्वारा वन्द्यमान होने वाली ! आपकी जय हो । हे भद्रे ! हे विदेह में स्थित रहने वाली आपकी जय होवे । हे आद्ये ! हे त्रिगुणात्मके ! आपकी जय हो ॥४४॥ ॥४५ ।४६॥ हे विश्वम्भरे ! हे गङ्गे ! आपकी जय हो । हे समस्त अर्थों की सिद्धि के प्रदान करने वाली ! आपकी जय हो । हे ब्रह्माणि ! हे । कौमारि ! हे नारायणीश्वरि ! आपकी जय हो ॥४७॥ हे वाराहि !

हे चामुण्डे ! हे इन्द्राणि ! हे महेश्वरि ! आपकी जय होवे । हे माता महालक्ष्मि ! हे पार्वति ! हे सर्वत्र सब में गमन करने वाली ! आपकी जय हो ॥४८॥ हे देवि ! हे जगत् मे सबसे श्रेष्ठे ! हे ऐरावति ! हे भारति ! हे अनन्ते ! हे तेजो वति ! हे प्रपले ! आपकी जय हो ॥४९॥

जयेशानि शिवे सर्वे जय नित्य जयार्चिते ।
मोक्षदे जय सर्वज्ञे जय धर्मार्थकामदे ॥५०
जय गायत्रि कल्याणि जय सन्ध्ये विभावरि ।
जय दुर्गे महाकालि शिवदूति जयाजये ॥५१
जय दण्डमहामुण्डे जय नन्दे शिवप्रियें ।
जय क्षेमकरि शिवे जय भ्रामणि रेवति ॥५२
जयोमे साध्वि मङ्गल्ये हरसिद्धे नमोऽस्तु ते ।
जयाऽऽनन्दे महावर्णे महिषासुरघातिनि ॥५३
जयानघे विशालाक्षि जयानङ्गे सरस्वति ।
जयाशेषगुणावासे जय वृत्रासुरान्तके ॥५४
जय योगेशि सकल्पे जय त्रैलोक्यसुन्दरि ।
जय शुम्भनिशुम्भघ्ने जय पद्मेन्दुसभवे ॥५५
जय कौशिकि कौमारि जय वारुणि कामदे ।
नमो नमस्ते शर्वाणि भूयो भूयो जयाम्बिके ॥५६

हे इशानि ! हे शिवे ! हे सर्वे ! हे नित्ये ! हे अर्चिते ! आपकी जय हो । हे मोक्ष के प्रदान करने वाली ! हे सब कुछ का ज्ञान रखने वाली ! हे धर्म अर्थ और काम को देने वाली ! आपकी जय हो ॥५०॥ हे गायत्रि ! हे कल्याणि ! हे सन्ध्ये ! हे विभावरि ! आपकी जय होवे ! हे दुर्गे ! हे महा कालि ! हे शिव दूति ! हे अजये जय हो ॥५१॥ हे दण्ड महा मुण्डे ! हे नन्दे ! हे शिव प्रिये ! हे क्षेमके करने वाली ! हे शिवे ! हे भ्रामणि ! हे रेवति ! आपकी जय हो । हे उमे ! हे साध्वि !

हे मङ्गल्ये ! हे हरसिद्धे ! आपके लिये हमारा नमस्कार है। हे आनन्दे! हे महावर्णे ! हे महिषा सुर को मारने वाली ! हे अनघे ! हे विशालाक्षि! हे अनङ्गे ! हे सरस्वती ! हे मरत गुणों के आवास रूपे ! हे वृत्रासुर के अन्तकर देने वाली ! आपकी जय होवे ॥५२॥५३॥५४॥ हे योगेशि ! हे सङ्कल्पे ! हे त्रैलोक्य सुन्दरि ! आपकी जय हो। हे शुम्भ और निशुम्भ का दमन करने वाली ! हे पद्मेन्दु से उत्पन्न होने वाली ! आपकी जय होवे। हे कौशिकि ! हे कौमारि ! हे वारुणि ! हे कामदे ! हे शर्वाणि ! हे अम्बिके ! आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है। आपकी जय हो ॥५५॥५६॥

त्राहि नस्त्राहि नो देवि शरणागतवत्सले ।
य इमां कीर्तयिष्यन्ति जयमाला भवानि ते ॥५७॥
त्रिविधैरपि दुःखौघैर्मुच्यन्ते परमेश्वरि ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥५८॥
भान्ति लोके तथाऽऽदित्याः सर्वरोगविवर्जिताः ।
देहावसाने तेऽवश्यं पश्यन्त्येव हि पार्वतीम् ॥५६॥
नेन्द्रियाणा विकलता यथाऽन्येषां भवेन्नृणाम् ।
देवीलोक गमिष्यन्ति स्कन्दलोकोपरिस्थितम् ॥६०॥
पुनरावृत्तिरहित रतोऽत्रजाप्यान्न संशयः ।
सैवं स्तुता भगवती महेन्द्रेणाथ पार्वती ।
आत्मान दर्शयामास सर्वालंकरणान्वितम् ॥६१॥
नमस्कृत्याथ तामूचुः सुरास्ते भयनाशिनीम् ।
हत्वा रक्तासुर दैत्य पाहि नो महतो भयात् ॥६२॥
तेषा तद्वचनं श्रुत्वा दत्वा तेभ्योऽभय ततः ।
बभूवाद्भुतरूपा सा त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा ॥६३॥

हे देवि ! हे शरण में समागतों पर प्यार करने वाली ! हमारा परित्राण करो—हमारी रक्षा करो। हे भवानि ! जो कोई भी आपकी जयमाला का कीर्त्तन करेंगे हे परमेश्वरि ! वे तीनों प्रकार के दुःखों से

समुदायों से मुक्त हो जाया करते हैं। वे कीर्तन करने वाले लोग सभी पापों से निर्मुक्त होते हुए सब तरह के ऐश्वर्य से समान्वित हो जाते हैं। ५७।५८। वे आदित्य होकर लोक में जाया करते हैं और सभी रोगों से वर्जित हो जाया करते हैं। देह के समाप्त हो जाने पर वे अवश्य ही पार्वतीदेवी का दर्शन प्राप्त किया करते हैं।५६। अन्य नरों की जैसी हुआ करती है वैसी इनको इन्द्रियों की विवशता कभी नहीं होती है। वे सब स्कन्द के लोक से ऊपर में स्थित देवी लोक को चले जाया करते हैं। इस स्तोत्र के जाप से पुनरावृत्ति से अर्थात् संसार में फिर दूसरा जन्म ग्रहण करने से रहित हो जाया करते हैं—इस विषय में कुछ भी संशय नहीं है।६०। श्रीसूतजी ने कहा—महेन्द्र के द्वारा इस तरह से स्तुत हुई भगवती पार्वती ने अपने आपका दर्शन दिया था जो कि उनका स्वरूप सभी आभूषणों से समवद्ध न था।६१। पार्वतीदेवी को नमस्कार करके इसके उपरान्त सुरा न उस भय नाशिनी देवी से प्रार्थना की थी कि रक्तासुर दैत्य का हनन करके महान् भय से हमारा परित्राण करिए।६२। उन देवों के भय से युक्त उन वचनों का श्रवण करने इसके उपरान्त उन सबको अभय वचन देकर वह तीन नेत्रों वाली मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करती हुई अद्भुत स्वरूप वाली हो गयी थी।६३।

सिंहारूढा महादेवी नानायुधधारिणी।
सुवक्त्रा विंशतिभुजा स्फूर्जद्विद्युल्लतोपमा ॥६४॥
ततोऽम्बिका ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं जगत् ॥६५॥
प्रकम्पिताऽखिला चोर्वी तदा वारिधिमेखला।
शैलोत्तुङ्गस्तनी रम्या प्रमदेव भयातुरा ॥६६॥
तेऽपि तस्यासुरा प्राप्ताश्चतुरङ्गबलोत्कटाः।
सम्यग्विदितवृत्तान्ता कालान्तकयमोपमा ॥६७॥

रक्षोदानवदैत्याश्च पातालेष्वपि ये स्थिता. ।
ते सर्व एव दैत्येन्द्रं कोटिशस्तमुपागता. ॥६८॥
देवारयस्तदा सर्वे सनद्धाश्चोच्छ्रितध्वजा: ।
पालिता दानवेन्द्रेण नानाशस्त्रास्त्रपाणय: ॥६९॥
तमालालिकुलाभासा जीमूतध्वनिनि स्वना: ।
युगान्तमिव कुर्वाणा नानालङ्कारभूषिता. ॥७०॥

सिंह पर समारूढा हुई अनेक प्रकार के शस्त्रो और अस्त्रो को धारण करने वाली—सुन्दर मुख से सम्पन्न—बीस भुजाओं से युक्त महादेवी चमचमाती हुई बिजली की लता के ही समान थी।६४। इसके अनन्तर अम्बिकादेवी अट्टहास के साथ बारम्बार बहुत ही ऊँचे स्वर मे नाद करने लगी थी। उनके उस महान् घोर नाद से सम्पूर्ण जगत् ध्वनित होकर भर गया था।६५। उस समय मे समस्त पृथ्वी कम्पित हो गई थी जिसके चारो ओर समुद्र की मेखला थी। पीन ही है उत्तुङ्ग (ऊँचे) स्तन जिसके ऐसी परम सुरम्य भय से आतुर प्रमदा के ही समान वह उर्वी कम्पायमान्त हो रही थी। वे असुर भी वहाँ पर प्राप्त हो गए थे जिनके पास चतुरङ्गिणी सेना थी और इस सेना के बल से वे बहुत ही उत्कट हो रहे थे। भलीभाँति जिनको सब वृत्तान्त विदित था और जो कालान्तक यम के समान भीषण थे।६६।६७। राक्षस-दानव और दैत्य जो नीचे वाले पाताल लोक मे भी स्थित थे वे सबके सब करोडो की सख्या उस दैत्येन्द्र की सहायता करने के लिए उसके समीप मे समागत हो गये थे।६८। देवो के शत्रु उस समय मे सब अपनी ध्वजाएँ ऊँची करके सन्नद्ध हो गये थे। जो कि दानवेन्द्र के द्वारा पालित थे और अनेक शास्त्रास्त्रो को हाथो मे धारण किये हुए थे।६९। तमाल वृक्ष की पंक्ति तथा भौंरो के समुदाय के समान एकदम कृष्णकान्ति वाले और महामेघों के समान ध्वनि करने वाले थे। वे सब अनेक अलङ्कारो से भूषित हुए युग के अन्त जैसा करने के लिये प्रस्तुत हो रहे थे।७०।

गजघण्टारवैश्चोग्रं र्हयानामथ हेषितैः ।
सिंहनादैश्च शूराणां शस्त्राणां क्वणितेन च ॥७१॥
रथनेमिनिनादैश्च कम्पयन्तो वसुंधराम् ।
ततस्ते दानवाः सर्वे देवीं दृष्ट्वा प्रहर्षिताः ॥७२॥
आस्फोटयन्तः पटहान्भेरीजर्जरिणीमुखान् ।
अनेकान्वादयन्तोऽन्ये शङ्खडमरुडिण्डमान् ॥७३॥
मनोजवैर्हयैर्गजैश्चाचलसन्निभैः ।
अन्यैर्विचित्रैरारूढा विरेजुर्दैत्यपुंगवाः ॥७४॥
एवंविधे समाजे ता भवानी त्रिदशारयः ।
सर्वे एव समाजघ्नुः शर्वाणी सर्वतोमुखीम् ॥७५॥
बाणैर्नानाविधैर्घोरैर्यमदण्डोपमैः सितैः ।
कुठारचक्रारशुमुसलाङ्कुशलाङ्गलैः ॥७६॥
पाशतोमरशूलैश्च दण्डपट्टिशमुद्गरैः ।
परिघप्रासशक्त्यृष्टिशतघ्नीकण(पाद)पोपलैः ॥७७॥

हाथियों के कण्ठ में बँधे हुए घण्टाओं के महान् उग्र घनघनाहट से तथा अश्वों के हिनहिनाहट से और शूरों के सिंह के समान गर्जन की ध्वनि से एवं शस्त्रों की खनखनाहट से—रथों की नेमियों के शब्दों से वे सब दैत्य दानव भूमि को प्रकम्पित कर रहे थे। इसके पश्चात् वे सब दानव समक्ष में देवी को देखकर अत्यधिक प्रहर्षित हो गये थे।७१। ७२। वे सब दैत्य पटहों को पीट रहे थे—कुछ भेरी और जर्जरिणी के मुखों पर डङ्के की चोट मार रहे थे। अन्य लोग शङ्ख–डमरू और डिण्डल आदि अनेकों वाद्यों को बजा रहे थे।७३। वे सब दैत्य श्रेष्ठ बहुत उत्तम मन के समान वेग वाले अश्वों के ऊपर तथा पर्वतों के समान गजों पर एवं अन्य चित्र-विचित्र वाहनों पर समारूढ हुए उस समय में शोभित हो रहे थे।७४। इस प्रकार के दैत्यों के समाज में वे देवों के शत्रुगण उस भवानी शर्वाणी और सर्वतो मुखी के ऊपर एक साथ सबके सब शस्त्रास्त्रों के प्रहार करने के लिये टूट पडे थे।७५।

उन दैत्यों के पास प्रहार करने के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे जो नाना प्रकार के वर्णों वाले महान् घोर और मनराज के दण्ड के समान सित थे। कुठार—चक्र—परशु—मुसल—अंकुश—लाङ्गल—पाश—तोमर—शूल—दण्ड—पट्टिश—मुद्गर—परिघ—प्रास—शक्ति—ऋष्टि—शतघ्नी—तथा पीपल आदि अनेक अस्त्रास्त्रों से दैत्य आक्रमण कर रहे थे ।७५।७६।७७।

आयोगुडैर्भृशुण्डीभिश्चक्रकुन्तगदादिभि. ।
छादयन्तो महादेवी सिहनादान्विनेदिरे ॥७८॥
सा हन्यमाना रोषेण जज्वाल समरेऽम्बिका ।
अग्रसत्साऽथ शर्वाणी शस्त्रास्त्राणि सुरद्विषाम् ॥७६॥
शैलेन्द्रतनया देवी स्तूयमाना सुरर्षिभि: ।
युयुधे दानवै: सार्धं महासमरदुर्दिने ॥८०॥
ते हन्यमाना. पार्वत्या तामेवाभिप्रदुद्रुवु. ।
परिपूर्णं यथा काले शलभा जातवेदसम् ॥८१॥
सैका प्रद्रवता तेषां बहूनामाततायिनाम् ।
दधार वेग सर्वेषां मरुतामिव पर्वत: ॥८२॥
पार्वतीशस्त्रनिर्भिन्ना दैत्यास्ते क्षतजेक्षणा. ।
आलिङ्ग्य शेरते क्षोणी रते कान्तामिव प्रियाम् ॥८३॥
मण्डलीकृतकोदण्डा ददृशुश्चाम्बिका तदा ।
मृत्युजिह्वोदिताकारा प्राणकर्षणतत्पराम् ॥८४॥

आयोगुड—भृशुण्डी—चक्र—कुन्त और गदा आदि के द्वारा महादेवी को छादित करते हुए उन दैत्य-दानवो ने सिंहनाद किये थे ।७८। उस समर मे वह देवी जब दैत्यो के द्वारा हन्यमान हुई तो वह रोष से अम्बिका जल उठी थी। और उस शर्वाणी ने सुरद्वेषियो के सब शस्त्रास्त्रो को ग्रसित कर लिया था ।७६। उस महासमर के दुर्दिन में शैलेन्द्र की तनया देवी सुर और ऋषियों के द्वारा स्तूयमाना होती हुई दानवों के साथ युद्ध किया था ।८०। वे सब पार्वती के द्वारा हन्य-

मान होते हुए उसी देवी पर अभिद्रुत हुए थे। जिस तरह से काल के परिपूर्ण होने पर शलभ (पतङ्ग) अग्नि में जाकर एक साथ गिरा करते हैं। वह एक ही थीं और उन पर आक्रमणकारी वे सभी थे तो उन समस्त प्रवृत्त हुए बहुत से आततायिओं का वेग मरुतों का वेग पर्वत के ही समान देवी ने धारण कर लिया था।८१।८२। पार्वतीदेवी के शस्त्र से छिन्न-भिन्न हुए सब वे दैत्य हतजेक्षण हो गये थे और रति में प्रियकान्ता की तरह से भूमि का आलिङ्गन करके सो रहे थे।८३। मण्डली कृत कोदण्ड वाली अम्बिका को उस समय में उन्होंने देखा था जो कि मृत्यु की जिह्वा के समान ही समुदित आकार वाली थी और प्राणों के अपकर्षण करने के कर्म परायण हो रही थी ॥८४॥

जघ्नुस्ते कोटिशो दैत्या पार्वती समराङ्गणे।
हुकारेण निनादेन पातयन्ती सहस्रश ॥८५
प्रचिच्छेद रणेऽरीणा शिरासि निशितै शरै।
देवीकार्मुकनिर्मुक्तैर्दिव्यैर्नानाविधै शरै ॥८६
दह्यन्तेऽसुरसैन्यानि तृणानीव दवाग्निना।
सिंहवेगानिलोद्धूताश्चूर्णयन्तो महारथान् ॥८७
ववर्षं शरवर्षाणि युगान्ताम्बुदसनिभान्।
गजवाजिरथाना च द्रवता पतता तथा ॥८८
दैत्येन्द्राणा च भारेण श्वसतीव वसुधरा।
समुत्थित रजो घोर सस्पृश्यार्केन्दुमण्डलम् ॥८९
गजाश्वदैत्यरक्तौघै प्रशान्तिमगमत्तत।
प्रावर्तत नदी तत्र शोणितोदतरङ्गिणी ॥९०
हयमत्स्या गजग्राहा चर्मकूर्मास्थिसकुला।
महारथमहावर्ता पताकाछत्रफेनिला ॥९१

उस समराङ्गण में उन करोड़ो दैत्यों ने मिलकर पार्वती देवी पर हनन करने के लिये प्रहार किये थे किन्तु पार्वती देवी ने अपने

हुंकार के निनाद से ही सहस्रों भूमि पर गिराती हुई रणभूमि मे शत्रुओं मस्तकों को अपने पैने पञ्जो से काट कर फेंक दिया था। देवी के धनुष से निकले हुए दिव्य नाना प्रकार के शरों के द्वारा दवाग्नि के द्वारा तृणों के समान ही असुरों की सेनाऐं दग्ध होगयी थीं। सिंह के वेग से उत्थित वायु के झोंकों से बड़े-बड़े महारथों को चूर्ण कर रही थी ॥८५-८७॥ युगान्त मे होने वाले मेघों के समान ही शरों की वर्षा की थी। गज-अश्व और रथों के द्रवित एवं पतित होने वालों के-दैत्येन्द्रों के भार से भूमि साँसें सी ले रही थी। उस युद्ध क्षेत्र में महान् घोर रज उड़कर छा गयी थी जो सूर्य और चन्द्र मण्डल तक व्याप्त होगई थी ॥८८॥८६॥ वह उड़ी हुई धूल हाथी घोड़े और दैत्यों के रुधिर के प्रबल बहाव से प्रशान्त हुई थी और वहाँ पर शोणित रूपी जल की एक नदी बहने लग गयी थी ॥६०॥ उसमे जो घोड़े बह रहे थे वे ही मत्स्य के समान दिखाई देते थे और हाथी ग्राह जैसे प्रवाहित हो रहे थे तथा चर्म कूर्म जैसे थे। इस तरह से वह अस्थियों से संकुल हो रही थी। बड़े-बड़े रथ ही उस नदी मे महान आवर्त्त जैसे दिखलाई पड़ रहे थे एवं पताकाऐं और छत्र जो उसमे बहे चले जा रहे थे वे ही मानो फेन जैसे थे जिससे वह नदी फेनिल हो रही थी ॥६१॥

वहन्ती यमलोकान्त दैत्यासुरतटद्रुमान् ।
तद्बल च बभौ शीघ्र शस्त्राक्षक्षतकधरम् ॥६२
गलद्रुधिरफेनौघ घूर्णितार्णवसन्निभम् ।
वध्यमान स्वक सैन्य दृष्ट्वा देव्याश्च विक्रमम् ॥६३
रक्तासुरोऽभ्युवाचेद सैनिकाञ्जातविस्मय ।
हन्यता हन्यता शीघ्र भवानीकालसन्निभा ॥६४
परिवृत्य रथैर्नागैर्हयैश्चैव पदातिभिः ।
दानवेश्वरवाक्येण ततस्ते तस्य सैनिका ॥६५
त्यक्त्वाऽऽत्मान महात्मानो देवीमापुर्बलान्विता ।
धूम्राक्षप्रमुखा धीरा षोडशैव महारथा ॥६६

शरशक्तिगदाशूलैस्ताडयन्तोऽम्बिकां रणे ।
श्वसन्त इव नागेन्द्राः प्रज्वलन्त इवाग्नयः ॥६७
जम्भन्त इव शार्दूला गर्जन्त इव तोयदाः ।
युयुधुस्ते स्थिरीभूता विविधायुधयोधिनः ॥६८

दैत्य और असुर रूपी तट के ऊपर रहने वाले द्रुम जैसे थे जिनको यह रुधिर नदी यमलोक के अन्त तक ही बहाकर पहुँचा रही थी। उस समय मे उस दैत्येन्द्र की सेना शीघ्र ही शस्त्रास्त्रों के द्वारा कटी हुई कन्धराओं वाली होकर एक विचित्र ही शोभा से युक्त हो गयी थी ॥६२॥ *बहते हुए रुधिर के फेनों के समुदाय वाली और घूर्णित अर्थात* के सदृश वध्यमान होती हुई अपनी सेना को देखकर और जगदम्बा देवी के महान् विक्रम को देखकर विस्मित होकर रक्तासुर अपने सैनिको से यह बोला—अरे ! आप सब मिलकर इस काल के सदृश भवानी का हनन शीघ्र कर डालो ॥६३॥६४॥ इसके अनन्तर दानवेश्वर के इस वचन से उसके सब सैनिक रथ-गज-अश्व और पैदल वीरो के साथ वापिस लौट पड़े और अपने आपने जीवन की आशा छोड़कर सब महारथी बल से समन्वित होकर देवी पर आक्रमण करने लगे थे। धूम्राक्ष जिनमे प्रधान था ऐसे उस सेना मे परमघोर सोलह ही महारथ थे। उन्होने रणक्षेत्र मे देवी पर शर-शक्ति-गदा और शूलो के द्वार ताडन कर रहे थे। बड़े-बड़े नागेन्द्र अन्तिम साँस लेते हुए जलती हुई अग्नियों के समान थे। बडे-बडे शार्दूल सिंहनाद करते हुए गर्जन करने वाले मेघों के सदृश दिखाई दे रहे थे। वे अनेक प्रकार के आयुधो से युद्ध करने वाले स्थिरीभूत होकर युद्ध कर रहे थे ॥६५-६८॥

नृत्यन्तीव च रुद्राणी नूनं भाति महाहवे ।
पार्वती चण्डकोदण्डनादापूरितदिङ्मुखी ॥६६
पट्टिशाभिहतान्कांश्चिन्मुसलोन्मथितारतथा ।
सारोहान्पातयामास गजानश्वाच कोटिशः ॥१००

कालपाशशिरश्छित्वा सार्धचन्द्रेण भासुरम् ।
गदया प्रमथाथाऽसु देवान्तकमहाहनुम् ॥१०१
ब्रह्मघ्नस्यासिना कायात्पातयामास चाम्बिका ।
धूम्राक्ष कालदण्डेन वज्रेण क्रूरमेव च । १०२
यज्ञदंष्ट्र यज्ञकोप विधमं च चमूपतिम् ।
रौद्रानन्यांस्त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१०३
शङ्कुकर्णदुर्भिक्षविद्युन्मालिविभावसून् ।
दुर्वारपौरुषांश्चक्रे चक्रेणोत्कृत्तमस्तकान् ॥१०४
रक्तासुरानुजौ चोभौ महाबलपराक्रमौ ।
कूष्माण्डशुभकाक्षौ तु जघ्नतुर्मुसलाश्मभिः ॥१०५

उस महा संग्राम मे रुद्राणी नृत्य सा करती हुई शोभित हो रही थी । पार्वती देवी ने अपने प्रचण्ड धनुष के निनाद से सब दिशाओं के मुखों को आपूरित कर दिया था ॥९९॥ देवी ने कुछ को पट्टिश के द्वारा निहत किया था तथा कुछ सैनिकों को मुसल से मार गिराया था । बहुत से सैनिकों को उनके वाहनों के ही सहित भूमि पर गिरा दिया था । ऐसे करोड़ो ही गजो और अश्वो को भूमिशायी कर दिया था ॥१००॥ सार्धचन्द्र के द्वारा कालपाश के शिर का छेदन कर दिया था और भासुर को-देवान्तक-महाहनु को गदा से बहुत ही शीघ्र प्रमथित कर दिया था ॥१०१॥ उस अम्बिका ने ब्रह्मघ्न का शिर खड्ग के द्वारा शरीर से अलग कर गिरा दिया था कालदण्ड से धूम्राक्ष को और वज्र के द्वारा क्रूर को तथा यज्ञद्रष्ट यज्ञकोप-विधर्म और चमूपति को और दूसरे रौद्रों को त्रिशूल के द्वारा परमेश्वरी ने हनन कर दिया था । ॥१०२॥१०३॥ शङ्कुकर्ण दुर्भिक्ष विद्युन्माली-विभावसु के मस्तकों को चक्र के द्वारा काटकर दुर्वार पौरुष वाले बना दिये थे ॥१०४॥ रक्तासुर के दो अनुज थे जो महान् बल और पराक्रम वाले थे । उन कूष्माण्ड शुभकाक्षो को मूसल और पाषाणों के द्वारा मार गिराया था ॥१०५

महाबली महाकायौ घोरौ तत्र महासुरौ ।
शरैराशीविषाकारैर्जघानाथ तदा द्विजा ॥१०६
ततः क्रोध्नोऽभ्यधावत्ता दृष्ट्वा तौ विनिपातितौ ।
तमभ्यपातयद्भूमौ खड्गेनाभिहत्य रुषा ॥१०७
घण्टकश्चाथ दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र सदृशो बली ।
परिघेणाऽयसेनाऽऽजौ देवी क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥१०८
ततः सपरिघश्चासौ देव्या करतलाहतः ।
स पपात तदा भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥१०९
प्राशन्श्चिको महाबाहुश्चक्रीकृतशरासनः ।
शक्त्या दग्धतनुत्राणो जगामान्तकमन्दिरम् ॥११०
अष्टादशैव दुर्धर्षान्निहत्यासुरसैनिकान् ।
सानन्दा विननादोच्चैः संवर्तकघनोपमा ॥१११
जघान दानवानीकमेकाऽनेकस्वरूपिणी ।
विद्युत्सम्पातनिह्रादा विद्युत्सम्पातचञ्चला ॥११२

महान् बल वाले और महान् शरीरों वाले वहाँ पर अति घोर महासुर दो थे। हे द्विजो ! उसी समय में सर्पों के समान आकार वाले बाणों के द्वारा उनका हनन किया था ॥१०६॥ उन दोनों को विनिपतित हुए देखकर क्रोध्न नाम वाला दैत्य उस अम्बिका के ऊपर आक्रामक हुआ था। उसको भी देवी ने क्रोध से खड्ग के द्वारा मारकर भूमि पर गिरा दिया था ॥१०७॥ घण्टक नामक दैत्येन्द्र बहुत बलवान् गिरीन्द्र के सदृश था। उस युद्ध भूमि में लोहे के परिघ से उसको भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर मार गिराया था ॥१०८॥ इसके पश्चात् परिघ के सहित इसको देवी ने करतल से आहत कर दिया था और वह भूमि पर वज्र से आहत पर्वत के समान गिर गया था ॥१०९॥ महान् बाहुओं वाला एक प्राशन्श्चिक दैत्य था जिसने अपने धनुष को चक्र के समान कर रक्खा था। वह भी शक्ति के द्वारा दग्ध शरीर वाला होकर यमपुरी को गमन कर गया था ।११०। इस तरह से अठारह बहुत ही दुर्धर्ष असुर सैनिकों को मारकर वह

अम्बिका देवी आनन्द के साथ प्रलयकाल में होने वाले साम्वर्त्तक मेघ के समान बहुत ही ऊँचे स्वर से नाद करने वाली हो गयी थी ॥१११॥ इस एक ही देवी ने जो अनेकों रूपों वाली थी दानवों की सेना का हनन कर दिया था । वह देवी विद्युत् के सपन्न के ही समान निह्लाद वाली थी और बिजली के सम्पात के ही तुल्य चञ्चला थी ॥११२॥

पातयन्ती चचाराऽऽजौ साऽसुरेन्द्रमहाचमूम् ।
तत्रातुलश्च तुमुलो नादो बाध्येषु शत्रुषु ॥११३
बभूव येन ब्रह्माण्डमकाण्डाकुलतां ययौ ।
जघानैव चतु सप्त त्रिदशैस्त्रिदशाद्विपाम् ॥११४
अक्षौहिणीसहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्सुरेश्वरी ।
एकत्रिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च सप्तति ॥११५
सानुगानां सयोधानां रथानां वातरंहसाम् ।
सख्यैवैषा गजेन्द्राणामक्षौहिण्या महौजसाम् ॥११६
त्रिगुणं चतुरङ्गाणां पञ्च चैव पदातिनाम् ।
क्वचिद्रथस्थिता सैव विविधायुधधारिणी ॥११७
जघानासुरसैन्यानि हयहस्तिगता कचित् ।
कचिच्च महिषारूढा वृषभे च स्थिता क्वचित् ॥११८
वेतालैः प्रेतभूतैश्च स्वेच्छासृष्टैर्वृताऽद्भुतं ॥११९

वह देवी युद्ध मे असुरेन्द्र की महाचमूका निपातन करती हुई सञ्चरण कर रही थी वहा पर अतुल-तुमुल नाद उन बाध्य शत्रुओं में हो रहा था ॥११३॥ जिस निनाद से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आकुलता को प्राप्त होगया था। इस प्रकार से देवों के शत्रुओं को अठ्ठाईस देवों के द्वारा हनन किया था ॥११४॥ सुरेश्वरी ने तेतीस सहस्र अक्षौहिणी-इकतीस सहस्र आठ सौ सत्तर को अनुगो के और योधाओं के सहित तथा वायु के तुल्य वेग वाले रथों की यह सख्या थी और महान् ओज वाले गजेन्द्रों की अक्षौहिणी मे यही सख्या थी ॥११५॥११६॥ चतुरङ्गो का त्रिगुण और पदातियों का पञ्च गुण कहीं पर रथ मे स्थित वही विविध आयुधो

के धारण करने वाली किसी जगह पर रथों में स्थित और कहीं पर अश्व और हाथियों पर स्थित वह सेना असुरों की थी। किसी स्थल पर महिषों पर समारूढ़ और कहीं पर वृषभों आरूढ़ वेताल-प्रेत-भूतों से परिवृत थी जो स्वेच्छा से समुत्पन्न हुए थे और अत्यन्त अद्भुत थे ॥११७-११८॥

कबन्धनृत्यसंकुले ह्यसृक्त्वमास्थिरर्दमे
रणाजिरे निशाचरास्ततो विरेजुर्जिता: ।
शृगालगृध्रवायसा: परं प्रपानमादधु:
क्वचित्तरङ्गितश्च वायवा: प्रतीतशोणिता बभु: ॥१२०॥
क्वचित्तनाग्पाणय: पिशाचयक्षराक्षसा:
प्रगृह्य मांसजा विशृङ्खमसचयन्तयाऽमिषं ।
गजान्नरान्तुरङ्गमान्भक्षयन्ति निर्घृणा-
स्तदोद्धुरैस्तथाऽजरे तरन्ति शोणितापगाम् ॥१२१॥
इति प्रगाढसंगरे सुरारिसैन्यसंकुले
निशाकरोऽस्थिरा धनु: शराभिशूलधारिणी ।
गजेन्द्रवृन्दमर्दिनी तुरङ्गयूथशोषिणी
महारथौघनाशिनी सुरारिसैन्यनाशिनी ॥१२२॥

नमस्कृत्य रक्तासुर तेऽभ्यधावन्रणे
पार्वती ताडयन्तोऽभ्रपूर्ग- ॥१२५॥

समुद्धृत्य नेत्राणि किंचिद्धसन्ती
द्विपत्सैन्यमघानि मा सहरन्ती ।
न्यमुञ्चततोऽस्त्राणि दिव्यानि देवी
नदत्स्वार्यतूर्येषु सेऽनन्तसत्त्वा ॥१२६॥

कबन्धों (घडों) के नृत्य से मधुन तथा रुधिर और अस्थियों के कर्दम वाले रणाङ्गण मे फिर निशाचर अत्यन्त अर्जित होते हुए शोभित हो रहे थे । गीदड गिद्ध और कौए परमाधिक प्रपान को प्राप्त कर रहे थे । वही पर मृत पुरुष के शावक प्रतीत शोभित शोभायमान हो रहे थे ।१२०। वही पर हाथों मे धनुष धारण किये हुए पिशाच-यक्ष और राक्षस रुधिर से अपने पितृगणों का तर्पण करके उनको माँस से समर्चित कर रहे थे । निर्घण लोग गजो को—अश्वो को भक्षण कर रहे थे । दूसरे लोग उन मृत गजादिक के उडवो के द्वारा उस रुधिर की नदी को पार कर रहे थे ।१२१। इस रीति से सुरो के शत्रुओं के सधो से सकुल उस प्रगाढ युद्ध मे अम्बिका देवी धनुष—शर—खड्ग—शूल—इन आयुधों को धारण किये हुए विराजमान थी । वह अम्बिकादेवी बडे-बडे गजो के वृन्दों का मर्दन करने वाली—तुरङ्गों के यूथों का पोथन करने वाली—महान् रथियो के समुदाय के घात करने वाली और सुरो के अरियो की सेना का विनाश कर देने वाली थी ।१२२। इसके पश्चात् चण्डिका देवी के धनुष से छूटे हुए वाणो से दिवलोक के हरण करने वालो के सोलह करोड दैत्य हत किये गये थे और पट्टिशो के द्वारा तीन लाख अठारह करोड और नेतीस मारे गये थे । इसके अनन्तर दानवो के स्वामी पर रण क्षेत्र मे तर्जना करती हुई देवी नृत्य करने लगी थी जो विलास से ही उल्लासित बाहुओ मे शास्त्रो का धारण करने वाली थी । ऐसी प्रमेय प्रभाव वाली भवानी देवो आनन्द से महेन्द्र आदि देवों को हर्षित कर रही थी ।१२३।१२४। फिर हयग्रीव जिनमें प्रमुख था

ऐसे दैत्या के सब महारौद्र रूप वाले केवल दश ही शेष रह गये थे। उन्होंने रक्तासुर को प्रणाम किया था और फिर वे अस्त्रों के समुदाय से पार्वती देवी पर ताडन करते हुए धावमान हुए थे।१२५। नेत्रों का निराल कर क्रुद्ध हँसती हुई वह देवी शत्रुओं की सेना के समुदायों का संहार कर रही थी इसके अनन्तर वह दिव्य अस्त्रों को छोड रही थी। आकाश मे अनन्त सत्त्व वाले आर्य तुर्य का नाद कर रहे थे।१२६।

ततो गिरीन्द्रजाऽरीणा चक्रे सैन्यानि भस्मसात्।
रक्तासुरमथाभ्येत्य शस्त्रास्त्रभृतपाणिनम् (?) ॥१२७॥
पादाक्रान्त्यानतभुवं सक्षोभितजगत्त्रयम्।
मण्डलीकृतकोदण्ड गर्जन्त कालमेघवत् ॥१२८॥
शरवर्षाणि मुञ्चन्त पार्वती तमुवाच ह।
कृत्वोपताप देवाना जीवन्क्वाद्य गमिष्यसि ॥१२९॥
दुष्टेत्युक्त्वाऽथ सा देवी शूलेनाभिहनद्धृदि।
सभिन्नहृदयो दैत्यो मूर्ति चक्रे सुदारुणाम् ॥१३०॥
रक्तबिन्दुसमो दैत्यो देवी व्यामोहयन्निव।
जगामानेकरूपोऽसौ निहतोऽम्बिकया रणे ॥१३१॥
रक्तासुरोऽपि निधन गत्वा त्रिदशकण्टकः।
पपात भूमिशृ ङ्गाभ प्रज्वलज्ज्वलनोपम ॥१३२॥
हाहाकार प्रकुर्वाणा दैत्यस्तेऽथ प्रदुद्रुवु।
केचिच्छिष्टा भयत्रस्ता विसृष्टायुधजीविता ॥१३३॥

इसके उपरान्त गिरीन्द्रजा ने अरियो की सेनाओं को भस्मसात् कर दिया था। इसके अनन्तर वह उसे रक्तासुर के समीप मे प्राप्त हुई थी जो हाथो मे शस्त्र और अस्त्र धारण किये हुए था।१२७। अपने चरणों की आक्रान्ति से भूमि को नत कर देने वाले—तीनो लोकों को सक्षोभित कर देने वाले—धनुष को मण्डलीकृत करके रखने वाले तथा कालमेघ के समान गर्जते हुए और शरों की वर्षा को मोचन करते हुए उससे देवी पार्वतीजी ने कहा—अरे दुष्ट! देवों का उपताप करके

जीवित रहने हुए तू आज कहाँ पर जायगा ? इतना ही कहकर उस अम्बिका देवी ने उसके हृदय मे शूल से अभिहनन किया था। सभिन्न हृदय वाले दैत्य ने अपनी मूर्त्ति का परम दारण बना लिया था।१२८। १२९।१३०। रक्तविन्दु के समान दैत्य देवी को व्यामोहित सा करता हुआ यह अनेक रूपो वाला हो गया था और उस रण मे अम्बिका के द्वारा निहत कर दिया गया था।१३१। वह देवो का कटक स्वरूप रक्तासुर भी निधन (मृत्यु) को प्राप्त होकर हे मुनि शार्दूलो ! जलती हुई अग्नि के ही सदृश भूमि पर गिर पडा था। इसके अनन्तर वे सब दैत्य हाहाकार करते हुये प्रद्रुत हो गये थे। कुछ बचे हुए भय मे डर गये थे जो आयुध जीवित विगृष्ट कर दिये गये थे। १३२।१३३।

केचित्समुद्रं विविशुरन्द्रीन्केचिच्च दानवाः ।
केचिल्लुञ्चितमूर्धानो नग्ना भूत्वा वनेऽवसन् ॥१३४॥
दयाधर्मं ब्रुवाणाश्च निर्ग्रन्थव्रतमाश्रिताः ।
केचित्प्राणपरा भीताः पाखण्डव्रतमाश्रिताः ॥१३५॥
हेतुवादपरा मूढा निःशौचा निरपेक्षकाः ।
असुरस्य जनस्यैते क्षपणा इव लक्षिताः ॥१३६॥
ते चाद्यापीह दृश्यन्ते लोके क्षपणका. किल ।
अर्हन्तश्च तथैवान्ये शिवशास्त्रबहिष्कृताः ॥१३७॥
मन्त्रौपधप्रयोगैश्च जनवञ्चनकारका. ।
समुत्पत्स्यन्ति दैत्याश्च घोरेऽस्मिन्वै कलौ युगे ॥१३८॥
शिवोक्त कर्मयोग च द्विपन्तश्च कुयुक्तिभि. ।
देव्या क्रोधाग्निना दग्धा वेदमार्गविनिन्दका ॥१३९॥
शास्यन्ते नरकाग्नौ ते नि.शेषा. पापकर्मिणः ।
न दृष्टा निष्कृतिस्तेपा शास्त्रेषु परमर्षिभि. ॥१४०॥

कुछ दैत्य समुद्र मे प्रवेश कर गये थे और कुछ दानव महारण क्षेत्र से भागकर पर्वतो की गुफाओ मे जाकर छिप गये थे। कुछ कटे हुए मस्तक वाले थे और नग्न होकर वन मे निवास करने लगे थे।१३४।

वे दयाधर्म को बोलते हुए निर्ग्रन्थ व्रत के आश्रित हो गये थे। कुछ प्राणो की रक्षा मे ही तत्पर हुए भयभीत होते हुए पाखण्ड व्रत का आश्रय लेने वाले हो गये थे ।१३५। हेतुवाद मे परायण—महामूढ—शौचरहित—निरपेक्षक ये असुर जन के लोग थे किन्तु क्षपणा के समान लक्षित हुआ करते थे ।१३६। वे आज इस समय मे भी इस ससार मे क्षपण निश्चय ही दिखलाई दिया करते हैं। तथा अन्य लोग अर्हन्त हैं और शिवशास्त्र से बहिष्कृत हुआ करते हैं ।१३७। ये लोग मन्त्रों और औषधियो के प्रयोगो के द्वारा साधारणजनो को वञ्चित करने वाले ही हुआ करते हैं। इस घोर कलियुग मे ये ही दैत्यगण सर्वत्र समुत्पन्न हो जायेगे ।१३८। अपनी कुत्सित युक्तियो के द्वारा भगवान् शिव के द्वारा वर्णित कर्म योग की ये बुराई किया करते हैं। देवी के क्रोध रूपी अग्नि के द्वारा दग्ध हुए ये लोग वेदमार्ग के विशेष निन्दा करने वाले होते हैं। १३९। ये सभी पाप कर्मों के करने वाले नरकों की अग्नि मे पडे हुए शासित किये जाया करते हैं। उनकी निष्कृति परमर्षियो ने शास्त्रो मे कही पर भी नही देखी है ।।१४०।।

ररराजाचिन्त्यमाहात्म्या चिद्रूपा परमेश्वरी ।
हत्वाऽरिं जगदैश्वर्यं दत्त्वा नमुचिशत्रवे ।।१४१।।
जगामादर्शनं देवी व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
शक्रोऽपि तां प्रणम्याथ सर्वज्ञां विश्वरूपिणीम् ।।१४२।।
प्रययौ विबुधैः सार्धं स्वां पुरीममरावतीम् ।।१४३।।

अचिन्तनीय माहात्म्य वाली ज्ञानस्वरूप वाली परमेश्वरी ने शत्रु का हनन करके नमुचि शत्रु के लिए जगत् का ऐश्वर्य देकर वह परम दीप्तिमती हो गयी थी ।१४१। वह व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाली वह देवी अदर्शन को प्राप्त हो गयी थी। इन्द्रदेव ने भी विश्वरूपिणी सर्वज्ञा उस जगदम्बा को प्रणाम किया था ।१४२। फिर वह इन्द्रदेव देवो के ही साथ मे अपनी पुरी अमरावती को प्रस्थान करके चले गये थे ।१४३।

।। पार्वती प्रभाव कथन ।।

अथोपविश्य सुरराट् पूज्यमानो वरासने ।
अप्सरोगणगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ।।१
सहस्रानुचराणां च देवतानां महौजसाम् ।
निर्जराणां त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिः परिवारितः ।।२
सोऽभिषिक्तस्तदा सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ।
त्रैलोक्येऽस्मिन्पुनः शक्रश्चक्रे राज्यमकण्टकम् ।।३
समाजग्मुस्तदा द्रष्टुं प्राप्तराज्यं सुराधिपम् ।
मुनयश्चाङ्गिरा दक्षवसिष्ठक्रतुगौतमाः । ४
पुलस्त्यपुलहागस्त्यविश्वामित्रात्रिशौनकाः ।
जमदग्निभरद्वाजभृगुभार्गुरिगालवाः ।।५
ऋभुः शाण्डिल्यदुर्वासोगर्गजैमिनिनारदाः ।
दारयूहोद्दालवाभ्रव्यशरभङ्गनिदाघकाः ।।६
मरीचिच्यवनोत्तङ्ककात्यायनपराशराः ।
सवर्तशङ्खलिखितदेवभागसुषेणकाः ।।७
त्रितरैभ्ययवक्रीतश्वेतकेतूपमन्यवः ।
शाकटायनकौण्डिन्यकचगृत्समदासिताः ।।८

श्री सूत जी ने कहा—इसके पश्चात् अपने वरासन पर बैठकर वह सुरों के राजा पूज्यमान हुए थे। और अप्सराओं के समुदाय—गन्धर्व—सिद्ध—विद्याधर और उरगों के द्वारा वह सेव्य मान हुए थे ।।१।। सहस्रों अनुसर—देव गण—महान् ओज वाले निर्जरगण जो सख्या तेतीस करोड़ थे वह महेन्द्र देव उन सबसे परिवारित हो रहे थे ।।२।। वे फिर उस समय में वृहस्पति जिनमें अग्रणी थे ऐसे महर्षियों के सबके द्वारा अभिषिक्त हो गये थे। पुनः त्रैलोक्य में इन्द्रदेव ने अकंन्टक राज्य कर दिया था ।।३।। उस समय में राज्य की प्राप्ति कर लेने वाले सुरों के अधिप के दर्शन पाने के लिए मुनि लोगों ने भी वहाँ पर आगमन किया था।

उन मुनिगणों में अङ्गिरा—दक्ष—वसिष्ठ—क्रतु—गौतम—पुलस्त्य—पुलह—अगस्त्य—विश्वामित्र—अत्रि—शौनक—जमदग्नि—भरद्वाज—भृगु—भागुरि—गालव—ऋभु—शाण्डिल्य—दुर्वासा—गर्ग—जैमिनि—नारद—शरपूह-उद्दाल-बाभ्रव्य-शरभङ्ग-निशाकर-मरीचि-च्यवन—अष्टक—कात्यायन—पराशर—संवर्त—शङ्ख—लिखित—देव—भाग—सुषेण—मित—रैभ्य—यर्व—क्रौत—श्वेतकेतु—उपमन्यु- शाकटायन—शौगिम्य—वचगुन—समद—अमित ॥४॥५॥६॥७॥८॥

देवरातश्च जाबालिर्हारीतश्च कश्यपः ।
बृहदश्वाग्निकौलस्था जातूकर्ण्यः पराशरः ॥९
पैठीनसिर्व्याघ्रपादो वीतिहोत्राश्वलायनौ ।
शातातपो मधुच्छन्दा ऋचीकक्रतुदेवलाः ॥१०
वामदेवश्च मैत्रेयमार्कण्डेयपुरोगमाः ।
कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला भस्मभूषिताः ॥११
रुद्रा इव महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः ।
तानागतान्समुपूज्य कृतासनपरिग्रहान् ॥१२
प्रक्षाल्यागतान्सर्वान्पप्रच्छेद पुरंदरः ।
कथमाराध्यते देवी वरदाऽचलकन्यका ॥१३
ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च यैः सम्यक्पूजिता शिवा ।
यस्याः प्रसादाद्योऽपि राज्यं प्राप्तमिदं मया ॥१४

देवरात—जाबालि—हारीत—कश्यप—बृहदश्व—अग्निवेश—कौलस्थ—जातूकर्ण्य—पराशर—पैठीन—सिव्याघ्रपाद—वीतिहोत्र—अश्वलायन—शातातपत् मधुच्छन्द—ऋचीक—क्रतु—देवल—वामदेव—मैत्रेय—मार्कण्डेय जिन मुनिगणों में पुरोगामी थे। ये सब कृष्ण मृग चर्म का उत्तरीय धारण करने वाले—जटाधारी और भस्म से विभूषित अङ्गों वाले थे। ये सब रुद्रों के ही समान महान् आत्मा वाले थे और सभी वेद—वेदाङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् थे। उन समागत हुए मुनियों का भली भाँति अभ्यर्थन किया गया था और फिर आसनों पर समासीन किये

गये थे ॥६॥१०॥११॥१२ इन सब ब्रह्माजी के सदृश मुनियों से पुरन्दर ने पूछा था—कृपया आप लोग यह बतलाइये कि वरदा अचल कन्या जगदम्बा की आराधना कैसे की जाया करती है ? ॥१३॥ वे ही पुरुष परमधन्य एवं कृतार्थ हैं जिन्होंने देवी शिवा का अच्छी तरह से पूजन किया है। उन्हीं देवी का यह प्रसाद है जिसके प्रभाव से मैंने पुनरपि अपना राज्यासन प्राप्त कर लिया है ॥१४॥

भवान्याः सर्वमेवैतद्वक्तुमर्हथ सत्तमाः ।
ते चैवमुक्ताः शक्रेण मुनयो मुनिपुंगवाः ॥१५
प्रत्यूचुस्ता नमस्कृत्य शर्वाणी शिवरूपिणीम् ।
ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च साधवस्ते शचीपते ॥१६
भक्त्या यजन्ति ये नित्य पार्वती परमेश्वरीम् ।
कुर्वन्तोऽपीह कर्माणि चण्डिकार्पितमानसाः ॥१७
सूर्यांशव इव जालैर्न बाध्यन्तेऽत्र किल्विषैः ।
आयुरारोग्यसौख्यानि सौभाग्य च वरस्त्रियः ॥१८
भवन्ति तेषा ये नित्य स्तुवन्ति परमेश्वरीम् ।
सवत्सरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते ॥१९
नराणा विषयान्धाना येषा गेहे न पार्वती ।
यत्र यत्रार्च्यते देवी वरदा परमेश्वरी ॥२०
तत्र तत्राक्षय पुण्य स्यादित्याह प्रजापतिः ।
नामोच्चारणमात्रेण यस्याः क्षीणाघसचय ॥२१

हे श्रेष्ठतमो ! आप भवानी का यजनार्चनाराधन सभी कुछ बताने के योग्य हैं। इन्द्र देव के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये उन मुनियों में परमश्रेष्ठ मुनियों ने सर्व प्रथम उस शिव के स्वरूप वाली शर्वाणी देवी को नमस्कार किया था और फिर उत्तर दिया था हे शचीपते ! वे पुरुष परमधन्य और कृतार्थ जीवन वाले हैं तथा परम साधु हैं जो भक्तिभाव से नित्य ही परमेश्वरी पार्वतीदेवी का नित्य ही यजन किया करते हैं। चण्डिका में समर्पित मनवाले यहां पर कर्मों को करते हुए भी इनका

यजन करते हैं वे यहाँ संसार में किल्विषों के द्वारा बाधित नहीं हुआ करते हैं जैसे जालों के द्वारा सूर्य की किरणें कभी बाधित नहीं हुआ करती हैं। जो लोग नित्य ही परमेश्वरी का स्तवन किया करते हैं उनको आयु–आरोग्य–सुख–सौभाग्य और वर स्त्रीयाँ लिया करती हैं। प्रजापति ने यही बताया है कि उस—उसमें अक्षय पुण्य होता है। जिसके केवल नाम के उच्चारण से ही सब अघों का सचय क्षीण हो जाता है। ॥१५—२१॥

भवत्यवाप्तकल्याण कस्ता नाऽऽराधयेच्छिवाम् ।
पशुभिस्तिवह तुल्यास्ते मूढैर्वा ते शवा इव ॥२२
ये मूढा नार्चयन्त्यार्या पार्वती परमेश्वरीम् ।
अचिन्त्या सारस्वरूपा ता शाश्वती विश्वतोमुखीम् ॥२३
ये यजन्तीह धन्यास्ते शिवा स्वर्गापवर्गदाम् ।
तपस्तीर्थप्रदानैश्च यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः ॥२४
न ता गति लभन्तेऽत्र या स्तुत्वाऽचलकन्यकाम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यानिच्छति मानव. ॥२५
व्रतोपवासपूजाभि समाराध्य महेश्वरीम् ।
व्रतेन येन देवेन्द्र प्रसीदत्याशु पार्वती ॥२६
यच्चोल्कानवमीसज्ञ शृणु सर्वफलप्रदम् ।
तस्या नवम्या शर्वाणी महिषादीन्महासुरान् ॥२७
जघान समरे शक्र तेन सा नवमी प्रिया ।
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य नवम्या प्रयतात्मवान् ॥२८

मनुष्य देवी के यजन से कल्याण प्राप्त करने वाला हो जाया करता है। ऐसी उस देवी शिवा का कौन मूढ होगा जो आराधना नहीं करेगा। ॥२२॥ जो मूढता से इनका समाराधन नहीं करते हैं वे पशुओं के ही तुल्य मानव हुआ करते हैं अथवा वे मृत के शवों की ही भाँति हैं जो कि सभी चेष्टाओं से शून्य हुआ करते हैं। जो महामूढ आर्या—परमेश्वरी—पार्वती देवी का अभ्यर्चन नहीं किया करते हैं जोकि अचिन्तनीया—सारस्वरूप

वाली—शाश्वती और विश्वतोमुखी हैं ॥२३॥ जो लोग यहां संसार में स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों का प्रदान करने वाली शिवा देवी का समर्चन किया करते हैं वे परम धन्य एवं महान् भाग्यशाली प्राणी होते हैं। तप—तीर्थ—दान—और बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों के करने से उस गति को यहाँ नहीं प्राप्त किया करते हैं जिसको कि केवल गिरि कन्या अम्बिका के स्तवन करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। जगदम्बा के भजन से मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है जिन-जिनकी वह मनमें इच्छा किया करता है ॥२४॥२५॥ व्रत उपवास और पूजाओं के द्वारा महेश्वरी का समाराधन करके मनोरथों के पाने का परम लाभ होता है। हे देवेन्द्र ! जिस व्रत के द्वारा वह देवी पार्वती बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाया करती हैं और जो उल्कानवमी नाम वाला है और सभी पुण्य—फलों के प्रदान करने वाला भी है। अब आप उसका श्रवण करिए। उस नवमी तिथि में भगवती शर्वाणी ने महिष आदि महान् असुरों का समर में हनन किया था। हे इन्द्र ! इसी कारण से वह नवमी तिथि उनको प्रिय होती हैं। आश्विन के शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन में प्रयत आत्मा वाला होवे ॥२६॥

स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितॄन्देवान्मनुष्यांश्च यथाक्रमम् ।
यजेत्पश्चान्महादेवीं महिषासुरघातिनीम् ॥२६
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैः पमोदधिफलादिभिः ।
भक्त्या सपूजयित्वैव स्तुत्वा सप्रार्थयेत्ततः ॥३०
मन्त्रेणानेन वृत्रारे श्रद्धावान्प्रयतो व्रती ।
महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डघातिनि ॥३१
द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ।
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि ॥३२
देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा ।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥३३
उमे ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे ।
कुमारीर्भोजयित्वा वा कुर्यादाच्छादनादिभिः ॥३४

यथावर्णं कुमारीश्च भोजयित्वा क्षमापयेत् ।
नव सप्ताथ एका वा चित्तवित्तानुसारतः ॥३५
श्रद्धया प्रीतिमाप्नोति देवी भगवती शिवा ।
अनेन विधिना वर्षं मासि मासि समाचरेत् ॥३६

नवमी तिथि में प्रातः स्नान करके पितृगण और देवों का यथा क्रम अभ्यर्चन करके तथा गुरु वर्ग के जो मनुष्य हों उनका भी यजन करके पीछे से महिषासुर के घात करने वाली महादेवी का अर्चन करना चाहिए ॥२९॥ पुष्प धूप-दीप नैवेद्य-दूध-जल दधि और फल आदि के द्वारा भक्तिभाव से इस प्रकार से अर्चन करके फिर प्रार्थना करनी चाहिए ॥३०॥ श्रद्धा से सम्पन्न प्रयत व्रतधारी को अमुक मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए—हे दुर्गे ! हे महिष के हनन करने वाली ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! हे मुण्ड दर्प का घात करने वाली ! मुझे द्रव्य-आरोग्य और विजय प्रदान करो । हे देवि ! आपको नमस्कार है हे महेश्वरि ! भूत प्रेत-पिशाच-राक्षस-देव मनुष्य और सम्पूर्ण भयों से मेरी सदा रक्षा करिए । सभी मङ्गलों के मङ्गल करने वाली । हे शिवे ! आप सब अर्थों के साधन करने वाली हैं । हे उमे ! हे ब्रह्माणि ! हे कौमारि ! हे विश्व रूपे ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये । फिर इस प्रार्थना करने के पश्चात् कुमारियों को भोजन कराकर उन्हें आच्छादन वस्त्र आदि का दान करना चाहिए । वर्ण के अनुसार कुमारियों को भोजन कराकर उनसे देवी के स्वरूप वाली समझ कर क्षमापन करावे । कुमारी संख्या में नौ हों या सात हों वे अथवा एक ही होवे जैसी भी अपनी आर्थिक स्थिति हो उसी के अनुसार करें भगवती शिवा देवी तो श्रद्धा के भाव से ही प्रीति को प्राप्त हुआ करती हैं । इस विधि से एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास में इस व्रत को करना चाहिए ॥३१-३६॥

ततः सांवत्सरस्यान्ते भोजयित्वा कुमारिकाः ।
वस्त्राभरणैः पूजया प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥३७

मरत्नमशृङ्गां गां दद्यात्सुविप्राय सुशोभनाम् ।
नरो वा यदि वा नारी व्रतमेतत्करोति च ॥३८
उल्कावत्सा सपत्नीनां तेजसा भाति भूतले ।
श्रीमहानवमीत्येषा ख्याता सुरपतेऽधुना ॥३९
सर्वसिद्धिकरी पुण्या सर्वोपद्रवनाशिनी ।
माऽऽध्यात्मिकं तस्य भयं दैवं स्याद्यं ऽऽधिभौतिकम् ॥४०
रक्षत्येव सदा शक्र सर्वापत्सु च चण्डिका ।
शान्तिपुष्टिकरी पुण्या पुत्रारोग्यार्थलाभदा ॥
अनुष्ठेया सदा पुम्भिश्चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥४१
यश्छद्मनाऽपि कुरुते व्रतमेतदित्थं
चण्डीप्रियं सुरपते मुनिसिद्धजुष्टम् ।
रुद्राङ्गनाकुलवराकुलितं विमान-
मारुह्य याति स सुखेन शिवस्य लोकम् ॥४२

फिर जब एक वर्ष पूर्ण हो जावे तो सम्वत्सर के अन्त में छोटी-छोटी कुमारिकाओं को भोजन कराकर वस्त्र और यथा शक्ति आभरणों के द्वारा उनकी पूजा करके फिर उनको प्रणिपात करे और विसर्जन कर देना चाहिए ॥३७॥ किसी परम अच्छे योग्य विप्र को एक सुवर्ण के सींगों वाली गौ का दान करना चाहिए जो कि गौ परमशोभना हो। नर हो अथवा नारी हो जो भी कोई हो इस व्रत को किया करता है वह अपनी सपत्नियों के मध्य में उल्कावत्सा भूतल में तेज से सुभासित रहा करती है। हे सुरपते ! अब यह श्री महानवमी के नाम से विख्यात है यह महानवमी समस्त सिद्धियों के करने वाली पुण्यमयी और सम्पूर्ण उपद्रवों के विनाश कर देने वाली होती है। इसके व्रत को करने वाले पुरुष को कभी भी आध्यात्मिक-आधिदैविक और आधिभौतिक भय नहीं हुआ करता है ॥४०॥ चण्डिका देवी हे शक्र ! सभी आपदाओं में सदा उसकी रक्षा किया करती हैं। जो मनुष्य चतुर्वर्ग के फल के प्राप्त करने की इच्छा वाले हों उनको यह व्रत सदा ही करना चाहिये क्योंकि यह नवमी शान्ति और पुष्टि

धात्रा स्वहस्तलिखितानि ललाटपट्टे
　　दैवाक्षराणि दुरितैकनिबन्धनानि ।
गौरीप्रसादजनितेन जन समस्त-
　　स्तान्येकत सपदि मार्जयतीति चित्रम् ।।४८
ते समता जनपदेषु धनानि तेषा
　　तेषा यशासि न च सीदति बन्धु वर्ग ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
　　येषा सदाऽभ्युदयदा गिरिजा प्रसन्ना ।।४६

त्रिशूल के अग्रभाग से भिन्न किये हुए महिषासुर के पादपीठ पर मुखात खड्ग और रुचिर अङ्गदो से शोभित बाहुदण्डो वाली देवी को नवमी तिथि मे जो रात्रि को भोजन करने वाले मनुष्य अभ्यर्चित किया करते हैं वे मनुष्य दुर्गति गहन-दुर्ग मे कभी भी प्रवेश नही किया करते है ।४३। महात्मा भगवान् कपिल ने जो एक अन्य व्रत बतलाया है और मेरु पर्वत पर दैत्यो के गुरुदेव भृगुनन्दन को बताया है । उसको भी आप सुन्दर मन वाले होकर श्रवण कर लीजिये । हे मघवन्म ! तीनो जगतो की जननी का कितना ही महान् आराधन होना है ।।४४।। जो भक्ति के करने वाले मनुष्य हैं उनके लिये तो देवी कामधेनु के ही समान सकल मनोरथो को पूर्ण करने वाली है । और जो मुमुक्षुओ के लिये कल्पवृक्ष के समान है अथवा धन के इच्छुको के लिये यह चिन्तामणि ही जानी गयी है हे भृगु सुत ! यहाँ पर ऐसी उस गौरी को का क्यो नही यजन किया करते हैं ।।४५।। निगिडो के द्वारा बँधे हुए पैरो वाले भी जो उस देवी का स्मरण किया करते हैं और जो व्याघ्र अहि-चोर-नृप-अग्नि आदि के भय उपस्थित होने पर दुर्गा का यजन किया करते हैं उन मनुष्यो को कुछ भी शत्रुओ से भय नही होता है और जो वृद्ध होते हैं वे भी शक्ति की प्राप्ति करके सुख प्राप्त किया करते हैं ।।४६।। हे भार्गव ! आर्य । गिरिजा के प्रणति के प्रसाद वाले मनुष्य पर निरुद्ध दैव भी अवश्य ही कुछ प्रभाव नही किया करता है । मेघा का समय

जिनका समीप है ऐसी वनराजि को ऊँचे दरजे की ग्रीष्म भी पल्लवों के उपचय से उपचित कर दिया करती है ॥४७॥ विधाता ने ललाट पट्ट में अपने हाथ से जो दुःखाक्षर लिख दिये हैं जो कि किये हुए पापों के लिए एक निबन्धन स्वरूप ही होते हैं उन सब को भी भगवती गौरी के प्रसाद से जनित प्रभाव से मनुष्य समस्तों को तुरन्त ही एक बार में परिमार्जित कर दिया करता है—यह एक अत्यन्त विचित्रता है क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ जो कभी भी मिटा नहीं करता है और अवश्य ही भोगना पड़ता है वह भी गौरी के प्रसाद के प्रभाव से तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है। ऐसी देवी के प्रसाद में अद्भुत शक्ति है। ये देवी के प्रसाद प्राप्त करने वाले मनुष्य जनपदों में समस्त होते हैं—उनके पास अतुल धन होता है—उनका बहुत यश भी हुआ करता है और उनका वपु वर्ग कभी सीमित नहीं होता है। वे ही पुरुष परम धन्य हैं जिनके निभृत आलमन-भृत्य और दाराएं हैं और ये सब जिनके लिए सदा ही अभ्युदय के प्रदान करने वाले हैं जबकि गिरिजा देवी उन पर प्रसन्न हो जाया करती हैं ॥४६॥

यः कारयेद्वरपताकसिताभ्रगौर
तन्दोपुर च सुधयाऽऽधवलं भवान्याः।
चन्द्रावदातभवने विपुले च सोऽत्र
राज्यं श्रियं च भुवि काममुपैति मर्त्यम् ॥५०

ये कारयन्ति भवनं भृगुनन्दनाऽऽर्या
धात्रया सुवर्णरजतायसताम्रशैलम्।
सामन्तमौलिमणिरश्मिसमुज्ज्वले ते
सिंहासनेऽङ्गदकिरीटभृतो रमन्ते ॥५१

ये मेरुमूर्ध्नि सुरम्यमहानाभिषेका
पञ्चामृतैर्गिरिसुतामभिषेचयन्ति।
ते दिव्यकल्पमनुभूय सुरेन्द्रराज्य
राज्याभिषेकमतुलं पुनराप्नुवन्ति ॥५२

ये देवदारुमलयोद्भवचन्दनेन
ये कुङ्कुमेन च शिवामुपलेपयन्ति ।
ते दिव्यगन्धपटवाससुगन्धदेहा
नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाप्सरोभिः ॥५३

दिव्यैश्च पद्मकरवीरकजातिपुष्पै-
र्गौरी शुभैरनुदिनं मनु येऽर्चयन्ति ।
ते भूतले नरपतित्वमवाप्य योगा-
द्यास्यन्ति सौख्यमचिरेण परां च सिद्धिम् ॥५४

आमोदिभिर्मरुकपुष्पसुगन्धधूपै-
र्येलोकनाथदयितामिह धूपयन्ति ।
कर्पूरसारसमगन्धवराः सुरामा
आलिङ्गयन्ति दयिता. सुरराजलोके ॥५५

दोधूयते कनकदण्डविराजितैश्च
सच्चामरैः प्रचलकुण्डलसुन्दरीभिः ।
दिव्याम्बरस्रगनुलेपनभूषिताङ्गः
कृत्वा मृडानिभवने वरवस्त्रपूजाम् ॥५६

देदीप्यते स कनकोज्ज्वलपद्मराग-
रत्नप्रभाभरणहेममये विमाने ।
दिव्याङ्गनापरिवृतो मनसोऽभिरामः
प्रज्वाल्य दीपममलं भवने भवान्याः ॥५७

जो पुरुष भवानी के आयतन और गोपुर को श्रेष्ठ पताकाओं से सिताभ्रगौर बनवाया करता है और सफेदी से लिप्त कराया करते हैं वह चन्द्र के समान अवदात भवन में जो अति विशाल होता है उसमें सौख्य-राज्य-श्री-सत्य काम सबकी इसी इस भूमण्डल में प्राप्ति किया करता है ।।५०।। हे भृगुनन्दन ! जो मनुष्य आर्या देवी का भवन सुवर्ण-चाँदी-लोह और पाषाण से निर्माण कराया करते हैं वे सामन्तों के मस्तकों की मणियों की किरणों से समुज्ज्वल सिंहासन पर आरूढ़ और

किरीट के धारण करने वाले रमण किया करते हैं ।५१। जो लोग सुमेरु पर्वत पर अर्थात् गिरि के शिखर पर सुरों के समुदाय के द्वारा अभिषेक की गई गिरि सुता का पञ्चामृत से अभिषेक किया करते हैं वे दिव्यकल्प-पर्यन्त सुरेन्द्र के राज्यासन-सुख का अनुभव करके पुनः अतुल राज्याभिषेक प्राप्त किया करते हैं ॥५२॥ जो लोग देवदारु और मलय से समुत्पन्न चन्दन से और कुङ्कुम से शिवा देवी का उपलेपन किया करते हैं। वे दिव्य सुगन्ध से युक्त पट और देहों वाले होकर अप्सराओं के समूह के साथ नन्दन (देवों का उद्यान) वन में आनन्द किया करते हैं ॥५३॥ जो लोग दिव्य पद्म-करवीर-जाती के पुष्पों से जो कि परम शुभ होते हैं प्रतिदिन गौरी की अर्चना किया करते हैं वे लोग इस भूतल में नरपति के पद को प्राप्त कर थोड़े से सौख्य को प्राप्त करते हैं और थोड़े से ही समय में परासिद्धि को प्राप्त किया करते हैं ॥५४॥ जो लोग आमोद वाले मरुआ की पुष्प और सुगन्धित धूप से भगवान् लोक नाथ की दयिता को धूपित किया करते हैं अर्थात् धूपका आघ्राण कराया करते हैं वे कपूर के सार के समान गन्ध से श्रेष्ठ सुरामा दयिताओं का सुरराज के लोक में आलिङ्गन किया करते हैं ॥५५॥ सुवर्ण के दण्ड से शोभित श्वेत चमरों को जो देवी पर डुलाता है वह हिलते कुण्डलों वाली सुन्दरियों के द्वारा दिव्य अम्बर-माला और अनुलेपन आदि से भूषित अङ्गों वाला होकर मृडानी के भवन में घर धन्य पूजा करता है वह कनक के समान उज्ज्वल और पद्मराग रत्न की प्रभा वाले आभरण युक्त सुवर्णमय विमान पर दिव्याङ्गनाओं से परिवृत हुआ मन से सुन्दर हो भवानी के भवन में दीपक को जलाया करता है वह देदीप्यमान होता है ॥५६॥५७॥

यो जागरं गिरिसुताभवने ददाति
चैत्रोत्सवादिदिवसेऽप्यथ तूर्यनादम् ।
वीणामृदङ्गमधुरस्वरभाषिणीभिः
सगीयते स हि सुरोदरिभिस्तरोभिः ॥५८

कुर्वन्ति ये सदुपलेपनवासचित्रं
समार्जनं गिरिसुतायतनेऽनुरक्ताः ।
मुक्ताकलापमणिकाञ्चनभित्तिचित्रे-
र्वैदूर्यकुट्टिमतले भवने वसन्ति ॥५६

दद्याच्च यः परमभक्तियुतो भवान्या
घण्टावितानमथ चामरमातपत्रम् ।
केयूरहारमणिकुण्डलमण्डितोऽसौ
रत्नाधिपो भवति भूतलचक्रवर्ती ॥६०

अभ्यर्चयन्ति विधिवद्विविधोपचारै-
र्गन्धर्वसिद्धविबुधस्तुतपादपद्माम् ।
भक्त्या प्रहृष्टमनसः प्रणमन्ति देवीं
ते भूर्भुवःस्वमहिमाप्तफला (?) भवन्ति ॥६१

गायन्ति ये गिरिसुतां च विलोकयन्ति
ध्यायन्ति वाऽमलधियश्च शिवां स्मरन्ति ।
गौरीमुमां भगवतीं जगदेकदेवीं
ते वै प्रयान्ति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥६२

देवीं समस्तभुवनादिविचित्रदेहां
सूर्याग्निचन्द्रनयनामिह कालवक्त्राम् ।
दीर्घाष्टदिग्भुजयया मृदुभावहासा
येऽभ्यर्चयन्ति हृदि हन्त त एव धन्या ॥६३

इक्ष्वाकुपूरुपृथुराघवधुन्धुमार-
मान्धातृहैहयययात्यजमीढमुख्यैः ।
आरोग्यसंततिधराजयसौख्यलुब्धैः
संपूजिता भगवती मनुजैर्भवानी ॥६४

जो गिरि सुता के भवन में जागरण किया करता है और चैत्र के उत्सव आदि के दिवस में मध्य में तूर्यनाद किया करता है तथा वीणा-मृदङ्ग से मधुर स्वरों में भाषण करने वाली कृशोदरी किन्नरियों के

साथ मे गान किया करता है ॥५८॥ जो भक्त लोग मद्उपलेपन के द्वारा वासको चित्र किया करते हैं और समार्जन करते हैं तथा गिरि सुता के आयतन मे अनुराग रखने वाले होते हैं वे लोग मुक्ता कलाप-मणि-काञ्चन की भित्तियो से चित्रित वैदूर्यकुट्टिम तल वाले भवन मे जाकर निवास किया करते हैं ॥५६॥ जो परमाधिक भक्ति से युक्त होकर भवानी को घण्टा वितान-चामर और मातपत्र समर्पित किया करता है वह केयूर-हार-मणि-कुण्डलो से मण्डित होकर रत्नो का स्वामी और भूतल पर चक्रवर्ती राजा हुआ करता है ॥६०॥ जो लोग गन्धर्व सिद्धि-विबुधो के द्वारा स्तुति किये गये चरण कमलो वाली देवी हैं उन देवी को भक्ति भाव से प्रणाम करके विधिपूर्वक अनेक उपचारों से अभ्यर्चन किया करते हैं और प्रसन्न मन वाले होकर प्रणाम करते हैं वे भूर्भुव स्व की महिमा के प्राप्त फल वाले हुआ करते हैं ॥६१॥ जो गिरिसुता के गुणो का गान किया करते हैं जो उनका विलोकन करते हैं और ध्यान किया करते हैं अथवा अमल बुद्धि वाले लोग शिवा का स्मरण किया करते हैं जो गौरी उमा भगवती जगत् की एक ही करने वाली है वे इन्दु मोलिके परम पद को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥ समस्त भुवन आदि से विचित्र देहवाली सूर्य अग्नि और चन्द्र के नयना वाली-काल रूपी मुख वाली दीर्घ आठ दिशाओ के भुजाओ के समुदाय वाली मृदुभाव हास से सम्पन्ना को हृदय म जा अभ्यर्चन किया करते हैं वे ही परम धन्य होते हैं ॥६३॥ इक्ष्वाकु पुरु-पृथु-राघव धुन्धुमार मान्धाता-हैहय-ययाति और अजामीढ जिनमे प्रमुख हैं जो कि आरोग्य सन्तति-पृथ्वी जय-सौख्य के लुब्धक थे उन मनुष्यो के द्वारा भगवती भवानी भलीभाँति पूजित हुई है ॥६४॥

योगेश्वरी वेदवती भवानी ब्राह्मी
कुमारी सुभगा च वाणीम् ।
नारायणी हैमवतीमनन्ता
विश्वादिभूता भज मार्गवाऽऽर्याम् ॥६५

यशांसि विद्या सुखमर्घ्यमायुर्विभूतय
पुष्टिरनर्थहानि ।
तद्भक्तिभाजा भविना विमुक्तये
भवन्ति योगानेगता समाधय ॥६६॥
नीचोऽपि मन्दमतिरल्पकुलोद्भवोऽपि
भीरु शठोऽपि चपलोऽपि निरुद्यमोऽपि ।
गौरीपदाब्जयजनार्थमिहोद्यतश्च
सद्दश्यते ननु सुरैरपि गौरवेण ॥६७॥
तावत्कृताकृतमपि प्रतिघातमेति
कर्मार्जितेन विधिनाऽपि कृतोद्यमेन ।
आर्यापदाम्बुजरजो विरज प्रणम्य
यावन्नवत्स शिरसा ध्रियते जनेन ॥६८॥
विद्या तप कुलजनिर्विविध च शिल्प
शौर्यं मतिश्च विनयस्तु विदग्धता च ।
एते गुणागुणावता परमे च भद्रा
गौरीप्रसादरहितस्य तृणी भवन्ति ॥६९॥
तावन्य सिध्यति रसो न रसायनानि
मन्त्रा महोदयफला विलसत्प्रवादा ।
क्लिश्यन्ति साधकजना भुवि वर्तिवाश्च
यावन्न तुष्यति कवे वरदा भवानी ॥७०॥

हे भार्गव ! योगेश्वरी—वेदवती—भवानी—ब्राह्मी—कुमारी—सुभागा—वाणी—नारायणी—हैमवती—अनन्ता—विश्व की आदि-भूता—आर्या का सेवन करो ।६५। उस देवी की भक्ति करने वाले मनुष्यों ने यश—विद्या—सुख—अर्घ्य—आयु—विभूति—पुष्टि—अनर्थों की हानि ये सब योगानुगत समाधियाँ हुआ करती हैं ।६६। चाहे कोई अत्यन्त नीच भी हो—मन्दमति—छोट कुल मे उत्पन्न—भीरू—शठ—चपल—निरुद्यम भी कोई हो किन्तु गौरी के चरण कमल के

भजन के लिये यहाँ संसार में उद्यत रहना हो तो देवों के द्वारा भी बड़े गौरव के साथ देखा जाया करता है।६७। तब तक भी कृत और अकृत भी प्रतिघात को प्राप्त हुआ करता है। कर्म के द्वारा अर्जित विधाना भी कृत उद्यम वाला हुआ करता है जब तक आर्या के चरण कमलों को प्रणाम करके विरज अर्थात् निर्मल हो जाता है और हे वत्स! जब तक चरण कमलों को मनुष्य अपने शिर से धारण नहीं किया करता है।६८। विद्या-तप—कुल-जन्म-विविध शिल्प—शूरता-मति-विनय—*विदग्धता—ये सभी गुण गुणवानों के परम भद्र होते हैं* किन्तु इन सबके होने पर भी यदि मनुष्य देवी गौरी के प्रसाद से रहित है तो ये सब गुण के ही समान हो जाया करते हैं।६९। तब तक न तो रससिद्ध होता है और रसायन ही सिद्ध हुआ करती हैं। महान् उदय के फलों वाले मन्त्र और विनत प्रवाद भी सिद्ध नहीं होते हैं और इनके साधन करने वाले मनुष्य और वर्तिक इस भूमण्डल में क्लेश ही उठाया करते हैं जब तक हे वत्से! वरदा भवानी तुष्ट नहीं हुआ करती है।७०।

गोब्राह्मणार्चनपराश्च रता स्वधर्मे
ये मद्यमांसविमुखा शुचयश्च शैवा।
सत्यप्रिया सकलभूतहिते रताश्च
तेषां च तुष्यति सदा सुमते मृडानी ॥७१॥

भूतादिभूता विषयेन्द्रियाणां परा
तथाऽन्त करणारमम्पाम्।
स्पदाऽऽद्या कायमनोवचोभि
रचिन्त्याऽऽर्या सकलाधदात्रीम् ॥७२॥

अजामेका लोहितशुक्लवर्णां
बह्वीं प्रजां सृजमानां सुरूपाम्।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य ॥७३॥

प्रभावमेतं त्रिजगज्जनन्यास्तवोदितं
भार्गव वेदगुह्यम् ।
श्रोतुं यदिच्छा तदुदीरयस्व विप्रेषु
किं वाऽकथनीयमस्ति ॥७४॥
शृण्वन्ति ये वाऽथ पठन्ति मर्त्याः
स्तवान्विताख्यानमिदं भवान्याः ।
भुक्त्वाऽक्षयान्कामसुखांश्च तेऽत्र
प्रयान्ति शंभोः परमं पदं च ॥७५॥
एवं मुनीना गदितं भवान्याश्चरितं शुभम् ।
श्रुत्वा पुरन्दरः श्रीमान्भक्त्या परमया द्विजाः ॥७६॥
आराधयामास तदा पार्वती परमेश्वरीम् ।
वरांश्च विविधाल्लँब्ध्वा चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥७७॥

हे सुमते ! मृडानी देवी उन्हीं के ऊपर सदा प्रसन्न हुआ करती हैं जो गौ-ब्राह्मण के अभ्यर्चन में तत्पर रहा करते हैं तथा अपने धर्म में निरत रहा करते हैं—जो मद्य-मांस से सर्वदा पराङ्मुख रहा करते हैं-शुचि-शैव अर्थात् शिव के भक्त हैं तथा सत्य से प्यार करने वाले और सकल भूतों के हित में रति रखा करते हैं ।७१। समस्त भूतों की आदि भूता-विषयेन्द्रियों से परा अर्थात् विषयेन्द्रियों से परे रहने वाली-अन्तःकरण के आत्म स्वरूप वाली—सदा अक्षय—सकलार्थ दात्री आर्या का मन-वाणी और शरीर से भलीभाँति चिन्तन करो ।७२। अजा—मेवा—लोहित तथा शुक्ल वर्ण वाली बहुी-प्रजा को सृजन करने वाली—सुन्दर रूप से सम्पन्न-मुक्त भोगों वाली उसको त्याग देते हैं जो अन्य-अज-एक सेवमान होता हुआ अनुशयन किया करता है ।७३। तीनों जगतों की जननी का यह प्रभाव वेदों में भी परम गोपनीय है और मैंने हे भार्गव ! आपको बतला दिया है । यदि श्रवण करने की इच्छा है तो उसे बतलाओ । विप्रों को कुछ भी न कहने के योग्य नहीं होता है ।७४। जो मनुष्य इस वितानाख्य नामक भवानी के स्तव का

श्रवण करते हैं अथवा पढ़ते हैं वे यहाँ पर अक्षय काम सुख का भोग करके अन्त समय में भगवान् शिव के परम पद को प्रयाण किया करते है।७५। श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से मुनिगणों के कहे हुए को भवानी के शुभ चरित को पुरन्दर ने श्रवण किया था। हे द्विजो! इन्द्रदेव ने श्रीमान् होते हुए भी इसको परम भक्ति के साथ सुना था। और उसी समय मे उस महेन्द्र देव ने परमेश्वरी पार्वती देवी का समाराधन किया था। उसने देवी से विविध वरदान भी प्राप्त किये थे और फिर कण्टक रहित राज्य किया था।७६।७७।

॥ तिथि निर्णयादि कथन ॥

तिथिनां निर्णयं सूत प्रायश्चित्तविधिं तथा।
वक्तुमर्हसि चास्माकं श्यामशिष्य महामते ॥१॥
श्रृणुध्वमृषयः सर्वे तिथीनां निर्णयं परम्।
अनिर्णीतासु तिथिषु न किंचित्कर्म सिध्यति ॥२॥

श्रौतं स्मार्तं व्रतं दानं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम्।
निर्णीतासु तिथिष्वेव कर्म कुर्वीत नान्यथा ॥३॥
प्रायः प्रान्तमुपोष्य स्यात्तिथेर्दैवफलेप्सुभिः।
मूले हि पितृतुष्ट्यर्थं पित्र्यं चोक्तं महर्षिभिः ॥४॥
या प्राप्यास्तमुपैत्यर्कं सा चेत्स्यात्त्रिमुहूर्तिका।
धर्मकृत्येषु सर्वेषु सम्पूर्णां तां विदुस्तिथिम् ॥५॥
क्षये पूर्वा प्रकर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।
तिथेस्तस्यास्त्रिक्षणाया. क्षयवृद्धत्वकारणम् ॥६॥
अष्टम्येकादशी षष्ठी तृतीया च चतुर्दशी।
पर्वण्याः परसंयुक्ता अपराः पूर्वमिश्रिताः ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! तिथियों का निर्णय तथा प्रायश्चित की विधि आप हम लोगों को बताने के लिये परम योग्य है क्योंकि एक तो वैसे ही महती मति वाले हैं और आप महामनीषी व्यासदेवजी के प्रमुख शिष्य है।१। सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप सब लोग तिथियों के विषय में जो परम निर्णय है उसका अब मुझसे श्रवण कीजिए। जो तिथियाँ निर्णीत नहीं हैं उनमें किया हुआ कर्म कभी भी सिद्ध नहीं हुआ करता है।१। कर्म श्रुति प्रतिपादित हो चाहे स्मृति प्रतिपादित हो—भले ही कोई व्रत या दान हो और जो कोई भी वैदिक कर्म हो इन सभी को निर्णय की हुई तिथियों में करना चाहिए। इसके विपरीत कभी भी नहीं करना चाहिए।३। दैवफलों की इच्छा रखने वालों के द्वारा प्रायः तिथि के प्रान्त का ही उपवास करना चाहिए। मूल पितृगण की तुष्टि के लिये ही होता है और महर्षियों ने उसे पित्र्य-इस नाम से कहा है।४। जिस तिथि शासन काल में सूर्यदेव अस्ताचल को जाते हैं वह तिथि यदि तीन मुहूर्त वाली हो तो समस्त धर्म सम्बन्धी कृत्यों में उस तिथि को सम्पूर्ण ही समझना चाहिए।५। क्षय में पूर्वा तिथि ही करनी चाहिए और तिथि की वृद्धि में उत्तरा तिथि को मानना चाहिए। तीन क्षण वाली उस तिथि का कारण क्षय और वृद्धि का हो जाना ही हुआ करता है।६। अष्टमी-एकादशी-षष्ठी—तृतीया और चतुर्दशी इन तिथियों को पर से संयुक्त ही करना चाहिए। और दूसरी तिथियाँ पूर्ण मिश्रित करनी चाहिए। ऐसा शास्त्रों का सिद्धान्त होता है।७।

वृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी।
कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या समुखी तिथि ॥८॥
शुक्ले द्वे द्वे तथा कृष्णे युगादी कवयो विदु।
शुक्ले पूर्वाह्णिके नार्ये कृष्णे चैवापराह्णिके ॥९॥
नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी।
दशम्येकादशी विद्धा नोपोष्यैव कथचन ॥॥१०॥

ज्ञात्वैव सूर्यचन्द्राभ्या तिथि स्फुटतरं व्रती ।
एकादशी तृतीया च षष्ठी चोपवसेत्सदा ॥११
फलमेकादशी हन्ति विहित दशमीयुता ।
पारण तु त्रयोदश्यामुल्लङ्घ्य द्वादशीव्रतम् ॥१२
पारणाहे न लभ्येत द्वादशी सकलाऽपि चेत् ।
तदानीं दशमीविद्धा ह्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥१३
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् ।
उत्तरा तु यति. कुर्यात्पूर्वामेव सदा गृही ॥१४

वृहत्तपा—रम्भा—सवित्री—वट पेस्ट की—कृष्णाष्टमी—मृता—इनको तभी करे जब तिथि समुखी होवे ॥८॥ दो शुक्ल और दो कृष्णों को ऋषि लोग युगादी कहा करते हैं। जो शुक्ल हो उन्हें पूर्वाह्निक मे करना चाहिए। और जो कृष्ण हो उन्हें अपराह्निक मे करना चाहिए ॥९॥ जो षष्ठी नाग से विद्धा हो और जो सप्तमी शिवविद्धा हो और दशमी से विद्धा एकादशी हो तो इनका उपवास कभी भी नही करना चाहिए ॥१०॥ व्रत करने वाले व्यक्ति को सूर्य और चन्द्र के द्वारा स्पष्ट रूप से तिथि का ज्ञान प्राप्त करके एकादशी-तृतीया और षष्ठी का सदा ही उपवास करना चाहिए ॥११॥ दशमी से युक्त एकादशी विहित फल का दमन कर दिया करती हैं। द्वादशी व्रत का उल्लङ्घन करके त्रयोदशी में पारण होता है। पारण के दिन मे यदि द्वादशी सम्पूर्ण न भी मिले तो उस समय म दशमी से वेध पायी हुई एकादशी तिथि का ही उपवास कर लेना चाहिए। शुक्ल पक्ष मे अथवा कृष्ण पक्ष मे यदि दो एकादशी होवे तो उत्तरा एकादशी व्रत तो यति को करना चाहिए और गृहस्थो को सदा पूर्वा ही एकादशी का व्रत करना चाहिए ॥१२॥१३॥१४॥

दर्शं च पौर्णमास न सप्तमी पितृवासरम् ।
पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥१५

सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साग्निकैः श्राद्धकर्मणि ।
कुहू स्त्रीभिस्तथा शूद्रैरपि चान्यैरनग्निकैः ॥१६
पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।
निशाव्रतेषु च ग्राह्या प्रदोषव्यापिनी सदा ॥१७
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्कर. ।
यत्र वा युज्यते विप्रा· प्रदोषे हिमरश्मिना ॥१८
अर्वाक्षोडश नाड्यस्तु परतश्चैव षोडश ।
पुण्यकालोऽर्कसंक्रान्तौ स्नानदानजपादिषु ॥१९
आसन्नसक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः ।
रात्रौ सक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिने ॥२०
सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।
न स्वप्यान्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ॥२१

दर्श—पौर्ण मास—सप्तमी और पिन्ट वासर इनका जो पूर्व तिथि से विद्धको नही किया करता है वह नरक को प्राप्त किया करता है ॥१५॥ साग्निक द्विजो के द्वारा श्राद्ध कर्म मे सिनी वाली का ही ग्रहण करना चाहिए। स्त्रियो के द्वारा और शूद्रो के द्वारा और अनाग्निक अन्यो के द्वारा भी कुहू का ग्रहण करना चाहिए ॥१६॥ पारण मे और मनुष्यो के मरने मे तात्कालिकी अर्थात् उस समय मे वर्त्तमान रहने वाली ही तिथि ग्रहण करनी चाहिए—ऐसा बताया गया है। रात्रि काल के जोव्रत होवें उनमे सदा वही तिथि ग्रहण करनी चाहिए जो प्रदोष काल मे व्यापिनी होवे ॥१७॥ जिसके द्वारा भगवान् भास्कर अस्ताचल को गमन किया करते हैं वही नक्षत्र उपवास मे ग्रहण करे। हे विप्रो ! और जो प्रदोष मे हिमरश्मि (चन्द्र) के द्वारा युज्यमान किया जाता हो ॥१८॥ सोलह नाडियो के पूर्व और षोडश नाडियो केपरे अर्क (सूर्य) की संक्रान्ति मे स्नान-ज्ञान और जप आदि कर्मो के लिए पुण्य काल माना जाता है ॥१९॥ जो समीप मे ही रहने वाला सक्रमण है। वही पुण्य है और समान-दान मे दिन का आधा भाग लेवे

आदि का कर्म करना चाहिए क्योंकि दीक्षा मे स्थित होंने पर उनको न तो शाव अर्थात् मृतक का आशौच लगता है और न आत्माओ का सूतक ही होता हैं ॥२५॥ जिसका देवार्चन शिव मे है अथवा जिसका अग्नि परिग्रह होता है तथा ब्रह्मचारी और यतियों को शरीर मे कभी सूतक नहीं होता है ॥२६॥ जो महत् दाक से प्रयुक्ता हो और जो उपपदा के सहित तिथि हो वह अमावस्या के ही समान होती है और दान तथा अध्ययन कर्मों म उसे ऐसा ही माना जाया करता है ।।२७।। अपर पक्ष मे मार्गा और पूर्व म ज्या याक्दिता ये तीन चतुरष्ट का होंने हैं और सप्तमी आदि म अनुक्रम से हुआ करते हैं ॥२८॥

माघे पञ्चदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।
तृतीया माधवे शुक्ला नवमी कार्तिके सिता ॥२९
एता युगादय प्रोक्ता सर्वाश्च क्षयपुण्यदाः ।
सिंहवृश्चिकयो कुम्भसक्रान्तिषु (!) भवन्त्युत ॥३०
क्रमात्कृतयुगादीना युगान्ताश्च महर्षय ।
श्राद्धपक्षे त्रयोदश्या मघास्विन्दु करे रवि ॥३१
यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते ।
धनुस्त्रीमीनयुग्माङ्का षडशीतिमुखा स्मृता ॥३२
अश्वयुक्शुल्कनवमी द्वादशी कार्तिके सिता ।
तृतीया चत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥३३
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥३४

माघ म कृष्ण पक्ष की पञ्च दशी और नभस्य मे त्रयोदशी—माघ में शुक्ल पक्ष की तृतीया—कार्तिक मास मे शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि—येतिथियाँ युगा के आदि मानी गयी है और ये सब अक्षय पुण्य प्रदान करने वाली मानी गयी हैं। सिंह और वृश्चिक की सक्रान्तिया मे और कुम्भ की सक्रान्तियों म होती हैं ॥२९॥३०॥ हे महर्षिओ ! क्रम से इन युगादि में युगान्त होंते हैं। श्राद्ध पक्ष मे त्रयोदशी मे—मघाओ म

चन्द्रमा और पर में रवि हो। जब ऐसा हो तब गजछाया होती है और पुण्यों के द्वारा ही प्राप्त की जाया करती है। धनु-स्त्री-मीन युग्माङ्क षडशी ये प्रमुख बताई गई हैं ॥२१॥३२॥ अश्व युज मास की शुक्ल पक्ष की नवमी तथा कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी—चैत्रमास की और भाद्रपद मास की तृतीया—फाल्गुन मासकी अमावस्या तथा पौष मास की एकादशी—आषाढ की दशमी और माघ मास की सप्तमी तिथि ॥३३॥३४॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽषाढी च पूर्णिमा।
कार्तिकी फाल्गुनी चैव ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता ॥३५
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिका।
मकरस्तरायन्तथा पुण्या भास्वतो द्वादशैव हि ॥३६
पर्वस्वेतेषु दानानि धेनुर्नानादिकानि च।
प्रयच्छन्ति द्विजेन्द्रेभ्यो लभन्ते चाक्षयां गतिम् ॥३७
पानीयमप्येषु तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समासहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥३८

श्रावण की अष्टमी जो कि कृष्ण पक्ष में हो—आषाढी पूर्णिमा जो शितपक्ष में आती है और कार्तिकी फाल्गुनी और ज्येष्ठ में सितपक्ष की पन्द्रसी ये सब तिथियाँ मन्वन्तर होने की आदि होने की तिथियाँ होती हैं। इन तिथियों में दिये हुए दान अक्षय होने वाले माने जाया करते हैं। सूर्य देव की जो वर्ष में बारह संक्रान्तियाँ होती हैं वे तिथियाँ भी परम पुण्य मयी हुआ करती हैं ॥३५॥३६॥ इन उपर्युक्त पर्वों में जो दान दिये जाते हैं और द्विजेन्द्रों को धेनु तथा अन्न आदि दिये जाते हैं वे अक्षय गति को प्राप्त हुआ करते हैं ॥३७॥ इन पर्वों में तिलों से पानी विमिश्रित करके जब प्रयत मनुष्य अपने पितृगणों को देता है उसके द्वारा एक सहस्र वर्ष तक के श्राद्धों के ही समान होते हैं—ऐसा यह रहस्य पितृगण कहा करते हैं ॥३८॥

पार्वती के पति देव भगवान् के माहात्म्य को भलीभाँति जानते है। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी अन्य इसका ज्ञाता नहीं है—ऐसा श्रुति ने कहा है।४। क्यो कि आप तो ईश की ही दूसरी मूर्ति हैं और परमेश्वर ही हैं। अतएव आप ही महेश की महिमा को जानते हैं।५। मैं आप ही की शरण म जाता हूँ क्यो कि आप ही वरद रुद्र-शिव और परम कारण हैं। आप तपन हैं—ज्योतियो के भानु है और अव्यय ज्योति हैं। आप ही अम्बिका के पति-ईशान-ज्योतिष्मान् और दिवाकर हैं।६।७।

हिरण्यबाहु जटिलमोंकारास्य प्रचेतसम्।
ब्रूहि मे देवदेवश विवाह परमोष्ठिन ॥८॥
कानी हैमवती गौरी पुनर्जाता ~ ा निगो ॥९॥
पृष्ट यत्तत्प्रवक्ष्यामि सगुह्य मनुजेश्वर।
सर्वपापक्षयकर पर ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥
नीलग्रीवो महादेव शरण्या गोपतिर्विराट्।
प्रपद्ये त्वा महेशानमग्र्य सर्व कपर्दिनम् ॥११॥
त्वा नमामि पर ह्रस्व पशुभर्तारमीश्वरम्।
गणेश स्मरणादेव देहिना मोक्षसाधनम् ॥१२॥
य एतं र्नामभि स्तौति प्रात सप्रयतात्मवान्
तस्य पाप क्षय याति लक्ष्मीश्चैव प्रवर्धते।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्ष शत नर ॥१३॥

गति म जाता हूँ ।११। मैं पशुभर्ता-ईश्वर-परम हुन आपको प्रणाम करता हूँ । सब देहधारियों को स्मरण मात्र से ही मोक्ष का साधन हुआ करते हैं ।१२। जो कोई इन नामों के द्वारा सम्प्रपन्न आत्मा वाला होकर प्रातःकाल में स्तुति किया करता है उसके समस्त पाप क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं और लक्ष्मी की वृद्धि हुआ करती है। वह मनुष्य सभी रोगों से निर्मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ।१३।

एव मनोर्वच श्रुत्वा यदुवाच दिवाकर ॥१४॥
तदह सप्रवक्ष्यामि शृणुध्व मुनिपु गवा ॥१५॥
या सा दक्षसुता देवी सती त्रैलोक्यपूजिता ।
त्यक्त्वा दाक्ष शरीर च बभूवाचलकन्यका ॥१६॥
नाम्ना कालीति विख्याता विश्वरूपा महेश्वरी ।
जगच्चैतन्यरूपा च जगच्चैतन्यबोधिनी ॥१७॥
अधिष्ठितस्तया काल्या हिमवान्पर्वतोत्तम ।
पुण्यस्थानमभूद्विप्रा मोक्षद सर्वदेहिनाम् ॥१८॥
सिद्धाना च मुनीना च गन्धर्वाणा दिवौकसाम् ।
आवास किन्नराणा च स्मरणात्पुण्यदो नृणाम् ॥१९॥
शिव भर्तारमिच्छन्ती तस्मिन्गिरिवरोत्तमे ।
तपस्तप्तु गता काली शिवा पित्रोरनुज्ञया ॥२०॥
अथास्मिन्नन्तरे दैत्यस्तारको लोककण्टक ।
जातो दैत्यधु र्वीरो मृत्युरूपो दिवौकसाम् ॥२१॥

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार के मनुमहाराज वचन को सुनकर भगवान् दिवाकर ने जो कुछ भी कहा था हे मुनि श्रेष्ठो ! वही मैं अब आप लोगों को बतलाता हूँ आप लोग उसका श्रवण करिये ॥१५॥ जो दक्ष की सुता देवी थी वह सती त्रैलोक्य के द्वारा पूजित थी । उसने दक्ष से समुत्पन्न शरीर का त्याग करके पुनः अचल (हिमालय) की कन्या होकर वह समुत्पन्न हुई थी ।१६। वह विश्वरूपा महेश्वरी काली इस नाम से विख्यात हुई थी। वह जगत की चैतन्य

रूपा और जगत् के चैतन्य के बोध करने वाली है ।१७। उस काली के द्वारा पर्वतो म उत्तम हिमवान् अधिष्ठित हो गया था । हे विप्रो ! सब देह धारियो के लिये मोक्ष देन वाला परम पुण्य स्थान हो गया था। वह हिमवान् गिरिराज सिद्धो का मुनियो का- गन्धर्वो का और देवो का तथा किन्नरो का आवास स्थल हो गया था और स्मरण करने से मनुष्यों को पुण्य देने वाला था ।१८-१६। उस उत्तम गिरिवर म शिव को अपना भर्त्ता चाहती हुई वह काली शिवा माता पिता की आज्ञा प्राप्त करके तपस्या करने को चली गयी थी । इसके अनन्तर इसी बीच म तारक दैत्य हुआ था जो समस्त लोको के लिए कण्टक स्वरूप था अर्थात् महान् दुःखदायी था । वह दैत्य देवो का मृत्यु स्वरूप ही घोर दैत्य कुल म समुत्पन्न हुआ था ।२०-२१।

ब्राह्मण तपसाऽऽराध्य वर तस्मादवाप ह ।
देवा पलायितास्तेन तारकेण बलीयसा ॥२२॥
देवाना घोषितो याश्च यज्ञादपहृताश्च ता ।
दु खगिना सुमतप्ता शक्राद्या प्रथितौजस ॥२३॥
गता सशवा शरण ब्राह्मण त्रिदशेश्वरम् ।
आगताश्च सुरान्दृष्ट्वा तान् प्रोवाच पद्मज ॥२४॥
कस्मात्तत्ता सुरा यूयमागता मे ममान्तिके ।
ब्रूत तत्सर्व देवा उपाय वच्मि व स्फुटम् ॥२५॥
तारकाद्भयमत्रस्ता शरण देवमागता ।
यथा मृत्योर्भय देव तस्मान्नस्त्रातुमर्हसि ॥२६॥
अपि क्षण सुरश्रेष्ठ न लभामो वय सुखम् ।
त्रिशद्वर्षसहस्राणि हस्तिरक्षमासतदा ॥२७॥
वर्हनिशमविश्रान्त युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
तयापि न जितस्तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥२८॥

तारक ने द्वारा ब्रह्माजी की आराधना करके उनसे उसने वरदान प्राप्त किया था । उस बली तारक ने देवो को भगा दिया था ।२२। देवो

थी जो स्त्रियाँ थीं वे सब इस दैत्य के बल से आहृत कर लिया था। इन्द्र आदि पावक और यम सब इस की अग्नि में गुनग्रस्त हो गये थे ।२३। इन्द्रदेव के सहित सब देवता देवों के ईश्वर ब्रह्माजी की शरण में गये थे। ब्रह्मजी ने जब समागत हुए देवों को देखा था तो वे उन से बोले ।२४। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे सुरगणों ! आप लोग किस कारण से मेरे समीप में समागत हुए हैं। हे देवो ! यह सब मुझे आप बतलाइये जिससे कि मैं आपको स्पष्ट कोई उपाय बतलादूँ ।२५। देवों ने कहा—हम लोग तारक दैत्य के भय से डरे हुए हैं और अब आपकी शरणागति उपस्थित हुए है। हे देव ! उससे मृत्यु जैसा भय है उससे आप रक्षा करने के योग्य होते हैं ।२६। हे सुरश्रेष्ठ ! हम लोग एक क्षण मात्र भी सुख प्राप्त नहीं करते है अर्थात् एक क्षण को भी हमको चैन नहीं मिलता है। उस समय में तीस सहस्र वर्ष तक अहर्निश निरन्तर-परम दारुण युद्ध हरि और तारक इन दोनों का हुआ था। तो भी देवों के देव चक्री प्रभु ने उसको नहीं जीता था अर्थात् इतने लम्बे समय तक युद्ध होने पर भी विष्णु भगवान् ने उस पर विजय प्राप्त नहीं की थी ।२७।२८।

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा ययौ त्यक्त्वा महोदधिम् ।
भ्रान्तचित्तस्तदा शार्ङ्गी गतस्तूर्णं महाबल ॥२९॥

वयमप्येवमेव हि भीमास्त्वां शरणं प्रभो ।
आगतास्त्राहि नस्तस्मात्सुखदो भव पद्मज ॥३०॥

शृणुध्व मेऽमरा सर्वा युष्माकं सुखदं महत् ।
योऽसौ दैत्यस्तारकाख्यस्तताप परमं तप ॥३१॥

तस्य दैत्यस्य तपसा दह्यमानं चराचरम् ।
दृष्ट्वा तद्वरदानार्थं गतोऽहं तारकान्तिकम् ॥३२॥

उक्त मया वरं वत्स वरयेति महासुर ।
अथ वोहैत्यराजो मामभिवन्द्य कृताञ्जलि ॥३३॥

अवध्योऽहं सुरैः सर्वैर्विष्ण्वाद्यैः पद्मसम्भव ।
भवाम्यहं यथा देव तथा त्वं देहि मे वरम् ॥३४॥
एवमस्त्वित्यहं तस्मै वरं दत्त्वा सुरोत्तमाः ।
अन्यच्चोक्तं हितार्थं च कस्माद्वध्योऽसि तद्वद ॥३५॥

यह तारक दैत्य वध करने के योग्य नहीं है—वहाँ समझाकर महान् बल वाले शार्ङ्गी भगवान् भ्रान्त चित्त वाले होकर सदा देवि का त्याग करके वहाँ से शीघ्र ही चले गये हैं ।२६। हे प्रभो ! इसी प्रकार से हम भी भयभीत हुए आपकी शरण में समागत हुए हैं । हम लोग आपके समीप समुपस्थित हो गये हैं । हे पद्मज ! आप हमारी रक्षा कीजिए और हमको सुख प्रदान करने वाले होइये ।३०। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे अमरगणो ! आप सब लोग मेरी बात सुनिये । मैं तो आपको महान् सुख देने वाला हूँ । जो यह तारक दैत्य है उसने परम तप किया था ।३१। उस दैत्य के तप से यह समस्त चराचर दह्यमान हो रहा है । उसको तप करते हुए देखकर उसको वरदान देने के लिये मैं स्वयं तारक के समीप में गया था ।३२। हे वत्स ! मैंने उससे कहा था—महासुर वरदान माँग लो । उस दैत्यराज ने मुझको प्रणाम करके हाथ जोड़कर मुझसे बोला था ।३३। तारक ने कहा—हे पद्मसम्भव ! मैं विष्णु आदि समस्त सुरों के द्वारा अवध्य हो जाऊँ । मैं हे देव ! ऐसा हो जाऊँ । ऐसा ही वरदान आप मुझको प्रदान कीजिए ।३४। हे सुरोत्तम ! ऐसा होवेगा—यह मैंने उसको वरदान दिया था और हित के लिए मैंने अन्य बात भी कही थी कि तुम यह बताओ कि तुम्हारा वध किससे होना चाहिए ।३५।

यावद्देवाधिदेवस्य कपर्दी नीललोहितः ।
तस्य तेन सुराः पीत्वा समर्था विष्णुना सह ॥३६॥
भविष्यन्ति तदा जातान्मृत्युरिष्टो न संशयः ।
तदाऽस्मिन्वनि तनयोऽसौ तदोऽहं मेरुमूर्धनि ॥३७॥
मत्कृतं यच्च तत्सर्वं नष्टं देहिनाम् ।
चिन्तयन्नुमारान्त घोरशतान्द् ॥३८॥

मुक्त्वा हरात्मजं देवं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
न तं पश्यामि भो देवास्तारकं यो वधिष्यति ॥३९॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः शचीपतिः ।
कथं भविष्यतीत्येवमालोक्य मनसा द्विजाः ॥४०॥
गुरुणा देवैः सार्धं पुनरेव स देवराट् ।
हरस्यैव सुतोत्पत्तावुपायश्चिन्त्यतां सुराः ॥४१॥
इत्युक्त्वा प्रययुर्देवाः शक्राद्या ब्रह्मणा सह ।
मेरोरुत्तरतः शृङ्गं यत्र तिष्ठति माधवः ॥४२॥
गुप्तरितष्ठत्यमेयात्मा तारकाद्भयपीडितः ।
सब्रह्मकान्सुरान्दृष्ट्वा हृष्टः प्रोवाच माधवः ॥४३॥

तारक ने कहा—जो यह देवाधिदेवरपर्दी नील लोहित प्रभु हैं उनके रेत को विष्णु के साथ सुरो ने पीकर वे सब सगर्भ हो गये हैं। इसके पश्चात् जात हुए से मृत्यु अभीष्ट है। दूसरा कोई भी नही है। ऐसा ही होवेगा—यह कहकर मैं इसके उपरान्त मेरु की शिखर पर गमन कर गया हू। सब देहधारियों के शरण्य—विश्वेश्वर—उमाकान्त लोक का श्रेय करने वाले भगवान् शंकर के समीप गया था।३८। चराचर त्रैलोक्य मे हरात्मज देव को छोड़कर हे देवो ! मैं उसको नहीं देखता हू जो इस तारक का वध कर देगा। तात्पर्य यह है कि शङ्कर के शिवाय अन्य कोई भी देव नही है जो तारक को मार देवे। इस प्रकार के ब्रह्माजी के वचनों को सुनकर शचीपति सहस्राक्ष ने कहा—यह कैसे होगा—यही मन से विचार करके हे द्विजो गुरुजी के और अन्य देवों के साथ देवो का राजा पुनः कहा—हे सुरो ! अब तो आप लोग यही विचार करो कि भगवान् हर के सुत की उत्पत्ति हो जावे। यह कहकर समस्त देवगण ब्रह्माजी के ही साथ में मेरू पर्वत के उत्तर की ओर शिखर पर चले गये थे जहाँ पर माधव स्थित रहा करते हैं। वे अमेय आत्मा वाले प्रभु तारक के भय से पीड़ित होकर गुप्त रूप से ही वहां पर अवस्थित रहा करते है। माधव ने जब ब्रह्माजी के साथ

मे से गणदेवो को देखा तो बहुत ही हर्षित होकर बोले—।३६।४०।४१।४२।४३।

उपायश्चिन्तितः कोऽत्र ववार्थं तारकस्य हि ।
अस्ति चेदुच्यतां देवा. शर्म नो जायते यथा ।।४४।।
एवं विष्णोर्वच. श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।
यथोक्तं ब्रह्मणा तेभ्यस्तथोक्तं विष्णवे सुरैः ।।४५।।
किमिदानीं तु कर्तव्यमिति सचिन्त्य देवराट् ।
सोऽस्मरन्मनसा काममजेयमसुरैः सुरैः ।।४६।।
शक्रस्य चिन्तितं ज्ञात्वा कामो रतिपति. स्वयम् ।
शचीपतिं समागम्य प्राह पुष्पधनुर्धरः ।।४७।।
किं कार्यं त्रिदशश्रेष्ठ कर्तव्यं किं मया प्रभो ।
तीव्रेण तपसा को हि स्थानमीहेत तावकम् ।।४८।।
किं वा काचित्तवाऽऽदेशं कर्तुं नेच्छति चाङ्गना ।
तां कामिनीं करोम्यद्य तव ध्यानपरायणाम् ।।४९।।

भगवान् प्रभु ने कहा—इस विषय में इस तारक के वध के लिये क्या उपाय सोचा है ? यदि कोई भी ऐसा उपाय हो तो हे देवो ! बतलाइये जिससे आपका कल्याण हो जावे ।४४। श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार से भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर ब्रह्मा आदि सब श्रेष्ठ सुरों ने जैसा कि ब्रह्माजी ने उनसे कहा था वह उन्होंने विष्णु के लिये कह दिया था ।४५। देवराज ने यह सोचा था कि अब क्या करना चाहिए । उसने मन में स्मरण किया था कि यह कामदेव असुरों और सुरों के द्वारा अजेय ही है ।४६। इन्द्रदेव की इस चिन्ता का विचार करके रतिका पति स्वयं ही शची के पति के समीप में उपस्थित हो गया था और वह पुष्पों के धनुष को धारण करने वाला कामदेव ने कहा—हे देवों में परमश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! क्या कर्तव्य मुझे करना चाहिए । यह कौन है जो तीव्र तप से आपके स्थान को प्राप्त करना चाहता है ।४८। अथवा कोई अङ्गना ऐसी है जो आपके आदेश करना

नहीं चाहती हो। तो मैं उसी भामिनी को ऐसा बना सकता हूं जो आपके ही ध्यान परायण हो जावे।४६।

न कश्चिदस्ति मे शूरो न मानी न च पण्डित ।
व्यापयाम्रि जगत्कृत्स्न ब्रह्माद्य स्तम्बगोचरम् ।।५०।।
अथ किं बहुनोक्तेन दुर्वासा वा महामुनि ।
सोऽपि विद्ध पतत्याशु मद्बाणैर्मरुतां पते ।।५१।।
जानाम्यहं रतेर्नाथ सामर्थ्यं पुष्पधन्विन ।
नूनं हि सर्वकार्याणि त्वत्त सिध्यन्ति नान्यथा ।।५२।।
गच्छ पार्श्वं महेशस्य सुराणां हितकाम्यया ।
चित्तं हरस्य सक्षोभ्य पार्वत्या सगम कुरु ।।५३।।
एतद्ध्रुव हि मे कार्यमेष एव मनोरथ ।
एतस्मात्कारणात्त्व हि स्मृत पुष्पधनुर्धर ।।५४।।
एव शक्रवच श्रुत्वा बलमाम्मकरध्वज ।
मधौ सखा रतीयुक्त पञ्चबाणो मनोभव ।।५५।।
यत्राऽऽस्ते भगवाञ्शम्भुर्ध्यानिष्ठया समाहित ।
निष्कम्प स्वात्मनाऽऽत्मान चिन्तयानो महेश्वर ।।५६।।

मेरे सामने कोई भी ऐसा शूर नहीं है न कोई मानी है और न कोई ऐसा पण्डित है। मैं तो सम्पूर्ण जगत् मे व्यापक रहता हूं ब्रह्मा से आदि लेकर जो भी कुछ स्तम्ब पर्यन्त है मैं सभी में व्यापक रहता हूं। ५०। हे मरुतां पते ! इस विषय मे अत्यधिक कथन निष्प्रयोजन ही है। अथवा महामुनि दुर्वासा बहुत शक्तिशाली हैं किन्तु वे भी मेरे बाणों से शीघ्र ही विद्ध होकर गिर जाया करते हैं।५१। इन्द्रदेव ने कहा—हे रति के नाथ ! पुष्पों के धनुर्धारी आपकी सामर्थ्य मैं खूब जानता हूं। यह सर्वथा निश्चित है कि आपसे ही समस्त कार्य सिद्ध हुआ करते हैं अन्य किसी भी साधन से असम्भव ही है।५२। अब तुम सुरों की हित कामना के लिये महेश भगवान् के पास मे जाकर पहुँच जाओ वहाँ पर

तुम्हारा इतना ही कर्त्तव्य है कि महादेवजी के चित्त में क्षोभ करदो कि पार्वती का सङ्गम करो ।५३। मेरा यही कार्य है और मेरा यह ही मनोरथ है । हे पुष्पधनुर्धर ! इसी कारण से मैंने तुम्हारा स्मरण किया था ।५४। इस रीति से महेन्द्र के वचन को सुनकर बलवान् मकरध्वज —मधुर सखा-रति से युक्त—पाँच बाणों वाला—मनोभव ने जहाँ पर भगवान् शम्भु ध्यान की दृष्टि से समाहित थे और अपनी आत्मा से आत्मा का चिन्तन करते हुए महेश्वर निष्कम्प थे उनको देखा था । ।५५।५६।

प्राप्य शम्भोरायतनमपश्यन्मकरध्वजः ।
शैलादिं द्वारदेशे तु मेरुशृङ्गमिवोदितम् ॥५७॥
सर्वाभरणसंयुक्तं सहस्रादित्यवर्चसम् ।
शूलहस्तं त्रिनेत्रं च चन्द्रावयवभूषणम् ॥५८॥
वज्रपाणिं चतुर्बाहुं द्वितीयमिव शङ्करम् ।
तं दृष्ट्वा मदनो विप्राश्चिन्ताक्रान्तस्तदाऽभवत् ॥५९॥
कथं प्रविश्य वक्ष्यामि शम्भुं त्रिदशवन्दितम् ।
कथं कार्यं करिष्यामि सुराणां प्रीतिवर्धनम् ॥६०॥
चिन्तयित्वा तु बहुधा वञ्चनार्थाय नन्दिनः ।
वायुरूपं तनुं कृत्वा सुगन्धं मृदुशीतलम् ॥६१॥
प्रविवेश तदा कामो दक्षिणां दिशमाश्रयम् ।
तेन याम्यां दिशि गतो वायुर्वाति सुखावहः ॥६२॥
अद्यापि कारणात्तोऽयं सुगन्धो मृदुशीतलः ।
अपश्यत्तत्र मदनः सूर्यकोटिमिवोदितम् ॥६३॥

मकरध्वज ने भगवान् शम्भु के आयतन में पहुँचकर देखा था कि द्वार देश में मेरु की शिखर के समान ही उन्नत शैलादि स्थित थे जो आभरणों से समन्वित—सहस्र सूर्यों के समान वर्चस् वाले—हाथ में त्रिशूल लिये—तीन नेत्रों से युक्त—वज्र हाथ में धारण किये हुए—

चन्द्रकला के मस्तक भूषण वारे—चार भुजाओ से युक्त दूसरे शङ्कर की ही भांति विराजमान थे । हे विप्रो ! उस शैलादि को देखकर मदन उस समय में चिन्ता से समाक्रान्त हो गया था ।५७।५८।५९।। कामदेव को यही चिन्ता हुई थी कि मै किस प्रकार से अन्दर प्रवेश करके देवो से वन्दित भगवान् शम्भु को बोलू गा । और सुरो की प्रीति का बढाने वाला कार्य करूगा ।६०। नन्दी के वचन करने के लिये बहुत सी रीतियो से सोच करके उस मदन वायु का स्वरूप धारण किया था जो परम सुन्दर गन्ध वाला—मृदुल और शीतल था ।६१। उस समय मे कामदेव ने दक्षिण दिशा का आश्रय ग्रहण करके अन्दर प्रवेश किया था । उसके द्वारा याम्य दिशा मे जाकर वहाँ पर सुख देने वाली वायु वहन करने लगा था ।६२। आज भी इसी कारण से वह यह सुगन्ध मृदु और शीतल वायु है । वहाँ पर मदन ने उदित करोडो सूर्यों के सदृश भगवान् शम्भु को देखा था ६३।

सहस्रनयन देव सहस्रतनुमीश्वरम् ।
नीलकण्ठ सुधाभास शुभ्रखण्डेन्दुधारिणम् ।।६४।।
जगदुत्पत्तिसंहारस्थित्यनुग्रहकारिणम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाश विद्यु मामिव पावकम् ।।६५।।
रुण्डमालाचित देव सूर्यमालाविभूषितम् ।
अनौपम्यमसादृश्यमप्रमेयमनाकुलम् ।।६६।।
जयचक्षुर्जगद्बाहु जगच्छीर्ष जगन्मयम् ।
जगत्पाद जगच्छ्रोत्र सूक्ष्मस्थूल परात्परम् ।।६७।।
रुद्र शर्वं पशुपतिमुग्र भीम भव द्विजा ।
महादेव महेशानमष्टमूर्ति जगत्पतिम् ।।६८।।
व्यक्ताव्यक्त त्रिलोकेश पूजित च सुरासुरं ।
अथ दृष्ट्वा महादेव प्रहृष्टो मकरध्वज ।।६९।।
निरूप्य चापमापूर्य स्थित पश्यन्भवोद्भवम् ।
एव स्थितस्य कामस्य सहस्राण्ययुतानि षट् ।।७०।।

भगवान् शम्भु को स्वरूप जो कामदेव ने वहाँ पर देखा था वह सहस्र नयनों से युक्त था और ईश्वर सहस्र शरीर वाले देव थे—नीले कण्ठ वाले और सुधा मास तथा परम शुभ्रचन्द्र की कला को मस्त कपट धारण करने वाले थे। इस जगत् की उत्पत्ति संहार तथा स्थिति का अनुग्रह करने वाले थे। शम्भु का स्वरूप शुद्ध स्फटिक मणि के समान स्वच्छ एवं धूमरहित पावक के सदृश तेज युक्त था।६४।३६५। नरमुण्डों की मालाओं से चित्रदेव सूर्यों की मालाओं से विभूषित शिव का स्वरूप था। उन भगवान् शम्भु का स्वरूप ऐसा विलक्षण था कि अनुपम सादृश्य से मुक्त-अप्रमेय एवं अनाकुल था। वे इस जगत् के नेत्र थे—जगत् बाहु थे—जगत् शीर्ष और जगन्मय थे। जगत् पाद-जगत् श्रोत्र-सूक्ष्म एवं स्थूल तथा परसे भी पर थे।६६।६७। रुद्रशर्व-पशुपति-उग्र-भीम-भव महेशान-अष्टमूर्ति-जगत्पति-व्यक्ताव्यक्त-तीनों लोकों के ईश और सुर-असुरों के द्वारा पूजित महादेवजी का दर्शन करके मकरध्वज बहुत प्रसन्न हुआ था।६८।६९। मदन ने आप धनुष निकालकर उस चाप को आपूरित किया था तथा इस संसार को उत्पन्न करने वाले भगवान् शम्भु को देखते हुए वह स्थित हो गया था। इसी तरह से स्थित हुए कामदेव को दो सहस्र अयुत वर्ष व्यतीत हो गये थे।७०।

गतानि तस्य वर्षाणि मुनीन्द्राद्विराजन्मन ।
तत स भगवान्देवो नेत्रे उन्मील्य शङ्कर ॥७१॥
अपश्यद्गिरिजा देवीमग्रे विश्वेश्वर शिव ।
गिरीन्द्रपुत्रीं तपस मि) प्रसक्ता लज्जयाऽन्विताम् ॥७२॥
दृष्ट्वा ग्रिमत्रेति विक पवुद्धया कामोऽयमत्रेति विचिन्त्य सर्वं ।
ज्ञात्वा त्रिलोकय प्रविष्टचाप नेत्राग्निनाऽसौ मदनोऽपि दग्ध ॥७३

हे मुनीन्द्रो! मन में समुत्पन्न होने वाले मदन को इसी तरह से स्थित रहते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसके पश्चात् भगवान् शम्भु देव ने नेत्रों का उन्मीलन करके विश्वेश्वर देव ने आगे देवी गिरिजा को देखा था वह गिरीन्द्र की पुत्री पार्वती तप में स्थित थी और लज्जा से समन्वित थी।७१।७२। उन्होंने देखा था कि यह यहाँ पर क्या है और किस बुद्धि से विचार किया

था कि यह तो कामदेव है । भगवान् सर्व ने यह विचार कर उस काम को चाप चढाये हुए देखकर और भलीभाँति जानकर उनने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से उस मदन को दग्ध कर दिया था ।७३।

—

।। महादेव वर प्रदान ।।

दग्धे रतिपतौ शंभुरुवाचाचलकन्यकाम् ।
किमद्य तव देवेशि करोमि मनसि स्थितम् ।।१।।
वरं ब्रूहि महादेवि दास्याम्यद्य सुरेश्वरि ।
मयि प्रसन्ने देवेशि किं दुर्लभमिहास्ति ते ।।२।।
हते तु कामे वद नीलकण्ठ वरेण किं देव करोमि तेऽद्य ।
विनैव कामेन न चास्ति भाव स्त्रीपुंसयोर्भास्करकोटिकल्प ।३
भावस्य हाने सुखमनिकर्षं कथं भवेद्ब्रूहि सुरेशवन्द्य ।
उवाच भूयो मदनान्तकारी देहे न चाहं मदनं सुनेत्रे ।।
नेत्रस्य चैव ज्वलनात्मकस्य स्वरूपमेतादृद किं करोमि ।।४।।
बालेति मत्वा भव भूतनाथ व्यामोह(गुह्य)से किं त्वमनित्यवर्यं ।
स्वतन्त्रष्टहियं दि वा तवैषा तदा दहेर्सामपि चात्रसस्याम् ।।५।।
यदि विश्वेश्वरो देवो ब्रह्मादीनां हरः शिवः ।
प्रतारणे प्रवृत्तश्चेत्को निवारयितुं क्षमः ।।६।।
नाहं प्रतार्या भगवंस्त्वामहं शरणं गता ।
गतिर्नान्याऽस्ति मे देव तस्मात्मां त्रातुमर्हसि ।।७।।

श्री सूतजी ने कहा—रति के पति कामदेव के दग्ध हो जाने पर भगवान् शम्भु ने अचल कन्या पार्वती से कहा था—हे देवेशि ! मैं आपके मन में स्थित किस मनोरथ को पूर्ण करूँ ? हे महादेवि ! आप अब मुझसे वरदान माँग लो । हे सुरेश्वरि ! मैं आज जो भी आप याचना करेंगे दे दूँगा । हे देवेशि ! आप यह समझ लो कि मेरे प्रसन्न हो जाने पर इस संसार में कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है तो फिर आपको भी किसी की भी कमी नहीं रहेगी ।१।२। श्री पार्वती देवी ने कहा—हे नील कण्ठ ! कामदेव के निहत हो जाने पर मैं आज आपके दिये हुए वरदान से क्या करूँगी । बिना कामदेव के रहे स्त्री-पुरुष का भास्कर कोटि कल्प भाव ही नहीं होता है ।३। हे सुरेश वन्द्य ! भाव की हानि से सुख का सन्निकर्ष कैसे होगा—यह आप ही बतलाइये ।

इसके अनन्तर मदन के अन्त कर देने वाले प्रभु ने कहा—हे सुनेत्रे ! मैं और मदन देह मे नही हैं। मेरा जो ज्वलनात्मक नेत्र है उसका ही यह स्वरूप है मैं क्या करूँ।४ देवी ने कहा—हे भूतो के स्वामी भव ! आप तो अनिन्द्य वर्ण हैं। आप मुझको वाना मानकर क्यों व्यामोहित कर रहे है ? यदि आपकी ऐसी ही स्वतन्त्र वृत्ति है तो मैं जो आपके सामने म स्थित हूं मुझको भी आप दग्ध कर दीजिएगा। यदि विश्व का स्वामी देव हर शिव ब्रह्मा आदि देवो के भी प्रतारण मे यदि प्रवृत्त हैं तो फिर आपको निवारित करने में कौन समर्थ हो सकता है।५ ६। हे भगवान् ! मैं आपके द्वारा प्रतारण करने योग्य नही हूं। मैं तो आपकी शरण मे प्राप्त हो गयी हूं। हे देव ! मेरी अन्य कोई भी गति नही है। इसलिये आप मेरा परित्राण करने के योग्य होते है।७।

त्वमेव चक्षुर्जगतस्त्वमेव वचसा पति ।
त्वमेव धाता जगतो विधाता विश्वतोमुख ॥८॥
नमाम्यहं देववरं पुराणमुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।
शशाङ्कसूर्याग्निमय त्रिनेत्र ध्यानाधिगम्य जगत प्रकाशम् ॥९
त्वा वाङ्मयाधारमनन्तवीर्यं ज्ञानार्णवं चैव गुणार्णव च ।
परापर धामनिधि सुसूक्ष्ममनादिमध्यान्तविहीनरूपम् ॥१०॥
हिरण्यगर्भं जगत प्रसूति नमामि देव हरिणाङ्कचिह्नम् ।
पिनाकपाशाङ्कुशशूलहस्त कपर्दिन मेघमहद्घोपम् ॥११॥
तमालकण्ठ स्फटिकावदात नमामि शभु भुवनैकसिहम् ।
दशार्धवक्त्र सुरसिन्धुशीर्ष शशाङ्कचिह्न नरसिहदारणम् ।१२
त्वा नमामि शरभरूपधरोरगेन्द्रराजहार चलद्वलयभूषण हरम्।
वरविबुधमुकुटार्चिताङ् घ्रि नमामि हि हरिचर्मवसन त्वाम्।१३
यदक्षर निर्गुणमप्रमेय यज्ज्योतिरेक प्रवदन्ति सन्त ।
दूरगम देवमनन्तमूर्ति नमामि सूक्ष्म परम पवित्रम् ॥१४॥
नमामि रुद्र प्रथमाधिनाथ धर्मासनस्थ प्रकृतिद्वयस्थम् ।
तेजोनिधि बालशशाङ्कमौलि कालेन्धन वह्निरवीन्दुनेत्रम् ।१५

हे भगवन् ! आप ही इस जगत् के नेत्र हैं और आप ही वाणियो के स्वामी हैं—आप ही इस जगत् के धाता हैं और आप विश्वतोमुख विधाता हैं।८। मैं परम पुराण देव वर को जो उपेन्द्र वेधा और देवो के द्वारा सेवित चन्द्र-सूर्य और अग्नि मय तीन नेत्रों वाले—ध्यान के

द्वारा अधिगमन करने के योग्य और जगत् के प्रकाश हैं उन आपको नमस्कार करती हूँ ।६। आप इस वाङ्मय के आधार हैं—अनन्त वीर्य वाले हैं—ज्ञान के सागर है—गुणों के अर्णव हैं—परसे भी पर हैं—धाम के निधि है। आप सु सूक्ष्म हैं और आदि-मध्य और अन्त से विहीन रूप वाले है ऐसे आपको मैं प्रणाम करती हू ।१०। आप हिरण्य गर्भ हैं—आप इस जगत् की प्रसूति हैं—हरिणाङ्क (चन्द्रमा) के चिह्न वाले है ऐसे देव को मैं नमस्कार करती हूँ । आपके हाथों मे पिनाक-पाश, अंकुश, शूल धारण किये हुए है—कपर्दी और सहस्रों मेघों के समान घोष वाले हैं—आप तमाल के सदृश नीलकण्ठ वाले तथा स्फटिक मणि के समान अवदात हैं ऐसे भुवन के एक सिंह आपको मैं प्रणाम करती हूँ। आपके पाँच मुख है—सुरसिन्धु (गङ्गा) को मस्तक पर धारण किये हुए है—चन्द्र के चिह्न वाले है तथा नरसिंह के समान परम दारुण है । आप शरम रूप के धारी उरगेन्द्र राज के हार धारण करने वाले-चलायमान वलय भूषण से युक्त हर आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम अर्पित है सिंह के चर्म के वसन वाले तथा श्रेष्ठ देवो के मुकुटो से समर्चित चरण वाले आपको मैं प्रणिपात करती हूँ। जिनको सन्त पुरुष अक्षर-निर्गुण-अप्रमेय एक ज्योति कहा करते हैं उन दूरगम-अनन्त मूर्ति सूक्ष्म परम पवित्र-समर्थो अधिनाथ धर्म के आसन पर विराजमान-परम पवित्र प्रकृतिद्वय मे स्थित रुद्रदेव को मैं प्रणाम करती हूँ तेज के निधि-बालचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले काल के ईधन और अग्नि रवि और चन्द्र के तीन नत्रो वाले आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है ।।१५।

प्रसन्नोऽस्याब्रवीद्देवी कालो त्रिपुरहा हर ।
वरयस्व वर देवि ददामि तव सुव्रते ।।१६।।
जीवत्वय महादेव कामो लोकप्रतापन ।
विना कामेन भगवन्नाह याचे कथचन ।।१७।।
भवत्वनङ्गो मदनस्त्वत्प्रियार्थं सुलोचने ।
तेन रूपेण लोकस्त क्षोभणाय भवत्वलम् ।।१८।।
तदोत्थितो वायुरिवाप्रमेयस्त्वनङ्गरूपो मकरध्वजश्च ।
हरस्य वाक्यादुभयोरितश्च सचापवाण मरतिर्बभूव ।।१६।।
इति प्रीत्या महेशानी वर दत्त्वा हर स्वयम् ।
स्मरस्य पञ्चबाणस्य तत्र वान्तरधीयत ।।२०।।

य पठेदिममध्याय भक्त्या देवस्य सन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२१॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार की स्तुति करने के बाद में त्रिपुर दैत्य के हनन करने वाले भगवान् हर परम प्रसन्न होकर काली देवी से बोले—हे सुभ्रु ! हे देवि ! आप वरदान माँगलो । मैं आपको जो भी चाहोगी प्रदान कर दूँगा ।१६। देवी ने कहा—हे महादेव ! सर्व प्रथम तो मैं यही चाहती हूँ कि यह कामदेव जीवित हो जाय जो लोकों को प्रतपन कराने वाला है । हे भगवन् ! कामदेव के जीवित हुए बिना मैं किसी भी प्रकार से कुछ भी याचना नहीं करती हूँ ।१७। ईश्वर ने कहा—हे सुलोचने ! आपका प्रिय करने के लिए मदन अनङ्ग हो जावेगा। वह उसी बिना अङ्ग वाले स्वरूप के ही द्वारा लोकों के हृदय में क्षोभ समुत्पन्न करने के लिये पञ्चमार्गी वाला हो जायगा ।१८। उसी समय में वायु की तरह से अप्रमेय स्वभाव है वह उत्थित हो गया था उस समय में वह मकरध्वज बिना अङ्ग के स्वरूप वाला ही था । भगवान् हर के वाक्य से उमा देवी के द्वारा ईप्सित वह मदन चाप और बाण के सहित और रति के साथ में रहने वाला हो गया था ।१६। दूसरी रीति से भगवान् महेशान हर स्वयं गौरी के साथ वरदान देकर तथा पञ्च बाण समर को अनङ्ग के स्वरूप से जीवित करके वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ।२०। जो पुरुष इस अध्याय का भक्ति के साथ पाठ किया करता है और देवेश्वर की सन्निधि में पढ़ता है । वह सब पापों से छुटकारा प्राप्त करके अन्त में ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ।२०।२१।

॥ माहेश्वर ज्ञान कथन ॥

तद्गच्छत यत्र सा देवी शैलेन्द्रपूजिता ।
उमा भगवती रानी गत्वा त्रिपुरसुन्दरम् ॥१॥
आच्छादितगिरिजस्य न ज्ञानविज्ञानानाम् ।
दीपयन्ती जगत्सर्वं त्रिलोकस्य महात्मनाम् ॥२॥
अङ्के कालो सन्तापाय निरस्यानाय च द्विजा
उवाच परमा श्री सा विदारी सर्वेश्वर ॥३॥

तपसा तोषितः शम्भुरमेयात्मा सनातनः ।
कीदृशस्त्वं वरो लब्धस्त्वया देवान्महेश्वरात् ॥४॥
तपसाऽऽराध्य विश्वेशं गोपतिं शूलपाणिनम् ।
तमेवेशं पतिं लब्ध्वा कृतार्थाऽस्मीति मे वरः ॥५॥
भेदोऽस्ति तत्त्वतो राजन्न मे देवान्महेश्वरात् ।
सिद्धमेवाऽऽवयोरैक्यं वेदान्तार्थविचारणात् ॥६॥
यदेतदैश्वरं तेजस्तन्मां विद्धि नगेश्वर ।
सर्वभूतात्मकं शान्तं विश्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—त्रैलोक्य की पूजित देवी पार्वती ने भगवान् शङ्कर से वरदान प्राप्त करके वह भगवती उमा बाली अपने पिता के मन्दिर में प्राप्त हो गयी थी ।१। चन्द्रमा की कान्ति के सदृश मुख वाली उस उमा को गिरिराज हिमाचल ने देखा था जो कि सम्पूर्ण जगत को दीप्त कर रही थी और विद्युत के समान प्रभाव वाली थी ।२। हे द्विजो ! गिरिराज ने अपनी गोद में बाली को बिठाकर उसके शिर पर आघ्राण किया था । फिर पर्वतेश्वर ने परमप्रीति के साथ विश्वेश्वरी से पूछा था ।३। हिमालय ने कहा—अमेय आत्मा वाले वाले भगवान् शम्भु जो कि सनातन प्रभु हैं तुम्हारी तपश्चर्या से तोषित हो गये हैं । हे पुत्रि ! यह बतलाओ कि तुमने महेश्वर देव से किस प्रकार का वरदान प्राप्त किया है ।४। देवी ने कहा—मैंने अपनी तपस्या के द्वारा विश्वेश्वर पशुपति शूलपाणि का समाराधन करके और उन्हीं ईश को अपना पति प्राप्त करके मैं कृतार्थ हो गयी हूँ—यही मेरा याचित किया हुआ वरदान था ।५। हे राजन् ! तात्त्विक रूप में महेश्वर देव से मेरा भेद नहीं है । हम दोनों की एकता तो सिद्ध ही है और यह अभेद वेदान्त के अर्थ के विचार करने से ही होता है ।६। हे नगेश्वर ! जो यह ईश्वरीय तेज है उसी को मुझे आप समझ लीजिए । जिस तेज में सर्व भूतात्मक परम शान्त विश्व प्रतिष्ठित रहा करता है ।७।

अहं सर्वान्तरा शक्तिर्माया मायी महेश्वरः ।
अहमेका परा शक्तिरेक एव महेश्वर. ॥८॥
नाऽऽवयोर्विद्यते राजन्भेदो वै परमार्थतः ।
एकाऽहं विश्वगाऽनन्ता विश्वरूपा सनातनी ॥९॥
पिनाकपाणेर्दयिता नित्या गिरिवरोत्तम ।
ज्ञातुं न शक्ता ब्रह्माद्या मत्स्वरूपं हि तत्त्वत. ॥१०॥
इच्छाशक्तिरहं राजञ्ज्ञानशक्तिरहं पुनः ।
क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिः शक्तिमान्भगनेत्रहा ॥११॥
कूटस्थमचलं सूक्ष्मं सत्यं निर्गुणमव्ययम् ।
आनन्दमक्षरं ब्रह्म तात जानीहि मत्पदम् ॥१२॥
तत्पदं ते प्रपश्यन्ति येषां भक्तिर्मयि स्थिरा ।
नान्यथा कर्मकाण्डैश्च तपोभिश्चापि दुष्करैः ॥१३॥
शिवस्य परमा शक्तिर्नित्याऽऽनन्दमयी ह्यहम् ।
ब्रह्मणो वचनाद्राजन्नभव दक्षकन्यका ॥१४॥

मैं सर्वान्तरा शक्ति माया हूँ और महेश्वर मायी है। मैं ही एक परा शक्ति हूँ और महेश्वर देव भी एक ही हैं ॥८॥ हे राजन्! हम दोनों का परमार्थ रूप से कोई भी भेद नहीं है। मैं भी एक ही हूँ जो कि विश्व में गमन करने वाली—अनन्ता—विश्वरूपा और सनातनी हूँ। हे गिरिवरों में उत्तम! पिनाक पाणि की मैं नित्या दयिता हूँ। ब्रह्मा आदि देवगण भी तात्त्विक रूप से मेरे स्वरूप को जानने में समर्थ नहीं हैं।।९।१०। हे राजन्! मैं ही इच्छा शक्ति हूँ और पुनः ज्ञान की शक्ति भी हूँ। मैं क्रिया करने की शक्ति हूँ—प्राण शक्ति हूँ और भग के नेत्रों के हनन करने वाले महेश्वर पूर्ण शक्तिमान् हैं।११। हे तात! मेरे पद को आप कूटस्थ—अचल—सूक्ष्म—सत्य—निर्गुण—अव्यय—आनन्द अक्षर और ब्रह्म जानिये।१२। उस पद को वे ही मनुष्य देख सकते हैं जिनकी मेरे विषय में स्थिरा भक्ति होती है। अन्य किसी भी प्रकार के

साधनों से नहीं देख सकते हैं। बड़े-बड़े कर्म काण्डों के द्वारा तथा परम दुष्कर तपों से भी उसे नहीं देख पाते हैं ।१३। भगवान् शिव की परमा नित्या और आनन्दमयी शक्ति मैं ही हूँ। हे राजन् ! ब्रह्माजी के वचनादेश से मैं उस समय में प्रजापति दक्ष की कन्या हुई थी ।१४।

शूलिनो देवदेवस्य निन्दक परमेष्ठिन ।
विनिन्द्य पितर दक्ष जाताऽस्मितव कन्यका ॥१५॥
स्वेच्छयैवावतारो मे नैव चान्यवशात्पित ।
तस्मान्मा परमा शक्तिमिति ज्ञात्वा सुखो भव ॥१६॥
नाशयामि तवाज्ञान भवबन्धनकारणम् ।
दिव्य ददामि ते ज्ञान दु खत्रयविनाशकृत् ॥१७॥
एव देव्या प्रसादेन हिमवान्पर्वतेश्वर ।
लब्ध्वा माहेश्वर ज्ञान जीवन्मुक्तस्तदाऽभवत् ॥१८॥
अपश्यदाखिल विश्वमुमामहेश्वरात्मकम् ।
नित्यानन्द निर्विभागमात्मान च तदात्मकम् ॥१९॥
मानमेयादिरहित भेदाभेदविवर्जितम् ।
बाह्याभ्यन्तरनिर्मुक्त शुद्ध निर्गुणमव्ययम् ॥२०॥
न समीप न दूरस्थ न स्थूल नापि वा कृशम् ।
न दीर्घ नापि वा ह्रस्व न पीत नापि लोहितम् ॥२१॥

त्रिशूलधारी देवों के भी देव परमेष्ठी की निन्दा करने वाले पिता दक्ष को विनिन्दित करके मैं आपकी कन्या के रूप में समुत्पन्न हुई हूँ ।१५। हे पिताजी ! मेरा यह अवतार स्वेच्छा ही से हुआ है अन्य किसी वश से नहीं हुआ है। इस कारण से मुझको परमाशक्ति समझकर आप सुखी होइये ।१६। सांसारिक बन्धन का कारण जो आपका अज्ञान है उसका मैं नाश कर देती हूँ। और फिर मैं आपको परम दिव्य ज्ञान दे दूँगी जो तीनों प्रकार के दुःखों का विनाश करने वाला है ।१७। इस प्रकार से देवी के प्रसाद से पर्वतेश्वर हिमवान् महेश्वर ज्ञान को प्राप्त

करते उसी समय में जीवन मुक्त हो गया था ।१८। फिर तो उसने सम्पूर्ण विश्व को ही उमा महेश्वरात्मक देखा था। और अपने आप को भी नित्यानन्द से युक्त—निर्विभाग तथा तदम्मय देखा था ।१९। उसने शिव को किस रूप में देखा था यह बतलाते हुए कहते हैं कि शिव का स्वरूप मानमेशादि से रहित है—भेदाभेद से वर्जित है—बाह्याभ्यन्तर से निर्मुक्त है—शुद्ध—निर्गुण और अव्यय है ।२०। न वे समीप में हैं और न दूर में ही स्थित हैं और न स्थूल हैं और न कृश ही हैं। न वे दीर्घ हैं और न ह्रस्व हैं —न पीत हैं और न लोहित हैं ।२१।

न नील न च कृष्णं च न शुक्लं नापि कर्बुरम् ।
पाणिपादविनिर्मुक्तं न श्रो (श्रौ) त्रं न च चाक्षुषम् ॥२२॥
अनासिकमजिह्वं च मनोबुद्धिविवर्जितम् ।
बन्धमोक्षविनिर्मुक्तं बोधाबोधविवर्जितम् ॥२३॥
नाऽऽधारस्थं न नाभिस्थं न हृदिस्थं न कण्ठगम् ।
नापि नासाग्रगं विप्रा न भ्रूमध्यगतं हि तत् ॥२४॥
न नाडीत्रयमध्यस्थं द्वादशान्तगतं न च ।
नोर्णातन्तुनिभं तत्तु विद्युत्पुञ्जनिभं न च ॥२५॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यं सकलं शिवम् ।
तदेवेदमिदं विश्वं तस्मादन्यन्न विद्यते ॥२६॥
आम्नाय परमां भक्तिं शिवयोः पादपङ्कजे ।
पित्रोर्हिरण्यगर्भस्य शान्तिस्तथा च सुव्रती ॥२७॥

शिव का स्वरूप न नील है—न कृष्ण है—न शुक्ल है और न कर्बुर ही है। पाणि और पाद से विनिर्मुक्त हैं—न श्रोत्र हैं अर्थात् श्रोत्रा का विषय हैं और न चाक्षुष अर्थात् चक्षुओं के द्वारा देखे जाने वाले हैं ।२२। नासिका से रहित—जिह्वा से हीन तथा मन और बुद्धि से वर्जित हैं ।२३। न किसी आधार पर स्थित है—न नाभि में स्थित है और न कण्ठ में गमन करने वाले ही हैं। हे विप्रो ! नासिका के अग्र

भाग मे ही रहने वाले है और न भौहो के मध्य मे ही रहने वाले है ॥२४॥ उनका स्वरूप तीनो नाडियो के मध्य मे भी स्थित रहने वाला नही है और द्वादशान्तगत भी नही है। न तो ऊर्णाकितन्तु के ही सदृश है और न विद्युत् के पुञ्ज के तुल्य ही है।२५। सर्वत्र गमन करने वाले—चैतन्य स्वरूप शिव सभी उपाधियो से विनिर्मुक्त है। वही यह विश्व है क्योंकि उनसे अन्यत् कुछ भी नही है।२६। शिवा और शिव इन दोनो के चरण कमल मे परमोत्कृष्ट भक्ति को समास्थित करके ही जीवन बिताना चाहिए। ये दोनो हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी थे और हे सुव्रत! भगवान् शार्ङ्गी के भी माता-पिता है।२७।

॥ साम्ब विवाह मंडप वर्णन ॥

अह्वानयत्ततो विश्वकर्माणं पर्वतेश्वरः ।
विवाहमण्डपं कर्तुं नानाश्चर्यविभूषितम् ॥१॥
तेनाऽऽहूतस्ततः शीघ्रं विश्वकर्मा महामतिः ।
प्रययौ हिमवत्पार्श्वं कुशलो विश्वकर्मणि ॥२॥
दृष्ट्वाऽथ विश्वकर्माणं हृष्टः पर्वतराट् स्वयम् ।
स्वागतासनपाद्यार्घैः सादरस्तमपूजयत् ॥३॥
विधिवत्पूजयित्वा तु विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥४॥
विश्वकर्मन्महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
यत्कारणादिहाऽऽहूतो मया त्वं तद्ब्रवीम्यहम् ॥५॥
विश्वेश्वरो महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
आगमिष्यति विश्वेशी परिणेतुं शिवः स्वयम् ॥६॥
मण्डपस्तत्र कर्त्तव्यो यत्रार्थं हि हिरण्मयः ।
योजनायुतविस्तीर्णमनेकाश्चर्यसंयुतम् ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् पर्वतेश्वर हिमालय ने विश्वकर्मा को बुलवाया था और उसे आज्ञा दी थी कि वह अनेक अद्भुत आश्चर्यों से विभूषित विवाह का एक मण्डप विरचित करें ।१। हिमाचल के द्वारा बुलाये गये विश्वकर्मा ने जो महती मति वाला था शीघ्र ही हिमाचल के समीप में गमन किया था। विश्वकर्मा ने विश्व के सम्पूर्ण कर्मों में बहुत ही कुशल था ।२। विश्वकर्मा को समागत हुए देखकर पर्वतों का राजा स्वयं अत्यन्त हर्षित हुए थे। विश्वकर्मा का स्वागत-आसन आदि के द्वारा बड़े ही आदर के साथ उनका अभ्यर्चन किया था ।३। हिमाचल ने विधान के साथ उनका अर्चन करके विश्वकर्मा से यह कहा था—।४। पर्वतराज ने कहा—हे विश्वकर्मन् ! आप तो महान् मनीषी और मेधावी हैं और सभी शास्त्रों के आप पण्डित भी हैं। जिस कारणवश मैंने आज आपको यहाँ बुलाया है उसे भी मैं आपको बतलाता हूँ ।५। विश्व के ईश्वर महादेव जो त्रिलोचन भगवान् हैं नील लोहित हैं वे साक्षात् शिव स्वयं ही त्रिलोकेश्वर पार्वती के साथ परिणय करने के लिये यहाँ पर पदार्पण करेंगे। अतएव यहाँ पर उस विवाह यज्ञ के कार्य का सम्पादन करने के लिए एक हिरण्मय मण्डप की रचना करनी चाहिए। वह मण्डप दस हजार योजन के बराबर विस्तीर्ण और अनेकानेक आश्चर्यों से समन्वित होना चाहिए ।६।७।

इत्यर्थेन गतोऽस्य प्रीतिर्भवति वै यथा ।
तथा त्वं मण्डपं शीघ्रं कुरु विश्वेश्वरप्रियम् ॥८॥
एवमुक्तस्तदा तेन गिरिणा विश्वकर्मकृत् ।
वैवाह मण्डपं शीघ्रमभूतद्रचनविग्रहम् ॥९॥
स्तम्भैर्हैमैर्मरकतैः स्वर्णैर्मणिभिः सूर्यसन्निभैः ।
इन्द्रनीलमयैर्दिव्यैर्हेमवैदूर्यमौक्तिकैः ॥१०॥
गोपुरैर्वज्रनिर्मितैश्चन्द्रकान्तमयैरपि ।
स्फटिकैर्विद्रुमैश्चापि मुक्ताजालसमन्वितैः ॥११॥

चामरालङ्कृतैरुच्चैर्दर्पणैर्विविधैरपि ।
सूर्यविम्बप्रतीकाशैश्चन्द्रविम्बसमप्रभैः ॥१२
ध्वजमालाकुलं दिव्यं पताकानेकशोभितम् ।
रत्नजैः सिंहशार्दूलैर्गजवर्णैर्निरन्तरम् ॥१३
रचितं मण्डपं दिव्यं प्रियं त्रिपुरविद्विषः ।
रुद्राणां च तथा रूपैर्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥१४

आप यहाँ पर एक ऐसा उत्तम मण्डप बनाइए कि जिसे देखते ही सबकी प्रीति उत्पन्न हो जावे। आप कृपया ऐसा ही एक मण्डप बहुत ही शीघ्र निर्मित कर दीजिए जो भगवान् प्रभु को भी बहुत प्रिय लगे ॥८॥ गिरिराज हिमालय के द्वारा जब इस रीति से कहा गया तो वह विश्वकर्मा ने विवाह के मण्डप को जो रत्नों के द्वारा विरचित विग्रह वाला था बहुत ही शीघ्र बना दिया था ॥९॥ वह मण्डप ऐसा बनाया गया था जिसमें सुवर्णमय बहुत से स्तम्भों से युक्त था—विचित्र मणियाँ जो सूर्य के सदृश दीप्ति वाली थीं उस मण्डप में जड़ी गयी थीं। दिव्य इन्द्रनील मणियाँ वैदूर्य विद्रम-मोती वज्रनील मणि और चन्द्रकान्त मणियाँ भी उसमें खचित की गयी थीं। स्फटिक-विद्रुम मणियाँ उसमें लगाई गयी थीं जो मोतियों की झालरों के सहित लटकी हुई थीं ॥१०॥११॥ वह मण्डप चमरों से अलंकृत था और अनेक भाँति के ऊँचे-ऊँचे दर्पण उसमें लगे हुए थे। जो सूर्य बिम्ब के तुल्य थे और चन्द्र बिम्ब के समान प्रभा से युक्त थे ॥१२॥ वह मण्डप दिव्य मालाओं से घिरा हुआ था और वह अनेक पताकाओं से भी शोभा वाला था। उस मण्डप में रत्नों के बने हुए अनेक सिंह शार्दूल और गज विद्यमान थे जो निरन्तर ही शोभायमान हो रहे थे ॥१३॥ वह रचित मण्डप परम दिव्य और भगवान् शिव का बहुत ही प्रिय था तथा गन्धर्व-अप्सरायें और रुद्रों के रूपों से भी युक्त था ॥१४॥

देवैश्चैव मनोहार्यैर्मर्त्यजैश्च तथा परैः ।
मालाभिः स्तम्भकैर्विप्रा रत्नजैः कुसुमैर्भृशम् ॥१५

क्वचिच्चामीकरेणाथ हृद्या भूमि विनिर्ममे ।
क्वचित्पद्मदलाकारा मन्द्रायुधसमप्रभाम् ॥१६॥
क्वचिन्नीलोत्पलाभासा नीलजीमूतमप्रभाम् ।
मनसैव यथा ब्रह्मा विश्वमेतद्धि निर्ममे ॥१७
क्वचिद्बन्धूकसकाशा दीप्ता विद्रुमसंनिभाम् ।
अनेकाकारविन्यासैस्ततो धात्री विनिर्ममे ॥१८
क्वचित्कलशविन्यासैः क्वचित्स्वस्तिकभूषितैः ।
हरिचन्दनगन्धाद्यै कर्पूरोद्गारगन्धिभिः ॥१९
जातीपाटलपद्मानां चम्पकानां सुगन्धिभिः ।
आसनैर्विविधैः पूतैश्चन्द्रजीमूतसंनिभैः ॥२०
उदयार्कसमाकारैर्मेरुशृङ्गोपमैर्भृशम् ।
तमालचम्पकाभैश्च इन्द्रनीलमयैस्तथा ॥२१

देवों के द्वारा-मनोहारी मर्त्यों के द्वारा तथा परों के द्वारा मालाओं से—रत्नों से तथा रत्नों से निर्मित कुसुमों से बहुत अधिक शोभित था। उस मण्डप में किसी स्थल सुवर्ण से एक बहुत मनोहर भूमि का निर्माण किया था। किसी जगह पर पद्म दल के आकार वाली तो किसी स्थान पर इन्द्र धनुष के समान प्रभा वाली भूमि का निर्माण किया था ॥१५॥१६॥ कहीं पर नीलोत्पलमा वाली बनाई थी जो कहीं पर नीले मेघों की प्रभा के तुल्य भूमि की रचना की गयी थी जिस प्रकार से मन के द्वारा ही श्री ब्रह्मा जी ने इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की थी ॥१७॥ कहीं पर बन्धूक पुष्प के सदृश दीप्त तथा किसी जगह पर विद्रुम के समान भूमि की रचना की थी। ऐसे अनेक आकारों के विन्यासों के द्वारा उस धात्री का निर्माण किया था ॥१८॥ कहीं पर कलशों के तुल्य विन्यासों से तथा कहीं पर स्वास्तिकों से भूषित विन्यासों से—हरि चन्दन गन्ध आदि से तथा कपूरोद्गार के गन्धों से और जाती-पाटल-पद्मों की एवं चम्पकों सुगन्धों से उनकी रचना की गयी थी। चन्द्र और जीमूतों के तुल्य विविध आसनों के द्वारा जो परम पूत थे

निर्माण किया गया था ॥१९॥२०॥ उदय के समय में जैसा सूर्यदेव का आकार होता है उनके समान विन्यासो से तथा मेरु पर्वत के शिखरो के सदृश विन्यासो से और तमाल-चम्पा के आभास वाले तथा इन्द्र नीलमय आभासो वाले विन्यासो से रचना की गयी थी ॥२१॥

सिन्दूरचयसंकाशैर्जपाकुसुमसन्निभैः ।
सन्ध्यारागनिभैश्चान्यैर्दाडिमीकुसुमप्रभैः ॥
हेमकुम्भनिभैश्चान्यैर्मुक्ताफलनिभैरपि ॥२२
तारकापुञ्जसंकाशैः पद्मनीलेन्द्रनीलजैः ।
तत्रैव मण्डपे दिव्ये तोयस्थानान्यकल्पयत् ॥२३
दीर्घिकास्तोयपूर्णाश्च क्षीरपूर्णास्तथैव च ।
दधिह्रदाननेकांश्च सुधासपूरितानि वै ॥२४
घृतपूर्णा महानद्यो रत्नमःपानमण्डिताः ।
वृक्षाश्च कामिकान्दिव्यान्दीर्घिकाणा तयोभयोः ॥२५
असृजत्क्रीडनार्थाय सदा पुष्पफलान्वितान् ।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्दिव्यैः फलितान्मुनिपुंगवाः ॥२६
कदलीखण्डमध्ये तु तमालगहनेष्वपि ।
क्रीडावापीः सुशोभाढ्यास्तथैवाशोकसंकुलाः ॥२७
दीर्घिकाणा तटे रम्ये तरुणाः स्निग्धशाखिपु ।
दोलाश्चाऽऽबन्धयामासुर्मुक्तादामभिरुज्ज्वलैः ॥२८

सिन्दूर के समूह के सदृश-जया के कुसुमों के समान-सन्ध्याकाल के राग के तुल्य-दाडिम के पुष्पो के सदृश-सुवर्ण के कुम्भो के समान-अन्य मुक्ताफलो के समान-तारकाओ के समुदायो के सदृश और पद्म नीलेन्द्र नीलजों के तुल्य विन्यासो से उस भूमि की अनेक प्रकार की भूमि का निर्माण वही पर दिव्य मण्डप मे करके जल के स्थानो की भी कल्पना की गयी थी ॥२२॥२३॥ वहीं पर ऐसी दीर्घिकाऐं बनायी थी जो जल से परिपूर्ण थी और क्षीर से भरी हुई थी। वहाँ पर अनेक ह्रददधि से पूर्ण एवं सुधा से सपूरित थे ॥२४॥ बहुत सी महा नदियां बनायी थी

जो घृत से परिपूर्ण थी और जिनके सोपान रत्नो से मण्डित बनाये गये थे। उन दीर्घकाओ के दोनो ओर उत्तम एव दिव्य कामिक वृक्षो की रचना की गयी थी ॥२५॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! सदा पुष्पो और फलो से युक्त क्रीडा करने के लिये नाना प्रकार के भक्ष्य एव दिव्य फलो से लदे हुए वृक्षो की रचना की थी ॥२६॥ कही पर केलो के खण्डो के मध्य मे और तमालो के वृक्षो के झुरमुट मे क्रीडा करने के लिये वापी बनायी गयी थी जो सुन्दर शोभा से युक्त और अशोक के वृक्षो से सकुल थी ॥२६॥२७॥ उन दीर्घिकाओ के सुरम्य तट पर स्निग्ध शाखियो पर उज्ज्वल मोतियो की लडियो से दोलाओ का बन्धन किया था अर्थात् झूले डाले गये थे ॥२८॥

रमणीयानि दिव्यानि मनस्तुष्टिकराणि च ।
उद्यानवनखण्डानि स्थाने स्थाने ह्यकल्पयत् ॥२९
त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्हेमपीठस्य मध्यगाम् ।
सिंहैश्च विधृता श्वेतै. सहस्रदलमण्डिताम् ॥३०
पारिजातद्रुमाणा च मञ्जरीभिरलकृताम् ।
इन्द्रनीलमयी वेदिं चारुसोपानभूषिताम् ॥३१
शतयोजनविस्तीर्णा स्तम्भैश्च कलशान्विताम् ।
नानानेकाप्सरोभिश्च रत्नजा दिव्यरूपिणीम् ॥३२
पीनोरुजघनास्ताश्च पीनोन्नतपयोधरा ।
चामराग्रकरास्तास्तु हारावलिविभूषिता: ३३
वीणावेणुकराश्चान्या काञ्चीगुणविराजिता: ।
चञ्चलायतनेत्राश्च तिलकालकमण्डिता: ॥३४
मध्यक्षमाश्च बिम्बोष्ठी. कमलोत्पलमालिका ।
अनेकाकारविन्यासैर्निममे ता: पृथक्पृथक् ॥३५
एव हि दिव्यै. सुरसुन्दरीभिर्नानाप्रयोगैर्विविधैश्च चित्रै ।
मनोभिरामैरभिरामरूपा तु वेदिं स्वस्तिरस्वकार ॥३६

इस तरह से परम रमणीय-अत्यन्त दिव्य मन की तुष्टि करने वाले उद्यान वनो के खण्ड थे जो कि स्थान-स्थान पर विरचित किये गये थे ॥२६॥ त्रैलोक्य मे प्रमुख उसमे हेमपीठ के मध्य मे स्थित श्वेत सिंहो से विधृत और सहस्र दलो से मण्डित-पारिजात द्रुमो की मञ्जरियो से अलंकृत वेदी इन्द्र नील मणियो से परिपूर्ण थी और परम सुन्दर सीढ़ियो मे भूषित थी ।।३०॥३१॥ वह वेदी एकसौ योजनो के विस्तार से युक्त थी और स्तम्भो तथा कलशो से समन्वित थी । उस पर अनेक प्रकार की अनेक अप्सराऐं भी विद्यमान थी और वह रत्नो के द्वारा निर्मित की गयी थी तथा दिव्य रूप वाली थी ॥३२॥ जो अप्सराऐं वहाँ पर थी वे पीन अदजघनो वाली थी तथा पीन एवं उन्नत स्तनो वाली थी । उनके हाथो के अग्रभाग मे चमर लगे हुए थे और वे हारो की पंक्तियो से विभूषित थी ॥३३॥ अन्यो के हाथो मे वीणा तथा वेणु था और वे काञ्ची गुणो से बिराजित हो रही थी, जिनके नेत्र बहुत ही चञ्चल तथा आयत थे और तिलक तथा अलकों से मण्डित थी ॥३४॥ जिनके मध्य भाग क्षाम थे—बिम्ब फल के समान जिनके ओष्ठ थे—जो कमलोत्पल की माला धारण करने वाली थी ऐसी अनेक आकारो और विन्यासो से पृथक्-पृथक् निर्मित की गयी थी ॥३५॥ इस प्रकार से परम दिव्य सुरो की सुन्दरियो से-अनेक तरह के प्रयोगो से और विविध भाँति के चित्रो से जो मन को अभिराम लगने वाले थे और नेत्रो को भी सुन्दर प्रतीत होते थे उनसे युक्त वेदी बहुत ही शीघ्र तैयार करदी थी ॥३६॥

॥ कालाग्न्याद्यागमन कथन ॥

मण्डपं निर्मितं श्रुत्वा शंकरो विश्वकर्मणा ।
शैलादिमब्रवीद्यो विश्वेशो विश्वपूजितः ॥१
हितार्थं सर्वदेवानामस्माकं च विशेषतः ।
विवाहयज्ञ आरब्धो नगराजेन धीमता ॥२
दानार्थमद्रिकन्यायाः प्रस्थितो हिमवान्स्वयम् ।
अहं तत्र गमिष्यामि सुरैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥३
त्वमिहाऽऽवाहय सुरान्कालाग्न्यादीन्द्विजास्तथा ।
द्वीपांश्च सागरांश्चैव पर्वतांश्च नदीस्तथा ॥४
मण्डपं सुन्दरं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ।
तत्र तिष्ठत्युमा देवी मम ध्यानपरायणा ॥५
विद्युल्लतेव भ्राजन्ती चन्द्रकोटिसमानना ।
एवमुक्तो महेशेन नन्दी सूर्यायुतप्रभः ॥६
नत्वा विश्वेश्वरं देवं ध्यानात्तूष्णीं तदाऽभवत् ।
ध्यानात्क्षणात्समागात्तु कालाग्निर्विश्वदाहकः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—भगवान् शङ्कर ने विश्वकर्मा के द्वारा निर्माण किये हुए मण्डप का वृत्तान्त सुनकर विश्वपूजित विश्वेश्वर प्रभु ने शैलादि से कहा था—श्री भगवान् ने कहा—समस्त देवों की भलाई के लिये और विशेष रूप से हमारे ही हित के सम्पादन करने के लिए नगराज ने जो बहुत ही धीमान् है विवाह यज्ञ का आरम्भ किया है ॥१॥२॥ अद्रि कन्या के दान करने के लिये हिमवान् स्वयं प्रस्थित हुए हैं। अतएव मैं ब्रह्मा आदि समस्त सुरों के ही साथ में वहाँ पर गमन करूँगा ॥३॥ अतएव तुम यहाँ पर कालाग्नि आदि सब सुरों का और द्विजों का, द्वीपों का, सागरों का, पर्वतों का तथा नदियों का आवाहन करो। जहाँ पर विश्वकर्मा के द्वारा एक सुन्दर मण्डप का निर्माण किया गया है वहाँ पर उमादेवी मेरे ही ध्यान में परायण होकर स्थित है।

वह देवी विद्युत् की लता के समान दीप्तिमती हो रही है और उनका मुख करोडा चन्द्रमाओं के समान सुन्दर है। इस प्रकार से जब नन्दी से कहा गया गया था तो वह नन्दी जिसकी छटा दश हजार सूर्यों की प्रभा के समान थी। उसने विश्वेश्वर देव को प्रणाम किया था और फिर वह उस समय मे ध्यान मे समारूढ होगया था। जैसे ही ध्यान किया गया था वैसे ही विश्व का दाहक कालाग्नि वहाँ पर क्षणमात्र मे ही समागत हो गया था ।।४-७।।

रुद्रै. परिवृतो देव: कोटिकोटिगणेश्वरै: ।
ततोऽब्रवीत्स कालाग्नि. सर्वज्ञ नन्दिकेश्वरम् ।।८
किमर्थमहमाहूतो देवदेवेन शभुना ।
उपस्थितो वा प्रलयः सहरिष्यामि तत्क्षणात् ।।९
एवमुक्तस्तदा तेन शैलादिस्तमथाब्रवीत् ।
प्रलयार्थं न चाऽऽहूतस्त्व विश्वेशेन शभुना ।।१०
ग्रहीष्यति गिरे: पुत्री पत्नीत्वेन महेश्वरः ।
तदर्थं त्वमिहाऽऽहूतो ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ।।११
नन्दिनो वचन श्रुत्वा कालाग्निरिदमब्रवीत् ।
द्रष्टुकामा वय सर्वे ब्रह्माद्याः शूलपाणिनम् ।।१२
शीघ्रं दर्शय शैलादे निर्वृताः स्मो यथा वयम् ।
विज्ञापय महादेव ब्रह्माद्याश्चाऽऽगता इति ।।१३
सर्वे त्वद्ध्याननिरताः सर्वे त्वद्दर्शनोत्सुकाः ।
कालाग्निप्रमुखाणा च वच. श्रुत्वा गणाग्रणीः ।।
प्राह विश्वेश्वर देव स्निग्धगम्भीरया गिरा ।।१४

वह देव रुद्रो से परिवृत तथा और उसके चारो ओर करोडो गणेश्वर विद्यमान थे। इसके पश्चात् वह कालाग्नि ने सर्वज्ञ नन्दिकेश्वर से कहा था—मुझे यहाँ किस प्रयोजन के लिये बुलाया गया है जो कि देवो के भी भगवान् शम्भु ने मुझे याद किया है? मैं उपस्थित होगया हूँ कि तत्क्षण मे ही मैं सहार कर दूंगा और प्रलय हो जायगा। जब

इस रीति से कालाग्नि ने कहा थो शैलादि ने उससे कहा था कि इस समय में विश्वेश देव शम्भु ने तुमको प्रलय करने के लिये नहीं बुलवाया है। आज तो महेश्वर प्रभु गिरिराज की पुत्री पार्वती देवी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे। उसी के लिये आपको यहाँ पर बुलावा गया है। और ब्रह्मा आदि सब देवगण भी बुलाये गये हैं ॥८॥६॥१०॥ ११॥ नन्दी के इस वचन का श्रवण करके कालाग्नि ने नन्दी से यह कहा था कि हम ब्रह्मा आदि सभी देव शूलपाणि प्रभु के दर्शन करने की इच्छा वाले हैं ॥१२॥ हे शैलादे! आप बहुत ही शीघ्र भगवान् शम्भु के दर्शन करोगे। जिससे हम सब निर्वृत्त हो जावें। आप अब महादेव जी को विज्ञापित कर दीजिए कि ब्रह्मा आदि सभी देव समागत होगये हैं ॥१३॥ ये सभी आपके ही ध्यान में निरत हैं और सभी आपके दर्शन करने के लिये बहुत ही उत्सुक भी हो रहे हैं। उस गणों के मुखिया ने कालाग्नि प्रमुखों के इस वचन का श्रवण किया था और फिर आकर विश्वदेव से बहुत ही मिष्ट और गम्भीर वाणी से कहा था—॥१४॥

ब्रह्माद्याश्चाऽऽगताः सर्वे शूलपाणे तवाऽऽज्ञया।
द्रष्टुमिच्छन्ति ते सर्वे नमस्कर्तुं तथा मुदा ॥१५
दिशाऽऽदेश पुरारे मां किं करवाणि सुरासुरान्।
वारिता द्वारकूलेषु द्रष्टुकामाश्च संस्थिताः ॥१६
यत्ते निरुपमं रूपं तेजोमयमनिन्दितम्।
यदघोभागमाश्रित्य रुद्र कालाग्निमर्जित ॥१७
पश्यन्तु चैते भूतेश शूलं चैव सदोज्ज्वलम्।
ततो विवेश कालाग्निर्विष्णुर्ब्रह्मा शतक्रतुः ॥१८
अन्ये च देवगन्धर्वा ऋषयो मनवस्तथा।
सर्वे कोलाहलं कृत्वा देवासुरमहोरगाः ॥१९
विविशुर्हरमग्न्यागं नद्याद्या इव सागरम्।
प्रविश्य भवने रम्ये नानाधातुविनिर्मिते ॥२०

गणकोटिसमाकीर्णे रुद्रकोटिसुसेविते ।
अग्रजन्मगुरुं पूर्वं रुद्रैर्देवैर्वृ तस्तदा ॥२१

नन्दिश्वर ने कहा—हे शूलपाणे ! आपकी आज्ञा से ये ब्रह्मा आदि सब देवगण आकर उपस्थित हो गये है । ये सब आपका दर्शन करने की इच्छाकर रहे हैं और आपको प्रणाम करना आनन्द के साथ चाहते है ॥१५॥ हे पुरारे ! मुझको अपना आदेश प्रदान कीजिए कि मैं सब सुरासुरो को क्या कहदूं । मैंने इन सबको द्वार मूल मे ही वारित कर कर दिया है और वे सब आपके दर्शन करने की इच्छा वाले है तथा वही पर खडे हुए है ॥१६॥ जो आपका यह निरुपम-तेजोमय एव अनिन्दित स्वरूप है जिसके अधोभाग मे आश्रय ग्रहण करके कालाग्नि से सज्ञा वाला रुद्र है ॥१७॥ ये सब भूतो के ईश और सदा उज्ज्वल शूल का दर्शन प्राप्त करे । इसके अनन्तर कालाग्नि ब्रह्मा-विष्णु और शतक्रतु ने अन्दर प्रवेश किया था । तथा अन्य देव गन्धर्व-ऋषिगण-मनुगण-इन्होने भी अन्दर प्रवेश किया था । सब देव-असुर और महोरगो ने बडा भारी आनन्दोल्लास मे कोलाहल किया था ॥१८॥१६॥ जैसे नदी-नद आदि सब सागर मे प्रवेश करके उसमे ही मिल जाते है वैसे ही सबने हर के सस्थान मे प्रवेश किया था । वह भवन जिसमे उन्होंने प्रवेश किया था अनेक धातुओ से विचित्र धातुओ से विचित्र था और करोडो गणो से समाकीर्ण था तथा करोडो रुद्रो के द्वारा वह सेवित था। उस समय मे रुद्रो और देवो से परिवृत पूर्व मे अग्र जन्माओ के गुरु थे ॥२०॥२१

भवारिमन्धकारिं तमपश्यदन्तकानलः ।
मुक्ताचलप्रतीकाशं शशाङ्कचयसन्निभम् ॥२२
नीलकण्ठं त्रिनेत्रं च शूलिनं सर्वतोमुखम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं गजदानन्दकारिणम् ॥२३
कपालमालिनं देवं कपर्दकृतभूषणम् ।
दशबाहुं दशार्धास्यमनन्तं तेजसां निधिम् ॥२४
जगदुत्पत्तिसंहारस्थित्यनुग्रहकारिणम् ।
[illegible]मनावास्यप्रपञ्चमनाकुलम् ॥२५

सिंहासनस्थमचलं चराचरविभूतिदम् ।
क्षीरोदमिव निष्कम्पं त्रैलोक्यप्रभवं शिवम् ॥२६
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य संस्थितम् ॥२७
सुरासुरैर्वन्द्यमानं ध्यायमानं मुमुक्षुभिः ।
इदं रूपं समालोक्य देवदेवस्य शूलिनः ॥२८

दन्तकान्त ने भव के शत्रु और अन्धक के अरि उन शिवको देखा था जो मुक्ताओं के पर्वत के तुल्य थे और शशाङ्क (चन्द्रमा) के समूह के सदृश थे ॥२२॥ शिव का स्वरूप नीलकण्ठ वाला तीन नेत्रों से युक्त-शूलधारी-सब ओर मुखों वाला—करोड़ो सूर्यों के सदृश—जगत् के आनन्द को करने वाला—कपालों (नरमुण्डों की माला को धारण करने वाला—सर्पों से भूषण करने वाला—दशबाहुओं से युक्त पाँच मुखों वाला अनन्त और तजा की निधि था ॥२३॥२४ इस जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और संहार और अनुग्रह करने वाला—अप्रमेय—अनाकाश—प्रपञ्च रहित और अनाकुल भगवान शम्भु थे ॥२५॥ सिंहासन पर स्थित—चर और अचर को विभूति के प्रदान करने वाले—क्षीर सागर की भाँति निष्कम्प त्रिलोकी के प्रभव अर्थात उत्पन्न करने वाले—सभी ओर हाथ और चरणों वाले तथा सब ओर नेत्र—शिर और मुख वाले-सभी ओर लोक में श्रुति रखने वाले-सबको समावृत करके संस्थित—सुरों और असुरों के द्वारा वन्द्यमान तथा मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यायमान शिव हैं। देवों के देव शूली प्रभु के इस रूप का अवलोकन करके वह कालाग्नि उनके समक्ष में संस्थित हो गया था ॥२६॥२७॥२८॥

अग्रे स्थितः स कालाग्निर्मेरौ मेरुरिवापरः ।
अथोवाच स शैलादिं प्रणिपत्य सनातनम् ॥२९
नरकाणामधोभागं पुरत्रयं प्रतिष्ठितम् ।
योजनायुतविस्तीर्णं कामदं शुभलक्षणम् ॥३०
यस्यैवोर्ध्वं निरालम्बं शतयोजनमानतः ।
ज्वालामालाकुलं दिव्यं सर्वलोकभयंकरम् ॥३१

प्राकाराट्टालकैर्युक्त गोपुरैस्तोरणान्वितम् ।
रक्तनीलसमानाभैर्भीमघोषैर्दुरासदैः ॥३२
वृतो रुद्रसहस्रैस्तु सिंहरूपैर्महाबलैः ।
नियम्य च स्वकं तेजः प्रीत्यर्थं तेऽधुनाऽऽगतः ॥३३
ध्वान्तचामीकराभासश्चन्दनागरुगन्धयुक् ।
नीलकण्ठस्त्रिनेत्रश्च वृषकेतुर्महाबलः ॥३४
द्वीपिचर्मपरीधानः पञ्चवक्त्रेन्दुभूषणः ।
अनन्तमेखलाधारी कुण्डलीकृततक्षकः ॥३५

भगवान् शिव के सामने स्थित हुआ वह कालाग्नि मेरु पर्वत पर दूसरे मेरु के ही समान था। इसके अनन्तर वह शैलादि सनातन प्रभु को प्रणिपात करके बोला ॥२९॥ नरकों के नीचे वाले भाग में तीन पुर प्रतिष्ठित हैं। वे दस हजार योजन पर्यन्त विस्तीर्ण हैं—कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं और परम शुभ लक्षणों से युक्त हैं ॥३०॥ जिसके ही ऊर्ध्व भाग में बिना अवलम्ब वाला—मान में शत योजन वाला—ज्वालाओं की मालाओं से—समावृत परम दिव्य और सब लोकों को भय देने वाला प्राकार (बहार दीवारी) अट्टालकों से युक्त—गोपुरों वाला तथा तोरणों से समन्वित—रक्त, नील के समान आभा वाले भीम घोष से युक्त—दुरासद—सिंह के रूप वाले—महान बलवान् सहस्रों रुद्रों से समावृत अपने तेज को नियमित करके वह आपकी प्रीति के लिये इस समय में समागत हुए हैं ॥३१॥३२॥३३॥ ध्वान्त चामीकर के समान आभास वाले—चन्दन और अगरु की गन्ध से युक्त—नील कण्ठ—तीन नेत्रों वाले—वृष केतु—महान बलवाला—हाथी के चर्म का परिधान रखने वाले—पाँच मुख से युक्त—चन्द्र का भूषण मस्तक पर धारण करने वाले—अनन्त—मेखला के धारी और तक्षक सर्प का कुण्डली के रूप में रखने वाले हैं ॥३४॥३५॥

दशबाहुर्महातेजाः पीनवक्षा महाभुजः ।
प्रलयोदनिर्घोषो रक्तनीलमहातनुः ॥३६
आगतः सौम्यरूपेण तव देव समीपतः ।
परया भक्तिभावेन देवदेव जगत्पते ॥३७

एते चैव महावीर्या. कालाग्नेस्तु समीपत. ।
तिष्ठन्ति ज्वलनाभासा रुद्राश्च शतकोटय. ॥३८
त्वद्वियोगान्महादेव कालाग्न्यादेशकारिण ।
तिष्ठन्ति स्वपुरे रम्ये क्रीडमाना मनोरमे ॥३९
तवानुज्ञागता ह्येते शशाकमौलिनोऽमला ।
शुद्धस्फटिकसकाशा पद्मरागसमप्रभा ॥४०
तडिद्भ्रमरसकाशा वज्रशूलधनुर्धरा ।
नीलकण्ठास्त्रिनेत्राश्च सुखदु खविवर्जिता ॥४१
सर्वाभरणसपन्ना अनन्तवलविक्रमा ।
जरामरणनिर्मुक्ता शार्दूलचर्मवासस ॥४२

दशबाहुओ वाले–महान् तेज मे सयुत पीन वक्ष स्थल वाले–महान् भुजाओ वाले –प्रलय काल के उदधि के घोष से युक्त–रक्त–नील वर्ण के महान शरीर वाले ये हे देव आपके समीप मे समागत हुये है। हे देवो के देव ! हे जगत् के स्वामिन् ! आप मृदु भाव से ही देखिये ॥३६॥३७ ये महान् वीर्य वाले जो इस कालाग्नि के समीप मे स्थित हैं और जो अग्नि के समान आभा वाले हैं वे सैकडो करोड रुद्र हैं ॥३८॥ हे महा देव ! ये आपके वियोग से कालाग्नि के आदेश के करने वाले हैं। य सब अपने परम मनोरम एव रम्य पुर म क्रीडा करने वाले है ॥३९॥ ये शशाङ्कमौलिनी-अमल सब आपकी अनुज्ञा म रहने वाले है। ये विशुद्ध स्फटिक के समान—पद्मराग के तुल्य प्रभा वाले—तडित् भ्रमर के सदृश —वज्र, शूल और धनुष के धारण करने वाले–नीले कठ वाले तीन नेत्रो से युक्त—सुख-दुख से रहित–समस्त आभरणो से सम्पन्न–अनन्त बल और विक्रम वाले जरा मरण से निर्मुक्त और शार्दूल के चर्म के वस्त्र धारी हैं॥४०॥४१॥४२॥

इमानपि महादेव पश्यन्प्रीतिकरो भव ।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गानशोककमलार्चितान् ॥४३
दैत्याधिपतयश्चैव प्रह्लादाद्या महाबला ।
समागता महादेव नागा शेषादय शिव ॥४४

सर्वा पातालवासिन्यो रूपयौवनगर्विता ।
आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागरा ।४५।
गन्धर्वा किनरा यक्षा सिद्धविद्याधरा शिव ।
उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्य पापहरा शुभा ।४६।
एते च मुनयो देव भृग्वाद्या प्रथितौजस ।
सम्प्राप्तानि पुराणीह शक्रादीना महात्मनाम् ।४७।
एते लोका समायात सत्यान्ता सप्त शकर ।
मूर्तयस्तव देवेश भवाद्याश्च समागता ।४८।
आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुद्गणा ।
सनकाद्या महात्मान सत्यलोकनिवासिन ।४९

हे महादेव ! इनको भी आप देखते हुए अर्थात् कृपा पूर्ण दृष्टिपात करके प्रीति के करने वाले हो जाइए । ये सब हरिचन्दन से प्रलिप्त अङ्गों वाले हैं और अशोक तथा कमलों से समन्वित हैं ।४३। महान् बलवान प्रह्लाद आदि दैत्यों के अधिपतिगण हे महादेव जी ! समागत हुए हैं—नाग भी शेष प्रभृति हे शिवजी ! आपके समीप में आकर उपस्थित हुए हैं ।४४। हे देव देवेश ! सभी पाताल के निवास करने वाली—रूप और यौवन से सम्पन्न एव गर्वित द्वीपों के साथ साथ सागर भी समागत हुए हैं ।४५। हे शिवजी ! गन्धर्व-किन्नर-यक्ष-सिद्ध-विद्याधर—उर्वशी आदि अप्सराएँ और परम शुभ पापों के हरण करने वाली नदियाँ भी आयी हैं ।४६। हे देव ! ये सब प्रथित ओज वाले भृगु आदि मुनिगण आये हैं और महात्मा इन्द्र आदि के पुर भी सम्प्राप्त हुए हैं ।४७। हे शङ्कर ! ये सत्य के अन्त तक वाले समस्त लोक भी समायात हुए हैं हे देवेश ! आपकी भव आदि जो मूर्तियाँ हैं वे भी समागत हुई हैं ।४८। आदित्य—वसुगण—रुद्रगण—साध्यगण—मरुद्गण और सनकादि महात्मा लोग जो सत्य लोक के निवास करने वाले भी यहाँ आये हुये हैं ।४९।

सर्वा पातालवासिन्यो रूपयौवनगर्विता ।
आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागरा ।४५।
गन्धर्वा किनरा यक्षा सिद्धविद्याधरा शिव ।
उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्य पापहरा शुभा ।४६।
एते च मुनयो देव भृग्वाद्या प्रथितौजस ।
सप्राप्तानि पुराणीह शक्रादीना महात्मनाम् ।४७।
एते लोका समायात सत्यान्ता सप्त शकर ।
मूर्तयस्तव देवेश भवाद्याश्च समागता ।४८।
आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुद्गणा ।
सनकाद्या महात्मान सत्यलोकनिवासिन ।४६

हे महादव ! इनको भी आप देखते हुए अर्थात् कृपा पूर्ण दृष्टिपात करके प्रीति क करने वाले हो जाइए। ये सब हरिचन्दन से प्रलिप्त अङ्गो वाल हैं और अशोक तथा कमलों से समर्चित है ।४३। महान् बलवान प्रह्लाद आदि दैत्यो के अधिपतिगण हे महादेव जी ! समागत हुए हैं—नाग भी शेष प्रभृति हे शिवजी ! आपके समीप मे आकर उपस्थित हुए हैं ।४४। हे देव देवेश ! सभी पाताल के निवास करने वाली—रूप और यौवन से सम्पन्न एव गर्वित द्वीपो के साथ साथ सागर भी समागत हुए हैं ।४५। हे शिवजी ! गन्धर्व-किन्नर यक्ष–सिद्ध–विद्याधर—उवशी आदि अप्सराएँ और परम शुभ पापो के हरण करने वाली नदियाँ भी आयी है ।४६। हे देव ! ये सब प्रथित ओज वाल भृगु आदि मुनिगण आय हैं और महात्मा इन्द्र आदि क पुर भी सम्प्राप्त हुए हैं ।४७। हे शङ्कर ! ये सत्य के अन्त तक वाले समस्त लोक भी समायात हुए हैं ह देवश ! आपकी भव आदि जो मूर्तियाँ हैं वे भी समागत हुई हैं ।४८। आदित्य—वसुगण—रुद्रगण—साध्यगण—मरुद्गण और सनकादि महात्मा लोग जो सत्य लोक के निवास करने वाले भी यहाँ आये हुये हैं ।४६।

पद्मरागनिभो देवो बन्धूककुसुमद्युति ।
जटाभिस्तु शिरोनद्धो रत्नमालाविभूषित ।५०।
कमण्डलुधर श्रीमान्दण्डहस्त सुलोचन ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण रक्तमाल्याम्बरेण च ।५१।
सुवर्णमेखलाधारी रौक्मकुण्डलमण्डली ।
हंसध्वजश्चतुर्बाहु सुरासुरनमस्कृत ।५२।
सावित्र्या सहितो देव पद्मयोनिरिहाऽऽगत ।
अतसीपुष्पसकाशस्तमालदलवर्चस ।५३।
पीताम्बरधर श्याम पीतगन्धानुलेपन ।
शङ्खचक्रगदाधारी शार्ङ्गी गरुडवाहन ।५४।
किरीटी कुण्डली हारी कौस्तुभाभरणान्वित ।
केयूरवलयापीड पीनवक्षा गदान्वित ।५५।
चामीकरसुमालाभिर्दीप्यमानो विराजते ।
सूर्यायुतप्रतीकाशो नीलोत्पलदलक्षण ।५६

पद्मराग के सदृश—बन्धूक के कुसुम के तुल्यद्युति वाले—जटाओ के द्वारा नद्ध शिर वाले—रत्नमाल से विभूषित—कमण्डल के धारण करने वाले—हाथ मे दण्ड धारण किये हुए श्रीमान्—सुलोचन—कृष्ण मृग के चर्म के उत्तरीय से युक्त और रक्त मान्य और अम्बर से समुक्त—सुवर्ण की मेखला के धारण करने वाले—रौक्म के कुण्डलो के मण्डल वाले—हस की ध्वजा से युक्त चार बाहुओं वाले—सुर—असुरो के द्वारा नमस्कृत—साविनी देवी के सहित पद्मयोनि देव भी यहाँ पर आये हुए हैं। अलसी के पुष्प के सदृश—तमाल के तरु के वर्चस वाले पीताम्बर के धारी—श्याम—पीतगन्ध के अनुलेपन कर्त्ता—शङ्ख चक्र. गदा के धारण कर्त्ता—शार्ङ्गधनुष वाले—गरुड के वाहन वाले किरीट धारी—कुण्डल धारी—हार के पहिन ने वाले—कौस्तुभमणी के आभरण वाले—केयूर—वलय और आपीड वाले—पीनवक्षस्थल से युक्त—गदा से सयुत—स्वर्ण की मालाओ से दीप्यमान होकर विराजित

हैं। अयुत (दशहजार) सूर्यों के समान—नीलरल के दल के सदृश लोचनो से सम्पन्न विष्णु देव है।५० ५६।

क्षीरोदार्णवशायी च नीलजीमूतानिस्वन ।
रमामर्दितसर्वांग शेषपर्यङ्कलालम ।५७
गुरूणां च गुरुर्देव ईश्वराणामपीश्वर ।
वरदो भव वात्सल्यो दैत्यकोटिक्षयकर ।५८
आगतोऽय महादेव विष्णु प्रियतरस्तव ।
तप्तचामीकरप्रख्यो वज्रहस्तो महाबल ॥
पट्टांशुकपरीधानो हेममालाविभूषित ।५६
प्रख्यातवीर्यो बलवृत्रहन्ता बालार्कभासो हरिचन्दनाङ्क ।
पुन्नागनागैर्बकुलैश्च जुष्टो मुक्ताफलालकृतकण्ठदेश ।६०
अथ समागत शक्रो वह्निर्वैवस्वतस्तथा ।
नर्ऋतिर्वरुणो वायु कुबेरश्च समागत ।६१
ईशानश्च महाभागस्त्रिशत्कोटिगणैर्वृत ।
आगतस्त्रिजगद्योने पिनाकी च गणेश्वर ।६२
दशकोटिगणैर्युक्त कालकण्ठस्तथैव च ।
सप्तकोटिगणैर्युक्तो घण्टाकर्णो महाबल ।६३।

क्षीर सागर मे शयन करने वाले—नीलमेघ के समान गर्जन करने वाले—रमा के द्वारा समस्त अङ्गो का मर्दन किये गये—शेष की शय्या पर शयन की इच्छा वाले—गुरुओ के भी गुरुदेव—ईश्वरो के भी ईश्वर—वरद—भव—वात्सल्य रूपी—करोडो दैत्यो के क्षय को करने वाले—हे महादेव जी ! आपके अधिक प्रिय यह विष्णु भगवान आये हैं। तपे हुए सुवर्ण के सदृश—हाथ मे वज्र धारण करने वाले—महाबलवान्—पट्ट वस्त्र के धारी—हेम की माला से विभूषित प्रख्यात वीर्य वाले—बल वृत्र के हनन करने वाले—बाल सूर्य के समान आभा वाले—हरिचन्दन के तिलक वाले—पुन्नाग—नाग और बकुल के द्वारा सेवित—मोतियो अलङ्कृत कण्ठ भाग वाले यह इन्द्र—अग्नि और वैवस्वत आ

गये हैं। निर्ऋति—वरुण—वायु—कुबेर भी आ गये हैं। महाभाग ईशान जो तीस करोड गणो से परिवृत थे—हे त्रिजगत् की योनि! पिनाकी और गणेश्वर आ गये हैं। दश करोड गणो से युक्त कालकण्ठ तथा सात करोड गणो से समन्वित महा बलवान् घण्टा कर्ण आ गये हैं।५७-६३।

दशकोटिगणैर्युक्तो वसुघर्पो महाबल ।
चतुष्कोटिगणैर्दण्डी शिखण्डी दशकोटिभि ।६४।
षड्भिर्मयूरवदन सिंहास्यो दशकोटिभिः ।
सप्तकोटिगणैर्युक्त किरीटी च समागत. ।६५।
कालान्तकस्तु दशभिर्नकुली दशकोटिभिः ।
षड्भिस्तु मुण्डमाली च त्रिशूली पञ्चकोटिभि ।६६।
अष्टाभिर्विश्वमाली च त्रिमूर्तिर्नवकोटिभिः ।
एते गणेश्वरा सर्वे तथा चान्ये गणेश्वरा ।६७।
येषा सख्या न जानन्ति ब्रह्माद्या देवतागणा ।
आगतानां महादेव शृणु कोलाहल विभो ।६८।
अमरेश प्रभासश्च पुष्करो नैमिषस्तथा ।
अपाटी दण्डी मुण्डी च भारभूतिस्तथा कुली ।६९।
तीर्थाधिपतयो देवा आगता दिव्यमूर्तय ।
एते गुह्याष्टका देव कामरूपा महाव्रताः ।७०।

दश करोड गणो के सहित महा बलवान् वसुधाप—चार करोड गणों के साथ दण्डी—दश करोड गणो के सहित शिखण्डी—छै करोडो के साथ मयूर वदन—दश करोड गणो से सयुत सिहास्य और सात करोड गणो से समन्वित किरीट समागत हुए हैं।६४।६५। दश करोड गणो के साथ कालान्तक—दशोम और नकुली समागत हुए हैं। छै करोड गणो से युक्त मुण्डमाली—पाच करोड गणो से युक्त त्रिशूली आठ करोड गणो के सहित विश्वमाली—नौ करोड गणो से सयुत त्रिमूर्ति—ये सब गणेश्वर तथा अन्य गणेश्वर इन से अधिक सख्या में है

कि जिस सत्या को ब्रह्मा आदि देवतागण भी नहीं जानते हैं अन्य की तो बात ही क्या है। हे विभो ! हे महादेव जी ! इन आये हुओं का कोलाहल का श्रवण कर लीजिये। अमरेश—प्रभास—पुष्कर—नैमिष—आषाढ़ी—दण्डी—मुण्डी—भारभूति—कुली ये दिव्य मूर्त्तियों वाले तीर्थों के सब अधिपतिगण आये हैं। हे देव ! ये गुणाष्टक हैं जो काम रूप और महान् बल वाले हैं।६६–७०।

तवाऽऽज्ञयाऽऽगता देव ब्रह्माण्डान्तरवासिनः।
कोटिकोटिगणैर्युक्ता देवदेव महेश्वर।७१।
विश्वेश्वरजटोद्भूता सिन्धुश्चैव सरस्वती।
यमुना गण्डकी नागा विपाशा नर्मदा शिवा।७२।
रुक्मा घण्टा च निर्विन्ध्या देविका च दृषद्वती।
शतद्रुश्च पयोष्णी च चन्द्रभागा च गोमती।७३।
चर्मण्वती च कावेरी सरयूश्च परावती।
धूतपापा च सारथ्या माणा माला सुगन्धिका।७४।
जम्बू तापी वनी शूरा कौशिकी कुमुदा करा।
मन्दाकिनी चन्द्रलेखा चम्पकाऽऽमोदवाहिनी।७५।
ऐरावती कामवशा प्रेङ्खला कामचारिणी।
पूर्णभद्रा महामोदा गम्भीरावर्तिनी स्नुना।७६।
मेघमाला मेघवर्णा सदानीरा च नन्दिनी।
वेदा वेदवती वीणा सीता चित्रोत्पला तथा।७७।

हे देव ! ये सब अन्य अन्य ब्रह्माण्डों के निवास करने वाले आपकी ही आज्ञा में यहाँ पर समागत हुए हैं। हे देवों के भी देव महेश्वर ! ये सब करोड़ों करोड़ों गणों से युक्त हैं।७१। विश्वेश्वर प्रभु के जटाओं से समुत्पन्न हुई (गंगा)—सिन्धु—सरस्वती—यमुना—गण्डकी—नागा—विपाशा—नर्मदा—शिवा—रुक्मा—घण्टा—निर्विन्ध्या—देविका—दृषद्वती—शतद्रुश्च—पयोष्णी—चन्द्रभागा—गोमती—चर्मण्वती—कावेरी—सरयू—परावती—धूतपापा—सारथ्या माणा—माला—सुगन्धिका—

जम्बू—तापी—वनी—शूरा—कौशिका—कुमुदा—क्रूरा—मन्दाकिनी—चन्द्रलेखा—चम्पका—आमोदवाहिनी—ऐरावती—कामवेगा—प्रेह्वला—कामचारिणी—पूर्णभद्रा—महामोदा—गम्भीरावर्तिनी—मेघमाला—मेघवर्णा—मदानीरा—नन्दनी—वेदा—वेदवनी—वीणा—मीता—चित्रोत्पला ।७२।७७।

वेत्रवती च वृत्रघ्नी पिप्पा जञ्जलो तथा ।
सरजा कुमुदा शिक्षा कौशिकी निषधा सिता ।७८।
वैतरणी सिनीवाली वेगवती पुन. पुना ।
गौरी कृष्णा तथा दुर्गा तुङ्गभद्रोत्पलावती ।७९।
स्वर्णा भीमरथी शुद्धा कृतमाला तरङ्गिणी ।
एता देव महानद्य पावना कल्मषापहा ।८०।
मूर्तिमत्यस्तवेशान दर्शने त्विह आगता. ।
सर्वा एता महादेव पश्य कारुण्यवारिधे ।८१।
भवन्ति कृतिन सर्वे त्वयि दृष्टे महेश्वर ।
एवमुक्त्वा तदा नन्दी देवदेवस्य चाग्रत ।८२।
पपात दण्डवद्भूमौ भक्त्या परमया युत ।
नन्दिन तु महात्मान दृष्ट्वा विश्वेश्वरः प्रभु ।८३।
प्रीतो भूत्वाऽह कालारिर्मन्दरे चारुकन्दरे ।८४।
इद य पठते नित्य शृणुयाद्वाऽपि भक्तित ।
प्रीता स्युर्देवता सर्वास्तस्याभीष्टफलप्रदा ।८५।

वेत्रवती—वृत्रघ्नी—पिप्पला—जञ्जली—सरजा—कुमुदा—शिक्षा—कौशिकी—निषधा—सिता—वैतरणी—सिनीवाली—वेगवती—पुन पुन—गौरी—कृष्णा—दुर्गा—तुङ्गभद्रा—उत्पलावती—स्वर्णा—भीमरथी—शुद्धा—कृतमाला—तरङ्गिणी—हे देव ! ये सब परम पावन नदियाँ हैं और कल्मषों के अपहरण करने वाली हैं। हे ईशान ! ये सब मूर्तिमती नदियाँ आपके दर्शन के ही समागत हुई हैं। हे करुणा के सागर ! हे महादेव जी ! इन सब पर आप करुणा दृष्टिपात कीजिये। हे महेश्वर देव ! आपके दर्शन करने पर सब सुखी हो जायेंगे। ।७८।८०।

इस प्रकार से कह कर नन्दीदेव देव के आगे भूमि मे दण्ड के समान गिर गया था और परमा भक्ति से युक्त होकर उसने साष्टाग प्रणाम किया था। विश्वेश्वर प्रभु ने उस महात्मा नन्दी को देखा और उस चारु कन्दराओ वाले मन्दराचल पर ये कालारि परम प्रसन्न होकर बोले—इसको जोभी कोई पढता है या सुनता है और नित्य भक्ति से श्रवण करता है उस पर सब देव प्रसन्न होते है और उसे अभीष्ट देने वाले होते हैं।

॥ साम्ब विवाह वर्णन (१) ॥

अथासौ हिमवान्विप्रा देवीमात्मसुतामुमाम् ।
प्रदानार्थं महेशाय सप्राप्तो मन्दर क्षणात् ॥१॥
आह दृष्ट्वा गिरिं नन्दी देवदेव पिनाकिनम् ।
वक्तुकाम समायातो भगवान्पर्वतेश्वर ॥२॥
श्रुत्वा तु वचन श्लक्ष्ण व्यक्त नन्दीमुखात्तदा ।
मेघगम्भीरया वाचा महादेवोऽब्रवीदिदम् ॥२॥
वदत्वय गिरिश्रेष्ठो हृदये यत्प्रतिष्ठितम् ।
कामस्तस्य (स्या) चिरादेव भविष्यति न सशय ॥४॥
एवमुक्तस्तदा विप्रा देवदेवेन शभुना ।
उवाच गिरिशार्दूलो भूत्वाऽग्रेऽवनताञ्जलि ॥५॥
याऽसीत्पूर्वं च ते पत्नी साऽवतीर्णा गृहे मम ।
तामेव तव दानार्थमागतोऽस्मि महेश्वर ॥६॥
अमी ब्रह्मादयो देवास्त्वत्समीपमिहाऽऽगता ।
किं गोत्रमिति पृच्छामि ह्युपामग्रे विभो वद ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर हे विप्रो ! वह हिमवान् अपनी पुत्री देवी उमा को महेश के लिये प्रदान करने के वास्ते क्षण मात्र मे

ही मन्दराचल पर प्राप्त हो गये थे ।१। नन्दी ने गिरिराज हिमवान् को देखकर देवों के देव पिनाकधारी से कहा—यह कुछ कहने की इच्छा वाला भगवान् पर्वतेश्वर समागत हुए हैं ।२। उस समय मे नन्दी के मुख मे परम लक्षण वचन व्यक्त रूप मे श्रवण करके मेघ के सदृश परम गभीर वाणी से महादेवजी ने यह कहा था ।३। यह गिरियों म श्रेष्ठ यहें जो कुछ भी इनके मन मे प्रतिष्ठित है । उनका मनोरथ शीघ्र ही हो जायगा—इसम सशय की कोई भी बात नही है ।४। हे विप्रो ! उस समय मे देवदेव के द्वारा इस प्रकार से कहने पर गिरि शार्दूल उनके आगे प्रणत अञ्जलि वाला होकर यह बोला—।५। हिमवान् ने कहा—जो पूर्वजन्म है आपकी पत्नी थी वही अब मेरे घर म अवतीर्ण हुई हैं । हे महेश्वर ! उसी को आपके लिये दान देने के उद्देश्य से मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ ।६। ये ब्रह्मा आदि सब देवगण भी यहाँ पर आपके समीप मे समुपस्थित हो गये है । हे विभो ! आप यह बतलाइये कि आपका गोत्र क्या है ? आप इन सबके समक्ष म बता देवें ।७।

श्रुत्वा तु भारती तस्य विश्वेशो विश्ववन्दित ।
किं गोत्रमिति सचिन्त्य नोत्तर प्रससर्ज ह ॥८॥
दृष्ट्वा निरुत्तर शभु जहसुर्देववदानवा ।
एप एव जयद्योनिर्गोत्रमस्य कथ भवेत ॥९॥
इत्यूचुर्विबुधा सर्वे हिमवन्त नगोत्तमम् ।
देवाना च वच श्रुत्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥१०॥
विश्वेश्वर पर धाम परमात्मानमव्ययम् ।
शाश्वत गिरिश स्थाणु विश्वाकार सनातनम् ॥११॥
दत्ता दत्ता पुनर्दत्ता उमा सत्येन ते प्रभो ।
ततो महान्रवो विप्रा जयशब्दादिमङ्गलै ॥१२॥
दुन्दुभीना च वाद्यानामभवत्सागरोपम ।
गृहीतेति शिव प्राह पार्वती पर्वतेश्वरम् ॥१३॥

तद्धरते भगवाञ्शभुरङ्ग लीय प्र(न्य)वेशयत् ।
इम च कलश हैममाद्राय त्व नगोत्तम ॥१४॥

विश्व के ईश और विश्व के द्वारा वन्दित प्रभु ने उस हिमवान् की भारती का श्रवण करके मेरा क्या गोत्र है—इसका चिन्तन करके कुछ भी उत्तर नहीं दिया था ।८। जब शम्भू को बिना उत्तर वाला देखा तो सभी देवगण और दानव हस गये थे । उन्होने कहा यह ही तो सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले है । इनका गोत्र कैसे हो सकता है ।६। यही बात सब देवो ने नगो मे उत्तम हिमवान् से कही थी । देवों के इस वचन का श्रवण करके गिरिराज यह बोले—।१०। विश्वेश्वर—परमधाम—परमात्मा—अव्यय—शाश्वत—गिरिश—स्थाणु—विश्वाकार—सनातन को मैंने अपनी पुत्री उमा दे दी—और पुन दे दी है-यह है प्रभो ! यह मैं सत्य निवेदन कर रहा हूँ । हे विप्रो ! इसके पश्चात् जय शब्द आदि क मङ्गल सूचक शब्दो से महान् ध्वनि हो गयी थी ।११।१२। उस समय म दुन्दुभियो तथा अन्य वाद्यो का भी सागर की गर्जना के समान बहुत भारी ध्वनि उत्पन्न हो गयी थी । तब भगवान् शिव ने पर्वतेश्वर हिमवान् से कहा था कि मैंने पार्वती को ग्रहण कर लिया है । उसके हाथ मे भगवान् शम्भू ने अङ्गुलीय का प्रवेश करा दिया था । हे नगोत्तम ! आप इस हैमकलश को लाकर जाइये ।१३।१४।

याहि गत्वा त्वनेनेव तामुमा स्नापय त्वरा ।
अन्येपा परिहारार्थमेप एव विधि सदा ॥१५॥
जगत्रयेऽपि नून स्याद्व्रज तूर्ण नराधिप ।
ततस्तुष्टो महाशैलोऽभोजयत्सुसमाहित ॥१६॥
तव यत्नरतो विप्रारतर्पणतय चराचरान् ।
अभवद् वर्मुद्दिश्य शकर ग गिरिस्तदा ॥१७॥

तथाऽस्मिन्नन्तरे देवो धर्मकेतुमहेश्वर ।
उत्थितो मुनिशार्दूला समालोक्य च शार्ङ्गिणम् ॥१८॥
अभवज्जयशब्दाना तुमुलो हि महारतदा ।
पुष्पवृष्टिनिपातश्च सत्यलोकाद्द्विजोत्तमा ॥१९॥
नानावनाधिपाश्चैव ऋतवश्च मुदान्विता ।
कुसुमैर्दिव्यगन्धाढ्यैर्वंवृपुर्मेघवृन्दवत् ॥२०॥
वीणावेणुमृदङ्गाना दुन्दुभीना ततो रवः ।
हरिविरिञ्चिशक्राद्या पूरयन्ति सुरास्तदा ॥२१॥

आप जाइये और जाकर शीघ्र ही अपने से ही उस उमा का स्नपन कराइये । अन्यो के परिहार के लिये यह ही सदा विधि है । यह तीनो जगत् म भी निश्चय ही होती है । अतएव हे नराधिप ! शीघ्र ही गमन करो । इसके अनन्तर परम तुष्ट होकर महाशैल ने सुसमाहित होते हुए भोजन कराया था । इस प्रकार से हे विप्रो ! चर और अचरो को तर्पण करने के लिये यज्ञ मे रत हो गया था । उस समय म वह गिरिराज भगवान् शङ्कर का उद्देश्य करके ही रत हो गया था ।१५।१६।१७। हे मुनि शार्दूलो ! तथा इस अन्तर म देवधर्म केतु महेश्वर उत्थित हुए और शार्ङ्गी भगवान् को देखा था ।१८। उस समय मे महान् जय-जय शब्दो का तुमुल हो गया था । पुष्पो की वृष्टि का निपात हुआ । हे द्विजोत्तमो ! कुसुमो की वर्षा सत्य लोक से हुआ था । अनेक प्रकार के वनो के अधिक और आनन्द से समन्वित ऋतुओ ने दिव्य गन्ध से युक्त कुसुमो के द्वारा मेघो के समुदाय के ही समान वर्षा की थी । उस शुभ समय म हरि-ब्रह्मा और महेन्द्र आदि सुरो ने वीणा—वेणु—मृदङ्ग और दुन्दुभियो की ध्वनि को पूरित किया था । १९।२०।२१।

विप्राश्चं लोकयनादेन वेदघोष प्रचक्रिरे ।
गायत्री चैव सावित्री रुद्रकन्यास्तथैव ॥२२॥

विद्याधर्योऽथ नागिन्यो देवानां च तथाऽङ्गना ।
सिद्धकन्या मनोहार्या यक्षकन्यास्तथैव च ॥२३॥
मातरः सप्त याश्चैव याश्च नक्षत्रमातरः ।
गिरीणां च तथा नार्यः समुद्राश्च सरांसि च ॥२४॥
मङ्गलं गायमानाश्च अर्घमष्टाङ्गसंयुतम् ।
सुप्रहृष्टा ददुः सर्वा देवदेवस्य पादयोः ॥२५॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा हिमवत्सप्रणोदितः ।
मैनाकस्तत्र संप्राप्तो हेमकुम्भकरः सुधीः ॥२६॥
सालङ्कायनपौत्रस्य गत्वा तस्याग्रतः स्थितः ।
तेनापि देवदेवस्य ज्ञापितो गिरिरग्रतः ॥२७॥
अथासौ भगवान्देवो मङ्गलेशो जलाशयः ।
स्नापयद्वेधसा युक्तः समुद्रैः शूलपाणिनम् ॥२८॥

विप्रों ने त्रैलोक्य नाद से वेदघोष अर्थात् वेदों के मन्त्रोच्चारण की ध्वनि को किया था । गायत्री—सावित्री—रुद्रों की कन्याएँ—विद्याधरी—नागिनी—देवों की अङ्गनाएँ—मनोहर सिद्धों की कन्याएँ तथा यक्षों की कन्याएँ—सात माताएँ जो थीं उन्होंने और जो नक्षत्र माताएँ थीं—पर्वतों की स्त्रियाँ—समुद्र सर सब मङ्गल गान कर रहे थे और परम प्रहृष्ट होते हुए सबने देवदेव के चरणों में अष्टाङ्ग संयुत अर्घ दिया था ।२२।२३।२४।२५। इसी बीच में हे विप्रो ! हिमवान् के द्वारा प्रेरित होकर मैं नाक सुधी हेम का कुम्भ हाथ में ग्रहण करके वहाँ पर सम्प्राप्त हुआ था ।२६। सालङ्कायन पौत्र के आगे जाकर वह स्थित हो गया था । उसके द्वारा भी देवदेव के आगे गिरि ज्ञापित हुआ था ।२७। इसके अनन्तर भगवान् देव मङ्गलेश जलाशय ने वेधा से युक्त होकर समुद्रों के द्वारा शूलपाणि का स्नपन कराया था ।२८।

स्नाप्यमाने तदा देवे नद्यो नौ सागरा द्विजाः ।
बभूवुः सलिलैर्युक्ता कृताङ्गा स्वेदसंयुता ॥२९॥

अथ ते त्रिदशाः सर्वे सनारायणका द्विजाः ।
परं विस्मयमापन्ना भवं पश्यन्ति चाद्भुतम् ॥३०॥
ततो निलीयमानास्तु शरीरे शंकरस्य तु ।
नद्यः सर्वाः समुद्राश्च प्रपश्यन्ति सुविस्मिताः ॥३१॥
योगमायाहृतं वीक्ष्य तत्तोयं जगति स्थितम् ।
अस्तुवन्पशुभर्तारं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥३२॥
ततस्तैस्तु स्तुतो देवः प्रहस्य भगवान्भवः ।
विसृज्य च तदा तोयमभवत्पूर्वरूपधृत् ॥३३॥
एवं साम्ये स्थिते तस्मिन्देवदेवे पिनाकिनि ।
स्नापितोऽसौ विरञ्चाद्यैस्त्रिमूर्तिर्भगवान्भवः ॥३४॥
मैनाकोऽप्यञ्जलिं कृत्वा देवदेवस्य चाग्रतः ।
संस्थितो हर्षसंयुक्तो निधिं लब्ध्वा यथाऽधनः ॥३५॥

उस समय में देव के स्वप्यमान होने पर नदियाँ और सागर हे द्विजो ! कृशाङ्ग और स्वेद से संयुक्त सलिलों से समन्वित हो गये थे ।२९। इसके उपरान्त सब त्रिदशगण नारायण के सहित परम आश्चर्य को प्राप्त हो गये थे और अद्भुत स्वरूप वाले भगवान् भव को देख रहे थे ।३०। इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर के शरीर में विलीन होती हुई समस्त नदियों और सब समुद्र सुविस्मित होकर देख रहे थे ।३१। जगत् में स्थित उस जल को योगमाया से हृत देखकर ब्रह्मा आदि देवगणों ने पशुपति प्रभु का स्तवन किया था ।३२। इसके अनन्तर उन सबके द्वारा स्तुति किये गये देव भगवान् भव हँसकर उसी समय में जल का विसर्जन करके पूर्व रूप के धारण करने वाले हो गये थे ।३३। इस रीति से साम्य दशा में स्थित उन देवों के देव पिनाकी के वह त्रिमूर्ति भगवान् भव ब्रह्मा आदि के द्वारा स्नापित किये गये थे ।३४। मैनाक पर्वत भी देवदेव के आगे अञ्जलि करके संस्थित हो गया था। उस समय में वह इतना अधिक प्रहर्षित हो रहा था जैसे कोई बहुत

निर्धन पुरुष धन की निधि को प्राप्त करके खुश हो जाया करता है।
।३५।

विसर्जितस्ततस्तेन देवदेवेन शम्भुना ।
त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्ययौ तूर्णं नगात्मज ॥३६॥
तदशुक परिधाप्य देवी तामरसेक्षणाम् ।
स्नापयस्तेन कुम्भेन हराङ्घ्रिपतितेन च ॥३७॥
नीरपात द्विजश्रेष्ठा कृतमेतत्कपर्दिना ।
पार्वतेयविधिर्नूनं कुलजाना सदाऽनघ ॥३८॥
ततो भगवती देवी हृष्टपुष्टा तपोमयी ।
पितुरभ्याशगा भूत्वा विवेश परमासने ॥३९॥

इसके उपरान्त देवदेव शम्भु ने उसे विदा कर दिया था। त्रैलोक्य के तिलक उसके जाने पर बहुत शीघ्र नगात्मज अर्थात् हिमवान् का पुत्र गया था। तामरस के समान नेत्रों वाली उस देवी को वह उनका वस्त्र पहिनाकर शिव के चरणों के ऊपर से गिरे हुए उसी कुम्भ के द्वारा स्नपन करते हुए हे द्विज श्रेष्ठो ! कपर्दी प्रभु ने यह नीरपात किया था। कुलजों की सदाअनघ पार्वतेय विधि निश्चय ही सम्पन्न हुई थी।३६।३७।३८। इसके पश्चात् तपोमयी भगवती देवी परम हृष्ट-पुष्ट होती हुई पिता के समीप वर्तिनी होकर परमासन पर प्रवेश कर बैठ गयी थी।३९।

॥ साम्ब विवाह वर्णन (२) ॥

अथाऽऽयान्तं शिवं दृष्ट्वा हिमवान्पर्वतेश्वरः ।
मेरुश्चैव यथासख्यं रविचन्द्रदिवाकरैः ॥१॥
तथा देवी स वेधार्द्धं वृत छत्रेण संयुतम् ।
जयेत्युक्त्वा नगेन्द्रस्तु ह्यात्मामात्यामरस्तदा ॥२॥

उन्थित. सहसा विप्राः पुष्पहस्तो महेश्वर. ।
मुदा परमया युक्तो भक्त्या चानन्यया द्विजाः ॥३॥
वस्त्रैर्नानाविधैश्चक्रे मार्गभूषां तदा गिरिः ।
पताकाभिर्जयन्तीभिः स्रग्दामैर्दिव्यगन्धिभिः ॥४॥
ध्वजैश्च विविधाकारैः पञ्चवर्णैर्मनोरमैः ।
चामरैश्चन्द्ररम्यैस्तु लम्बकैश्च समन्ततः ॥५॥
मुक्तानां प्रकरैश्चैव पुष्पाणां तु तथैव च ।
एवमाद्यं रनेकैश्च शोभां कृत्वा नगोत्तम. ॥६॥
स्थितस्तु वीक्षमाणोऽसौ विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सपूर्णचन्द्रवदना मदनानलदीपिताः ॥७॥

श्रीसूतजी ने कहा—इसके अनन्तर पर्वतेश्वर हिमवान् ने आते हुए भगवान् शिव को देखकर और मेरु ने भी यथाक्रम रविचन्द्र दिवाकरो के तथा वेधा आदि देवो के द्वारा परिवृत और स्नेह से सयुत थे । उस समय मे नगराज ने "जय हो"—यह कहकर उस समय मे हाथ मे वस्त्र और माल्य लेकर सहसा उत्थित हो गया था । हे विप्रो ! महेश्वर पुष्प हाथ मे लेने वाले हो गये थे । हे द्विजो ! उस समय मे गिरिराज परम आनन्द से युक्त और अनन्य भक्ति से सयुत होकर उन्होंने उस समय मे नाना प्रकार के वस्त्रो से मार्ग की सजावट की थी । पताकाओ से—जमान्तियो से—दिव्य गन्ध वाली मालाओ से विविध आकार वाले ध्वजो से—मनोरम पाँच वर्णों वाले चमरो मे जो सभी ओर लम्बे और चन्द्रमा के समान सुरम्य थे । मोतियो के तथा पुष्पो के प्रकरो से इस प्रकार के अनेक पदार्थों के द्वारा नगोत्तम ने मार्गों की शोभा की थी । फिर यह स्थित होकर विश्वव्यापी ईश्वर को देखते हुए विराजमान थे । फिर मदन के अनल से दीपित हुई सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली अप्सराएँ वहाँ पर विद्यमान थी ।१-७।

शतकोटयोऽप्सराणां तु निर्ययुः समुखाश्च तम् ।
हेमपात्रकरासक्ताः पद्मेन्दीवरहस्तकाः ॥८॥
मणिपात्राणि पूर्णानि दूर्वासिद्धार्थकाङ्क्षितैः ।
दधिरोचनमादाय व्रीहिभिश्चम्पकैर्यवैः ॥९
हरिचन्दनलिप्ताङ्गा हरिचन्दनहस्तका. ।
विद्रुमाङ्कुरहस्ताश्च तथैवोत्पलशेखराः ॥१०
× चूतमञ्जरिहस्ताश्च पारिजातकराः पराः ।
स्वादूदकेन सपूर्णभृङ्गारकरपल्लवाः ॥११
हावभावविलासिन्यो मदनातुरह्विलाः ।
मदनारिं प्रणेमुस्ता गायमानास्त्रिलोचनम् ॥१२
अथासौ भगवाञ्छूली चान्तर्यामी महेश्वरः ।
त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्क्षणादाविर्बभूव ह ॥१३
ततो घनैर्बहुविधैः पूजयामास पर्वतः ।
स्तुत्वा च पूजयित्वा च ननाम च पुनः पुनः ॥१४

सैकड़ो करोड अप्सरायें उनके सामने से निकली थीं । उनके हाथों में सुवर्ण के पात्र थे । कुछ के हाथों में इन्दीवर पद्म थे । कुछ के हाथों मे दूर्वा-सिद्धार्थ काङ्क्षितों से युक्त पूर्ण मणियों के पात्र थे । व्रीहि-चम्पक और यवों से युक्त दधिरोचन लेकर हरिचन्दन से लिप्त अङ्गों वाली थीं और कुछ अप्सराऐं हरिचन्दन को हाथों मे ग्रहण किये हुए थी । उन अप्सराओ में कुछ विद्रुमो के अंकुर हाथों मे ग्रहण किये हुए थी तथा कुछ उत्पलो को मस्तक पर धारण किये हुए थी ॥८-१०॥ कुछ अप्सराओ के हाथों मे आम्र मञ्जरियां लगी हुईं थीं और दूसरी अपने करों मे पारिजात लिये हुए थीं। कुछ स्वादिष्ट उदक से पूर्ण भृङ्गारक अपने कर पल्लवो मे ग्रहण किये हुए थी ॥११॥ ये सब अप्सराऐं कामदेव से अत्यन्त आतुर और विह्वल हो रही थी । ये सब गान करती हुई मदन के अरि भगवान् त्रिलोचन को प्रणाम कर रहीं थीं ॥१२॥ इसके अनन्तर भगवान् शूली अन्तर्यामी महेश्वर त्रैलोक्य

तिलक उसमें क्षणभर में ही आविर्भूत होगये थे ॥१३॥ इसके उपरान्त बहुत प्रकार के धनों के द्वारा पर्वतराज ने भगवान् शिव की पूजा की थी। स्तुति करके और अभ्यर्चन करके बारम्बार प्रणाम किया था ॥१४॥

गीतैश्च विविधैर्वाद्यैः प्रविवेश हरस्तदा ।
भवाऽभवत्तदा बालो द्व्यष्टवर्षाकृति स्वयम् ॥१५
हैमाङ्गो भगवाञ्शम्भुः किरीटी कुण्डली हरः ।
सुरासुराश्च विप्रेन्द्रा दृष्ट्वा रूपं पिनाकिनः ॥१६
अवलोक्य मुखाऽन्योन्यं जहसुस्ते मुदाऽन्विताः ।
आसने हेमजे विप्रा नानारत्नैश्च भूषिते ॥१७
विवेश भगवाञ्छूली महादेवो जगत्पतिः ।
हरस्य दक्षिणे वेधा वामभागे जनार्दनः ॥१८
लोकपालादिरथतः दासो मालरदश्च सुव्रता ।
यक्षैर्गन्धर्वैर्देवैः सिद्धैश्च मुनिभिस्तथा । १९
उपविष्टेषु सर्वेषु गन्धर्वाद्या समन्ततः ।
जगुर्गीतं च हिन्दोलं तुम्बुरुनारदादयः ॥२०
मत्तमातङ्गगामिन्यो गेयं तालनयान्वितम् ।
रम्भाद्यप्सरसः सर्वा ननृतुर्द्विजाः ॥२१

उस समय में हर भगवान् ने विविध प्रकार के गीतों के द्वारा तथा वाद्यों के द्वारा प्रवेश किया था। उस समय में सोलह वर्ष की आकृति वाले भगवान् भव स्वयं बालक होगये थे ॥१५॥ भगवान् हर हेम के समान अङ्ग वाले—किरीट को धारण किये हुए और कुण्डलों को पहिनने वाले होगये थे। हे विप्रेन्द्रो! समस्त सुर और असुरों ने भगवान् पिनाकी के सुन्दर स्वरूप को देखा था। शिव के रूप को देखकर आपस में एक दूसरे की ओर मुख कर के आनन्द से युक्त होकर हँसने लग गये थे। हे विप्रो! नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित सुवर्ण निर्मित आसन पर जगत् के स्वामी भगवान् शूली महादेव जी विराजमान होगये

थे। हर के दक्षिण भाग में वेधा विराजमान हुए थे और वामभाग में जनार्दन प्रभु समवस्थित हुए थे ॥१६-१८॥ हे सुव्रतो ! शम्भु भगवान् के आगे शैलादि विराजमान थे और कालरुद्र स्थित हुए थे। रुद्रो-गणो-ईश्वरी-देवो-सिद्धो और मुनियों के द्वारा सबके उपविष्ट हो जाने पर चारों ओर गन्धर्व आदि विराजमान हुए थे। नारद आदि ने तथा तुम्बरू ने हिन्दोल गीत का गान किया था। इस ताल और लय से युक्त गेय पर हे द्विजो! मस्त गज के समान गमन करने वाली सब रम्भा आदि अप्सराऐं और किन्नरियाँ नृत्य करने लग गयी थीं ॥१७-२१॥

वीणावल्लकिवेणूना मृदङ्गाना विशेषतः ।
ध्वनिभिर्मनसस्तुष्टिर्जज्ञे सुमनसा तदा ॥२२
अथ विश्वेश्वरः शम्भुर्भूषणं नभसि स्थितम् ।
प्रायच्छद्गिरिजायै तदाह्लादजनक मुदा ॥२३
अनेनालकृता देवि मम योग्या भविष्यसि ।
पितुर्दक्षस्य यः कोप. पूर्वजस्य वरानने ॥२४
प्रहृष्यसि तमेवाऽऽशु भाव चैव तु तामसम् ।
तत. सा पार्वती देवी गृहीत्वाऽऽकाशमण्डलात् ॥२५
पितु' समीपमगमद्वस्त्राभरणमुत्तमम् ।
महता ह्युत्सवेनाऽऽदु भूषयित्वा शिवा नगः ॥२६
वस्त्रै राभरणैर्देवी दिव्यैर्वै सिंहवाहिनीम् ।
मेनोरमङ्गना भूयश्चन्द्रलेखेव तोयदे ॥२७
दधती निर्वृता देवी वभौ तामर सेक्षणा ।
अथ देवैः परिवृतो विष्ण्वाद्यैस्त्रिपुरान्तकः ॥२८

उस समय में वीणा-वल्लकी-वेणु और विशेष रूप से मृदङ्गों की ध्वनियों से सुन्दर मन वालों के मन की तुष्टि उत्पन्न होगई थी ॥२२॥ इसके पश्चात् विश्व के ईश्वर भगवान् शम्भु ने नभ में स्थित भूषण गिरिजा के लिये प्रदान किया था। वह आनन्द के साथ बहुत ही आह्लाद का उत्पन्न करने वाला था ॥२३॥ हे देवि ! इस भूषण से

समलङ्कृत होती हुई आप मेरे योग्य हो जाओगी। हे वरानने! जो तुम्हारा पूर्वज पिता दक्ष प्रजापति या उसके ऊपर उत्पन्न हुए कोप को बहुत ही शीघ्र त्याग दोगी और जो तामस भाव उस पर समुत्पन्न हुआ था उसका भी त्याग कर दोगी ॥२४॥ इसके पश्चात् पार्वती देवी ने आकाश मण्डल से उसका ग्रहण किया था और फिर वह अपने पिता के समीप मे गयी थी। पर्वतराज ने महान् उत्सव के साथ बहुत शीघ्र शिवादेवी को उत्तम वस्त्राभरणों से भूषित कर दिया था ॥२५॥२६॥ वह देवी वस्त्रो और आभरणो से जो कि परम दिव्य थे भूषित होकर सिंह गामिनी वह देवी मेना के गोद मे स्थित हुई पुन मेघ मे चन्द्रमा की लेखा के ही तुल्य भासित हुई थी ॥२७॥ भूषणों को धारण करती हुई देवी परम निर्वृता हो गई थी और तामरस के तुल्य नेत्रो वाली अत्यन्त राजित हुई थी। इधर देवगणो से परिवृत त्रिपुरान्तक थे जिनमे विष्णु आदि सभी थे॥२८॥

बभ्राम मुनिशार्दूला क्रीडास्थानानि कृत्स्नश.।
भगवन्देवदेवेश विश्वेशान्धकसूदन ॥२९
प्रणम्य परया भक्त्या शैलादिरिमब्रवीत् ॥३०
वेदीयमिन्द्रनीलाभा भाति विश्वभरा शिव।
सेय जलमयी नाथ निर्मिता विश्वकर्मणा ॥३१
या चेय परमा रम्या नोयाना भ्रान्तिकारिणी।
सेय भाति महादेव रत्नानामीदृशी प्रभा ॥३२
इद च द्वारसथान दृश्यते लम्बकैर्वृतम्।
कुडचस्य रत्नविन्यासे लक्ष्यते द्वाररूपता ॥३३॥
इद चित्ररथाकार दृश्यते वनमुत्तमम्।
प्रतिबिम्ब महादेव रत्नभूमेर्न सशय ॥३४
इद च मन्दिराकार सापानचयमडितम्।
प्रतिबिम्बमिद चैव दृश्यते नवमडिणम् ॥३५

हे मुनि शार्दूलो! फिर वे सम्पूर्ण क्रीडा के स्थानों मे भ्रमण करने

लगे थे। शैलादि ने पराभक्ति से प्रणाम करके यह कहा था—हे भगवन् ! हे देवदेवेश्वर ! हे विश्व के स्वामिन् ! हे अन्धक के सूदन करने वाले ! नन्दिकेश्वर ने कहा—हे शिव ! इन्द्रनील की आभा वाली यह वेदी शोभित हो रही है जो कि विश्वम्भरा है। हे नाथ ! वहाँ यह वेदी विश्वकर्मा के द्वारा जलमयी निर्मित की गयी है ॥२६-३१॥ जो यह परम रम्या है वह जलो की भ्रान्ति समुत्पन्न कर देने वाली है। हे महादेव जी ! रत्नो की ऐसी ही प्रभा है कि यह वेदी ऐसी ही शोभा वाली प्रतीत होती है लम्बकों से युत यह द्वार का संस्थान दिखाई देता है। भित्ति के अन्दर जो रत्नो के विन्यास मे द्वार रूपता लक्षित हुआ करती है। यह चित्र रथ के आकार वाला उत्तम वन दिखाई दे रहा है। हे महादेवी जी ! यह रत्नों की भूमि का प्रतिबिम्ब है—इसमे कुछ भी संशय नही है। और यह जो मन्दिर के आकार वाला है वह सोपानों के समुदाय से मण्डित है। यह भी गवमण्डित प्रतिबिम्ब ही दिखलाई दे रहा है ॥३२-३५॥

या चेय सागराकारा दृश्यते तोयरूपिणी ।
एषाऽपि परमेशान रत्नभूमिर्जलोपिता ॥३६
यश्चिद गगनाभास मूर्तिद्रव्यैरिवोर्जितम् ।
क्रीडामण्डपमेतस्मिन्प्रदेशे देव तिष्ठति ॥३७
अम्बरामैर्महारत्नैर्वाह्यदेशे विनिर्मितम् ।
अनेकवाद्यसयुक्त रमणीय ययो हरः ॥३८
एव क्रीडति देवेशे सुरासुरमहोरगा ।
विद्याधरास्तथा यक्षा गन्धर्वाप्सरसादय. ॥३९
दीर्घिकासु तडागेषु नदीपु च ह्रदेषु च ।
क्रीडावापीषु ते रम्यैर्यन्त्रैर्नानाविधैर्भृशम् ॥४०
बभूवुर्देवता. सर्वा: क्रीडारतिषु लालसा. ।
अथ सक्रीडच विश्वात्मा निवृत्तस्तत्प्रदेशत. ।
वेद्याः समीपमगमत्स्तूयमानो मुनीश्वरै· ॥४१

प्राप्याऽऽरुरोह प्रसभ सुरेशस्तदिन्द्रनीलामलवेदिकान्तम् ।
सहस्रपत्रैर्वकुलैश्च नागैः कीर्ण हि यत्काञ्चनपारिजातैः ॥४२

जो यह सागर के से आकार वाली जलके स्वरूप वाली सामने दिखलाई दे रही है। हे परमेशान ! यह भी जलोपिता रत्नभूमि ही है ॥३६॥ जो यह गगन के आभास वाला भूमि द्रव्यों से अजित के ही समान है। हे देव ! इस प्रदेश मे क्रीडा का मण्डप ही स्थित है ॥३७॥ अम्बर के समान आभा वाले महा रत्नो से विरचित बाह्य देश मे जो अनेक वाद्यों से समन्वित और परम रमणीय था वहाँ पर शम्भु गये थे। इस प्रकार से देवेश्वर के क्रीडा करने पर समस्त सुर-असुर-महोरग-विद्याधर-यक्ष गन्धर्व और अप्सरा आदि समस्त देवगण दीर्घिकाओ मे-तडागो मे नदियो मे-ह्रदो मे और क्रीडा वापियो मे अनेक प्रकार के सुन्दर यन्त्रो के द्वारा अत्यन्त ही क्रीडा की रति मे लालसा वाले होगये थे। इसके अनन्तर विश्वात्मा उस प्रदेश मे निवृत्त होगये थे और मुनीश्वरो के द्वारा स्तुति किये गये प्रभु वेदी के समीप मे गये थे। उस इन्द्रनील के समान निर्मल वेदिका के समीप मे सुरेश प्राप्त होकर बल पूर्वक आरूढ हुए थे जो कि सहस्र पत्रो-वकुलो-नागो और काञ्चन पत्र जातो से समाकीर्ण था ॥३८-४२॥

तत प्रविष्टो हरिणाङ्कचिह्न सरश्मिजालाकुलवेदिकान्तम् ।
विवेश सूर्यायुतसुप्रभासो वतो विरञ्च्यादिसुरैः समन्तात् ॥४३
अथोपविष्टं सवीक्ष्य विश्वेश पर्वतेश्वर ।
तस्य सस्थाप्य पुरतो देवेशीमब्रवीदिदम् ॥४४
त्वमेवैक पर धाम अर्धनारीश्वरस्तत ।
देवताना हितार्थाय जातो ह्यर्धतनु पृथक् ॥४५
दक्षस्य दुहिता देवी जगद्धात्री ह्युमा सती ।
विनिन्द्य च ततो दक्ष त्यक्त्वा देह निज पुन ॥४६
तवैव पत्नी देवेश जाता मम सुता सती ।
तत श्रुत्वा गिरीन्द्रस्य वचस्त्रिभुवनेश्वर ।
प्रसन्नो वरद शम्भुरब्रवीत्पर्वतेश्वरम् ॥४७

जानाम्यहं येन ममैव माया शक्तिर्वरैषा नगराजसिंह ।
सत्यज्य देहं तव धाम्नि जाता योगात्स्वयं चारुशशाङ्कवक्त्रा ॥४८
आचारार्थं गिरिश्रेष्ठ दत्ता गृह्णामि पार्वतीम् ।
अदत्ता यदि गृह्णामि तथा लोकेऽपि वर्तते (वर्तेत वै जन) ॥४९

इसके पश्चात् हरिणाङ्क के चिह्न वाले भगवान् शिव जो अयुत (दश सहस्र) सूर्यों की प्रभा से युक्त-विरिञ्चि आदि सुरों से चारों ओर परिवृत थे प्रभु शिव किरणों के जाल से समाकुल उस वेदी के समीप में प्रविष्ट हुए थे ॥४३॥ इसके अनन्तर पर्वतों के स्वामी हिमवान् ने विश्वेश्वर को वेदी के समीप में प्रविष्ट हुए देखकर उनके आगे देवीशी के संस्थापित करके उस समय में यह कहा था ॥४४॥ हिमवान् ने कहा—आप ही एक परमात्मा और सर्व सुरेश्वर हैं। देवताओं के हित करने के लिये ही आपने पृथक् शरीर धारण किया है ॥४५॥ यह दक्ष प्रजापति की पुत्री जगत् की धात्री सती उमा है। इसने अपने पिता दक्ष को विनिन्दित करके और अपने देह का त्याग करके यह हे देवेश्वर ! यह आपकी ही पत्नी फिर सती मेरी पुत्री होकर समुत्पन्न हुई है। इसके उपरान्त तीनों भुवनों के ईश्वर प्रभु शिव ने गिरीन्द्र हिमवान् के इस वचन का श्रवण करके वरदाता भगवान् शम्भु परम प्रसन्न हुए थे और पर्वतेश्वर से बोले—॥४७॥ ईश्वर ने कहा —हे नगराज सिंह ! मैं यह सब कुछ भलीभांति जानता हूं कि यह मेरी वरा शक्ति माया है जिसने अपने देह का त्याग किया था और अब आपके यहाँ समुत्पन्न हुई है। और चारु शशाङ्कवक्त्र के द्वारा स्वयं ही योग से प्रसूत हुई है ॥४८॥ हे गिरि श्रेष्ठ ! इस समय में मैं प्रदान की हुई पार्वती को केवल आचार के लिये ही ग्रहण कर रहा हूँ अर्थात् यह विवाह का कृत्य सब लोकाचार की रक्षा के लिये ही हो रहा है। यदि बिना दान किये हुए ही इस का ग्रहण करता हूँ तो लोक के लोग भी विद्यमान हैं उनके आचार की रक्षा नहीं हो सकती है ॥४९॥

अथ दिव्योदकं पूर्णमादाय कलशं गिरि ।
परिपूर्णस्य नित्यस्य नित्यानुग्रहकारिण ॥५०

प्रक्षाल्य पादौ शिरसा प्रणम्य भृङ्गारमादाय स शैलराजः ।
मुमोच तोयं भवपाणिपद्मे दत्तेति दत्तेति तदा प्रजल्पन् ॥५१
ततो मङ्गलनिर्घोषः समभूत्रिदिवौकसाम् ।
वीणावेणुमृदङ्गाना काहलाना च निस्वनः ॥५२
सा हारकण्ठी कटिसूत्रदामा सुभ्रूलता चारुविलोलनेत्रा ।
मेरावथैवोपरि चन्द्रलेखा तथा बभौ पर्वतराजपुत्री ॥५३
अथ वेद्या गतो ब्रह्मा विश्वमाया स्मरारणिम् ।
ददर्शोदकपात्रेण विभावसुपुरःस्थितः ॥५४
माहेश्वरी काममयी दृष्ट्वा ता तु पितामहः ।
अक्षरत्सहसा शुक्रं भग्नकुम्भादिवोदकम् ॥५५
पादेन तन्ममर्दाऽऽशु शुक्रं तत्पद्मसंभवः ।
पद्मजोऽपि महातेजा देवदेवस्य पश्यतः ॥५६

इसके अनन्तर दिव्य जल से पूर्ण कलश को हिमवान् ने लिया था और निश्च ही परिपूर्ण और अनुग्रह करने वाले प्रभु के चरणों को धोकर शिर के बल प्रणाम करके फिर शैलराज ने भृङ्गार को ग्रहण किया था। भगवान् शिव के हस्त कमल मे "दत्ता-दत्ता" अर्थात् प्रदान कर रही है ऐसा कहते हुए जल छोड दिया था ॥५०॥५१॥ इसके पश्चात् देवगणो मे मङ्गल सूचक निर्घोष हुआ था तथा वीणा-वेणु-मृदङ्ग और काहलो की ध्वनि भी हुई थी ॥५२॥ वह देवी कण्ठ मे हार धारण करने वाली-कटि मे सूत्रदाम पहिने हुए-सुन्दर भृकुटियो से सम्पन्न-चारु और विशाल नेत्रो वाली पर्वतराज की पुत्री ऐसी शोभित हुई थी जैसे मेरु पर्वत पर चन्द्रमा की लेखा शोभित हुआ करती है ॥५३॥ इसके उपरान्त वेदीश्वर ब्रह्माजी गये थे और विभावसु के आगे स्थित उनमे विश्वमाया को तथा स्मरारणि को उदक पात्र से युक्त देखा था ॥५४॥ पितामह ने उन काममयी माहेश्वरी देवी का दर्शन किया था तो उसी समय मे फूटे हुए कुम्भ से जल की ही भाँति सहसा उनका शुक्र क्षरित होगया था। पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने उस क्षरित शुक्र

को पाद से ही मर्दित कर दिया था। देवों के देव यह सब देख ही रहे थे कि महातेज वाले पद्मज वश कर रहे थे ॥५५॥५६॥

मैवं मर्देति तं दृष्ट्वा त्रिपुरारिः पितामहम् ।
कुरुष्वे (जुहुधी) तीति पोवाच भगवान्नीललोहितः ॥५७
अमोघं तत्तदा विप्रोः शुक्रमग्नौ प्रजापतिः ।
जुहोति व (अजुहोद्ध)चनाच्छंभोर्वामिनाऽऽदाय पाणिना ॥५८
हवनाद्य ततः प्राप्ता. सवितारं वियद्धतम् ।
तेजोमयाश्च ते सर्वे तपोनिष्ठाः समन्ततः ॥५९
अष्टाशीतिः सहस्राणि मुनयस्तूर्ध्वरेमसः ।
माने त्वङ्गुष्ठमात्रास्तु जाता ह्यथ सुवर्चस. ॥६०
बभूवुस्ते महात्मानः पतङ्गसहचारिणः ।
निस्पृहा रश्मिपाः सर्वे सर्वे ज्वलनसंनिभा ॥६१
ततो देवा सगन्धर्वाः सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।
पिशाचा दानवा दैत्याः किंनराश्च महोरगा. ॥६२
विद्याधराश्चाप्सरसस्तथा चान्ये सुरासुरा. ।
प्रहृष्टाः सर्व एवैते पार्वत्या हरसंगमात् ॥६३

त्रिपुरारि प्रभु ने पिता मह को देखकर उनसे कहा था इस प्रकार से मर्दन मत करो। भगवान् नील लोहित ने कहा था कि हवन करो ॥५७॥ उस समय उस अमोघ शुक्र को हे विप्रो ! प्रजापति ने अग्नि मे भगवान् शम्भु के वचन से बाँये हाथ से लेकर उसका हवन कर दिया था ॥५८॥ इसके उपरान्त वे सब तेजो मय—तपोनिष्ठ चारों ओर से आकाश मे स्थित सविता को प्राप्त हो गये थे ॥५९॥ इसके अनन्तर अट्ठासी हजार ऊर्ध्व रेता मुनिया जो परिमाण मे अङ्गुष्ठ के बराबर सुन्दर वर्चस वाली समुत्पन्न हो गयी थी ॥६०॥ वे सब महान् आत्मा वाले सूर्य के सहचारी हो गये थे जो निस्पृह और सब रश्मियों के पान करने वाले और अग्नि के ही सदृश थे ॥६१॥ इसकेपश्चात समस्त देव-गन्धर्व-सिद्ध-मुनिगण-पिशाच-दैत्य-दानव-किन्नर-महोरग-विद्याधर-अप्सरा

गण और अन्य सुरासुर बहुत ही प्रसन्न होते हुए पार्वती का भगवान् हर के साथ सङ्गम होने से आनन्द मे निमग्न हो गये थे ॥६२॥६३॥

मुमोच वृष्टि ऋतुराट्सुतुष्ट पुष्पैरनेकैर्भ्रमराकुलैश्च ।
वाद्यं विचित्रैर्वरशङ्खनादैः सुगीतगानैर्वरमङ्गलैश्च ॥६४
वीणारवैर्दुन्दुभिवेणुनादैः समन्तत कर्णसुख प्रजज्ञे ।
आनृत्यतीभि सुरसुन्दरीभिर्जगीयतीभिर्वरकिनरीभि ॥६५
दैत्याङ्गनाभिश्च वसीदतीभि कामायतेऽतीव तदुत्सव च(वश्च)।
काञ्चीरवेणाथ नितम्बिनीना मनोभिरामेण च नूपुराणाम् ॥६६
सामा स्मितेनाथ मुनीन्द्रवर्या बभूव कामानलदीपचर्या ।
होमावसाने मधुपर्कयुक्त देवाय तस्मै मधुभाजन च ॥६७
ततो निवेद्य प्रमथाधिपाय चकार तुष्टि परमा विरञ्चि ॥६८
अथ देवेषु विश्वेशो वरदोऽभूद्द्विजोत्तमा ।
वराश्च विविधान्दत्त्वा ब्रह्मादिभ्यो महेश्वर ॥६९
व्यसर्जयत्तत सर्वांस्थावराञ्जङ्गमास्तथा ।
विसर्जिता प्रणम्येश प्रीति ते परमा गता ॥७०

ऋतुराज ने परम सन्तुष्ट होकर भ्रमरो से समाकुल अनेक प्रकार के पुष्पो की वर्षा की थी । विचित्र वाद्यो से—वर शङ्खों के नाद से—सुगीत गान श्रेष्ठ मङ्गल गानो से-वीणा की ध्वनियो से—दुन्दुभि के तथा वेणु के शब्दों से चारो ओर कानो को सुख समुत्पन्न हुआ था। चारों ओर नृत्य करने वाली सुरो की सुन्दरियो से और गान करने वाली किन्नारियों से और वसीदती दैत्यो की अङ्गनाओ से वह उत्सव अत्यन्त ही कामायमान हो गया था। नितम्बनियों की काञ्ची के शब्द से तथा नूपुरों के मनोऽभिराम शब्द से तथा उन अङ्गनाओ के मन्द मुस्कान से बडे बडे मुनीन्द्र गण भी कामाग्नि के प्रदीप्त धर्मा वाले हो गये थे। होम के अन्त मे ब्रह्माजी ने मधुपर्क से युक्त मधु भाजन को उन देवेश्वर को प्रमथों के अधिप के लिये निवेदन करके परमाधिक तुष्टि को प्राप्त किया था ॥६४॥६५॥६६॥६७॥६८॥ हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर

देवो के ऊपर विशेष वरदान देने वाले हो गये थे। महेश्वर ने ब्रह्मा आदि देवो को अनेक वरदान देकर वहाँ से विदा करा दिया था। वे भी सब ईश को प्रणाम करके परमाधिक प्रीति को प्राप्त हुए थे ॥६९॥७०॥

एव स क्षेपतो विप्रा विवाहो गिरिजापते ।
कथितो रविणा पूर्वं यथावत्समुदीरित ॥७१
शृणोति श्रद्धया यस्तु पठेद्वा प्रयतात्मवान् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति वर्षादर्वाङ् न सशय ॥७२
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तेजस्वी प्रियदर्शन ।
जीवेद्वर्षशत साग्र गच्छेद्ब्रह्मपद तत ॥७३

हे विप्रो ! इस प्रकार से परम सक्षेप से गिरिजा के पति का विवाह वर्णन कह दिया है जैसा कि पहिले रवि देव ने इसका वर्णन किया था ॥७१॥ जो इस भगवान शङ्कर के विवाह का वर्णन प्रयत आत्मा वाला श्रद्धा से श्रवण किया करता है या पढ़ता है वह एक वर्ष से ही पूर्व अपने मन की सब कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है—इसमे तनिक भी सशय नहीं है ॥७२॥ वह मनुष्य समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर परम तेजस्वी—प्रिय दर्शन सौ वर्ष तक इस ससार मे जीवित रहता है और अन्त मे ब्रह्मपद को प्राप्त हो जाता है ॥७३॥

॥ साम्ब क्रीडादि वर्णन ॥

विवाह्याद्रिसुता शभुर्ययौ कैलासपर्वतम् ।
क्रीडा वै वर्षसाहस्रीमकरोत्तत्र शकर ॥१
गणैर्नानाविधैश्चैव सिंहास्यै शरभाननै ।
कैश्चिद्व्याघ्रमुखैर्भीमै कैश्चिन्दृध्रमुखैरपि ॥२
कैश्चिन्दमुखैरन्यै कैश्चिन्मृगमुखैरपि ।
कैश्चिदुष्ट्रमुखैर्दीर्घै कैश्चिद्धयमुखैरपि ॥३

केश्चिच्चित्रमुखैरन्यै कैश्चिद्वृकमुखैरपि ।
मूषकास्यैस्तथा=चान्यैर्मार्जारवदनैरपि ॥४
सर्पास्यैर्नकुलास्यैश्च जम्बुकास्यैस्तथाऽपरैः ।
शिशुमारमुखैश्चान्यैर्ऋक्षवक्त्रैस्तथाऽपरैः ॥५
मयूरवदनैरन्यैर्वकवक्त्रैस्तथाऽपरैः ।
शाखामृगमुखैश्चान्यै खरास्यैश्च तथाऽपरैः ॥६
अन्यैरसख्यैः प्रमथैर्जरामरणवर्जितैः ।
नित्यतृप्तैर्निरातङ्कैः कालसंहरणक्षमैः ॥७

श्री सूत जी ने कहा—भगवान शम्भु ने अद्रि की पुत्री के साथ विवाह करके वे फिर अपने कैलास पर्वत पर चले गये थे। वहाँ पर नाना सहस्र वर्षो तक क्रीडा करते रहे थे ॥१॥ वहाँ पर नाना प्रकार के स्वरूप वाले गणो के साथ भगवान शम्भु क्रीडा किया करते थे। कुछ गण सिंह के समान मुखों वाले थे—कुछ शरभ के तुल्य आननो वाले थे। कुछ ऐसे गण भी थे जिनके मुख व्याघ्र के तुल्य थे। कुछ के मुख बहुत भयानक थे तथा गृध्र के समान मुख थे—कुछ ऊँट के से मुखो वाले थे—कुछ के मुख बहुत बडे तथा अश्वों के समान थे—कुछ विचित्र मुखों वाले और अन्य वृकों के तुल्य मुखों वाले थे—मूषिकों के समान मुखो वाले–मार्जार जैसे वदनो वाले—सर्पास्य और नकुल के तुल्य मुखो वाले—जम्बुकों के सदृश आननो वाले—दूसरे शिशुमार के समान मुखों वाले—अन्य रीछो के सदृश आननो वाले गण थे—मोर के समान मुखों वाले—तथा वगुलाओं के सदृश मुखों वाले–बन्दरो जैसे मुखों वाले–गधे के समान मुख से युक्त ऐसे बहुत से गण थे तथा अन्य असख्य प्रमथ थे जो जरा मरण से रहित थे–योगण नित्य तृप्त–निरातङ्क और काल का भी संहार करने मे समर्थ थे ॥२॥ से ॥७॥ तक

सहस्रकोटिसख्याकैः स्वच्छन्दगतिचारिभिः ।
क्रीडा विधाय भगवान्कैलासे पर्वतोत्तमे ॥८
तपसा महता शम्भुरनुगृह्य च मन्दरम् ।
कैलासं स परित्यज्य मन्दरे चारुकन्दरे ॥९

तत्रापि रममाणस्य गते वर्षसहस्रके ।
देवताना हितार्थाय प्रकृत्या सह शूलभृत् ॥१०
प्रक्रीडतीह विश्वात्मा कामासक्तश्च सर्वथा ।
प्रार्थितोऽहं सुरैः पूर्वं तारकस्य बधेप्सया ॥११॥
मद्रेतसः समुत्पन्नस्तारकं स हनिष्यति ।
इति मत्वा मपादेवे रममाणे सहोमया ॥१२॥
उत्पाताश्च महाघोराः संप्रवृत्ताः सुदारुणाः ।
रुधिरास्थीनि वर्षन्ति नदन्तो मेघसकुलाः ॥१३॥
वायवश्च महावेगा पर्वताश्चालयन्ति ते ।
विमानानि सुराणा च निपेतुर्वसुधातले ॥१४॥

ऐसे गणो की सहस्रो करोड सख्या थी और ये सब स्वच्छन्द गति के चरण करने वाले थे । इन सबके साथ भगवान् शम्भु पर्वतो मे उत्तम कैलास पर क्रीड़ा किया करते थे ।८। फिर भगवान् शम्भु ने महान् तप के द्वारा प्रसन्न होकर मन्दर पर्वत पर अनुग्रह किया था और कैलास का त्याग करके सुन्दर कन्दराओ वाले मन्दर गिरि पर जाकर क्रीडा करने लग गये थे । वहा पर भी रमण करते हुए भगवान् शङ्कर को एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे । यह इस प्रकार की क्रीडा शूली प्रभु ने प्रकृति के साथ देवो के ही हित सम्पादन करने के लिये की थी ।६।१०। यहा पर विश्वात्मा सर्वथा काम से आसक्त होकर ही क्रीडा कर रहे थे क्योंकि मैं तारक वध की इच्छा से सुरो के द्वारा प्रार्थित किया गया था ।११। क्योकि मेरे वीर्य से जो समुत्पन्न होगा वही तारक दैत्य का हनन करेगा । यह मानकर ही उमादेवी के साथ रममाण महादेवजी के होने पर महान् घोर एव परम दारुण उत्पात सप्रवृत्त हो गये थे । साकुल हुए मेघ गर्जन करते हुए रुधिर और अस्थियो की वृष्टि करने लगे थे । उस समय मे वायु भी महान् वेग वाली चलने लगी थी जो पर्वतो को भी चालित किया करते हैं । सुरगणों के विमान वसुधा तल मे गिर गये थे ।१२।१३।१४।

उल्काभिर्गगन व्याप्तं पतन्तीभिर्द्विजोत्तमा ।
केतवश्चोदिता सर्वे जृम्भन्त इव पावका ॥१५॥
दिग्दाहाश्च महाघोरा दावाग्निरिव सक्षये ।
मृत्युकाले यथा जन्तुर्नैव सौख्यमवाप्नुयात् ॥१६॥
जगत्त्रयमिद कृत्स्न न लभेत तथा सुखम् ।
न वेदा पठितास्तस्मिन्न विप्रा जजपुर्जपम् ॥१७॥
पार्वत्या कम्पमानाया कम्पमाने च शकरे ।
त्रैलोक्यमभवन्नून कम्पमान भयातुरम् ॥१८॥
कालाग्निकम्पितो देवो विरञ्चिर्मुनिभि सह ।
चक्रायुधोऽपि चात्यर्थमिन्द्राद्यं परिवारित ॥१९॥
ये केचिद्देवगन्धर्वा सिद्धा गगनचारिण ।
विद्याधराश्च यक्षाश्च सप्राप्ताश्च वसु धराम् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त शक्र देवर्षिसत्तम ।
यथावन्मधुपर्काद्यं शक्रस्तमभ्यपूजयत् ॥२१॥

हे द्विजोत्तमो ! गिरने वाली उल्काओ से सम्पूर्ण गगन व्याप्त हो गया था । सब केतु उदित हो गये थे जो कि जृम्भा लेते हुए पावको के ही समान थे ।१५। सक्षय के समय मे दावाग्नि के ही तुल्य महान् घोर दिग्दाह होने लग गये थे । जिस प्रकार से मृत्यु के समय मे जीव सुख प्राप्त नहीं किया करता है ।१६। ये तीनो भुवन सम्पूर्ण सुख प्राप्त नहीं किया करता था वह ऐसा समय समाप्त हो गया था कि उसमे न तो वेदो का ही पाठ किया जाता था और न विप्रगण जाप किया करते थे ।१७। पार्वती देवी के कम्पमान होने पर तथा प्रभु शङ्कर के प्रकम्पित हो जाने पर पूर्ण त्रैलोक्य निश्चित रूप से भयातुर और प्रकम्पित हो उठा था ।१८। देव विरञ्चि मुनियो के साथ कालाग्नि से कम्पित हो गये थे—सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले विष्णु भी इन्द्र आदि के साथ परिवारित होकर अत्यधिक कम्पायमान हो गये थे ।१९। जो कुछ देव गन्धर्व सिद्ध गगन मे सञ्चरण करने वाले थे और वे सब

विद्याधर और यक्ष वसुन्धरा पर आकर प्राप्त हो गये थे ।२०। इसी बीच में देवर्षियों में परम श्रेष्ठ नारद मुनि इन्द्र के समीप में समागत हुए थे । इन्द्रदेव ने जब तक मधुपर्क आदि के द्वारा उनका अभ्यर्चन किया था ।२१।

अब्रवीद्देवराजस्तमुपविष्टं महामुनिम् ।
त्रिकालदर्शिनं शान्तमात्मनिष्ठं तपोनिधिम् ॥२२॥
उत्पाताश्च महाघोरा सम्प्रवृत्ता सुदारुणा ।
कारणं वद मे सर्वं शान्तिश्चैव यथा भवेत् ॥२३॥
उमया सह विश्वेशं परं ज्योतिर्महेश्वरं ।
अहर्निशमविश्रान्तं युक्त एव प्रवर्तते ॥२४॥
तस्माद्धेतो प्रवर्तन्त उत्पाता वृत्रहन्किल ।
विघ्नं तस्य प्रकर्तव्यं यदीच्छसि परं सुखम् ।२५।
उमागर्भसमुत्पन्नं सर्वस्मादधिको हि स ।
कथं धारयितुं शक्ता ब्रह्माद्या ससुरासुरा ।२६।
जगन्नयमिदं कृत्स्नं धरणी धारयिष्यति ।
नापत्यधारणे शक्ता सजातं शिवयो खलु ।२७।
नारदस्य वचः श्रुत्वा शक्रो विस्मयतां गत ।
तदा चिन्तार्णवे मग्नो देवै सह पुरंदर ।२८।
पङ्के गौरिव सीदत्सु देवेष्वथ जनार्दन ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवानां हितकाम्यया ।२९।

जब देवर्षि अपने आसन पर समर्पित होकर उपविष्ट हो गये थे तो देवराज ने उन महामुनि से जो त्रिकाल की बातें जानने वाले थे तथा परम शान्त—आत्मनिष्ठ और तपो निधि थे ।२२। शक्रदेव ने कहा—हे महामुने ! परम दारुण महान् घोर उत्पात चारों ओर प्रवृत्त हो गये हैं । इन सबका क्या कारण है ? उसे आप बतलाइए जिससे कि यह सब शान्त होवें और हम सबको शान्ति की प्राप्ति हो जावे ।२३। श्री नारदजी ने कहा—पर ज्योति महेश्वर विश्वेश उमा के साथ अवि-

श्रान्त रूप से अहर्निश युक्त होकर ही प्रवृत्त होते रहे हैं। ॥२४॥ हे वृत्रहन ! उसी हेतु से ये सब उत्पात प्रवृत्त हो रहे हैं। उसका विघ्न करना चाहिए यदि परम सुख की इच्छा करते हो।२५। उमा के गर्भ से समुत्पन्न जो है वह सबसे अधिक है। ब्रह्मा आदि सुरासुर कैसे धारण करने के लिए समर्थ हो सकते है। धरणी इस तीनों जगतो के सम्पूर्ण समूह को धारण करेगी। शिव और शिवा इन दोनो के अपत्य के धारण करने से सजात को शक्त नही है। श्री नारदजी के इस वचन को सुनकर महेन्द्र विस्मय को प्राप्त हो गये थे। इसके अनन्तर पुरन्दर देवो के साथ चिन्ता के सागर मे निमग्न हो गये थे।२६।२७।२८। इसके अनन्तर पङ्क मे गौ के ही समान देवो के अवसन्न होने पर भगवान् जनार्दन ने देवो की हित की कामना से परम श्लक्ष्ण वाणी से कहा था।२६।

शृणुध्वं देवता सर्वा कामासक्तो न शङ्कर ।
युष्माकं हितकामाय भोगयुक्तोऽभवच्छिव ।३०।
स्वतन्त्रशक्तिर्विश्वात्मा जितकाम स्वभावत ।
सपूर्णकामः स विभु कथ कामेन वाध्यते ॥३१॥
तद्र तसा समुत्पन्नस्तारक स वधिष्यति ।
एतस्मात्कारणाद्देवो देव्या युक्तोऽभवत्सुरा ॥३२॥
किंतु तत्केवलोत्पन्न सेन्द्रै रपि सुरासुरै ।
तेजोधारयितु तस्य न शक्यमिति निश्चितम् ॥३३॥
इद यत्कार्यमुत्पन्न व्याधिरूप दिवौकसाम् ।
उपेक्षित न सदेहो हन्यान्नून जगत्त्रयम् ॥३४॥
यदि तत्केवलो जातो भविष्यति सुरास्तदा ।
असह्यो दुर्धरो घोर इति तथ्य न सशय ॥३५॥

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—हे समस्त देवों के समुदायो ! आप श्रवण कीजिए—भगवान् शङ्कर काम मे समासक्त नहीं होते हैं। भगवान् शिव आपके साथ लोगों के हित की कामना के लिये भोग मे युक्त हुए थे।३०। स्वतन्त्र शक्ति वाले विश्वात्मा स्वभाव से ही काम

को जीतने वाले हैं। वह विभु सम्पूर्ण काम हैं वे काम के द्वारा कैसे बाधित किये जा सकते हैं।३१। उनके वीर्य से जो समुत्पन्न होगा वही तारक का वध करेगा। हे सुरगणो ! इसी कारण से देवेश्वर देवी के साथ संयुत हुए हैं।३२। किन्तु उनसे ही केवल उत्पन्न को इन्द्र के सहित सुरासुरों के द्वारा भी उसका तेज धारण नहीं किया जा सकता है—यह सर्वथा निश्चित है।३३। यह जो व्याधिरूप जो देवों का कार्य समुत्पन्न हो गया है वह उपेक्षित नहीं है—इसमें कोई सन्देह भी नहीं है वह निश्चय ही जगत्त्रय का हनन कर देगा।३४। यदि यह केवल ही समुत्पन्न होगा तो हे सुरो ! उस समय में वह असह्य—दुर्धर—घोर होगा—यह तथ्य है और इसमें कुछ भी संशय नहीं है।३५।

स एव विष्णुर्बलवानिन्द्रश्चैव प्रजापति ।
स चाऽऽदित्यः कुबेरश्च ईशानो वरुणस्तथा ।३६।
स यम स च सोमश्च स वायु स्वर्गवासिन ।
स एव सर्वं भविता भवद्भिश्चेदुपेक्षित ।३७।
दृश्यतेऽत्राप्युपायश्च कार्यस्यास्य सुरोत्तमा ।
यस्मादग्निमुखा यूय तस्मादग्निर्हि नान्यथा ।३८।
यदुग्र गहन घोरमप्रधृष्यमगोचरम् ।
हृदि यद्भवता कार्यमग्निस्तत्साधयिष्यति ।३९।
एवमुक्त्वाऽथ विश्वादि शङ्खचक्रगदाधर ।
अब्रवीत्कृष्णवर्त्मानं देवाना सदसि स्थितम् ।४०।
शृणु मद्वचन वह्ने देवाना यदुपस्थितम् ।
त्वया तत्साधनीय हि हितार्थं त्रिदिवौकसाम् ।४१।
योऽसौ देव पर ज्योतिर्नीलग्रीवो विलोहित ।
रमते चोमया सार्धं चराचरपति शिव ।४२।

वह ही बलवान् विष्णु देव हैं और वही इन्द्र और प्रजापति है। वह आदित्य है—वही कुबेर हैं वही ईशान और वरुण है ॥३६॥ वह यम—वह सोम वह वायु और स्वर्गवासी हैं। वह ही सब होगा। यदि

आप लोगों के द्वारा उपेक्षित है ॥३७॥ हे सुरोत्तमो ! यहाँ पर भी उपाय इस कार्य का दिखाई देता है । जिससे तुम लोग अग्नि मुख हैं इससे अग्नि ही है अन्यथा नहीं है ॥३८॥ जो आप लोगों के हृदय में अत्यन्त उग्र—गहन—घोर अप्रघृष्य और अगोचर है उस कार्य को अग्नि सिद्ध करेंगे ॥३९॥ इस तरह से कह कर विश्व के आदि—शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले देवों के सभा में स्थित कृष्णवर्त्मा से बोले ॥४०॥ श्री विष्णु भगवान् ने कहा—हे वह्ने ! आप मेरे वचन का श्रवण करो जो कि कार्य इस समय में देवों का उपस्थित हुआ है । देवों के हित के लिये वह आपको साधित करना ही चाहिये । जो यह देव परम् ज्योति—नीलग्रीव—विलोहित हैं वे चराचर पति शिव उमा देवी के साथ रमण कर रहे हैं ॥४१॥४२॥

भयं तस्मात्समुत्पन्नं कारणाद्धि दिवौकसाम् ।
तस्माद्धिताय गच्छ त्वं महादेवस्य सन्निधौ ।४३।
मुख त्वमेव सर्वेषा कार्याणा चैव साधक ।
इत्येवं वचन श्रुत्वा पावक केशवात्तदा ॥
उवाचेद मुनिश्रेष्ठा श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।४४।
यदुक्त भवता देव किं त्वयुक्त सनातन ।
महेशस्य रह स्यस्य प्रवेष्टु नैव साम्प्रतम् ।४५।
ध्यानयुक्तो जन. यश्चिन्मग्नभोजनतत्पर ।
रहः स्योऽथ च दानस्थरतदयुक्त प्रवेशनम् ।४६।
जाप्योपहारयुक्तो वा होमयुक्तोऽथवा भवेत् ।
अर्चनाभिरत कश्चित्तदयुक्त प्रवेशनम् ।४७।
प्राकृतस्यापि देवेश रह स्यस्य रमापते ।
तस्मिन्काले सुरेशान गर्हित तु प्रवेशनम् ।४८।
किं पुनर्भगवान्भीमस्तिग्मरश्मिर्महेश्वर.
देवाना च हितार्थाय प्रकृत्या सह सगतः ।४६।

उस कारण से देवों को भय समुत्पन्न हो गया है। अतएव देवगण के हित के लिये आप इस समय में महादेव जी की सन्निधि में गमन कीजिए ॥४३॥ आप ही सब के मुख हैं और देवों के कार्य के साधक भी हैं। उस समय में इस वचन को पावक ने केशव के मुख से श्रवण किया था। हे मुनि श्रेष्ठो ! पावक देव ने श्रीवत्स के अङ्क से चिह्नित वक्ष स्थल वाले प्रभु से यह वचन कहा था ॥४४॥ अग्नि देव ने कहा—हे देव ! हे सनातन ! आपने जो भी कुछ कहा है वह अयुक्त है। रह में अर्थात् बिल्कुल एकान्त में स्थित महेश के समीप में प्रवेश करना उचित नहीं है ॥४५॥ कोई भी जन ध्यान में युक्त हो अथवा मन्त्र, जाप और भोजन में परायण—एकान्त स्थल में स्थित हो और दान में समवस्थित हो तब उसके समीप में प्रवेश करना युक्त नहीं होता है ॥४६॥ जाप्योपहार से कोई युक्त हो अथवा होम के कार्य में व्यस्त हो तथा देव की अर्चना करने में निरत हो तो उसके समीप में प्रवेश करना उचित नहीं होता है ॥४७॥ कोई साधारण मनुष्य भी जब एकान्त लीला में निरत हो तो देव रमापते ! उसके पास जाना अनुचित ही हुआ करता है। हे सुरेशान ! उस समय में प्रवेश करना तो उचित नहीं है और गर्हित भी माना जाता है ॥४८॥ फिर भगवान् के विषय में तो कहने की बात ही क्या है। भगवान् तो बहुत ही भीम है—तिग्म रश्मियों वाले है। वे महेश्वर तो देवों के हित सम्पादन करने के लिये प्रकृति के साथ सङ्गत हुए हैं ॥४९॥

नाहं तत्र विशे नूनं विभेमि मधुसूदन ।
आगतं मां समालोक्य क्षणाच्छम्भुर्हनिष्यति ।५०।

जुगुप्सितमिदं कार्यमिति कष्टं मयावहम् ।
विवस्त्रा जननी देवी कथं द्रक्ष्यामि केशव ।५१।

किं वक्ष्यति प्रविष्टस्य वक्ष्यामि किमहं विभो ।
जल्पयिष्यति मां देवो धिङ्मूर्खोऽयमिति ध्रुवम् ।५२।

यद्भाव्यं तद्भवत्तद्य न करोमिङ्चि निन्दितम् ।
अग्निना चैवमुक्तस्तु त्रिष्णुर्दानवसूदनः ।५३।
भयदं मोहदं श्रुत्वा वाक्ययं हृदयकम्पनम् ।
उवाच भगवान्विष्णुः पुनर्वाह्निमिति स्तुवन् ।५४।
त्रैलोक्यरक्षणार्थाय शक्रादीना च सनिधौ ।५५।

हे मधुसूदन ! वहाँ पर मे निश्चय ही प्रवेश नही कर सकता हूँ—मैं तो डरता हूँ। मुझको आया हुआ यदि शिवजी ने देख लिया तो एक ही क्षण मे शम्भु मेरा हनन कर देंगे ।५०। यह कार्य बहुत ही निन्दित है अतएव कष्टप्रद है, भया वह भी है। हे केशव ! मैं आप यह तो विचारिए नग्न हुई जननी को कैसे देखूँगा ।५१। प्रविष्ट हुए मुझसे वे क्या कहेंगी और हे विभो ! मैं फिर क्या उत्तर दूँगा। देव मुझसे यही कहेंगे—धिक्कार है—तू बडा निश्चय मूर्ख है ।५२। जो भी कुछ होनहार हो वह होवे, इस समय मैं बुरा काम नहीं करता हूँ। अग्नि देव के द्वारा दानवसूदन विष्णुभगवान् अब इस प्रकार से कहा गया तो भय देने वाला और मोह देने वाले वाक्य को सुनकर हृदय मे कम्पन होता है। भगवान् विष्णु ने पुन वह्निकी स्तुति करते हुए कहा था जो त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए इन्द्र आदि देवो की सन्निधि मे ही कहा था। ।।५३।५४।५५।।

यदुक्त भवता वह्ने सत्यमेतन्न सशय ।
आत्महेतोर्विरुद्ध स्यात्परार्थं नैव दुष्यति ।।५६।।
प्रदिष्टो देवदेवेन सहारार्थं कपर्दिना ।
प्रविश त्वमणो रूपमादाय न हि दुष्यसि ।५७ ।
प्रस्तुताप्रस्तुत नास्ति तेजोमूर्तेस्तवानघ ।
सर्वदा सर्वगस्त्व हि न क्वचित्प्रतिहन्यसे ।५८।
भूतग्रामं समस्त वै त्वमेको व्याप्य तिष्ठसि ।
उदरस्थः पचरन्न प्राणिना मेघवाहन ।५९।

स्वयैकेन जगत्कृत्स्न गोप्यते यदि पावक ।
किं न प्राप्तं त्वया ब्रूहि दोष: क. स्याद्धताशन ।६०।
जुगुप्साऽस्मिन्न कर्तव्या त्वया वै हव्यवाहन ।
उत्पन्नस्यास्य कार्यस्य काल एष तवानघ ।६१।
त्रिदशाः शरणं प्राप्ता हुतभुक्त्वा विभावसो ।
अहो धन्यतरश्चासि श्लाघ्यो यदि करिष्यसि ।६२।
कुरु कार्यं सुराणां त्वं मग्नानां करुणां कुरु ।
सर्वकाले यथा मर्त्या वीक्षमाणास्तु भास्करम् ।६३।

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—हे वह्ने ! तुमने जो कहा है यह सर्वथा सत्य ही है—इसमे कुछ भी संशय नही है किन्तु ऐसा करना अपने स्वार्थ के लिये तो अवश्य दोष होता है पर यदि दूसरो की भलाई के लिये किया जावे तो यह कोई दोष नही हुआ करता है ।५६। देवो के देव कैपर्दी ने यह संहार के लिए प्रदिष्ट किया है । अतएव आप अणु रूप को ग्रहण करके प्रवेश करिये तो कोई दोष से युक्त नहीं होओगे ।५७। हे अनघ ! आप तो तेज की मूर्ति हैं अतएव प्रस्तुत और अप्रस्तुत कुछ भी नही है । आप तो सर्वदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं और कहीं पर भी आप प्रति हनन नही किये जाते हैं ? ।५८। आप एक ही समस्त भूतो के समुदाय को व्याप्त करके स्थित रहा करते हैं । हे मेषवाहन ! आप प्राणियो के उदर मे स्थित होकर अन्न को पचाते हैं ।५९। हे पावक ! यदि आप एक के ही द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् की रक्षा की जाती है तो आपने क्या प्राप्त नही किया है—यह बतलाइये । हे हुताशन ! कौन सा दोष होता है ? ।६०। हे हव्यवाहन ! इस कार्य मे आपको जुगुप्सा नही करनी चाहिये । हे अनघ ! यह कार्य उत्पन्न हो गया है इसको करने के लिये आपका यह समय ही है । ।६१। हे विभावसो ! ये सब देवगण आपकी शरण मे प्राप्त हुए हैं । हे हुतभुक् ! आप इसके रक्षक हैं ? अहो ? आप यदि इस कार्य को कर देंगे तो अधिक धन्य और श्लाघा करने के ही योग्य होंगे ।६२। आप इस समय मे

सुरगणों का यह कार्य्य कर दीजिये और आप दु:ख में मग्न हुए इनके ऊपर करुणा करिए। जिस तरह से सभी कष्टों में मनुष्य भास्कर भगवान् को देखा ही करते हैं।६३।

तथा तवाऽऽस्यं वह्ने प्रपश्यन्ति सुरसत्तमाः ।
चारुचन्द्रप्रतीकाशं कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ।६४।
अनेन किं न पर्याप्तं वद नूनं विभावसो ।
एवं सम्बोध्यमानोऽग्निर्विष्णुना द्विजसत्तमाः ।६५।
हृदये चिन्तितं तेन यास्यामि हरसंनिधौ ।
ततो मनोगतं ज्ञात्वा अग्नेर्देवास्तदाऽनघाः ।६६।
सेन्द्राः सवरुणादित्याः सयक्षोरगराक्षसाः
तुष्टुवुस्ते शुभैर्वाक्यैः पावकं द्विजसत्तमाः ।६७।

हे वह्ने ! उसी प्रकार से सब सुर श्रेष्ठ आप का मुख देखते हैं। जो सुन्दर चन्द्रमा के समान प्रकाश वाला है और दो कुण्डलों से अलङ्कृत है।६४। हे विभावसो ! क्या इससे पर्याप्त नहीं है ? आप ही निश्चित रूप से बतलाइये। हे द्विज श्रेष्ठो ! भगवान् विष्णु के द्वारा इस प्रकार से सम्बोध्यमान अग्नि हुआ था।६५। उस अग्नि देव ने अपने हृदय में सोचा था कि मैं भगवान् शिव की सन्निधि में गमन करूँगा। उस समय में अनघदेवों ने अग्नि के मन में रहने वाले भाव का ज्ञान प्राप्त कर लिया था।६६। हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय में इन्द्र—वरुण—आदित्य—राक्षस—यक्ष और उरगों के सहित सब देवों ने परम शुभ वाक्यों के द्वारा पावक की स्तुति की थी।६७।

।। पावक स्तुत्यादि कथन ।।

जलभीरो जलोत्पन्न जलाजल जलेचर ।
जलजामलपत्राक्ष यज्ञदेव हुताशन ।१।
कृष्णकेतो कृष्णवर्त्मन्स्वर्गमार्गप्रदर्शक ।
यज्ञाहुतिहुताहार यज्ञाहार हराकृते ।२।
पूर्णगर्भ गवा गर्भ जय देव महाशन ।
तमोहर महाहार स्वाहाभर्तर्नम ऽस्तु ते ।३।
हव्यवाहन सप्तार्चे चित्रभानो महाद्युते ।
अनलाग्ने यज्ञमुख जय पावक सर्वग ४।
विभावसो महाभोग वेदभापार्थभापण ।
कृशानो क्रतुसभारप्रिय विश्वप्रभावन ।५।
सागराम्बुघृत देव त्वमश्वमुखसश्रितः ।
पिबश्चैवोदिरश्चैव न तृप्तिमधिगच्छसि ।६।
त्व वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिपत्सु च ।
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनि त्वा स्तुवन्ति त्वत्परायणा. ।७।

देवगण ने कहा—हे हुताशन ! आप जल से ही समुत्पन्न हुए है और आप जलाजल हैं तथा जलेचर भी हैं किन्तु आपको जल से भय होता है अर्थात् जल से डरे हुए रहते हैं। हे जलज के अमल दल के समान नेत्रो वाले। आप तो यज्ञो के देवता हैं ।१। हे कृष्ण वर्त्मन् ! आप कृष्ण केतु हैं और स्वर्ग के मार्ग के प्रदर्शक हैं। आप यज्ञो की आहुतियो के हुत का आहार करने वाले हैं—यज्ञो के आहार हैं और आप हर की आकृति वाले हैं ।२। हे देव महाशन ! आप पूर्ण गर्भ—गौओ के गर्भ है। आपका जय हो। आप तम के हरण करने पर महान् आहार वाले और स्वाहा देवी के भर्त्ता हैं। आपको हम सबका नमस्कार है ।३। हे हव्य वाहन ! आप सात अर्चियो से युक्त है। हे चित्रभानो ! आप महतीद्युति से

सम्पन्न हैं। हे अनलग्ने ! आप यज्ञ के मुख हैं। हे सर्वत्र गमन करने वाले पावक देव ! आपका जय हो।४। हे विभावसो ! हे महाभागा। आप वेदों की भाषा के अर्थ का मापण करने वाले हैं। हे वृशानो ! आप ऋतुओं के सम्भार से प्यार करने वाले है और समस्त विश्व के ऊपर कृपा करने वाले हैं।५। हे देव ! सागर के जल के घृत स्वरूप हैं और आप अभ्र मुख मे सस्थित हैं। आप उसका पान करते हुए और उसका उद्गिरण करते हुए भी कभी तृप्ति की प्राप्त नहीं होते है।६। आप ही में परायण रहने वाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनि आपका स्तवन किया करते हैं। आप वाक्यों में—अनु वाक्यों मे—निपदों मे और उपनिषदों मे है।७।

तुभ्य कृत्वा नमो विप्राः स्वकर्मविहिता गतिम्।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणा लोकान्सप्राप्नुवन्ति च।८।
त्वमन्तः सर्वभूताना भुवत भोक्ता जगत्पते।
पचसे पचतां श्रेष्ठ त्री लोकान्संक्षयिष्यसि।९।
साक्षी लोकत्रयस्यास्य त्वया तुल्यो न विद्यते।
शरण भव देवाना विश्वत्रयमहेश्वर।१०।
इत्येव स्तूयमानोऽसावुत्थाय ज्वलनस्तदा।
देवान्प्रदक्षिणीकृत्य ययौ शभुगृह द्विजाः।११।
तत्रापश्यत्प्रतीहार महादेवसम बले।
पूजित सेन्द्रकैर्देवैर्महादेवदिदृक्षुभिः।१२।
कपीन्द्रवदन देव कुलिशोद्यतपाणिनम्।
शूलहस्त महावीर्यं सूर्यायुतमिवोदितम्।१३।
नन्दिन तु तदा दृष्ट्वा पावकस्य द्विजोत्तमाः।
वेगस्तस्यातुलस्तीक्ष्णः सहसैव व्यहन्यत।१४।

हे विप्रो ! उन्होंने कहा—आपको नमस्कार करके प्राणी ब्रह्मा—इन्द्र—विष्णु और रुद्रों के लोकों को जाकर अपने कर्मों द्वारा विहित गति को प्राप्त किया करते हैं।८। हे जगत्पते ! आप समस्त प्राणियों के

अन्त करण है—आप ही मुक्त हैं और आप ही भोक्ता है। हे पचन करने वालो में परम श्रेष्ठ ! आप ही पावन किया करते हैं और आप तीनो लोको का सक्षय कर देंगे ॥६॥ आप इस त्रैलोक्य के साक्षी हैं और आपके सदृश अन्य कोई भी नही है। आप इस समय में सब देवो के शरण अर्थात् रक्षक हो जाइये। आप तीनो विश्वों के महेश्वर हैं ॥१०॥ इस रीति से स्तुति किये हुए अग्नि देव उस समय मे उठकर खडे होगये थे। हे द्विजो ! फिर अग्नि ने देवो की परिक्रमा करके फिर अग्निदेव शम्भु के घर मे चले गये थे। वहाँ पर बल मे महादेव जी से भी अधिक द्वारपाल को देखा था जो इन्द्र के साथ समस्त महादेव जी के दर्शन करने की इच्छा वाले देवो के द्वारा पूजित थे ॥११॥१२॥ वह द्वारपाल कपीन्द्र के समान मुख वाले और हाथ मे कुलिश ग्रहण करके उद्यत, शूल मे हाथ मे ग्रहण किये हुए, महान वीर्य से युक्त और दश सहस्र उदित सूर्यों के तुल्य नन्दी को वहाँ पर देखा था हे द्विजोत्तमो ! उसी समय मे पावक का जो अतुल और तीक्ष्ण वेग था वह सहसा ही हृय-मान होगया था ॥१३॥१४॥

तत्रस्थश्चिन्तयामास पश्यामीति कथ हरम् ।
नन्दिना द्वारसस्थेन पुमान्न प्रविशेद्गृहम् ॥१५
पश्यमानस्य शैलादे प्रविशे यद्यह गृहम् ।
फलसिद्धि न गच्छेय नन्दिना कुपितेन च ॥१६
एव चिन्तार्णवे मग्नो यावत्तिष्ठत्यसौ कवि ।
द्विजान्नानविधास्तावद्भ्रममाणाश्च दृष्टवान् ॥१७
तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास हसस्य हरसंनिधौ ।
रूप कृत्वा प्रवेक्ष्यामि इत्युपायमचिन्तयत् ॥१८
आदाय हसरूप तु प्रविष्ट पावकस्तदा ।
प्र वश्य शङ्कारहित सूक्ष्मरूपो व्यवस्थित ॥१९
पार्वत्या वाहन सिहमपश्यच्च विभावसु ।
गोक्षीरधवलाभास महालाङ्गूलशोभितम् ॥२०

जाज्वल्यमाननयन चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।
प्रसारितच्छटाटोप हु कारकृतभूषणम् ॥२१

वहाँ पर खड़े हुए अग्नि ने चिन्ता की थी कि मैं भगवान् शिव को कैसे देखूँ गा। द्वार पर सस्थित नन्दी के द्वारा कोई भी पुरुष गृह मे प्रवेश नही कर सकता है ॥१५॥ इस गौलादि के देखते हुए यदि मैं प्रवेश करता हूँ तो कुपित हुए नन्दी के द्वारा मैं कभी भी फल की सिद्धि को प्राप्त नही कर पाऊंगा ॥१६॥ इस प्रकार से चिन्ता से आतुर होकर जब तक यह अग्नि स्थित होता है तभी वहा पर अग्नि ने इधर-उधर भ्रमण करते हुए अनेक द्विजो को वहाँ पर देखा था ॥१७॥ हर की सन्निधि मे उन द्विजो को देखकर मैं ह स का स्वरूप धारण करके प्रवेश करू गा—यही उपाय उसने सोचा था ॥१८॥ उस समय मे ह स के रूप को ग्रहण करके पावक ने प्रवेश किया था। प्रवेश करके वह शङ्का से रहित होगया था और सूक्ष्म रूप वाला होकर व्यवस्थित होगया था ॥१६॥ विभावसु ने पार्वती देवी के वाहन सिंह को वहाँ पर देखा था जो कि जो मे दूध के समान धवल आभास वाला था और बहुत बडी पू छ से शोभित था ॥२०॥ उस सिंह के जाज्वल्यमान नेत्र थे और करोडो चन्द्रो के समान प्रभा वाला था। उस सिंह ने सटाओ के आटोप को प्रसारित कर रक्खा था और हु कारो के भूषण से सयुत था ॥२१॥

दानवाना क्षयकर देवानामभयप्रदम् ।
हु कारेण ततस्तस्य ज्वलनो बधिरीकृत ॥२२
अहो दु खमिद प्राप्तमिति सचिन्त्य चेतसा ।
यदि जीवन्गमिष्यामि सिंहादस्मादह तदा ॥२३
तेन पर्याप्तकामोऽहमिति सचिन्त्य निर्गत ।
यत्र देवा महेन्द्राद्याः सस्थिता मेरुमूर्धनि ॥
देवाः सर्वे सुसहृष्टा ऊचुस्त जातवेदसम ॥२४

अस्मत्कार्यं त्वया वह्ने गत्वा तत्र यथा कृतम् ।
तत्सर्वं ब्रूहि न क्षिप्रं शर्मास्माकं यथा भवेत् ॥२५
गतोऽहं तस्य भवनं देवदेवस्य शूलिनः ।
मया नन्दीश्वरो दृष्टो द्वारदेशे उपस्थितः ॥२६
हंसरूपं ततः कृत्वा प्रविश्यान्तःपुरं सुराः ।
तत्र सूक्ष्मवपुर्भूत्वा यावत्क्षणमहं स्थितः ॥२७
तावत्पश्चाननो दृष्टो गिरिजायास्तु वाहनम् ।
अतिरौद्रो महाकायः प्रलयान्तकसन्निभः ॥२८

वह सिंह दानवों के क्षय का करने वाला और देवों को अभय का प्रदान करने वाला था। इसके पश्चात् उस सिंह की हुंकार से वह अग्नि बहिरा सा होगया था ॥२२॥ अहो ! यह दुःख मुझे प्राप्त होगया है—ऐसा चित्त से उसने चिन्तन किया था। उस समय में इस सिंह से यदि मैं जीवन बचाना चाहता हूं तो मैं इससे पर्याप्त काम वाला हूं—ऐसा सोचकर वह वहाँ से निकल कर चला गया था। जहाँ पर महेन्द्र आदि देव सुमेरु पर्वत के मस्तक पर संस्थित हो रहे थे। समस्त देवगण परम प्रसन्न हुए थे और उन्होंने अग्निदेव से कहा था ॥२३॥२४॥ देवों ने कहा—हे अग्ने ! आपने हमारा वहाँ पर जाकर जिस प्रकार से किया था वह सभी हमको आप बतलाइये जिससे हम सबका कल्याण होवे ॥२५॥ अग्निदेव ने कहा—मैं उन देवों के देव शूली के भवन में गया था वहाँ पर द्वारदेश में स्थित नन्दीश्वर को मैंने देखा था ॥२६॥ हे सुरो ! इसके अनन्तर मैंने हंस का रूप धारण किया था और फिर मैंने अन्तःपुर में प्रवेश किया था। फिर बहुत ही अधिक सूक्ष्म स्वरूप बना कर जब तक मैं क्षण भर वहाँ पर स्थित रहा था ॥२७॥ तब तक गिरिजा का वाहन पञ्चानन (सिंह) मैंने देखा था। वह अत्यधिक रौद्र, महान् वपु वाला और प्रलयान्तक के तुल्य था ॥२८॥

भीतोऽहं निर्गतस्तस्माददृष्ट्वैव पिनाकिनम् ।
युष्मत्कार्यमकृत्वैव सम्प्राप्त इह भो सुराः ॥२९

पुनर्विचिन्त्यता कार्यं सर्वेषां वो यथा सुखम् ।
एवं वह्नेर्वचः श्रुत्वा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥३०
ययुर्मुनिगणैः सार्धं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
समासाद्य गिरिश्रेष्ठं प्रियं देवस्य शूलिनः ॥३१
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे ह्यस्तुवन्वृषभध्वजम् ॥३२
ॐ नमः परमेशाय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने ।
विरूपाय सुरूपाय पञ्चास्याय त्रिमूर्तये ॥३३
वरदाय वराहाय कूर्माय च मृगाय च ।
नीलालकशिखण्डाय मण्डलेशाय ते नमः ॥३४
विश्वमानाय विश्वाय विश्वेशायाऽऽत्मरूपिणे ।
कालघ्नाय मखघ्नाय अन्धकघ्नाय वै नमः ॥३५

मैं तो अत्यन्त ही भीत होगया था और भगवान् पिनाकी को न देखकर ही मैं उस स्थान से निर्गत होगया था। हे सुरगणो ! आप लोगों का कार्य न करके ही मैं यहाँ पर प्राप्त हो गया हूँ ॥२६॥ पुनः आप विचार कीजिये जिससे आप लोगों को सुख समुत्पन्न होवे। इस प्रकार से अग्नि के वचन को श्रवण करके विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवता सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल पर मुनिगणों के साथ गये थे। देवेश्वर भगवान् शूली के परम प्रिय उस श्रेष्ठ गिरि पर पहुँच कर सब हाथों को जोड़ कर वृषभध्वज प्रभु का स्तवन करने लग गये थे ॥३०॥३१॥३२॥ देवों ने कहा—परमेश, त्रिनेत्र, त्रिशूली प्रभु के लिये हमारा नमस्कार अर्पित है। विरूप, सुरूप, पञ्चमुखी, त्रिमूर्ति, वराह, कूर्म, मृग, नीले अलकों वाले शिखण्ड और मण्डलेश आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ॥३३॥३४॥ विश्वमान, विश्व, विश्वेश, आत्मरूपी, कालघ्न, मख का हनन करने वाले तथा अन्धकासुर के मारने वाले आपके लिये हम सबका प्रणाम है ॥३५॥

नमो मन्त्राय जप्याय कोटिजाप्याय ते नमः ।
ध्यानाय ध्येयरूपाय ध्येयध्यानात्मने नमः ॥३६

ईशोऽनीशस्त्वमेवेश अन्तोऽनन्तस्त्वमेव च ।
अव्ययस्त्वं व्ययश्चैव जन्माजन्म त्वमेव च ॥३७
नित्यानित्यस्त्वमेवेश धर्माधर्मस्त्वमेव च ।
गुरुस्त्वमगुरुर्देव बीजं वाऽबीजमेव च ॥३८
कालस्त्वमसि लोकानामकालः परिगीयसे ।
बलस्त्वमबलश्चैव प्राणश्चाप्राण एव च ॥३९
साक्षी त्वं कर्मणां देव तथाऽसाक्षी महेश्वर ।
शास्ताऽशास्ता विरूपाक्ष ध्रुवश्चाध्रुव एव च ॥४०
संसारी त्वं हि जन्तूनामसंसारी त्वमेव च ।
गोप्ता त्वं सर्वभूतानां नास्ति गोप्ता तवेश्वर ॥४१
जीवस्त्वं जीवलोकस्य जीवस्तेऽन्यो न विद्यते ।
न्यूनातिरिक्तभावेन त्वमायुश्च शरीरिणाम् ॥४२

मन्त्ररूप, जप्यस्वरूप और कोटि जाप्य के लिये नमस्कार है ॥३६॥ हे ईश ! आप ईश और अनीश है । और आप ही अन्त तक अनन्त है । आप अव्यय हैं और व्यय हैं । और आप ही जन्म तथा अजन्म है ॥३७॥ हे ईश ! आप ही नित्य तथा अनित्य भी है । आप धर्म तथा अधर्म हैं । आप गुरु और अगुरु हैं आप सबके बीज हैं और अबीज भी हैं ॥३८। आप लोकों के काल हैं और आप अकाल भी गाये जाते हैं । आप बल है और अबल भी हैं । आप प्राण और अप्राण हैं ॥३९॥ हे भगवन् ! आप साक्षी हैं जोकि सब लोग कर्म करते हैं उनको देखने वाले हैं । हे देव महेश्वर ! आप असाक्षी हैं । आप शास्ता, अशास्ता, हे विरूपाक्ष ! आप ध्रुव तथा अध्रुव हैं । आप जन्तुओं के संसारी है और आप ही असंसारी हैं । आप समस्त भूतों के गोप्ता है और आपका गोप्ता ईश्वर नहीं है । आप इस जीव लोक के जीव हैं और आपका जीव अन्य कोई भी विद्यमान नहीं है । न्यून तथा अतिरिक्त भाव से शरीर धारियों के आप ही आयु है ॥४०-४२॥

देहिना शङ्करस्त्वं हि न चान्यस्तव शङ्कर ।
अरुद्रस्त्वं महादेव रुद्रस्त्वं घोरकर्मणाम् ॥४३
देवानां च महादेवो महास्त्वत्तो न विद्यते ।
कामस्त्वं भविनां सर्वकामदस्त्वं जगत्पते ॥४४
अजेयो जयिनां श्रेष्ठो जयरूपस्त्वमेव हि ।
पुराणपुरुषस्त्वं हि पुराणोऽन्यो न विद्यते ॥४५
व्यालयज्ञोपवीताय सरोजाङ्काय ते नमः ।
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय मीढुषे ॥४६
नमः कपालहस्ताय पाशहस्ताय दण्डिने ।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय च ॥४७
ऊर्ध्वमार्गप्रणेत्रे च नमस्ते ह्यूर्ध्वरेतसे ।
क्रोधिने वीतरागाय गजचर्मावगुण्ठिने ॥४८
नमो ब्रह्मशिरोघ्नाय नमस्ते रुक्मरेतसे ।
नमश्चण्डाय धीराय कमण्डलुनिषङ्गिणे ॥४९

आप देहधारियों के शङ्कर अर्थात् कल्याण करने वाले हैं और अन्य कोई भी आपके कल्याण करने वाला शङ्कर नहीं है। हे महादेव ! आप ही अरुद्र हैं और जो घोर कर्मों के करने वाले प्राणी हैं उनके लिये आप ही रुद्र होते हैं। आप सब देवों में महान् देव हैं और आपसे महान् अन्य कोई भी नहीं है। आप भावियों के काम हैं। हे जगत्पते ! आप सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं ॥४३॥४४॥ आप स्वयं अजेय हैं और आप जय वाला में परम श्रेष्ठ हैं। आप स्वयं ही जय स्वरूप वाले हैं। आप परम पुराण पुरुष हैं। आपसे पुराण अन्य कोई भी नहीं है ॥४५॥ व्याल (सर्प) का यज्ञोपवीत धारण करने वाले और सरोजाङ्क आपके लिये हम सबका प्रणाम है। नीलग्रीव, शितिकण्ठ, मीढुष आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥ कपाल हाथ में रखने वाले, पाशहस्त, दण्डी, देवों के अधिदेव आपको नमस्कार है। नारायण आपको प्रणाम है ॥४७॥ ऊर्ध्व मार्ग के प्रणेता, ऊर्ध्वरेता आपके लिये नमस्कार है।

क्रोधी, वीतराग, गज के चर्मन का अनुष्ठन करने वाले, ब्रह्मा के शिर का हनन करने वाले और रुक्मरेता आपकी सेवा मे हम सब का प्रणाम समर्पित है। चण्ड, धीर, कमण्डलुनिषङ्गी आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥४६॥

नमः प्रचण्डवेगाय क्रोधचण्डाय ते नमः ।
वरेण्याय शरण्याय ब्रह्मण्यायाम्बिकापते ॥५०
सर्वानुग्रहकर्ता स्थ धनदाय नमो नमः ।
नम॰ ससारपोताय अणिमादिप्रदायिने ॥५१
ज्येष्ठसामादिसस्थाय रथतराय ते नमः ।
त्रिगाथाय त्रिमात्राय त्रिमूर्तं त्रिगुणात्मने । ५२
त्रिवेदिने त्रिसंध्याय त्रिशून्याय त्रिवर्मणे ।
त्रिदेहाय त्रिकालाय त्रिशक्तिव्यापिने नमः ॥५३
शक्तित्रयविहीनाय शक्तित्रययुताय च ।
शक्तित्रयात्मरूपाय शक्तित्रयधराय च ॥५४
योगीशाय विपघ्नाय विजयाय नमो नमः ।
नमस्ते हरिकेशाय लोकपालाय दण्डिने ॥५५
हलीशाय प्रमेयाय कुलीशाय तु चक्रिणे ।
नमो बिन्दुविसर्गाय नादायानादधारिणे ॥५६

प्रचण्ड वेग वाले को नमस्कार है तथा प्रचण्ड क्रोध वाले को प्रणाम है। वरेण्य, शरण्य और ब्रह्मण्य आपके लिये हे चण्डिकापते ! नमस्कार है ॥५०॥ आप सभी पर अनुग्रह करने वाले हैं, धनद आपकी सेवा मे नमस्कार है तथा बारम्बार प्रणाम है। इस ससार रूपी सागर के तरण करने के लिये पोत स्वरूप आपकी सेवा मे प्रणाम हैं तथा अणिमा आदि सिद्धियो के प्रदाता आपको मेरा नमस्कार है ॥५१॥ ज्येष्ठ सामादि सस्थ और रथन्तर के लिये नमस्कार है। त्रिगाथ, त्रिमात्र, त्रिमूर्त्ति और त्रिगुणात्मा आपकी सेवा मे नमस्कार है ॥५२॥ त्रिवेदी, त्रिसन्ध्य, त्रिशून्य, त्रिवर्मा, त्रिदेह, त्रिकाल और त्रिशक्ति व्यापी आपके लिये

नमस्कार है ।।५३।। तीन शक्तियों से विहीन तथा शक्तित्रय से युक्त अर्थात् तीन शक्तियों के धारण करने वाले, योगीश, विष का हनन करने वाले, विजय आपके लिये बारम्बार प्रणाम अर्पित है। हरिकेश, लोकपाल, दण्डी, हुतीश, प्रमेय, कुलीश, चक्री, बिन्दुविसर्ग, नादरूप और अनादधारी आपको नमस्कार है ।।५४-५६।।

नाडीस्थाय च नाड्याय नाडीवाहाय वै नमः ।
नमो गायत्रीनाथाय गायत्रीहृदयाय ते ।।५७
नमो गायत्रीगोप्त्रे च गायत्र्याय नमो नमः ।
य इदं पठते स्तोत्रं गीर्वाणैः समुदीरितम् ।।५८
यावज्जीवकृतैः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ।
एवं स्तुतः सुरैः शंभुः प्रसन्नो वरदोऽभवत् ।।५९
वरं वृणीध्वं हे देवा इत्युवाच महेश्वरः ।
अथ तं वरदं ज्ञात्वा शंभुमग्निमुखाः सुराः ।।६०
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे भयं त्यक्त्वा द्विजोत्तमाः ।
यदि तुष्टोऽसि विश्वेश देहीमं वरमुत्तमम् ।६१
गिरिजाकुक्षिसंभूतं पुत्रो मा भूत्तवानघ ।
एवमस्त्वित्यसौ शंभुः पुनरुक्त्वा ततो वचः ।।६२
नाहं रेतो वृथा स्कन्दे त्रैलोक्यक्षयकारकम् ।
वृथा शुक्रे मदीये तु त्रैलोक्यं भस्मसाद्भवेत् ।।६३

नाडीस्थ, नाड्य, नाडीवाद को नमस्कार है। गायत्री के नाथ, गायत्री के हृदय, गायत्री के गोप्ता और गायत्र्य आपके लिये बार-बार नमस्कार है। जो कोई इस स्तोत्र को जो कि देवों के द्वारा समुदीरित है पढ़ता है वह जब तक जीवन में किये हुए पाप होते हैं उन सबसे विमुक्त होकर परमगति को प्राप्त किया करता हैं। इस प्रकार से देवों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् शम्भु परम प्रसन्न होगये थे और वरदान प्रदान करने वाले होगये थे ।।५७-५९।। महादेव जी ने कहा—हे देवगणो ! वरदान का वरण करलो। इसके अनन्तर अग्निमुख सुरो

ने भगवान् शम्भु को वरदाता जानकर हाथों को जोड़ते हुए सब देवगण हे द्विजोत्तमो ! भय छोड़कर बोले ॥६०॥६१॥ देवगणों ने कहा—हे विश्वेश ! यदि आप परम तुष्ट होगये हैं तो आप इस उत्तम वरदान को प्रदान कीजिए ॥६२॥ हे अनघ ! गिरिजा के कुक्षि से समुत्पन्न आपका पुत्र न होवे। ऐसा ही होवेगा—यह शम्भु ने यह कहकर फिर यह वचन कहा—॥६२॥ मैं अपना रेत (वीर्य) वृथा स्कन्दित नहीं करता हूँ क्योंकि यह त्रैलोक्य के क्षय का करने वाला है। मेरे शुक्र के वृथा होने पर तो यह त्रैलोक्य ही भस्मसात् हो जायगा ॥६३॥

हिताय तस्माल्लोकाना मम रेतो दिवौकसः ।
शान्त्यर्थं चैव युष्माभिः शीघ्रमेव प्रयुज्यताम् ॥६४
एवं शम्भोर्वचः श्रुत्वा देवास्ते भयविह्वलाः ।
सलोकेशाः सगोविन्दा न किंचिदप्रुवन्द्विजाः ॥६५
अथ देवेषु सीदत्सु वह्निर्गौरिव कर्दमे ।
प्रसार्य स्वाञ्जलिं शम्भुं रेतो मुञ्चेति चाब्रवीत् ॥६६
देवदेवामृतं दिव्यं हस्ताभ्यां मम शंकर ।
शीघ्रमेव प्रयच्छस्व पिबन्तु सुरपुंगवाः ॥६७॥
ततो लिङ्गाद्विनिनिष्क्रान्तं चन्द्रबिम्बात्सुनिर्मलम् ।
जातीनीलोत्पलामोदं पाणौ वह्नेर्ददौ शिवः ॥६८
कराभ्यां पतितं रेतस्तदाऽभूत्पावकस्य वै ।
पपौ वह्निस्ततः शुक्रं ज्वलत्तद्भास्करप्रभम् ॥६९
सुधेति मनसा मत्वा हृष्टात्मा मुदयाऽन्वितः ।
अथ पीते सदा शुक्रे वह्निना मुनिपुंगवाः ॥७०

इस कारण से लोकों के हित के लिये ही हे देवगणो ! मेरे रेत को आप भोग शक्ति के लिये शीघ्र ही प्रयोग में लाइये ॥६४॥ इस प्रकार के शम्भु के वचन को सुनकर वे सब देवगण भय से विह्वल होगये थे। हे द्विजो ! लोकपालों के सहित और गोविन्द के सहित देवों ने कुछ भी नहीं कहा था ॥६५॥ इसके अनन्तर देवों के दुःखित होने पर अग्नि

कीच मे फँसी हुई गौ की तरह से अपनी अञ्जलि को फैलाकर शम्भु के समक्ष मे कहा था कि आप रेत का मुञ्जन कीजिए ॥६६॥ हे शङ्कर ! मुझे दिव्य आप देव देवामृत हाथो से शीघ्र ही प्रदान कीजिये जिसको सुरश्रेष्ठ पान करें ॥६७॥ इसके पश्चात् भगवान् शिव ने लिङ्ग से विनिष्क्रान्त चन्द्रविम्व से सुनिर्मल-जातीफल नीलोत्पल के समान आमोद अग्नि के हाथ मे दिया था ॥६८॥ करो से गिरा हुआ रेत उस समय मे पावक का होगया था। इसके अनन्तर वह्नि ने जलते हुए भास्कर की प्रभा के तुल्य प्रभा वाला वह शुक्र पावक ने पी लिया था ॥६९॥ यह सुधा है—ऐसा मन से मानकर बहुत प्रहृष्ट आत्मा वाला और आनन्द से युक्त होगया। हे मुनि श्रेष्ठो ! इसके अनन्तर वह्नि के द्वारा उस समय मे शुक्र के पान किये जाने पर परम प्रसन्नता हुई थी ॥७०॥

रेत पातेन सतर्प्य स देवासुरपूजितः ।
विसृज्य तास्तु भगवास्तत्रैवान्तरधीयत ॥७१
तदा हविर्भुजं देव सेन्द्रा ब्रह्मपुरोगमाः ।
यथाऽऽगता ययुस्तत्र पूजयित्वा दिवौकस ॥७२
रेतसा दह्यमानोऽग्निः पातालात्सुतल गत. ।
ततो विवेश गिरिशो यत्राऽऽस्ते पार्वती शिवा ॥७३
उवाच पार्वती शम्भु. प्रहृष्टकमलेक्षणाम् ।
शृणु देवि महाभागे यद्वृत्त तद्ब्रवीम्यहम् ॥७४
स्वतन्त्रकामाऽसि शिवे यथाऽह वरवर्णिनि ।
देवा मच्छरण प्राप्ता न चाह शरण त्यजे ॥७५
गोप्या मया सदा कान्ते महादेवो मतः स्मृतः ।
भविष्यति महाभागे पुत्रस्तव षडानन ॥७६
किं त्वौरसस्तु सुश्रोणि देवैर्नेष्टस्तवांशतः ।
तस्माच्छुद्धं (क्षिप्त) मया रेतो मुखे वै जातवेदसः ॥७७

उन देवो और असुरो के द्वारा पूजित प्रभु ने रेतस् के पात के द्वारा भलीभाँति तर्पण कर और उनको विदा करके भगवान् वहीं पर

अन्तर्हित होगये थे ॥७१॥ उस समय में इन्द्र के सहित ब्रह्माजी जिनमें अग्रगामी थे सब देवों ने हविर्भुज देव का पूजन किया था तथा फिर जैसे आये थे वैसे ही सब चले गये थे ॥७२॥ उस शुक्र के पीने से अग्नि दह्यमान होगया था और वह पाताल से गुहलोक को गया था। इसके पश्चात् गिरीश प्रभु ने अन्दर प्रवेश किया था जहाँ पर शिवा पार्वती विराजमान थीं। उन कमल के समान लोचनों वाली पार्वती जी से भगवान् शम्भु ने हँसते हुए कहा था—ईश्वर ने कहा—हे महाभागे। हे देवि! आप सुनिए—जो कुछ घटित हुआ है उसको मैं आपको बोलता हूँ ॥७३॥७४॥ हे शिवे! आप स्वतन्त्र काम वाली हो हे वर वर्णिनि! जिस प्रकार से मैं हूँ। देवगण मेरी शरण में प्राप्त हुए थे और जो मेरी शरण में आजावे उसका मैं त्याग नहीं किया करता हूँ ॥७५॥ हे कान्ते! ये शरणागत देव मेरे द्वारा सदा ही रक्षा करने के योग्य होते हैं और महादेव रत कहे गये हैं। हे महाभागे! आपका पुत्र षडानन होगा ॥७६॥ किन्तु हे सुश्रोणि! आपका और सपुत्र देवों के द्वारा आपके अंश से अभीष्ट नहीं था। इससे मैंने शुद्ध वीर्य अग्नि के मुख में डाल दिया है ॥७७॥

वह्निकुक्षिगतं रेतो गतं देवान्विभागशः ।
यच्छेषमुदरे वह्निस्तद्गङ्गायां प्रदास्यति ॥७८
ततः साऽपि विदह्यन्ती मम तेजः पतापवत् ।
कृत्तिका षट् समाख्याता गङ्गायां स्नातुमागताः ॥७९
तासु गङ्गाविनिक्षिप्तं मम रेतस्तदद्भुतम् ।
ततस्ताः कृत्तिकाः स्तब्धा देवि मां शरणं गताः ॥८०
अनुग्रहान्मया तासामिदमुक्तं तदा शिवे ।
ममाऽऽदेशान्दता सर्वाः शरधानवन शुभम् ॥८१
मोचयिष्यन्ति ता गर्भं देवाश्च कमलेक्षणे ।
वचनान्मम सुश्रोणि भंशल्य वरानने ॥८२

ततस्ते भविता पुत्र एकीभूत्वा स्वतेजस ।
यालसूर्यायुतप्रस्यो वालेन्दुभ्रूलताङ्कित ।।८३
आग्नेयो वह्निजो गाङ्गेय कृत्तिकामुत ।
स्कन्दो गुहस्तथा पुत्रो नामभिरते भविष्यति ।।८४

अग्नि की कुक्षि में प्राप्त हुआ रेत विमागदा देवा को गया था। जो कुछ उदर मे शेष रह जायगा उसको वह अग्नि गङ्गा मे प्रदानकर देगा ।।७८।। वह भी इसके अनन्तर विहाय होती हुई मेरे प्रताप वाले तेज को उस गङ्गा ने उन कृत्तिकाओं म विनिक्षिप्त कर दिया था। जो थी कृत्तिकाएँ समाख्यात की गयी हैं और जो गङ्गा मे स्नान करने के लिये ही वहाँ पर समागत हुई थी किन्तु मेरा शुक्र बहुत ही अद्भुत था। हे देवि ! इसके अनन्तर वे कृत्तिकाएँ स्तब्ध हो गयी थी और मेरी शरण में समागत हो गयी थी ।७६।८०। हे शिवे ! उनके ऊपर अनुग्रह करके मैंने उस समय मे उनसे यह कहा था कि तुम शुभ शर-धान वन म चली जाओ और मेरे आदेश से वहाँ पर चली गयी थी ।८१। हे कमलेक्षणे ! वे वहाँ पर गर्भ का मोचन करेंगी। देव रानने ! और देवगण हे सुश्रोणि ! मरे वचन से वह गर्भ शल्य हो गया था। इसके पश्चात् वह तेरा पुत्र होगा जो अपन तेज को एकीभूत होकर ही होगा। वह बाल सूर्य जो दस हजार हा उनक समान मुख्य होगा और वालेन्दु के समान भ्रूलताओ से अङ्कित है। उसक बहुत स नाम भी होंगे—केनाम गाङ्गेय—वह्निज—देव—आग्नेय—कृत्तिका सुत—स्कन्द—गुह वे सभी उसके हागे ।।८२।।८३।।८४।।

एव शभोर्वच श्रुत्वा प्राह देवी गिरीन्द्रजा ।
मम कुक्षिसमुत्पन्न यतो नेच्छन्ति पुत्रकम् ।।८५
अत पुनर्विहीवारते भविष्यन्ति सुरादय ।
यो हि नन्दी महावीर्य सुरासुरमहोरगै ।।८६
दुर्जय सर्वभूताना योगी योगवलान्वित ।
प्रविश्यान्त पुरे वह्निर्दृष्ट्वा मा वस्त्रवर्जिताम् ।।८७

यस्मादुपेक्षितस्तस्मान्मनुष्यत्व प्रयातु स ।
शाप श्रुत्वास्य शैलादिर्वज्रेणेव हतो गिरि ॥८८
न्यपतद्योगिनामग्र्यो ज्ञानमूर्तिधरो द्विजा ।
पुनश्च शंभोर्वचनाच्छैलादिमनुगृह्य च ॥
समालिङ्ग्य महादेव स्थिति देवीति न श्रुतम् ॥८९

इस रीति से कथित भगवान् शम्भु के वचन को सुनकर गिरीन्द्रजा ने कहा—मेरी कुक्षि से साक्षात् समुत्पन्न होने वाले पुत्र को जिस कारण से भी देवगण नहीं चाहते है अतएव वे समस्त सुरगण आदि देव यानि वाले पुत्रो स विहीन ही हो जाँयगे। अर्थात् उनके किसी के भी पुत्र नहीं होगे। दूसरो का जो अहित चाहते है उनको यही परिणाम होना ही चाहिए। जो महनन्दी है और ऐसा महान् वीर्य वाला है जिसको सुर-असुर और महेश्वर भी नहीं जीत सकते हैं वह समस्त भूतो मे योगी और योग के बल से समन्वित है उसके द्वारा जिस कारण से उपेक्षित वह्निको कर दिया गया था और उस वह्निने ने मुझको वस्त्र से रहित देखा था इस कारण से वह मनुष्यत्व को प्राप्त करेगा। इस शाप का श्रवण करके शैलादि वज्र से हत गिरि के ही समान हत होकर हे द्विजो ! वह ज्ञान मूर्तिधारी और योगियो से अग्रणी गिर गया था। फिर शम्भु देव के वचन से शैलादि पर अनुग्रह किया गया था। इसके पश्चात् वह देवी महादेव जी का समालिङ्गन करके स्थित हो गयी थी—ऐसा ही हमने सुना है।८५।८६।

———

।। परमेश्वर-सुर सम्वादादि कथन ।।

वह्नौ संतर्पिते सूत रेतसा त्रिदिवौकस. ।
सगर्भाः खलु. स जाता देवदेवेन शंभुना ॥१
सौख्यं कथमवापुस्त उदरस्थेन रेतना ।
किमकुर्वस्तदा सर्वे नारायणपुरोगमा. ॥२
गर्भनिष्क्रमण तेपामुत्पन्नेन च किं कृतम् ।
एतत्सर्वं समासेन ब्रूहि नः सूत पृच्छताम् ॥३
वह्नौ संर्पितास्तेन रेतसा त्रिदिवौकसः ।
रेतसा चोदरस्थेन संतप्तास्ते सुरादय. ॥४
दशपञ्चसहस्राणामतीतेपु द्विजोत्तमाः ।
वर्षाणा च तथाऽष्टो च गूढगर्भा दिवौकसः ॥५
दुखिता. पार्वतीकान्तं शंकर शरण ययुः ।
ऊचु प्राञ्जलयः सर्वे सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥६

ऋषियो ने कहा—हे श्री सूतजी। वह्नि के संतर्पित होने पर देव देव शम्भु के द्वारा वीर्य्य से समस्त देवगण सगर्भ हो गये हैं तो उन्होंने फिर उदर मे स्थित शुक्र से किस प्रकार से सुख की प्राप्ति की थी। फिर उन समस्त देवगणो ने जिनमे साक्षात् नारायण भगवान भी पुरोगामी थे क्या किया था।१।२। उनके गर्भों का निष्क्रमण कैसे हुआ और समुत्पन्न उसने क्या किया था—यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सक्षेप से हे सूत जी! हमारे सामने वर्णित कीजिए क्योंकि हम इस समय मे सभी यह पूछ रहे हैं।३। श्री महा मुनीन्द्र सूतजी ने कहा—उस वीर्य से जो वह्नि मे विक्षिप्त किया गया था सभी देवगण सतर्पित हो गये थे किन्तु यह अवश्य ही हुआ कि उस उदर मे स्थित वीर्य से वे सभी सुरादि गण सन्तप्त हो गये थे।४। हे द्विजोत्तमो! पन्द्र हजार वर्षों के व्यतीत हो जाने पर और आठ वर्ष ऊपर होने पर गर्भ को गूढ़ रखने वाले देवगण परम दुखित होकर पार्वती के स्वामी शकर की शरण मे प्राप्त

हुए थे। सबने दोनो हाथो को जोडकर करोडो सूर्यो के समान प्रभा वाले भगवान् शकरजी से प्रार्थना की थी।५।६।

भगवत्यदिद दु ख गर्भ ज देहशोषणम् ।
यथा नश्यति देवेश तदुपाय कुरु प्रभो ॥७
वह्निना पीतमात्रेण रेतसा तव शकर ।
वय सगर्भा स जाता गर्भकाले च तोयदा ॥८
उपहास्यमिद देव पु सा यद्गर्भ स भव ।
सर्वे वै भृशमुद्विग्नास्तव तेजोवशाद्विभो ॥९
दह्यमाना महादेव नरके पापिनो यथा ।
शरण भव देवाना करालम्ब ददस्व न ॥१०
दु खोदधौ प्रदुस्तारे प्रणतार्तिविनाशन ।
एव श्रुत्वा तु वचन देवाना पार्वतीपति ॥११
ईषद्विहस्य भगवानुवाचेद सुरेश्वर ।
भवद्भिरीदृश कार्यमिष्ट ऐ सुरपु गवा ॥१२
नेष्ट देव्यो(व्यु)दरस्थ हि तस्मान्दर्भ दशा गता ॥१३
इदानी यत्प्रकर्तव्य शृणुध्व तत्सुरोत्तमा ।
वह्नि यूय पुरस्कृत्य मेरु व्रजत मन्दरात् ॥१४

देवो ने कहा—हे भगवन् ! जो यह गर्भ से समुत्पन्न देह के शोषण करने वाला दु ख है हे देवेश ! हे प्रभो ! यह जैसे भी विनष्ट हो जावे वही अब उपाय कीजिए ।७। हे शकर ! वह्नि के द्वारा पीत मात्र आपके वीर्य से हम सभी गर्भ से समन्वित हो गये हैं और गर्भ के समय म तो यह हो गये हैं ।८। हे देव ! यह एक बहुत ही उपहास योग्य बात हुई है कि पुरुषो के उदर म गर्भ हो जावे ? हे विभो ! आपके तेज के वश से हम लोग अत्यन्त अधिक उद्विग्न हो रहे हैं। हे महादेव जी ! जैसे नरको म पडे हुए महा पापी होते हैं वैसे ही हम सब दह्यमान हो रहे हैं। अब आप हम समस्त देवो के शरण (रक्षक) हो जाइये और हम सबको अपना करावलम्ब प्रदान

कीजिए ।६।१०। हे प्रणत भक्तों की आर्त्ति के विनाश करने वाले प्रभो! इस बहुत ही अधिक बढ़े हुए दुःखों के सागर में हम विमग्न हैं। पार्वती देवी के स्वामी शम्भु ने इस प्रकार के देवों के वचन श्रवण करके भगवान् सुरेश्वर ने थोड़ा सा हँसकर यह वचन कहा था—ईश्वर ने कहा—हे सुर श्रेष्ठो! आपके द्वारा ही ऐसा कार्य अभीष्ट हुआ था ।११।१२। आप लोग स्वयं ही देवी के उदर में रहने वाले गर्भ को नहीं चाहते थे। इसीलिये आप लोग इस तरह की गर्भ की दशा को प्राप्त हुए हैं ।१३। हे सुरोत्तमो! इस समय में जो भी आप सबको करना चाहिए उसके विषय में आप श्रवण कीजिए। अब आप सब लोग अग्नि को अपने आगे करके इस मन्दर पर्वत से सुमेरु पर्वत पर चले जाइए ।।१४।।

शरधानवने यूय हृदोत्सङ्गे प्रसूयत(?) ।
निःसरिष्यत्यसौ देहात् ततः सौख्यमवाप्स्यथ ।।१५
ततः शम्भोर्वचः श्रुत्वा नारायणपुरोगमाः ।
अग्निमन्विष्य च ययुर्मेरुं गिरिवरोत्तमम् ।।१६
तस्य चोत्तरदिग्भागे शरवनवने शुभे ।
उपविश्य महात्मानो मध्ये संस्थाप्य वेधसम् ।।१७
नारायणं पुरस्कृत्य प्रभूताः सर्वदेवताः ।
गर्भशल्यविनिर्मुक्ता जातास्ते सुखिनो द्विजाः ।।१८
शार्वेण तेजसा तेन रञ्जितो मेरुपर्वतः ।
ततः काञ्चनतां प्राप्तः मशैलवनकाननः ।।१९
शार्वं तेजो घृतं यस्माद्देवैर्वह्निपुरोगमैः ।
तस्माज्जरादिभिर्मुक्ता अमराश्च सुरोत्तमाः ।।२०
सिद्धाश्च मुनयश्चैव ये केचित्तत्र संस्थिताः ।
तृणगुल्मलताश्चैव जलस्थलरहाश्च ये ।।२१

यहाँ पर शरधान वन में जो हृद है उसमें उत्सङ्ग में आप गर्भ का प्रसव करिये। यह गर्भ वहाँ पर निःसन्देह देह से निकल जायेगा और

उसके पश्चात आप लोग सुख की प्राप्ति कर लेंगे ।१५। इसके पश्चात भगवान शम्भु के वचन सुनकर नारायण प्रसेगम समस्त देवगण मेरु मे चले गये हैं जो गिरिवरो मे बहुत ही उत्तम थ ।१६। उस पर्वत के उत्तर के भाग मे शुभ शरधान वन था उसमे सभी महान आत्मा वाले उपविष्ट हो गये थे और मध्य मे वेद्या को स स्थापित कर लिया था ।१७। भगवान् नारायण को आगे करके सब देवो ने प्रसव किया था। हे द्विजो ! फिर वे देवगण गर्भ के शल्य से विनिर्युक्त होकर वे सब सुखी हो गये थे ।१८। उस शर्व के तेज से वह सम्पूर्ण मेरु पर्वत रञ्जित हो गया था । इसके पश्चात वह सम्पूर्ण पर्वत और उसका वन एव कानन सुवर्ण को प्राप्त हो गया था ।१९। अग्नि जिनमे प्रमुख था ऐसे सब देवो ने भगवान् शम्भु का तेज धारण किया था इसी कारण से सब जरा आदि से सर्वोत्तम विमुक्त होकर अमर हो गये थे ।२०। सिद्ध-मुनि और जो भी कोई वहाँ पर स स्थित थे —तरु—गुल्म—लताऐ —जल और स्थल म समुत्पन्न सब जो भी वे सभी सुवर्ण स्वरूप हो गये थे ।।२१।।

सर्वो काञ्चनसकाशा सजातास्तत्प्रभावत ।
पार्श्वे मेरोर्विनिर्भिद्य शभोस्तेजो विनिर्गतम् ।।२२
गङ्गाया निहित यच्च तदेकम्यमभूद्द्विजा ।
अथ देवो महादेवस्तेजोराशिरुमापति ।।२३
गोपयामास तत्तेज पिङ्गल प्रेक्ष्य शकर ।
गोप्यमाने तु तस्मिश्च मेरौ सूर्यायुतप्रभ ।।२४
वर्षाणा च सहस्रेण कठिन स्कन्दता गत ।
स्कन्द इत्युच्यते तेन तदाप्रभृति सुव्रता ।।२४
हराज्जातो यतस्तेन कुमार इति कथ्यते ।
स्कन्द कुमार षड्वक्त्रस्तथा द्वादशलोचन ।।२६
भुजैर्द्वादशभिश्चैव शोभमानोऽभवत्तदा ।
ईशादेशात्पुन स्नातु कृत्तिका परमोज्ज्वला ।।२७

ताभि क्षीर यतो दत्त कार्तिकेय इति स्मृत ।
गर्भपङ्कविलिप्ताङ्गो गङ्गाया स्नापित प्रभु ।२८।

उस वीर्य के प्रवल प्रभाव से सभी काञ्चन के सदृश हो गये थे। मेरु पर्वत के पार्श्व भाग का विनिर्भेदन करके भगवान् शम्भु का तेज निर्गत हो गया था।२२। हे द्विजो ! जो भी गङ्गा मे निहित तेज था वह सब मिलकर एक मे ही स्थित हो गया था। इसके अनन्तर देव उमा के पति तेज के राशि महादेव शङ्कर ने उस तेज को पिङ्गल वर्ण वाला देखकर गोपित कर लिया था। उसके गोप्यमान होने पर उस मेरु पर्वत मे वह अयुत सूर्य की प्रभा के समान हो गया था। एक सहस्र वर्षो के समय व्यतीत होने पर वह कठिन होकर स्कन्दता को प्राप्त हुआ था। इसी कारण से हे सुव्रतो ! तभी से लेकर वह स्कन्द इस नाम से कहे जाते है।२३।२४।२५। क्योकि भगवान् हर से समुत्पन्न हुए हैं अतएव कुमार इस नाम से कहे जाते हैं। स्कन्द—कुमार—षड-वक्त्र—द्वादशलोचन ये उनके नाम है और वे द्वादश भुजाओ से उस समय मे परम शोभमान हुए थे। ईश के आदेश स कृत्ति का पुन स्मान करने के लिये प्रस्तुत हुई और परम उज्ज्वल हो गयी थी।२६।२७। उनके द्वारा ही उनको दूध पिलाया गया था। इसी कारण से व कार्ति-केय इस नाम स कहे गये हैं। गर्भ के पङ्क स विलिप्त हुए अङ्गो वाले व प्रभु गङ्गा म स्नापित हुए थे।२८।

तप्तचामीकराभाम शरधानवने तदा ।
नाम्ना सहस्रेण तदा कुमारो वेधसा स्तुत ॥२६॥
मुमोच नादमुत्थाय सर्वभूतभयङ्करम् ।
पाताल भेदयित्वा तु तच्छृङ्ग शतधा कृतम् ॥३०॥
सिंहादयोऽपि तस्यास्तेन नादेन मूर्छिता ।
ततस्त क्रीडमान तु दृष्ट्वा देव शिवात्मजम् ॥३१॥
पिङ्गलो देवदेवेश ज्ञापयामास शङ्करम् ।
पश्य त्व देवदेवेश क्रीडमान कुमारकम् ॥३२॥

सूर्यायुतप्रतीकाशमात्मसूनु षडाननम् ।
ज्ञापित पिङ्गलेनेशो वाक्य देव्यै मुदावहम् ।
वरो वरेण्यो वरदो विश्वाकार उवाच ह ॥३३॥
गच्छाव एहि देवेशि मेरौ यत्र सुतस्तव ।
पश्यावस्त वरारोहे कुमार तु षडाननम् ॥३४॥
पुरा त्वयेष्ट वनकावभास प्रश्याद्रिजे मानसराजहसम् ।
प्रधावमान शतसूर्यकल्प षडानन कार्मुकपाणिमग्र ।३५।

उस समय मे तपाये हुए सुवर्ण के समान आभास वाले शरथान वन मे उस समय मे सहस्र नामो के द्वारा कुमार का स्तवन ब्रह्माजी ने किया था ।२६। समस्त प्राणियो को भय करने वाले नाद को उठाकर छोड दिया था । पाताल का भेदन करके उस भृङ्ग के सैकडा टकडे हो गये थे ।३०। वहाँ पर स्थित सिंह आदि भी उस नाद से सूदित हो गये थे । इसके अन तर शिव के पुत्र देव गो भी क्रीडा करते हुए देखकर पिङ्गल ने देवदेवेश भगवान् शङ्कर को विज्ञापित किया था—हे देव देवेश्वर ! आप क्रीडा करते हुए कुमार को देखिए ।३१।३२। अयुत (दश सहस्र) सूर्यो के सदृश अपने पुत्र कुमार षडानन के विषय म पिङ्गल के द्वारा भगवान् ईश ज्ञापित किये गये थे । यह वाक्य देवी के लिये आनन्द के प्रदान करने वाला था । वर—वरेण्य—वरद और विश्वात्म ने कहा—।३३। ईश्वर ने कहा—हे देवेशि ! आइये, चलें, मेरु पवत पर जहाँ आपका पुत्र है । हे वरारोहे ! उस षडानन कुमार को देखें ।३४। हे अद्रिजे ! जैसा कि पहले आपका कनक के समान आभास वाला मानस राजहस आपको बहुत ही प्रिय था उसको अब आप देख लो । शत सूर्य के सदृश दौड लगाने वाला और हाथ म धनुष धारण किए हुए आगे की ओर देख लीजिए ।३५।

समागतौ स ज्वलनोऽथ दृष्ट्वा त्रिलोकनाथौ जगत प्रदीपौ ।
उवाच वह्निर्वरद कुमार हराम्बिके द्वौ पितरौ तवनौ ।३६।

त्वामागतौ द्रष्टुमनन्तवीर्य प्रजाथयेति प्रमथाधिनाथौ ।
गतोऽथ वह्नेर्वचनं निशम्य ततः सुतत्वाग्गिरिजाङ्कगोऽभूत ।३७।
त सा पिबन्त मुहुरङ्कसस्थमतृप्यमान कलहसनादिनी ।
उमाङ्कगथो मदनारिसूनु करेण तस्यास्तिलकालको तु ।३८
ममर्द शम्भोश्च भुजङ्गहार जग्राह चन्द्र स कपर्दसस्थम् ।३९।
पञ्चम्या स्थापित सोऽथ षष्ठ्या षष्ठीप्रियो गुह ।
चतुष्पादवती त्यक्त्वा त्रैलोक्य हन्तुमुद्यत ॥४०॥
अबोधयत्तदा बालो जन्तून्स्थावरजङ्गमान् ।
क्वचिच्छृङ्ग गिरे शौर्यान्नयत्याशु समानताम् ॥४१॥
क्वचित्सिंहान्समाकृष्य पातयामास भूतले ।
आरुह्याम्यहनत्पृष्ठे (?) तानेव भ्रामयन्पुन ॥४२।

वह ज्वलन समागत हो गया था। जगत् के प्रदीप तीनो लोको के नाथ दोनो को देखकर अग्नि ने वरद कुमार से कहा था—हर और अम्बिका ये दोनो तुम्हारे माता पिता है ।३६। अनन्त वीर्य वाले आपको ही अवलोकन करने के लिये ये यहाँ पर समागत हुए हैं आप जाइए और इन दोनो प्रमथो के अधिनायो का समाश्रय ग्रहण कीजिए। इसके अनन्तर वह्नि के वचन का श्रवण करके वह इसके उपरान्त गिरिजा के अङ्कगत हो गये थे ।३७ इसके पश्चात् कल हस के समान नाद करने वाली वह देवी ने गोद मे बैठे हुए और बारम्बार दूध का पान करके भी तृप्ति को न प्राप्त होने वाले कुमार को देखा था और उमा देवी के गोद मे समस्थित मदनारि के पुत्र कुमार ने उन अपनी माता अम्बिका के तिलक और अलको का मर्दन कर रहे थे ३८। उस कुमार ने शम्भु प्रभु के भुजङ्गो के हार को ले लिया था और कपर्द मे सस्थित चन्द्र को ग्रहण कर लिया था ।३९। वह पञ्चमी मे स्थापित हुए थे और षष्ठी मे गुह षष्ठी प्रिय हुए। चतुष्पादवती को त्याग करके वे त्रैलोक्य का हनन करने को समुद्यत हो गये थे ।४०। उस समय मे बाल ने स्थावर-जङ्गम जन्तुओ को बोधित करा दिया था। कहीं पर्वतों शौर्य से पर्वत के शृङ्ग

थे शीघ्र ही समानता को ले आया करते थे ।४१। और कही पर किसी समय मे सिहो को खीचकर भूतल मे गिरा दिया करते थे । उनकी पीठ पर आरोहण करके फिर उनको ही श्रामित करा दिया करते थे ।४२।

क्वचिन्नागौ गृहीत्वा तु कराभ्या समुखावुभौ ।
आस्फोटयत्तदाऽन्योन्य कुम्भाभ्या स च लीलया ॥४३॥
समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमासुत ।
चिक्षेप सहसा बालो विमानान्यवनीतले ॥४४॥
पुनरुत्पत्य वेगेन प्रेक्ष्यमाण खमण्डले ।
मार्ग रुरोध सूर्येन्द्वोर्ग्रहाणा च तथैव स ॥४५॥
उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।
पर्वताश्च विशेषेण नदीश्चोन्मार्गतोऽनयत् ॥४६॥
त्रासित तु जगत्सर्व दामोदरपदनये ।
ततस्ते भृशमुद्विग्ना शक्र शत्रुप्रतापनम् ॥४७॥
ऊचुर्गत्वा द्विजश्रेष्ठा भृता वाक्यमिद तदा ।
अयमकायुतप्रख्यो बालो नो हन्ति वृत्रहन् ॥४८॥
तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न सशय ।
पराक्रमाद्बलाच्छक्र तथोत्साहाच्च तेजस ॥४९॥

कही पर दो नागो को अपने सामने दोनो को स्थित करके हाथो से एक दूसरे से आस्फोटित कर दिया करते थे अर्थात् दोनो की टक्कर खिला दिया करते थे । दोनो को भिड़ाकर स्फोटित कर देना उनकी एक लीला मात्र ही थी ।४३। वह उमा सुत ऊपर को उछल कर खेचरो को पकड़ लाते थे और वह बालक कुमार सहसा ही विमानो को भूतल पर प्रक्षिप्त कर दिया करते थे ।४४। फिर एक उछाल मारकर वे वेग के साथ आकाश मण्डल मे दृष्टिपात करते हुए सूर्य और चन्द्र का तथा अन्य ग्रहो के मार्गो को रुद्ध कर दिया करते है ।४५। मेरु पर्वत के शिखरो को उखाड़कर इधर-उधर वह कुमार फेंक दिया करते थे ।

विशेष रूप से पर्वतों को और नदियों को उन मार्गों में डालकर ला दिया करते थे ।४६। दामोदर के पदत्रय से अर्थात् त्रिलोकी में सम्पूर्ण जगत् को उन्होंने वासित कर दिया था । इसके अनन्तर सभी बहुत ही उद्विग्न हो उठे थे और शत्रुओं को प्रतापन देने वाले इन्द्रदेव के समीप में पहुँच गये थे और उनसे हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय में यह वाक्य बोले—हे वृत्रहन् ! यह अयुत अर्कों से तुल्य बालक हमको हनन करता है ।४७।४८। यह आपके राज्य का भी हरण कर्त्ता होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यह अपने पराक्रम से—अपने बल से तथा तेज के समुत्साह से आपके राज्यासन का भी कर्त्ता होगा ।४९।

नूनं शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।
यदि सूदयसे नाथ तत्त्वं सुखमवाप्स्यसि ।५०।
करिष्यसि वचोऽस्माकं तव राज्यं भविष्यति ।
उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशुं मत्वा पुरंदर ।५१।
एतद्विचार्य यत्नेन ततो बालं निषूदय ।
एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भूतभर्ता पुरंदरः ।।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं तदा धर्मपरायणम् ।५२।
कथमुक्तमिदं भूना बालस्य हननं प्रति ।
धर्मघ्नं पापसंघातं कीर्तिघ्नं वै चराचरे ।५३।
श्रूयतामभिधास्यामि धर्मशास्त्रस्य निश्चितम् ।
ऋषिभिश्च पुराऽऽख्यातं पुराणेषु चराचरा ।५४।
आतुरं भीरुमुद्विग्नमेकस्य शरणागतम् ।
स्त्रियमाप्यथवा बालमन्धं पङ्गुं तपस्विनम् ।५५।
लिजपन्तं तयोन्मत्तं विश्वस्तं ब्राह्मणं तथा ।
पतितं प्रपलायन्तं वामामक्तं निरायुधम् ।५६।

यह बालक तो निश्चित रूप से सौ गुने से भी कहीं अधिक है—ऐसा यहाँ पर दिखाई देता है । हे नाथ ! यदि आप सूदित करते हैं

तो शीघ्र ही समानता को ले आया करते थे ।४१। और कहीं पर किसी समय में सिंहों को खींचकर भूतल में गिरा दिया करते थे। उनकी पीठ पर आरोहण करके फिर उनको ही श्रामित करा दिया करते थे ।४२।

क्वचिन्नागौ गृहीत्वा तु कराभ्यां समुखावुभौ ।
आस्फोटयत्तदाऽन्योन्य कुम्भाभ्यां स च लीलया ॥४३॥
समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमासुत ।
चिक्षेप सहसा बालो विमानान्यवनीतले ॥४४॥
पुनरुत्पत्य वेगेन प्रेक्ष्यमाण खमण्डले ।
मार्गं रुरोध सूर्येन्द्वोर्ग्रहाणां च तथैव स ॥४५॥
उत्पाट्य मेरुश्रृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।
पर्वताश्च विशेषेण नदीश्चोन्मार्गतोऽनयत् ॥४६॥
त्रासितं तु जगत्सर्वं दामोदरपदत्रये ।
ततस्ते भृशमुद्विग्ना शक्रं शत्रुप्रतापनम् ॥४७॥
ऊचुर्गत्वा द्विजश्रेष्ठा भृता वाक्यमिदं तदा ।
अयमकायुतप्रख्यो बालो नो हन्ति वृत्रहन् ॥४८॥
तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न संशय ।
पराक्रमाद्बलाच्छक्र तथोत्साहाच्च तेजस ॥४९॥

कहीं पर दो नागों को अपने सामने दोनों को स्थित करके हाथों से एक दूसरे से आस्फोटित कर दिया करते थे अर्थात् दोनों की टक्कर खिला दिया करते थे। दोनों को भिड़ाकर स्फोटित कर देना उनकी एक लीला मात्र ही थी ।४३। वह उमा सुत ऊपर को उछल कर खेचरों को पकड़ लाते थे और वह बालक कुमार सहसा ही विमानों को भूतल पर प्रक्षिप्त कर दिया करते थे ।४४। फिर एक उछाल मारकर वे वेग के साथ आकाश मण्डल में दृष्टिपात करते हुए सूर्य और चन्द्र का तथा अन्य ग्रहों के मार्गों को रुद्ध कर दिया करते थे ।४५। मेरु पर्वत के शिखरों को उखाड़कर इधर-उधर वह कुमार फेंक दिया करते थे।

विशेष रूप से पर्वतों को और नदियों को उन मार्गों मे डालकर ला दिया करते थे ४६। दामोदर के पत्रत्रय मे अर्थात् त्रिलोकी मे सम्पूर्ण जगत् को उन्होंने त्रासित कर दिया था। इसके अनन्तर सभी बहुत ही उद्विग्न हो उठे थे और शत्रुओ को प्रतापन देने वाले इन्द्रदेव के समीप मे पहुँच गये थे और उनसे हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय मे यह वाक्य बोले—हे वृत्रहन् ! यह अयुत अर्कों के तुल्य बालक हमको हनन करता है।४७।४८। यह आपके राज्य का भी हरण कर्त्ता होगा—इसमे कुछ भी संशय नहीं है। यह अपने पराक्रम से—अपने बल से तथा तेज के समुत्साह से आपके राज्यासन का भी कर्त्ता होगा।४९।

नून शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।
यदि सूदयसे नाथ तत्व सुखमवाप्स्यसि ।५०।
करिष्यसि वचोऽस्माक तव राज्य भविष्यति ।
उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशु मत्वा पुरदर ।५१।
एतद्विचार्य यत्नेन ततो बाल निपूदय ।
एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भूतभर्ते पुरदर ।।
उवाच वचन श्लक्ष्ण तेषा धर्मपरायणम् ।५२।
कथमुक्तमिद भूता बालस्य हनन प्रति ।
धर्मघ्नं पापसघात कीर्तिघ्न वै चराचरे ।५३।
श्रूयतामभिधास्यामि धर्मशास्त्रस्य निश्चितम् ।
ऋषिभिश्च पुराऽऽख्यात पुराणेषु चराचरा ।५४।
आतुर भीरुमुद्विग्नमेकस्थ शरणागतम् ।
स्त्रियमाप्यथवा बालमन्ध पङ्गु तपस्विनम् ।५५।
लिजपन्त तथोन्मत्त विश्वन्त ब्राह्मण तथा ।
पतित प्रपलायन्त कामासक्त निरायुधम् ।५६।

यह बालक तो निश्चित रूप से सौ गुने से भी कहीं अधिक है—ऐसा यहाँ पर दिखलाई देता है। हे नाथ ! यदि आप सूदित करते हैं

ता तभी आप सुख प्राप्त करेंगे ।५०। आप यदि हमारे द्वारा कथित वचन को करेंगे तभी आपका राज्य रहेगा । हे पुरन्दर ! इसको बहुत छोटा सा शिशु समझ कर इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।५१। यह विचार करके यत्नपूर्वक इस बालक का निपूदन कर दीजिये । इस प्रकार से इसके पश्चात् उन भूतों के समुदायों के द्वारा कहे गये पुरन्दर ने उनसे धर्म परायण और परम श्लक्षण वचन कहा था ।५२। इन्द्र देव ने कहा—हे भूतो ! बालक के हनन करने के विषय में यह आपने कैसे कहा है ? इसका हनन करना तो धर्म का घातक—पापों का सघात और चराचर में कीर्त्ति का नाशक ही है ।५३। आप लोग श्रवण कीजिएगा, मैं आपको धर्मशास्त्र का जो निश्चित सिद्धान्त है उसको बतलाऊँगा । चराचर ऋषियों ने पहिले पुराणों में कहा है ।५४। वे मनुष्य महामूढ ही होते हैं जो किसी भी आतुर को—भीरु को—उद्विग्न को—एक स्थान पर स्थित को—शरण में समागत हुए को—स्त्री—बालक—अन्धा—पगला—तपस्वी—विलाप करने वाले को—उन्मत्त—विश्वास में स्थित—ब्राह्मण—पतित—पलायमान—काम में समासक्त—बिना हथियार वालों को मारेंगे वे नरक के सागर से ही गर्त में स्थित हाथी के तरह से ही अभ्युत्थित होंगे ।५५। ।५६।

नग्नं दीनं तथा वृद्धं नखरोमसमन्वितम् ।
मुक्तकेशं तथा मत्तं सुप्तं च भुवनौकसः ।५७।
सूदयिष्यन्ति ये नूनं मूढास्ते नरकार्णवात् ।
समुत्थाना भविष्यन्ति गर्तस्थ कुञ्जरो यथा ।५८।
तस्माद्व्रजध्वं शरणयस्य शम्भुसुतो गुहः ।
नाहं बालवधं कर्तुमुत्सहे सचराचरे ।५९।
एवमुक्ते तु शक्रेण भूतास्ते भृशदुःखिता ।
क्रोधसन्दीपनं वाक्यं पुनरूचुश्चराचराः ।६०।
गर्भो दितेर्यथा शक्र सरम्भात्सूदितस्त्वया ।
तदा नीतिर्गता कुत्र दारुणे गर्भपातने ।६१।

अशक्यामिति मत्वैव नीतिमानसि मानद ।
अशक्यकर्मणि विभो नीतिमान्पुरुषो भवेत् ।६२।
कश्च नाथ नरः शूरो यो बाल योधयेद्रणे ।
अपि शक्रशतैस्तस्य वज्रकोटिनिपातनैः ।६३।

जो नग्न—दीन—वृद्ध—नख और रोमों से समन्वित को—मुक्त केशों वालों को—यज्ञ—सुप्त को भुक्तौकम मारेंगे वे नारकीय प्राणी ही होंगे। इस कारण से आप लोग उन्हीं की शरणागति में जाइये जहाँ पर यह भगवान् शम्भु के पुत्र गुह विराजमान हैं। मैं तो इस चराचर में बालक के वध करने का उत्साह ही नहीं करता हूँ।५७।५८।५९। इस प्रकार से इन्द्र देव के द्वारा कहे जाने पर वे समस्त भूत अत्यन्ताधिक दुःखित हो गये थे। वे चराचर पुनः क्रोध के सदीप्त करने वाला वाक्य बोले थे।६०। भूतों ने कहा—हे शक्र ? आपने सरम्भ में आकर दिती के गर्भ को जिस तरह से सूदित किया था उस समय में आपकी यह धर्म नीति उस दारुण गर्भ को परतन करने के समय में कहाँ चली गयी थी अर्थात् उस समय में आपने इस धर्म शास्त्र के सिद्धान्त पर आपने क्यों नहीं विचार किया था जो अब हमको बता रहे हैं।६१। यह आपके द्वारा किया ही नहीं जा सकता है—यह मानकर ही इस समय में आप धर्म नीति के मानने वाले बने रहे हैं। हे मानद ! जो कर्म शक्ति के बाहिर होता है हे विभो ! उसी के विषय में पुरुष नीति के मानने वाला बना करता है।६२। कौन मनुष्य शूरवीर है जो रण में उस बालक के साथ युद्ध करेगा आप तो हैं ही क्या ? सैंकड़ों इन्द्र भी करोड़ों वज्रों के नियातनों से भी उस बालक के एक भी रोम का नियातन नहीं कर सकते।६३।

अप्येकमपि रोमाग्रं पातितुं नैव शक्यते ।
एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भूतव्रातैः पुरंदरः ।६४।
आज्यधाराभिषिक्तोऽग्निर्यथैव प्रज्वलस्तथा ।
उवाचेदं वचस्तान्स क्रोधज्वालाप्रदीपिनः ।६५।

वज्रमुद्यम्य हस्तेन वृत्रहा कुलिशायुध ।६६।
पुरा मया यथा गर्भो घानितश्च चराचरा ।
दिते काय समाविश्य तथेदानीं निहन्यते ।६७।
अथ गत्वा हनिष्यामि पतङ्गमिव वह्निना ।
वज्र हस्ते समादाय आहवे प्रसहेत क ।६८।
एवमुक्त्वा तत शक्र कोपानलसमीरित ।
आज्ञापयत्तदा विप्रा साध्यान्देवान्दिवाकरान् ।६९।
शरघान गमिष्यामि वधार्थ बालकस्य च ।
हसकुन्देन्दुवर्णाभ चतुर्दन्त महागजम् ।७०।

यह पुरन्दर जब उन सूतों के समुदाय के द्वारा इस प्रकार से कहा गया था तो घृत की धाराओं से अभिषिक्त अग्नि के ही समान प्रज्वलित होते हुए क्रोध की अग्नि से दीपित होकर उनसे यह वचन बोले—उस समय मे वृत्रहा ने कुलिश के आयुध को धारण करते हुए हाथ मे वज्र को उठाकर ही वचन कहा था—इन्द्र देव ने कहा—पूर्व मे मैंने हे चराचरो ! जिस प्रकार से गर्भ का घात किया था और दिति के शरीर मे मैंने समावेश किया था उसी प्रकार से इस समय में भी निहनन किया जाता है ।६४।।६७। अग्नि के द्वारा पतङ्ग के ही समान जाकर मार दूँगा । वज्र हाथ मे ग्रहण करके जब मैं सम्मुख खड़ा होऊँगा तो मेरे प्रहार को कौन सहन कर सकता है ? अर्थात् किसी मे भी वज्र के प्रहार को सहन करने की शक्ति नहीं है ।६८। इस प्रकार से कहकर वह महेन्द्र क्रोध की अग्नि से समीरित हो गये थे । हे विप्रो ! उसी समय मे उसने साध्यों को—देवों को और दिवाकर आदि को आज्ञा दी थी ।६९। मैं अब शरधान वन मे उस बालक के वध करने के लिये गमन करूँगा जो हंस—कुन्द और चन्द्रमा के तुल्य वर्ण की आभा वाला है—चार दाँतों वाला है और महान् गज के समान है ।७०।

आनयध्व ममाग्रे तु करीन्द्र मम वल्लभम् ।
जलधे (धि) रिव गम्भीर दीर्घहस्त घनस्वनम् ।७१।

दैत्यदानवरक्तेन क्लिन्नदंष्ट्रं भयावहम् ।
तदादेशात्सुरैस्तूर्णं सर्वायुधसमन्वितं ॥७२॥
निवेदितः स शक्राय तमारुह्य पुरंदरः ।
विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च वसुभिश्च मरुद्गणैः ॥७३॥
आदित्यैरश्विनीभ्यां च ययौ स्कन्दवधाय सः ।
वियन्मण्डलमास्थाय स्तूयमानश्चराचरैः ।७४।
नृत्यमानाप्सरोभिश्च वाद्यमानैश्च किंनरैः ।
गीयमानश्च गन्धर्वैः सुगीतैर्गीतशालिभिः ॥७५॥
नदद्भिश्च महासिंहैर्गर्जद्भिश्च गजत्तमैः ।
हरिभिर्ह्रेषमाणैश्च वायुवेगैर्महारथैः ॥७६॥
पताकाभिर्जयन्तीभिर्ध्वजैश्छत्रैश्च चामरैः ।
एवमाद्यैरनेकैश्च नन्दीश्वर इवापरः ॥७७॥
दोधूयमानश्चमरैश्च दिव्यैर्जेगीयमानः सुरकिंनरीभिः ।
पेपीयमानः सुरसुन्दरीभिः कामातुराभिर्नयनैरजस्रम् ।७८।
सपूज्यमानो मुनिसिद्धसंघैर्मुदाऽन्वितो वज्रधरः किरीटी ।
कुमारमुद्दिश्य गतोऽथ वेगाद्धरिर्हरिर्वै म(द)नुजान्ययेव ॥७९

अब मेरे सामने मेरा प्रिय जो गज है उसको ले आओ जिस पर मैं समारूढ होऊँगा वह मेरा प्रिय गज जलधि के समान गम्भीर—दीर्घ सूँड वाला और घनेस्वम (ध्वनि) वाला है ।७१। दैत्यों और दानवों के रुधिर से इसकी दाढ क्लिन्न हो रही है और बहुत ही भयावह है । उसके आदेश से सुरगण ने तुरन्त ही सब तैयारी कर दी थी और इन्द्र सभी आयुधों से समन्वित हो गया था ।७१।७२। उसको लाकर इन्द्र देव के लिये निवेदित कर दिया था और फिर पुरन्दर देव ने उस पर समारोहण किया था तथा विश्वेदेवा—साध्य—वसुगण—मरुद्गण—आदित्य और अश्विनी कुमारों के साथ स्कन्द देव के वध करने के लिए गया था । वह जब वियन्मण्डल पर जाकर स्थित हुआ था तो सब चराचरों के द्वारा स्तुति किया गया था ।७३।७४। नृत्य करती हुई अप्सराओं के द्वारा—वाद्यों के—बजाने वाले किन्नरों के द्वारा गन्धर्वों के द्वारा गीयमान होते हुए तथा गान करने वालों के सुन्दर गीतों के द्वारा गान किये गये

थे । महासिंहो की गर्जनों से युक्त और गर्जना करने वाले महागजों के साथ समन्वित होकर । वह हृ`यमाण अश्वो से युक्त तथा वायु के समान वेग वाले महारथों से संयुक्त था । जयन्ती पताकाओ के द्वारा—ध्वज और चामरो से समन्वित होकर इस प्रकार से अनेकों से युक्त होकर वह दूसरे नन्दीश्वर के ही तुल्य हो गये थे । चमर उस समय मे उसके ऊपर डुराये जा रहे थे और किन्नरियाँ सुरो का गान कर रही थी। जो काम से आतुर सुरसुन्दरियाँ थी उनके नेत्रो के द्वारा निरन्तर पान किये गये थे ।७५। ।७८। मुनि और सिद्धो के समुदाया के द्वारा वह भली भाँति पूज्यमान हो रहे थे—वज्र के धारण करने वाले—किरीटधारी आनन्द से समन्वित हो रहे थे । वह हरि हरि के ही समान जैसे मनुजा के ऊपर चढाई कर रहे हो उसी तरह मे कुमार का उद्देश्य लेकर वह इन्द्रदेव गये थे ।७६ ।

।। नारद-इन्द्र संवादादि कथन ।।

एव गत्वा सहस्राक्षो यत्राऽऽस्ते पार्वतीसुत ।
बाल सूर्यायुतप्रख्य तमपश्यच्छचीपति ।।
प्रलयाग्निनिभाकार दृष्ट्वा नारदमब्रवीत् ।।१।।
इद किं भाति देवर्षे मेरो शतगुणोच्छ्रयम् ।
तेजसा व्याप्तभुवन सर्वभूतभयङ्करम् ।।२।।
एव शक्रवच श्रुत्वा भगवान्पद्मभूसुत ।
ऐरावतगजारूढ शचीपतिमथाब्रवीत् ।।३।।
योऽसौ देव त्वया न्यस्तो गर्भश्चैव सहामरैः ।
तस्यैवैष प्रभावोऽयं नून देव शतक्रतो ।४।
भास्कराणा न पुञ्जोऽयं नैव पर्वतमचय ।
बालेनोत्पाद्यमानेन सह देवैश्च रक्षित ।५।

अधो योजनसस्यामि सहस्राण्येव षोडश ।
चतुरशीतिरुत्सेधो द्वात्रिंशाद्विस्तर स्मृत ।६।
यग्दिरि सकलोऽय तु मेरु काञ्चनता गत ।
तत्तेज स्कन्दना यात सहस्राद्ध गतैस्तथा ।।७।।

श्री सूतजी ने कहा था—इस प्रकार से सहस्राक्ष इन्द्र जाकर वहाँ पर पहुचे जहाँ पर पार्वती के सुत कुमार विद्यमान थे शची पति ने उस अयुत सूर्यों के समान प्रभ्य उस बालक को रखा था। प्रलय काल की अग्नि के समुदाय के समान आकार वाले उसको देखकर वह महेन्द्रदेव नारदजी बोले।१। इन्द्रदेव ने कहा—हे देवर्षे! यह मेरु पर्वत की ऊँचाई से भी शतगुण ऊँचाई वाला क्या आभासित हो रहा है? जिसके तेज से समस्त भुवन व्याप्त हो रहा है और जो सब भूतों के लिये महान् भयङ्कर है।२। इस प्रकार के इन्द्र के वचन का श्रवण करके ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् नारदजी ने ऐरावत हाथी पर बैठे हुए शचीपति से कहा था।३। श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—हे देव! अमरों के साथ गर्भों से जो यह न्यस्त किया गया था हे शतक्रतो! उसी का यह निश्चित प्रभाव है।४। यह भास्करों का समुदाय है और पर्वतों का सचय नहीं है। देवों के साथ उन्मथमान बालक के द्वारा यह रंजित हो गया है।५। नीचे की ओर सोलह सहस्र योजनों की संख्या से युक्त है और चौरासी योजनों की ऊँचाई है तथा बत्तीस योजनों का विस्तार है।६। यह सम्पूर्ण पर्वत काञ्चनता को प्राप्त हो गया है। वह तेज स्कन्दता को पाँच सहस्र अब्दों के समाप्त होने पर प्राप्त हुए हैं।७।

चतुर्थ्यां साकृतिर्देव पञ्चम्यामङ्गवांस्तत ।
षष्ठ्या षड्स्या यथा नीप त्रैलोक्य विजयिष्यति ।८।
त्वया सहाय सप्तम्या पालयिष्यति वा पुन ।
त्व तु नून न शक्तोऽसि जेतु वर्षशतैरपि ।।९।।
कुमार वरद देव पार्वत्यानन्दवर्द्धनम् ।
नानाप्रहरणोपेत नानाभरणभूषितम् ।।१०।।

मातृभिर्गणबृन्दैश्च सेव्यमानमुमासुतम् ।
एवं सञ्जल्पमानोऽसौ जम्भारिर्बालकं प्रति ।११।
वज्रं मुमोच वृत्रारिः स्फुलिङ्गोद्गारिभीषणम् ।
तृणवन्मन्यमानोऽसौ वज्रं तत्पार्वतीसुतः ।१२।
शरेणैकेन विव्याध पपात च स मूर्छितः ।
पुनरन्यं समादाय शरं ज्वलनसन्निभम् ।१३।
छत्रं ध्वजं पताकाश्च हरेश्चिच्छेद षण्मुखः ।
बिभेदान्येन तीक्ष्णेन हस्तं वै वज्रिणो गुहः ।।१४।

हे देव ! चतुर्थी में आकृति से युक्त हुए थे और पंचमी में वह फिर अङ्गों वाला हो गया था। षष्ठी में पदों से युक्त हो गया था—जैसे कि यह त्रैलोक्य पर विजय को प्राप्त करेगा ।८। सप्तमी में फिर आपके साथ सहाय का पालन करेंगे। आप चढाई करने के लिये तैयार होकर जो यहाँ पर आये हैं सो आप तो सौ वर्षों में भी इनको जीत नहीं सकते हैं ।९। कुमार वरदान देने वाले देव पार्वती के आनन्द के वर्धन करने वाले हैं। ये अनेक प्रहरणों से समन्वित हैं तथा अनेक आभरणों से भी विभूषित हैं। यह उमा के सुत माताओं और गण वृन्दों के द्वारा सेव्यमान हैं। इस प्रकार से अच्छी तरह से कहा गया भी उस जम्भारि ने उस बालक के प्रति वृत्रादि ने वज्र का मोचन किया था जो स्फुलिङ्गों के उद्धरण करने वाला और महान् भीषण था। उस पार्वती के सुत ने उस वज्र को एक तिनके के ही समान मान लिया था ।१०।११।१२। उस कुमार ने एक ही शर से विद्ध कर दिया था और वह इन्द्र मूच्छित होकर गिर गया था। फिर दूसरे अग्नि के समान शर को लेकर षण्मुख ने इन्द्र के छत्र-ध्वज और पताकाओं का छेदन कर दिया था। फिर गुह ने अन्य एक तीक्ष्ण शर से इन्द्र के हाथ का भेदन कर दिया था। ।१३।१४।

शरेणाऽऽदित्यतुल्येन स्कन्दः शम्भुर्यथाऽऽहवे ।
पुनर्बाणं समादाय तं जघान शतक्रतुम् ।१५।

अपरेण तु तीक्ष्णेन मुकुटं तु तथा हरे ।
शरेण वह्नितुल्येन चिच्छेद च स लीलया ॥१६॥
यमं च पञ्चभिर्बाणैर्निर्ऋतिं दशभिर्गुह ।
दशपञ्चशरैराशु वरुणं च विभेद स ।१७।
विंशत्या वायुदेवं च रविं च दशपञ्चभिः ।
त्रिंशद्भिः सोमराजानं ताडयित्वा रणे पुनः ।१८।
शक्रं पञ्चशतैराशु शरैश्च प्राणहारिभिः ।
अन्यानपि सुरान्स्कन्दस्त्रिभिर्द्विपञ्चभिः शरैः ।१९।
शूरो नादं प्रमुञ्चन्वै शक्रं दुद्राव शंभुजः ।
वसुभिश्च तथाऽऽदित्यैर्मरुद्भिश्च महाबलैः ।२०।
वृतः शस्त्रकरैर्बालः सिंहैः शरभराडिव ।
ततस्तानागतान्दृष्ट्वा देवाञ्शङ्करवल्लभः ॥२१॥

आदित्य के तुल्य शर से जैसे युद्ध में रुद्र को भगवान् शम्भु हनन किया करते हैं वैसे ही पुनः बाण ग्रहण करके उस शतक्रतु का विहनन कर दिया था ।१५। दूसरे तीक्ष्ण बाण से जो अग्नि के ही समान शर था उन्हीं ने लीला ही से हरि के मुकुट का छेदन कर दिया था ।१६। गुह ने पाँच बाणों से यमराज का—दश शरों से निर्ऋति को और पन्द्रह शरों से वरुण का भेदन कर दिया था ।१७। बीस शरों से वायु देव और पन्द्रह से रविदेव—तीस बाणों से सोम राजा का रणस्थल में ताड़न किया था ।१८। फिर बहुत ही शीघ्र पाँच सौ बाणों से जो कि प्राणों के हरण करने वाले थे इन्द्रदेव को तथा अन्य सुरों को भी तीन-दो पाँच शरों से स्कन्द देव ने आघात किया था। शम्भु के आत्मज शूर ने नाद को छोड़ते हुए शक्र को विद्रुत कर दिया था। वसुगण—आदित्य—महाबलशाली मरुद्गणों से परिवृत बालक ने हाथों में शस्त्र ग्रहण करने वाले सिंहों के सहित शरभराट् की ही भाँति फिर आगत हुए देवों को देखकर शङ्कर भगवान् का वल्लभ ने क्षुद्र मृगों को केसरी ही के समान दिवौकसों (देवों) को वहाँ से भगा दिया था यदेह

कर आमद्रुत कर दिया था। पुन इन्द्र ने वज्र के द्वारा स्कन्द के ऊपर प्रहार किया था ।।१६।२०।२१।

केसरीव मृगान्क्षुद्रान्दुद्राव च दिवौकस ।
पुन. स्कन्द सहस्राक्षो वज्रेण समताडयत् ।।२२
ताडिते तु ततस्तस्मादुत्पन्नाश्चारुमूर्तयः ।
त्रयो देवाश्च वेदाश्च लोकाश्चाग्निदिवाकराः ।।२३
ततश्चेद सहस्राक्षं वृहद्गुरुवृहस्पति (?) ।
देवमन्त्री महाप्राज्ञो वृहस्पतिरथाब्रवीत् ।।२४
अल युद्धेन देवेश महादेवस्य सूनुना ।
हित तवोपदेक्ष्येऽहं सहस्राक्ष शृणुष्व तत् ।।२५
यदीप्ससि सुख भोक्तु कुरुष्व वचन मम ।
अनेन सह सप्रीति कृत्वा राज्यमकण्टकम् ।।२६
भुङ्क्ष्व त्व निश्चल कृत्वा दानवांश्च निषूदय ।
यस्य वज्राभिघातेन नार्तिः स्वल्पाऽपि जायते ।।२७
हन्तव्यः स कथ शक्र शक्तस्त्वैभवाहर्श ।।२८

उसके ताडित होने पर उनसे सुन्दर आत्ममूर्तियाँ समुत्पन्न होगयी थी। तीनदेव वेद, लोक, अग्नि और दिवाकर हुए थे। इसके अनन्तर वृहद् गुरु वृहस्पति जी ने जो देवो के मन्त्री, महान् पण्डित थे, इन्द्रदेव से बोले ।।२२-२४।। वृहस्पति जी ने कहा—हे देवेश्वर! महादेवजी के पुत्र के साथ युद्ध मत करो। मैं आपके हित की उपदेश करूगा। हे सहस्राक्ष! आप इसका श्रवण कीजिए ।।२५।। यदि आप सुख का उपभोग करना चाहते हैं तो मेरे कथित वचन का पूर्णतया आप पालन कीजिए। इस स्कन्ददेव के साथ अच्छी प्रीति करके ही आपका राज्य कण्टक रहित रहेगा। और उस राज्य का उपभोग करिए। आप अपने राज्यासन के निश्चल करके ही दानवो का विपूदन कर डालिए। जिसका ऐसे अमोघ वज्र के आघात से भी किञ्चिन्मात्र दुःख नही होता है हे शक्र! वह कैसे मारे जाने के योग्य हो सकता है। आप अकेले भी घन

ही क्या सकती है आप जैसे सो भी हो तो भी इनको नहीं मार सकते हैं ॥२५-२८॥

श्रुत्वा तस्य वचः शक्रस्तदा सुरगुरोर्द्विजाः ।
तमेव शरण प्रायात्कुमारं पार्वतीसुतम् ॥२६
प्रसीद मे त्व शरणगतस्य पादौ तवाह शिरसा वहामि ।
सुराधिपस्त्व भव शर्वसूनो गृहाण राज्य मम शंभुकल्प ॥३०
एषोऽञ्जलिः पङ्कजचारुनेत्र कृत्तोत्तमाङ्गे (?) जहि मन्युमुग्र ।
सतां हि कोपः प्रणतेषु नित्य विनाशमेत्यार्यमनः सुसिद्धम् ॥३१
अथेन्द्रवचन श्रुत्वा भगवान्षण्मुखस्तदा ।
अब्रवीत्करुणाविष्टः शक्र प्रति मुनीश्वराः ॥३२
करोमि किमहं राज्य भोगैश्च प्राकृतैरलम् ।
अपर्याप्त न मे किंचिदस्ति पित्रोः प्रसादतः ॥३३
निष्कण्टक त्वमेवेह राज्य कुरु शचीपते ।
मम सख्येन सकलाञ्शत्रूञ्जहि पुरंदर ॥३४
एव स्कन्दवचः श्रुत्वा पुनराह शचीपतिः ।
भगवन्नापरः कश्चिद्देवाना विदितो बली ॥३५

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो ! उस समय मे महेन्द्र देव ने उन बृहस्पति जी के वचन को सुनकर जोकि सभी सुरो के गुरु थे तुरन्त ही पार्वती के सुत कुमार स्कन्द की शरण मे चला गया था ॥२६॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे भगवन् ! आप मुझ शरण मे आये हुए प्रसन्न हो जाइये । मैं आपके चरणो को शिर के बल वहन करता हूँ हे शर्वसूनो ! आप सब सुरो के अधिप हो जाइए । हे शम्भुदेव के सदृश ! आप मेरे राज्य को भी ग्रहण कीजिए ॥३०॥ हे पङ्कज के तुल्य सुन्दर नेत्रो वाले ! मैं यह आप को हाथ जोड रहा हू । इस कृत्त उत्तमाङ्ग मे उग्रमन्यु को (क्रोध को) त्याग दीजिए । श्रेष्ठ मन वालो की यह बात परम प्रसिद्ध है कि सज्जनो का कोप प्रणत भक्तो के ऊपर नित्य ही विनाश को प्राप्त हो जाया करता है ॥३१॥ इसके अनन्तर इन्द्र के इन वचनो का श्रवण

करके उस समय मे भगवान् षण्मुख करुणा से आविष्ट होते हुए हे मुनी श्वरो ! कहने लगे ॥३२॥ स्कन्ददेव ने कहा—मैं आपके राज्य को ग्रहण करके क्या करूँगा मैं इन प्राकृत भोगो को नही चाहता हूँ। मेरे माता पिता के प्रसाद से कुछ भी पदार्थ मेरे लिये अपर्याप्त नही है। हे शचीपते ! आप ही अपने राज्य का सुख निष्कटक रूप से भोगिये। हे पुरन्दर ! मेरे साथ सख्यमान रखने से आप अपने समस्त शत्रुओ को मार भगायेंगे ॥३३॥३४॥ इस प्रकार से कथित भगवान् स्कन्ददेव के वचन का श्रवण करके इन्द्र ने पुन कहा —हे भगवन् ! दूसरा कोई बलशाली देवो को विदित नही है ॥३५॥

तस्मात्कुरु त्वमेवेह राज्यमीश्वरनन्दन ।
क्व वाल क्व च सग्राम क्व नीति क्व पराक्रम ॥३६
क्व ज्ञानमतुल देव क्व मति क्व च सौम्यता ।
क्व माया क्व च दाक्षिण्य क्व शान्ति क्व प्रसादता ॥३७
अल त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरित ।
स्वरूपं स्वगुणैस्त्व हि वन्दिभिश्चारणैस्तथा ॥३८
विद्याधरैश्च यक्षैश्च विविधैर्गुणकोटिभि ।
स्तूयमानोऽमरै सिद्धैर्गन्धर्वाप्सरसा गणै ॥३९
अह सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।
तिष्ठस्वोपरि कृत्स्नस्य सं लोकय भुड्क्ष्व षण्मुख ॥४०
सर्वग सर्वभूतस्त्व यथा देवो महेश्वर ।
एव शक्रश्च श्रुत्वा पुन प्राहाम्बिकासुत ॥४१

हे ईश्वर नन्दन ! इस कारण से यहाँ पर आप ही राज्य शासन कीजिए। कहाँ तो बालक और कहा सग्राम-कहाँ नीति और कहाँ पराक्रम है। कहाँ पर अतुल ज्ञान हे देव ! कहाँ पर मति और कहाँ पर सौम्यता, कहाँ माया और कहाँ दाक्षिण्य, शान्ति तथा प्रसादता है। इन उत्तम गुणो के द्वारा तो आप ही राज्य के करने के लिये पूर्णतया उदीरित होते हैं। आप अपने स्वरूपो से, अपने सद्गुणों से राज्य करने के योग्य हैं। वन्दो, चारण,

विद्याधर, यक्ष और विविध गुण कोटियो के द्वारा स्तूयमान हैं तथा अमर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओ के गणा के स्तुत हैं। हे देव ! हे भवनन्दन ! मैं आपका सेनापति हो जाऊँगा। हे षण्मुख ! सबके ऊपर आप स्थित हो जाइये और इस त्रैलोक्य का उपभोग करिए। आप तो सवम गमन करने वाले, सर्वभूत स्वरूप हैं जैसे देव महेश्वर हैं। ऐसे महेन्द्रदेव के वचन का श्रवण करके पुन अम्बिका सुत बोले ॥३७-४१॥

अभय शक्र मा भैषी कुरु राज्यमकण्टकम् ।
इन्द्रस्त्व देवराजस्तव त्वमेव जगत प्रभु ॥४२
दर्पगर्वबलोदीर्णा दानवा ये च तास्तदा ।
यै पराजीयसेऽस्त्यर्थ सूदयेऽह त्वया स्मृत ॥४३
बह्वालापरलं शक्र गदितेन पुन पुन ।
निश्चयेन सखाऽह ते भवाम्यसुरसूदन ॥४४
अथोवाच महादेवपुन सवीक्ष्य नि स्पृहम् ।
नेष्ट त्वयाऽपि हीन्द्रत्व भव सेनापतिर्गुह ॥४५
एवमस्त्विति त प्राह कार्तिकेय शचीपतिम् ।
तत सर्वै सुरैर्विप्रा आदेशात्परमेष्ठिन ॥४६
अभिषिक्तोऽथ विधिना सेनापत्ये तदा गुह ।
यावदत्त कुमाराय सेनापत्य हराज्ञया ॥४७
हन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमार तारकस्तदा ।
आगत त तदा वीक्ष्य लीलया पार्वतीसुत ।
ददाहाऽऽशु महादैत्य तूल वह्निरिवाऽऽहवे ॥४८
दग्ध्वा तु तारक घोर पतङ्गमिव पावक ।
तत प्रीतमना स्कन्दो मातुरङ्कमुपाविशत् ॥४९
महादेवोऽपि भगवान्वेधादीन्विष्णुना सह ।
विसृज्य गणपै सार्धं क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥५०

भगवान् स्कन्ददेव ने कहा—हे शुक्र ! आपको मैं अभय का वरदान

करके उस समय मे भगवान् षण्मुख करुणा से आविष्ट होते हुए हे मुनीश्वरो ! कहने लगे ॥३२॥ स्कन्ददेव ने कहा—मैं आपके राज्य को ग्रहण करके क्या करूंगा मैं इन प्राकृत भोगो को नही चाहता हूँ। मेरे माता पिता के प्रसाद से कुछ भी पदार्थ मेरे लिये अपर्याप्त नही है। हे शचीपते ! आप ही अपने राज्य का सुख निष्कटक रूप से भोगिये। हे पुरन्दर ! मेरे साथ सख्यमान रखने से आप अपने समस्त शत्रुओ को मार भगायेंगे ॥३३॥३४॥ इस प्रकार से कथित भगवान् स्कन्ददेव के वचन का श्रवण करके इन्द्र ने पुन. कहा—हे भगवन् ! दूसरा कोई बलशाली देवो को विदित नही है ॥३५॥

तस्मात्कुरु त्वमेवेह राज्यमीश्वरनन्दन ।
क्व बाल क्व च सग्रामः क्व नीतिः क्व पराक्रमः ॥३६
क्व ज्ञानमतुल देव क्व मतिः क्व च सौम्यता ।
क्व माया क्व च दाक्षिण्य क्व शान्तिः क्व प्रसादता ॥३७
अल त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरित. ।
स्वरूपै स्वगुणैस्त्व हि बन्दिभिश्चारणैस्तथा ॥३८
विद्याधरैश्च यक्षैश्च विविधैर्गुणकोटिभि ।
स्तूयमानोऽमरैः सिद्धैर्गन्धर्वाप्सरसा गणैः ॥३९
अहं सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।
तिष्ठस्वोपरि कृत्स्नस्य त्रैलोक्य भुङ्क्ष्व षण्मुख ॥४०
सर्वगः सर्वभूतस्त्व यथा देवो महेश्वर ।
एव शक्रवचः श्रुत्वा पुनः प्राहाम्बिकासुतः ॥४१

हे ईश्वरनन्दन ! इस कारण से यहाँ पर आप ही राज्य शासन कीजिए। कहाँ तो बालक और कहा सग्राम-कहाँ नीति और कहाँ पराक्रम है। कहाँ पर अतुल ज्ञान हे देव ! कहाँ पर मति और कहाँ पर सौम्यता, कहाँ माया और कहाँ दाक्षिण्य, शान्ति तथा प्रसादता है। इन उत्तम गुणो के द्वारा तो आप ही राज्य के करने के लिये पूर्णतया उदाहरित होते हैं। आप अपने स्वरूपों से, अपने सद्गुणों से राज्य करने के योग्य हैं। बन्दी, चारण,

विद्याधर, यक्ष और विविध गुण कोटिभो के द्वारा स्तूयमान हैं तथा अमर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओ के गणो के स्तुत हैं। हे देव ! हे भवनन्दन ! मैं आपका सेनापति हो जाऊँगा। हे षण्मुख ! सबके ऊपर आप स्थित हो जाइये और इस त्रैलोक्य का उपभोग करिए। आप तो सबमे गमन करने वाले, सर्वभूत स्वरूप हैं जैसे देव महेश्वर हैं। ऐसे महेन्द्रदेव के वचन का श्रवण करके पुन. अम्बिका सुत बोले ॥३७-४१॥

अभय शक्र मा भैषी. कुरु राज्यमकण्टकम् ।
इन्द्रस्त्व देवराजस्त्व त्वमेव जगत प्रभु ॥४२
दर्पगर्वबलोदीर्णा दानवा ये च तास्तदा ।
यै पराजीयसेऽत्यर्थ सूदयेऽह त्वया स्मृत ॥४३
बह्वालापरल शक्र गदितेन पुन पुन ।
निश्चयेन सखाऽह ते भवाम्यसुरसूदन ॥४४
अथोवाच महादेवपुत्र सवीक्ष्य नि स्पृहम् ।
नेष्ट त्वयाऽपि हीन्द्रत्व भव सेनापतिर्गुह ॥४५
एवमस्त्विति त प्राह कार्तिकेय शचीपतिम् ।
तत सर्वे सुरैर्विप्रा आदेशात्परमेष्ठिन ॥४६
अभिषिक्तोऽथ विधिना सेनापत्ये तदा गुह ।
यावदत्त कुमाराय सेनापत्य हराज्ञया ॥४७
हन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमार तारकस्तदा ।
आगत त तदा वीक्ष्य लीलया पार्वतीसुत ।
ददाहाऽऽशु महादैत्य तूल वह्निरिवाऽऽहवे ॥४८
दग्ध्वा तु तारक घोर पतङ्गमिव पावक ।
तत प्रीतमना स्कन्दो मातुरङ्कमुपाविशत् ॥४९
महादेवोऽपि भगवान्वेधादीन्विष्णुना सह ।
विसृज्य गणपै सार्धं क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥५०

भगवान् स्कन्ददेव ने कहा—हे शुक्र ! आपको मैं अभय का वरदान

देता हूँ। डरो मत अकण्टक राज्य का उपभोग करो। आप देवों के राजा हैं—आप इन्द्रदेव हैं और आप ही इस जगत् के प्रभु हैं ।।४२।। दर्प गर्व और बल से उदीर्ण जो ये दानव हैं जिन्हों के द्वारा आप पराजित हो जाते हैं उनको मैं जब भी आपके द्वारा याद किया जाऊँगा सबको मार डालूँगा ।।४३।। हे शक्र! बहुत अधिक बातें करना तो व्यर्थ है और बार-बार वही कथन भी नहीं करना चाहिए। यह निश्चित है कि मैं आपका सखा हूँ और हे अरिसूदन! मैं सखा ही रहूँगा ।।४४।। इसके उपरान्त महादेव जी के पुत्रों को सर्वथा स्पृहा से शून्य देखकर इन्द्र ने कहा कि यदि आपको इन्द्र का पद अभीष्ट नहीं है तो हे गुह! मेरे सेनापति हो जाइये। तब कार्त्तिकेय प्रभु ने शचीपति से कहा था—अच्छा, ऐसा ही होगा। इसके अनन्तर हे विप्रो! परमेष्ठी के आदेश से सब सुरों के द्वारा अभिषिक्त हो गये थे और विधि के द्वारा गुहदेव सेनापति के पद पर स्थापित किये गये थे। जब तक कुमार के लिये भगवान् हर की आज्ञा से सेनापत्य का पद प्रदान किया किया था ।४७। उसी समय में तारक दैत्य शीघ्र ही कुमार को मारने के लिये वहाँ आगया था। उस समय में पार्वती सुत ने समागत हुए उसको देखकर उस महादैत्य को लीला ही से वह्नि जैसे तूलको भस्म कर दिया करती है उसी भाँति युद्ध में शीघ्र ही दग्ध कर दिया था। पावक जैसे पतङ्ग को भस्म कर दिया करता है वैसे ही उस महान् घोर तारक को दग्ध करके फिर प्रसन्न मन वाले स्कन्ददेव अपनी माता की गोद में आकर बैठ गये थे। भगवान् महादेव भी विष्णु भगवान् के सहित ब्रह्मा आदि देवों को विदा करके अपने गणों के साथ एक ही क्षण में अन्तर्धान हो गये थे ।।४८-५०।।

—

।। ब्रह्म-नारद संवादादि कथन ।।

कथितो भवता सूत विवाहः परमेष्ठिनः ।
उत्पत्तिः कार्तिकेयस्य तस्य चैव पराक्रमः ।।१।।
सैनापत्यं यथा दत्तं श्रुतं सर्वमशेषतः ।
भक्तियोगमथेदानीं वद सूत महामते ।।२
तृप्तिर्नाद्याप्यभूदस्माकं श्रुत्वा चैव पुनः पुनः ।
जानासि त्वं भगवतो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ।।३
उपासितो यतः सम्यग्भगवान्बादरायणिः ।
तत्प्रसादात्त्वया लब्धं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम् ।।४
दुर्लभं सर्वशास्त्रेषु मुनीनां च महात्मनाम् ।।५
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय महात्मने ।
प्रीतेन मनसा तेन तच्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः ।।६
सत्यलोके सुखासीनं ब्रह्माणं तेजसां निधिम् ।
ऋषिभिर्मूर्तिमद्भिः सिद्धैर्वेदैः साङ्गैरुपासितम् ।।७

ऋषिगणों ने कहा—हे सूतजी ! आपने कृपा करके परमेष्ठी प्रभु के विवाह का वर्णन करके सुना दिया है और आपने कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति कैसे हुई और उनमें कितना अतुल पराक्रम था यह भी सुना दिया है ।।१।। जिस प्रकार से उनको सैनापत्य पद प्रदान किया गया था वह भी सब हमने पूर्णतया श्रवण कर लिया है । हे सूतजी ! अब तो आप भक्तियोग के विषय में हमको बतलाइये क्योंकि आप तो यह महती विशाल मति से सुसम्पन्न महापुरुष हैं ।।२।। यद्यपि हम लोगों ने बार-म्बार आपके मुखारविन्द से सुना तो भी हमारे मन की तृप्ति अभी तक भी नहीं हुई है आप तो त्रिपुरद्विट् भगवान् के माहात्म्य को अच्छी तरह से जानते हैं क्योंकि आपने भगवान् बादरायणि की अच्छी तरह से उपासना की है । उनके प्रसाद से ही आपने उन परमेश्वर से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त किया है ।।३।।४।। यह ज्ञान जो आपको प्राप्त है वह बड़े-

बडे महात्मा और मुनियो को भी परम दुर्लभ होना है। तथा यह समस्त शास्त्रों में भी दुर्लभ है ॥५॥ श्री सूतजी ने कहा—पहिले समय मे ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले नारदजी को यह बतलाया था और उन्होने परम प्रसन्न मन से ही इसका उपदेश किया था। हे द्विजोत्तमो ! उसी को मै बतलाता हूँ आप लोग श्रवण करिये ॥६॥ सत्यलोक मे तेज की निधि ब्रह्माजी सुख पूर्वक बैठे हुए थे और उस समय मे ऋषि-मुनि, सिद्ध वेद अपने अङ्ग शास्त्रों के सहित उनकी उपासना कर रहे थे ॥७॥

सगीयमान गन्धर्वै स्तूयमान मरुद्गणै ।
दृष्ट्वा प्रणम्य विधिवन्नारदस्तमथाब्रवीत् ॥८
देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुरोत्तम ।
भक्तियोगस्य माहात्म्य देवदेवस्य शूलिन ॥९
प्रणम्य शकर शान्तमप्रमेयमनामयम् ।
पर ज्योतिरनाद्यन्त निर्गुण तमस परम् ॥१०
भक्तियोग प्रवक्ष्यामि शृणु नारद सुव्रत ।
भक्तियोगस्य माहात्म्य यथा शभोमया श्रुतम् ॥११
भक्तिर्भगवत शभोर्दुर्लभा खलु देहिनाम् ।
कथचिद्यदि सा लब्धा तेषा नैवास्ति दुर्लभम् ॥१२
भक्त्यैव प्राप्यते राजभिन्द्रत्व मत्पद च यत् ।
विष्णुत्वमपि मुक्ति च नून प्राप्नोति नारद ॥१३
शुभानामशुभाना च कर्मणा राशसचयम् ।
करोति भस्मसाद्भक्तिभत्रस्याग्निर्यथेन्धनम् ॥१४

गन्धर्व गण उनका गान कर रहे थे तथा मरुद्गण स्तवन कर रहे थे। देवर्षि नारद जी ने उनका दर्शन किया था और फिर उनको उनको प्रणाम किया था। विधि विधान पूर्वक प्रणिपात करके नारद जी ने उनसे कहा था ॥८॥ श्री नारदजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप जगत् के नाथ हैं। हे चतुर्मुख ! आप समस्त सुरगणो मे अत्युत्तम हैं।

आप देवदेव भगवान् शूली के भक्तियोग माहात्म्य को बतलाने कृपा कीजिए ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—मैं सर्वप्रथम परम शान्त स्वरूप वाले प्रभा के विषय के अयोग्य-अभय से रहित परम ज्योति—आदि और अन्त दोनों से रहित-निर्गुण और तम से परे रहने वाले भगवान् शङ्कर को प्रणाम करके उनके भक्तियोग को बतलाता हूँ। हे सुव्रत ! हे नारद ! आप सुनिये। भगवान् शम्भु के भक्तियोग का माहात्म्य जैसा भी मैंने सुना है भगवान् शम्भु की भक्ति का योग देहधारियों के लिये बहुत ही दुर्लभ है। यदि किसी भी प्रकार से वह भक्ति प्राप्त करली गयी हो तो फिर उनको कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है ॥१०-१२॥ भक्ति ही के द्वारा राज्य प्राप्त किया जाया करता है—इन्द्र का यह और जो मेरा पद है वह प्राप्त कर लिया जाता है। हे नारद ! विष्णुत्व और मुक्ति भी निश्चय ही प्राप्त किया जाता है ॥१३॥ जिस तरह से अग्नि के द्वारा इन्धन भी भस्म हो जाती है उसी भाँति शुभ और अशुभ कर्मों की राशि का सञ्चय होता है उसको भगवान् भव की भक्ति भस्म कर दिया करती है ॥१४॥

म्लेच्छोऽपि वा यदि भवेद्रुद्रभक्तिसमन्वितः।
न तस्य समभ्रनुर्वेदी नाग्निहोत्रादियज्ञकृत् ॥१५
अपि पापानि घोराणि सदा कुर्वन्नरो यदि।
लिप्यते नैव पापैस्तु भवती भवति चेद्द्विजे ॥१६
शिवभक्ता महात्मानो मुच्यन्ते ते न संशयः।
अपि दुष्कृतकर्माणः प्रमादाच्चलितो मुने ॥१७
सकृत्पूजयते यस्तु भगवन्तमुमापतिम्।
अश्वमेधादधिकं फलं भवति नारद ॥१८
जीवितं चञ्चलं ज्ञात्वा पद्मपत्र इवोदकम्।
मृतेर्दुरन्तावस्थातः कुर्याच्छिवे मतिम् ॥१९
शिवे मतिं प्रकुर्वीतः समागतनिमीलनात्।
मुच्यते मुनिशार्दूल मतिः सर्वेप्रतिदुर्लभा ॥२०

भवव्यालमुखस्थाना भीरूणां देहिना मुने ।
तस्माद्विमोचकस्तेषां महादेव इति श्रुतिः ॥२१

कोई म्लेच्छ भी क्यो न हो यदि वह भगवान् की भक्ति से समन्वित होता हो तो उसकी समानता रखने वाला चारो वेदो का ज्ञाता भी न होता है और न अग्निष्टोम आदि यज्ञो के करने वाला ही हुआ करता है ।।१४।। यद्यपि सदा महान् घोर पापो को भी मनुष्य कर रहा हो और वह भगवान् शिव का परम भक्त हो तो वह पापो से भी लिप्त नही हुआ करता है ।।१६।। भगवान् शिव के भक्त महान् आत्मा वाले होते हैं और निश्चित रूप से मुक्त हुआ करते हैं—इसमे संशय नही है । हे मुने ! चाहे दुष्कृत कर्मों के भी वे क्यो न करने वाले हो भगवान् शूली के प्रसाद से विमुक्त हो जाया करते हैं ।।१७।। जो एकबार भी भगवान् उमापति की पूजा किया करता है । हे नारद ! उसका पुण्य फल अश्वमेघ यज्ञ से भी अधिक हुआ करता है ।।१८।। पद्म के पत्र पर द्रव की तरह ही इस जीवित को चञ्चल समझकर मृत्यु और दुरन्त नरको से बचने के लिये शिव के चरणो मे अपनी भक्ति करनी चाहिए ।।१६।। भगवान् शिव के चरणो मे अपनी मति करने वाला इस अत्यन्तिक भीषण ससार से हे मुनि शार्दूल ! मुक्त हो जाया करता है किन्तु शिव मे मतिका होना अत्यन्त दुर्लभ है ।।२०।। हे मुने ! इस ससार रूपी सर्प के मुख मे स्थित-डरपोक देहधारियो को उससे विमोचन कराने वाले महादेव ही है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ।।२१।।

भक्तिः शिवे यदि भवेन्न कस्मात्कस्यचिद्ध्रुवम् ।
भवार्णवं तरत्येव प्रसादात्परमेष्ठिनः ।।२२
स्वर्गार्थिना मुमुक्षूणा ब्रह्मत्वमपि काङ्क्षिणाम् ।
भक्तिरेव विरूपाक्षे नान्यः पन्था इति श्रुतिः ।।२३
आदिमध्यान्तरहिते पिनाकिनि जगत्पतौ ।
सदा मनीषिभिः कार्या भक्तिरेव हि नारद ।।२४

सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तो भव हरे मुने ।
मुक्तो भविष्यसि क्षिप्रं तस्य शंभोरनुग्रहात् ॥२५
यस्य प्रसादलेशेन ब्रह्मत्व प्राप्तवानहम् ।
विष्णुत्वमपि विष्णुश्च स शिव कैर्न सेव्यते ॥२६
शिवे दान शिवे होमः शिवे स्नान शिवे जप ।
अक्षयानि फलान्येषामित्याह भगवाञ्छिव ॥२७
कुरुक्षेत्रे निवसता यत्फल नैमिषे तथा ।
प्रयागे च प्रभासे च गङ्गासागरसगमे ॥२८

यदि भगवान शिव मे भक्ति हो तो फिर उसको किसी से भी किसी का भय नही होता है और वह इस ससार सागर को परमेष्ठी के प्रसाद से तैर कर पार हो ही जाया करता है ।२२। स्वर्ग का निवास चाहने वाले मुक्ति की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले तथा ब्रह्मत्व के पद को भी चाहने वाले मनुष्यो को विरुपाक्ष प्रभु मे भक्ति का करना ही परमोत्तम साधन है तथा अन्य मार्ग नही है—ऐसा भी श्रुति के द्वारा प्रतिपादित है ।२३। हे नारद ! आदि-मध्य और अन्त से रहित जगत के पति पिनाकी मे मनीषियों को सर्वदा भक्ति ही करनी चाहिये ।२४। हे मुने ! अन्य सभी साधनों के समुदाय का त्याग करके भगवान हर के भक्त हो जाओ । उन परम कारुणिक शम्भु के अनुग्रह से बहुत शीघ्र ही मुक्ति की प्राप्ति हो जायगी ऐसे ही आप शीघ्र मुक्त हो जायगे ।२५। जिनके लेश मात्र प्रसाद से मैंने ब्रह्मा का पद प्राप्त कर लिया है और भगवान् विष्णु ने विष्णुत्व को प्राप्त किया है । वह ऐसे दयालु शिव भगवान् किनके द्वारा नही सेवन किये जाते हैं अर्थात दयालु देव का कौन सेवन नहीं करेगा ।२६। भगवान् शिव ने स्वय ही अपने मुख से कहा है—कि जो कुछ भी दान किया जावे वह दान—होम—स्नान और जाप सब भगवान् शिव की सेवा म समर्पित कर देना चाहिए । ऐसा करने वालों के फल अक्षय होते हैं ।२७। कुरुक्षेत्र धाम म तथा नैमिष क्षेत्र म जो निवास करने वाले हैं उनको जो भी पुण्य-फल मिलता है तथा

प्रयाग म—प्रभास मे और गङ्गासागर से सङ्गम स्थल मे निवास से फल होता है। वह सब शिव के केवल अर्चन से ही हो जाया करता है।२८।

रुद्रकोट्यां गयायां च शालिग्रामेऽमरेश्वरे ।
पुष्करे भारभूतेशे गोवर्णे मण्डलेश्वरे ॥२९
तत्फल दिवसेनैव भक्त्या भर्गार्चनाद्भवेत् ।
नास्ति लिङ्गार्चनात्पुण्यमधिक भुवनत्रये ॥३०
लिङ्गेऽर्चितेऽखिल विश्वमर्चित स्यान्न सशय ।
मायया मोहितात्मानो न जानन्ति महेश्वरम् ॥३१
अनुग्रहाद्भगवतो जानन्त्येव हि नारद ।
य पूजित शिव दृष्ट्वा प्रणमेद्भक्तिभावत ॥३२
पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फल भवति निश्चितम् ।
ये पुन शान्तमनस शिवभक्ता जितेन्द्रिया ॥३३
मर्त्य(यम)स्य वदन तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।
पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥३४
शिवलिङ्गे वसन्त्येव तानि सर्वाणि नारद ।
तस्माल्लिङ्ग सदा पूज्य भक्तिभावेन नित्यश ॥३५

रुद्र कोटि मे—गया मे—शालिग्राम मे—अमरेश्वर म—पुष्कर मे—भार भूतेश मे—गोवर्ण म—मण्डलेश्वर म निवास से जो भी फल प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण पुण्य—फल एक दिवस के समय म ही भक्ति भाव मार्ग के अभ्यर्चन ही प्राप्त हो जाया करता है। इन तीनों ही भुवनों मे भगवान शिव के लिङ्ग के अभ्यर्चन से अधिक पुण्य किसी से भी नहीं होता है।३०। एक लिङ्ग के अर्चन करने से सम्पूर्ण विश्व समर्पित हो जाया करता है—इसमे तनिक भी सशय नहीं है। माया से जिनकी आत्माएं मोहित हैं वे महेश्वर प्रभु को नहीं जानते हैं अर्थात महादेवजी के महत्त्व का ज्ञान ही नहीं हुआ करता है।३१। हे नारद! यह भी भगवान के अनुग्रह होने पर मनुष्य जाना करते हैं। जो कोई

भगवान् शिव को पूजित हुए देख लेता है और भक्ति भाव से दर्शन के पश्चात् उनको प्रणिपात किया करता है उस प्राणी को पुण्डरीक नाम वाले यज्ञ करने का पुण्य फल निश्चित रूप से प्राप्त हो जाया करता है। जो लोग शान्त मन वाले और जितेन्द्रीय पुरुष शिव के भक्त होते हैं हे नारद ! वे भी यमराज का मुख नहीं देखा करते हैं अर्थात् कर्मों के फल से विमुक्त होकर मुक्त हो जाया करते हैं। इस पृथ्वी में जो भी तीर्थ हैं और पुण्य स्थान हैं हे नारद ! वे शिव के लिङ्ग में निवास किया करते हैं। अतएव शिवलिङ्ग का सदा पूजन करना चाहिए और नित्य ही भक्ति की भावना से करना चाहिए ।३२।३५।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वस्मादधिकश्च सः ।
यस्तु लिङ्गार्चनं त्यक्त्वा देवानन्यांश्च पूजयेत् ॥३६
रत्नं विहाय मूढात्मा यथा काचमपेक्षते ।
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पौर्णमास्यां तथैव च ॥३७
अमावास्यां (या वा) त्रयोदश्यां पूजयेदिन्दुशेखरम् ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ३८
शिवलोकमवाप्नोति देहान्ते दुर्लभं मुने ।
शिवार्चनरतो नित्यं महापातकसम्भवैः ॥३९
दोषैः कृतैर्न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
दर्शनाच्छिवभक्तानां सकृत्सम्भाषणादपि ॥४०
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं भवति नारद ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽन्त्यजजातिजः ॥४१
शिवभक्तः सदा पूज्यः सर्वावस्थां गतोऽपि वा । . . .
नास्याऽऽचारं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा ॥४२

उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और वह सबसे अधिक है। जो लिङ्ग का अर्चन त्यागकर अन्य देवों का भजन किया करता है उसका यह अन्य देव का अर्चन इसी प्रकार से है जैसे कोई मूढ आत्मा वाला रत्न का परित्याग करके काच की अपेक्षा करता है। चतुर्दशी—

अष्टमी—त्रयोदशी—पौर्णमासी और अमावस्या तिथियों मे इन्दु शेखर का अर्चन करना चाहिए। ऐसा जो करता है वह सभी तीर्थों मे स्नान कर चुका हैं और सभी यज्ञों मे दीक्षित भी हो चुका है।३६। ३७।३८। हे मुने ! वह प्राणी देह के अन्त होने पर सीधा शिवलोक को प्राप्त हुआ करता है जोकि उसका प्राप्त करना अत्यन्त दुलभ होता है। शिव के अर्चन मे रत रहने वाला पुरुष महा पातको के द्वारा होने वाले दोषों के किये जाने पर भी जल से पद्म पत्र के ही समान लिप्त नही हुआ करता है। शिव के भक्तों की भी बड़ी महिमा है इनके दर्शन करने से तथा इनके साथ एक बार सम्भाषण करने से भी हे नारद ! अतिरात्र यज्ञ का फल मनुष्य प्राप्त कर लेता है। चाहे कोई ब्राह्मण हो—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र अथवा अन्त्यज जाति मे समुत्पन्न मनुष्य हो और भले ही सभी अवस्थाओ मे भी वह वर्त्तमान क्यो न हो यदि वह शिव का भक्त है तो सदा ही पूज्य होता है। शिव भक्त के आचार व्रत की और कुल की कभी परीक्षा नहीं करनी चाहिए।३६।४२।

त्रिपुण्ड्राङ्कितभालेन पूज्य एव हि नारद ।
कर्मणा मनसा वाचा यस्तु भक्तान्विनिन्दति ॥४३
निरयान्निष्कृतिर्नास्ति तस्य मूढात्मनो मुने ।
शिवभक्तान्वर्जयित्वा सर्वेषां शासको यम ॥४४
य पुन शिवभक्तानां शिव एव न चापर ।
न शिवाश्रयिणो मौञ्जी न दण्डो न च कुण्डले ॥४५
नैव काषायवासांसि भक्तिरेवात्र कारणम् ।
यदि भक्ता पशुपतौ पापकर्मसु ये रता ॥४६
यमस्य वदन तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।
ये पुन शान्तमनस शिवभक्ता जितेन्द्रिया ॥४७
मर्त्यधर्मं समासाद्य विज्ञेयास्ते गणेश्वरा ।
मृतस्य जीवतो वाऽपि शिवभक्तस्य नारद ॥४८
यमाद्भय न तस्यास्ति राजश्चैव तु सा कथा ।
आश्चर्यं कथयिष्यामि शृणु नारद यत्पुरा ॥४६

हे नारद ! त्रिपुण्ड के द्वारा अङ्कित भाल के द्वारा ही वह शिव का भक्त पूजने के ही योग्य हो जाया करता है। कर्म-मन और वचन से जो मनुष्य शिव भक्तो की निन्दा किया करता है हे मुने ! उस मनुष्य की नरक से कभी भी निष्कृति नही हुआ करती है और वह मूढ आत्मा वाला प्राणी है। शिव के भक्तों को छोड़कर ही अन्यों पर यमराज का शासन हुआ करता है।४३।४४। जो शिव के भक्तों को ऐसा ही मानता है कि यह तो साक्षात् ही शिव है और अन्य कोई नही है। शिव के समाश्रय ग्रहण करने वाले पुरुष के किसी भी चिह्न की आवश्यकता नही है। न उसे मौञ्जी होने की जरूरत है—न दण्ड और कुण्ठनों की ही उसे आवश्यकता होती है।कापाय वस्त्रों के धारण करने का भी कोई आवश्यकता नही है शिव भक्त का कारण तो केवल उनके चरणो मे भक्ति रखना ही हुआ करता है। यदि कोई पशुपति मे भक्ति रखता है और पापकर्मों म भी रत रहता है तो वह हे नारद ! यमराज के सदन को नही देखा करता है। जो पुरुष परमशान्त मन वाले हैं और इन्द्रियों को जीतकर शिव के भक्त होते है उनको साक्षात् महेश्वर ही समझना चाहिए उन्होंने मनुष्य धर्म को देखने मे ही प्राप्त कर रक्खा है। हे नारद ! चाहे वह जीवित रहेगा मृत हो जावे जो शिव का भक्त है उसको यमराज का, कभी भय नही रहा करता है फिर साधारण राजा से भय की तो बात ही क्या है। हे नारद ! मैं एक परम आश्चर्य की बात बतलाऊगा जो पहिले घटित हो चुकी है। उसका आप इस समय म श्रवण कीजिए।४५।४६।

उज्जयिन्या नृपो ह्यासीन्नाम्ना सत्यध्वजो मुने ।
धर्मात्मा सत्यसकल्प प्रजापालनतत्पर ।५०।
भुक्त्वा समस्तामवनि कालेनाथ दिव गत ।
वसुश्रुत इति ख्यात पुत्रस्तस्य महात्मन ।५१।
महाकालार्चनतस्तन्निष्टस्तत्परायण ।
न धर्मेण प्रजा शास्ति राजधर्मबहिष्कृत ।५२।

असाधून्सपरित्यज्य साधून्वै हन्त्यसौ नृप ।
प्रजानां कुशल नास्ति सर्वत्र परिपन्थिन ।५३।
यज्ञाश्च यज्वना दृष्ट्वा म्लेच्छा विध्वसयन्ति तान् ।
गते वर्षसहस्रे तु राज्ये तस्मिन्वसुश्रुते ।५४।
मृत्युकालोऽथ सप्राप्तो देहिनामतिभीषण ।
पापिष्ठ इति त मत्वा सप्राप्ता यमकिंकरा ।५५।
शिवभक्त इति प्राप्तास्त्रिनेत्रा शूलधारिण ।
शिवदूतै समानीत विमान सार्वकामिकम् ।।५६।।

हे मुने ! उज्जयिनी पुरी मे एक सत्यध्वज नाम वाला राजा हुआ था। वह राजा परम धर्मात्मा था तथा सत्य सङ्कल्प वाला और अपनी प्रजा के परिपालन करने मे सदा परायण रहा करता था ।५७। उसने सम्पूर्ण भूमि के शासन करने का सुख भोगा था और जब उसका समय हो गया तो वह देवलोक को चला गया था। उस महान् आत्मा वाले नृप का पुत्र वसुश्रुत इस नाम से विख्यात हुआ था। यह वसुश्रुत महाकाल के अर्चन रत तथा उसी की निष्ठा रखने वाला और उसी मे तत्पर रहा करता था। यह कभी भी अपने धर्म के अनुसार प्रजा का शासन नही किया करता था तथा राजा के धर्म से बहिष्कृत रहता था ।५१।५२। यह नृप जो असाधु लोग थे उनको तो त्याग दिया करता था और सदा साधुओं का ही हनन किया करता था। उसके शासन काल में प्रजाओं का कुशल नही था। सभी जगहों पर परिपन्थी लोग थे ।५३। म्लेच्छ लोग ऐसे बढ गये थे कि यज्ञों को और यजन करने वालों का विध्वंस कर दिया करते थे। उस राजा वसुश्रुत के एक सहस्र वर्ष राज्य शासन कर लेने पर उसके मृत्यु का काल सम्प्राप्त हो गया था जो कि देहधारियों के लिये अत्यन्त भीषण हुआ करता है। वह परमाधिक पापिष्ठ है—ऐसा मानकर यमराज के किङ्कर उसे यमपुरी ले जाने के लिये वहाँ पर आकर प्राप्त हो गये थे। वह शिव का परम भक्त है—ऐसा समझकर शिवदूत तीन नेत्रों वाले और शूल-

धारी भी वहां पर समागत हो गये थे। शिव के दूतों के द्वारा सब मनोरथों से पूर्ण एक विमान वहाँ पर लाया गया था ।५४।५५।५६।

यमदूतास्त्वतिक्रूरा पाशदण्डासिपाणय ।
आहर्तुं मुद्यता सर्वे नृप ता यमकिङ्करा ॥५७॥
गणेश्वरास्तत क्रुद्धा दृष्ट्वा तान्यमकिङ्करान् ।
त्रिशूलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्मंदासिमुंसलैस्तथा ।५८।
ताडयित्वा भृश दूतात्यमशासनपालकान् ।
नीत शिवपुर दिव्य पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।५९।
अथ ते किकरा सर्वे यम गत्वेदमब्रुवन् ।
शृणु धर्म यथा वृत्तमीश्वरस्य गणेश्वरै ॥
सर्वान्नरमास्ताडयित्वा नीत पापी वसुश्रुत ॥६०॥
न यज्ञैर्यजते देवान्न विप्रान्नातिथीनपि ।
न धर्मेण प्रजा पाति कथ शिवपुर गत ।६१।
तत्त्व धर्म विजानामि धर्मदण्डधरो भवान् ।
तस्माद्ब्रूहि (!) भगवस्तवाऽऽज्ञाकारिणो वयम् ।६२।
एव तेषा वच श्रुत्वा धर्मराट् सूर्यनन्दन ।
वच प्रोवाच गम्भीर स्मरन्नुमापति नारद ।६३।

ने जो कुछ किया है उस धर्म को आप सुनिए। उन्होने हम सबको मारपीट कर महान् पापी जो वहुश्रुत नृप था वह छीनकर ले गये हैं। वह तो ऐसा दुष्टात्मा था कि न तो कभी यज्ञ किया करता था—न देवो का भी भजन किया करता था—न विप्रो और अतिथियो का सत्कार करता था और धर्म के द्वारा अपनी प्रजा के जनो का भी पालन नही किया करता था फिर भला बताइये वह शिवलोक मे कैसे चला गया है ? ।६०।६१। सो आप तो धर्म को भली भाँति जानते ही है क्योकि आप तो धर्मदण्ड के धारी हैं। इससे हे भगवान् ! आप हमको बतलाइये क्योकि हम सब तो आपके ही आदेश के पालन करने वाले रहते हैं।६२। धर्मराज ने जो सूर्य का पुत्र था उन किङ्करो के वचन का श्रवण करके हे नारदजी ! वह किङ्करो के प्रति परम गम्भीर वचन बोला—।६३।

देवासुरमनुष्याणा सर्वेषा प्राणिनामपि ।
शास्ताऽहं नास्ति सदेह शिवभक्तमृते किल ।६४।
माहात्म्य शिवभक्ताना को वा विन्दति तत्त्वत ।
तेषा नियन्ता भगवान्महादेवो च चापर ।६५।
शिवभक्ता महात्मान सदा शर्वार्चने रता ।
अप्याश्रमाचारहीनास्त्यजध्व तान्प्रयत्नत ।६६।
वर्णाश्रमाणामाचारा अपि तेन विवर्जिता ।
श्वपचे यदि भक्त स्यान्न शास्य पूज्य एव हि ।६७।
भवद्भि परिहर्तव्या शिवभक्ता प्रयत्नत ।
पापकर्मस्वपि रतास्तेषामेनो न विद्यते ।६८।
बिभेमि शिवभक्तेभ्य सिंहादिव यथा मृगा ।
श्वेतस्याऽहरणे पूर्वमह देवेन घातित ।६९।
तत प्रभृत्यह शास्ता तद्भक्ताना न किंकरा ।
याऽसौ वसुश्रुतो राजा न प्रजा पालयन्यदि ।७०।

यमराज ने कहा—मैं सभी देवासुर मनुष्यों का और प्राणियों का भी शास्ता हूँ—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। किन्तु शिवभक्त को छोड़कर ही मैं सबका शासक हूँ।६४। कौन पुरुष है जो भगवान् शिव के भक्तों की निन्दा करने वाले हैं क्योंकि तात्त्विक रूप से उनका नियन्ता भगवान् महादेव ही होते हैं अन्य दूसरा कोई भी नहीं है।६५। भगवान् शिव के भक्त सदा ही शिव के अभ्यर्चन मे निरत रहा करते हैं। चाहे वे आश्रमों के आचार से हीन ही क्यों न होवें उनको प्रयत्नपूर्वक त्याग दिया करो।६६। वर्णों और आश्रमों का आचार वाले ही होवे और शिवार्चन से रहित हो तो उनको पकड़ लाया करो। यदि भगवान् शङ्कर के चरणों मे भक्ति करने वाला हो तो वह शासन करने के योग्य नहीं होता है और वह पूज्य ही हुआ करता है।६७। आप लोगों को प्रयत्नपूर्वक शिव के भक्तों का परित्याग ही कर देना चाहिए। चाहे वे पापकर्मों मे निरत भी क्यों न होवें किन्तु उनको पाप नहीं लगा करता है।६८। जैसे मृग सिंह से भयभीत रहा करते हैं उसी भाँति मैं शिव के भक्तों से डरता रहा करता हूँ। पूर्व मे मैं श्वेत के आहरण मे देव के द्वारा घातित हो गया था।६९। तभी से लेकर हे किङ्करो ! मैं शिव भक्तों का शासक नहीं हूँ। हे किङ्करो ! जो यह राजा सहस्रार्जुन है वह यदि प्रजा का पालन नहीं भी कर रहा था तो भी मन-वाणी और शरीर से भगवान् शङ्कर का भक्त था।७०।

तथापि शङ्करे भक्तो मनोवाक्कायकर्मभिः।
प्रमादात्तस्य देवस्य पापं स्पृशति तं कथम्।७१।
सकृत्पश्यति यो देवं महाकालं त्रिलोचनम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम्।७२।
य सदाऽर्च्यते देवं महाकालं तमीश्वरम्।
गणेश्वरः स मन्तव्यो भवद्भिरिति किङ्कराः।७३।
एवं यमस्य वचनं श्रुत्वा ते (तु) यमकिङ्कराः।
तूष्णीमासाद्य ते सर्वे बभूवुर्विगतज्वराः।७४।

तस्मात्पूज्यो महादेवस्तद्भक्तश्च विशेषत ।
भक्ताना पूजनाच्छ भु प्रीतो भवति नारद ।७५।
शिवस्य नित्यतृप्तस्य कि नाम क्रियते जनै ।
यत्कृत शिवभक्ताना तेन प्रीतो भवेच्छिव ।७६।
देवान्सर्वान्परित्यज्य भज नारद शकरम् ।।७७।।

उन देव शम्भु के प्रसाद से उसको पाप कैसे स्पर्श कर सकता है ।७१। जो एक बार भी महाकाल भगवान् त्रिलोचन का दर्शन कर लिया करता है वह सभी प्रकार के महापातकों से विमुक्त होकर अन्त मे भगवान् शिव के परम पद को प्राप्त हुआ करता है ।७२। जो उस महाकाल ईश्वर का सदा ही अभ्यर्चन किया करता है हे किंकरो ! उसे आप लोग साधारण प्राणी न मानकर भगवान् शिव का गणेश्वर ही समझना चाहिए ।७३। उन यमराज के किंकरो ने इस प्रकार के *यमराज के वचन का श्रवण करके वे सब चुपचाप होकर विगत ज्वर* हो गये थे ।७४। इसी कारण से भगवान् शिव के भक्त का सदा ही पूजन करना चाहिए और जो शिव के भक्त हो उनका विशेष रूप से अर्चन करना चाहिए । हे नारद ! अपने भक्तो के पूजन से शम्भु परम प्रसन्न हुआ करते है ।७५। नित्य ही तृप्त भगवान् शिव के लिये मनुष्यो के *द्वारा क्या किया जाता है । शिव के भक्तो के लिये जो भी किया जाता* है भगवान् शिव उसी से परम प्रसन्न हुआ करते है ।७६। अतएव हे नारद ! अन्य सब देवो का परित्याग करके केवल एक भगवान् शङ्कर का ही भजन करो ।७७।

।। पंचाक्षर मंत्र प्रभावादि कथन ।।

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पत्र पुष्पमथापि वा ।
यः प्रयच्छति शर्वाय तदनन्तफलं सकृत ।।१।।
सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः ।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।२।।
दीक्षितोऽदीक्षितो वाऽपि विधानादन्यथाऽपि वा ।
पञ्चाक्षरं जपेद्यस्तु शिवस्यानुचरो भवेत् ।।३।।
अपिकृत्वा भ्रूणहत्या पापानि सुबहून्यपि ।
पञ्चाक्षरजपात्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ।।४।।
न हि पञ्चाक्षरजपाच्छ्रेयोऽस्ति भुवनत्रये ।
एवं ज्ञात्वा जपेद्विद्वान्विद्या पञ्चाक्षरी शुभाम् ।।५।।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण बिल्वपत्रं . शिवार्चनम् ।
करोति श्रद्धया यस्तु स गच्छेदंश्वर पदम् ।।६।।
दर्शनाद्बिल्ववृक्षस्य स्पर्शनाद्वन्दनादपि ।
अहोरात्रकृतं पापं नश्यते ह्यपिसत्तम ।।७।।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—पाँच अक्षरों के मन्त्र से अर्थात् "ॐ नमः शिवाय"—इस मन्त्र के द्वारा जो कोई पत्र-पुष्प और जल का समर्पण भगवान् शिव के लिये किया करता है उस एक बार के करने ही से उसका अनन्त फल हुआ करता है।१। भगवान् शिव के मुखारविन्द से सात करोड़ मन्त्र विनिर्गत हुए थे किन्तु वे सभी मन्त्र मिलकर भी इस पंचाक्षरी मन्त्र की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं।२। विधान से दीक्षित हो अथवा अदीक्षित हो कैसा भी क्यों न हो जो प्राणी इस पंचाक्षरी वाले मन्त्र का जाप किया करता है वह अवश्य ही शिव का अनुचर हो जाया करता है।३। भ्रूण हत्या करके भी तथा बहुत से अन्य पापों को भी करके भी इस पाँच अक्षरों वाले मन्त्र को जपता है उस जाप से तुरन्त ही मुक्त हो जाया करता है—इसमें कुछ

लेश मात्र भी सन्देह नही है ।४। इन तीनों भुवनों मे इस पाँच अक्षरों वाले मन्त्र से अधिक कुछ भी श्रेय नही है । इस प्रकार से समझ कर ही विद्वान पुरुष को इस परम शुभा पञ्चाक्षरी विद्या का जाप करना चाहिए ।५। इस पञ्चाक्षरी मन्त्र के द्वारा विल्व के पत्रो से जो भगवान् शिव का समर्चन किया करता है और परम श्रद्धा की तो भावना से जो करता है वह ईश्वरीय पद को प्राप्त किया करता है ।६। हे ऋषि सत्तम ! विल्व वृक्ष की बडी महिमा है क्यो कि यह भगवान् शिव का परम प्रिय वृक्ष है । इसके दर्शन से—इसके स्पर्श करने से और इसकी वन्दना करने से भी एक अहोरात्र का किया हुआ पाप नष्ट हो जाया करता है ।७।

अन्तकाले नरो यस्तु बिल्वमूलस्य मृत्तिकाम् ।
आलिम्पेत्सर्वगात्राणि मृतो याति परा गतिम् ॥८
विल्ववृक्ष समाश्रित्य द्वादशाहमभोजनम् ।
यः कुर्याद्भ्रूणहा पापान्मुक्तो भवति नारद ॥९
विल्ववृक्षं समाश्रित्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।
हरनाम जपल्लँक्षं भ्रूणहत्या व्यपोहति ॥१०
विल्वपत्रैश्च खण्डैश्च पूजयेदिन्दुशेखरम् ।
माघे कृष्णचतुर्दश्या पूजयेदिन्दुशेखरम् ॥११
भक्त्या विल्वदलैर्मौनी हरनाम जपन्निशि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् । १२
शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि विल्वस्य नारद ।
पूजयेद्गिरिजानाथं मुच्यते सर्वपातकै. ॥१३
अर्घ्यं पुष्पफलोपेत यः शिवाय निवेदयेत् ।
युगानामयुत साग्रं शिवलोके वसेन्नरः ॥१४

जो मनुष्य अन्त काल में विल्व वृक्ष के मूल की मृत्तिका से अपने समस्त अङ्गों का विलेपन किया करता है वह मृत होकर परागति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ विल्व वृक्ष को समाश्रय करके जो द्वादश

दिन तक भोजन नहीं किया करता है हे नारद ! वह भ्रूणहा पाप से मुक्त हो जाया करता है ॥६॥ विल्व वृक्ष का समाश्रय ग्रहण करके जो तीन रात्रि पर्यन्त शुचि होकर उपवास किया करता है और एक लक्ष भगवान् हर के नाम का जाप किया करता है वह भ्रूण हत्या के पाप को विनष्ट कर दिया करता है ॥१०॥ विल्वपत्रों से तथा उनके खण्डों से इन्दुशेखर भगवान् शिव का माघ मास को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में पूजन करना चाहिए ॥११॥ भक्ति की भावना से विल्व दलों के द्वारा मौनी होकर रात्रि में हर का नाम का जाप करना चाहिए। वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर अन्तकाल में भगवान् शिव के परमपद को प्राप्त हो जाया करता है ॥१२॥ हे नारद ! शुष्क, पर्युषित विल्व के पत्रों से भी यदि गिरिजा के नाथ का पूजन किया करता है तो मनुष्य सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥१३॥ पुष्प और फलों से युक्त अर्घ्य को जो भगवान् शिव के लिये निवेदित किया करता है वह मनुष्य डेढ़ अयुत युगों तक शिवलोक में निवास किया करता है ॥१४॥

आप क्षीर कुशाग्राणि सघृत दधि तण्डुला ।
तिलैश्च सर्षपैः सार्धमर्घोऽष्टाङ्ग इति स्मृत ॥१५
पलकोटि सुवर्णस्य यो दद्याद्वेदपारगे ।
शिवाय रविनकामात्र प्रदत्वा (?) वाऽधिक भवेत् ॥१६
तस्मात्पत्रैः फलैः पुष्पैस्तोयैरपि यजेच्छिवम् ।
तदनन्तफल प्रोक्त भक्तिरेवात्र कारणम् ॥१७
लिङ्गस्य लेपन कुर्याद्दिव्यैर्गन्धैर्मनोरमैः ।
वर्षकोटिशत दिव्य शिवलोके महीयते ॥१८
सुगन्धालेपनात्पुण्य द्विगुण चन्दनस्य तु ।
चन्दनाच्चागरार्देय पुण्यमष्टगुणाधिकम् ॥१९
कृष्णागरोर्विशेषेण द्विगुण फलमिष्यते ।
तस्माच्छतगुण पुण्य कुङ्कुमस्य विधीयते ॥२०
चन्दनागरुकर्पूरैर्गोरोचनकुङ्कुमैः ।
लिङ्गमेतैः समालिप्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥२१

जल, दूध, कुशा के अग्रभाग, घृत, दधि चावल, तिल, सरसों इन सबका अर्घ्य आठ अङ्गों वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥१५॥ जो मनुष्य सुवर्ण की पलकोटि को किसी वेदों के पारगामी को देता है। शिव के लिये एक रत्तीमात्र ही अथवा अधिक दिया करता है ॥१६॥ इस कारण से पत्र, फल, पुष्प और जल से ही भगवान् शिव का भजन करना चाहिये। उसका अनन्त फल बतलाया गया है किन्तु इसमें भी एकमात्र भक्ति ही कारण होता है ॥१७॥ भगवान् के लिङ्ग का लेपन दिव्य गन्धों से जो बहुत ही मनोरम हो करना चाहिए। वह मनुष्य जो ऐसा किया करता है सौ करोड़ दिव्य वर्षों तक शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥१८॥ चन्दन के लेपन से सुगन्धित पदार्थ के लेपन से द्विगुण पुण्य हुआ करता है। चन्दन से भी आठ गुना अधिक पुण्य अगरु के लेपन से हुआ करता है—ऐसा ही जानना चाहिए ॥१९॥ जो कृष्ण अगरु होता है उसके लेपन से विशेष रूप से दुगुना फल हुआ करता है। उससे भी सौगुना फल पुण्य कुंकुम का होता है ॥२०॥ चन्दन, अगरु, कर्पूर, नाभिरोचन, कुसुम इन सबके द्वारा शिव लिङ्ग का विलेपन करके मनुष्य गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

सवीज्य तालवृन्तेन लिङ्गं गन्धैः सुलेपितम् ।
दशवर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥२२
मयूरव्यजनं दद्याच्छिवायातीव शोभनम् ।
वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥२३
चामरं यः शिवे दद्यान्मणिरत्नविभूषितम् ।
हेमरूप्यादिदण्डं वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ।
विमानं वरमारुह्य गणैर्याति शिवं पदम् ॥२५
अरण्यसम्भवैः पुष्पैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः ।
अपर्युषितनिश्छिद्रैरक्तैर्जन्तुवर्जितैः ॥२६

आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सपूजयेच्छिवम् ।
पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यमथोत्तरम् ॥२७
तपःशीलगुणाढ्याय वेदवेदाङ्गगामिने ।
दश दत्त्वा सुवर्णस्य फलं हि तदवाप्नुयात् ॥२८

तालवृन्त से सवीजन करके शिव भगवान् के लिङ्ग को गन्ध वाले पदार्थों से लेपन करे ऐसा करने से मनुष्य दश सहस्र वर्ष पर्यन्त शिव लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२२॥ मयूर का व्यजन शिव के लिये देना चाहिये यह अतीव शोभन हुआ करता है। वह मनुष्य सौ करोड़ वर्ष तक जो कि दिव्य वर्ष होते हैं शिवलोक मे प्रतिष्ठित रहा करता है ॥२३॥ जो कोई शिव का भक्त मणि और रत्नो से विभूषित चमर उन पर डुलाया करता है जिसका दण्ड हेममय रूप्य आदि का हो उसका जो पुण्य-फल होता है उसे भी सुन लो ॥२४॥ चमरो मे समासक्त हाथों वाली दिव्य स्त्रियो के द्वारा परिवारित होता हुआ गणो के साथ परम श्रेष्ठ विमान पर समारूढ होकर वह मनुष्य अन्त मे भगवान् शिव के पद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ जगलो मे समुत्पन्न पुष्पो से, पत्रो से जो पर्वतो मे समुत्पन्न हुए हो और वे अपर्युषित, निश्छिद्र अरक्त और जन्तुओं से वर्जित होने चाहिए अथवा आत्मारामोद्भव हो अर्थात् अपने बाग मे पैदा हुए हो ऐसे पुष्पो से भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए। पुष्प जाति विशेष से उत्तर पुण्य होता है। तपः शील और गुणाढ्य तथा वेद वेदाङ्गो का ज्ञान ब्राह्मण के लिये दश सुवर्ण के फल दान देकर वही पुण्य फल प्राप्त होता है ॥२६-२८॥

अर्कपुष्पैः कृता पूजा यदि देवाय शंभवे ।
अर्कपुष्पसहस्रेभ्य करवीर प्रशस्यते ॥२९
करवीरसहस्रेभ्यो बिल्वपत्र विशिष्यते ।
बिल्वपत्रसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते ॥३०
अर्कपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपुष्पं विशिष्यते ।
शमीपुष्पसहस्रेभ्यः कुशपुष्पं विशिष्यते । ३१

कुशपुष्पसहस्रेभ्यः पद्मपुष्पं विशिष्यते ।
पद्मपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते ॥३२
बकपुष्पसहस्रेभ्यो एक धत्त रकं तथा ।
धत्तूरकसहस्रेभ्यो बृहत्पुष्प विशिष्यते ॥३३
बृहत्पुष्पसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्प विशिष्यते ।
द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यः अ(भ्यो ह्य)पामार्ग विशिष्यते ॥३४
अपामार्गसहस्रेण श्रीमन्नीलोत्पल वरम् ।
नीलोत्पलसहस्रेभ्यः यो मालां संप्रयच्छति ॥३५

आक के पुष्पो से देव शम्भु के लिये की हुई पूजा यदि होवे तो उत्तम होती है और करवीर के पुष्प एक सहस्र आक के पुष्पों से भी प्रशस्त मानी गयी है ॥२६॥ एक सहस्र करवीर के पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त बिल्वपत्र माना गया है। एक सहस्र बिल्व पत्रों से भी प्रशस्त शमी के पुष्प माने गए हैं। एक शमी के पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त कुश के पुष्प माने गये हैं कुश के सहस्र पुष्पों से अधिक प्रशस्त पद्म पुष्प होते हैं और पद्म के सहस्र पुष्पों से अधिक प्रशस्त बक पुष्प माने गये हैं। एक सहस्र बक पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त धतूरे के पुष्प माने गये हैं धतूरे के सहस्र पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त बृहत्पुष्प माना गया है। बृहत्पुष्प सहस्र से अधिक प्रशस्त द्रोण पुष्प होता है और एक सहस्र द्रोण पुष्पों से अधिक प्रशस्त अपामार्ग का पुष्प माना गया है। अपामार्ग के सहस्र पुष्पों से अधिक प्रशस्त श्रीमन्नीलोत्पल श्रेष्ठ होता है। नीलोत्पल के एक सहस्र पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त वह है जो एक माला समर्पित किया करता है ॥३०-३५॥

निराय त्रिविधद्रव्यैः [illegible] पुष्पफलानुगुन् ।
[illegible] सहस्राणि [illegible] ॥३६
[illegible] ॥
[illegible] ॥३७
[illegible] ।
[illegible] ॥३८

बन्धूक केतकीपुष्प कुन्दयूथीमदन्तिका ।
शिरीष चार्जुन पुष्प प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३९
कनकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शङ्करे ।
दिवा शेषाणि पुष्पाणि दिवा रात्रौ च मल्लिका ॥४०
प्रहर तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।
केशकीटापविद्धानि शीर्णपर्युषितानि च ॥४१
स्वयं पतितपुष्पाणि त्यजेदुपहतानि च ।
मुकुलैर्नार्चयेदीश यस्य कस्यापि नारद ॥४२

भगवान् शिव के लिये भक्ति से विधिपूर्वक जो अर्पण करता है उसका पुण्य फल श्रवण कीजिए। एक सहस्र करोड कल्पों तक और सौ करोड कल्प पर्यन्त वह धीमान् शिव के तुल्य पराक्रम वाला होकर शिवपुर में निवास किया करता है। करवीर के ही समान जाती और विजय पाटला का समझना चाहिए ॥३६॥३७॥ श्वेतमन्दार का कुसुम और सित पद्म भी उसी के समान होता है। नाग, चम्पक और पुन्नाग धतूरे के पुष्प के ही तुल्य माने गये हैं ॥३८॥ शिव के समर्चन में प्रयत्नपूर्वक बन्धूक पुष्प, केतकी पुष्प, कुन्द, यूथिका, मदन्तिका, शिरीष और अर्जुन के पुष्पों का वर्जित रखना चाहिए। अर्थात् इन उपर्युक्त वृक्ष एवं लताओं के पुष्प शिव के यजन में ग्रहण नहीं करने चाहिए ॥३९॥ कनक और कदम्ब के पुष्प शङ्कर के ऊपर रात्रि में ही देने चाहिए। शेष पुष्पों को दिन में अर्पित कर तथा मल्लिका के पुष्प दिन में और रात्रि में दोनों में ही अर्पित किये जा सकते हैं। जाती का पुष्प एक ही प्रहर तक ठहरता है और करवीर का पुष्प अहर्निश रहा करता है। जो पुष्प केश और कीटों से अपविद्ध हों, शीर्ण हों, पर्युषित हों तथा स्वयं ही गिरे हुए हों एवं उपहत हों उनका त्याग कर देना चाहिए अर्थात् ऐसे पुष्पों से पूजन नहीं करें। हे नारद! जिस किसी भी वृक्ष की मुकुलों से अर्थात् कलियों से कभी भी शिव का अर्चन नहीं करना चाहिए ॥४०-४२॥

कलिकैनर्चयेद्देव चम्पकैर्जलजैर्विना ।
न पर्युषितदोषोऽस्ति जलजोत्पलचम्पके ॥४३
पुष्पाणामप्यलाभे तु पत्राण्यपि निवेदयेत् ।
फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधैरपि ॥४४
औषधानामभावे तु भक्त्या भवति पूजित. ।
बिल्वपत्रैरखण्डैस्तु सकृत्पूजयते शिवम् ॥४५
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ।
धत्तूरकैस्तु यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः ॥४६
गोलक्षस्य फलं प्राप्य शिवलोके महीयते ।
बृहतीकुसुमैर्भक्त्या यो लिङ्गं सकृदर्चयेत् ॥४७
गवामयुतदानस्य फलं प्राप्य शिवं व्रजेत् ।
मल्लिकोत्पलपुष्पाणि नागपुन्नागचम्पकैः ॥४८
अशोकश्वेतमन्दारकर्णिकारवकानि च ।
करवीरार्कमन्दारशमीतगरकेसरम् ॥४९
कुशापामार्गवृमुदकदम्बकुरवैरपि ।
पुष्पैरेतैर्यथालाभ यो नर पूजयेच्छिवम् ॥
॥ यत्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमना शृणु ॥५०

चम्पक और जलज के बिना कलियों से कभी भूलकर भी देव की अर्चना नहीं करनी चाहिये । जलज, उत्पल और चम्पकों में कभी पर्युषित होने का दोष नहीं हुआ करता है ॥४३॥ यदि पुष्पों का लाभ नहीं हो ऐसी दशा में पत्रों को ही भगवान् को निवेदित कर देवे । फलों के लाभ न होने पर भी तृण, गुल्म और औषधियों से समर्चन करे और औषधों के भी अभाव में भक्ति से ही शिव पूजित हो जाया करते हैं । अखण्ड बिल्व पत्रों से एक बार ही शिव का पूजन करना चाहिये । वह आदमी सब पापों से विशेष रूप से निर्मुक्त होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । जो मनुष्य एक बार लिङ्ग की पूजा धतूरे के पुष्पों और फलों से किया करता है वह एक लाख गौओं के दान

का फल प्राप्त करके शिवलोक मे ही प्रतिष्ठित हुआ करता है। जो कोई मनुष्य भक्ति से बृहती के पुष्पो के द्वारा एकबार शिवलिङ्ग की पूजा करता है वह अयुत गोओ के दान कर फल प्राप्त करके शिव की सन्निधि म प्राप्त हुआ करता है। जो मनुष्य, मल्लिका, उत्पल, नाग, पुन्नाग, चम्पक, अशोक, श्वेत मन्दार, शमी, तगर, केसर, कर्णिकार, वक, करवीर, अर्क, कुश अपामार्ग, कुमुद, कदम्ब कुरव इन पुष्पो से जो भी यथा समय प्राप्त होवें उनसे भगवान् शिव का जो मनुष्य पूजन किया करता है उसको जो भी पुण्य प्राप्त होता उसको एकाग्र मन वाला होकर श्रवण करो ॥४४-५०॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥५१
पुष्पमालापरिक्षिप्तैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
तन्त्रीमधुरनादैश्च स्वच्छन्दगमनैस्तथा ॥५२
रुद्रकन्यासमाकीर्णैः समन्तादुपशोभितैः ।
दाधूयमानश्चमरैः शिवलोके महीयते ॥५३
अनेनाकारविन्यासैः कुमुदैश्च शिव गृहम् ।
य कुर्यात्पर्वकालेषु विचित्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥५४
स पुष्पकविमानेन सहस्रपरिवारितः ।
दिव्यश्रीसुखसौभाग्यक्रीडारतिसमन्वितः ॥५५
अक्षयाल्लॅभते लोकानतिरस्कृतशासनः ।
शिवादिसर्वलोकेषु यत्रेष्ट तत्र याति स ॥५६

सब कामनाओ को पूर्ण करने वाले और करोड़ सूर्यों के समान दीप्यमान विमानो के द्वारा जाकि पुष्पो की मालाओ से परिक्षिप्त होते हैं तथा गीत-वादित्रो की ध्वनि से परिपूर्ण होते हैं एव तन्त्री के मधुर नादो से युक्त होते हैं और स्वच्छन्द गमन करने वाले हैं। रुद्र की कन्याओ से समाकीर्ण और चारो ओर से सुशोभित विमान होते हैं— उनके ऊपर चमर डुलाये जाया करते हैं ऐसे विमानों से वे निवार्य गमन करके शिव लोक को गमन किया करते हैं और वहाँ पर सुप्रतिष्ठित

रहते हैं। जो अनेक आकार वाले विन्यासो से और कुमुदो से पर्वकालो मे भगवान् शिव के आयतन को विचित्र कुसुमो से उज्ज्वल किया करता है वह पुष्पक विमान के द्वारा सहस्रो मे परिवारित होकर दिव्य स्त्रियो के सुख सौभाग्य की क्रीडा रति स प्रमुत होता हुआ अक्षय लोको को प्राप्त किया करता है और उसका शासन कहीं पर भी तिरस्कृत नहीं होता है। वह शिवादि समस्त लोको मे अपनी इच्छा के अनुसार ही गमन किया करता है ॥५१-५६॥

पूजादिभक्ति विन्यासैरर्चनादिषु सर्वत ।
फलमेक सम ज्ञेय फल वित्तानुसारत. ॥५७
स्वयमुत्पाद्य पुष्पाणि य स्वय पूजयेच्छिवम्।
तानि साक्षात्प्रगृह्णाति देवदेवो महेश्वर ॥५८
कृष्णागरो सकर्पूरं धुप दद्याच्छिवाय वै ।
नैरन्तर्येण मासार्धं तस्य पुण्यफल शृणु ॥५९
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
भुक्त्वा शिवपुरे भोगास्तदन्ते पृथिवीपति ॥६०
गुग्गुल घृतसयुक्त साक्षाद्‌गृह्णाति शकरः ।
मासार्ध धूपदानेन शिवलोके महीयते ॥६१
कृष्णपक्षे चतुर्दश्या य आज्य गुग्गुल दहेत् ।
स याति परम स्थान यत्र देव पिनाकधृत् ॥६२
श्रीफल चाऽऽज्यसमिश्र दत्त्वाऽऽप्नोति परा गतिम् ।
एभि सुगन्धितो धूप· पट् सहस्रगुणोत्तरः ॥६३
यस्त्वर्क सपुटे कृत्वा मधु चार्घस्य मन्त्रत ।
निवेदयति शर्वाय सोऽश्वमेधफल लभेत् ॥६४

पूजा आदि-भक्ति विन्यासो के द्वारा अर्चना आदि मे सब ओर से सबका समान एक ही फल होता है—ऐसा समझ लेना चाहिए। फल वित्त के ही अनुसार हुआ करता है ॥५७॥ जो स्वय पुष्पो का उत्पादन करके और स्वय ही भगवान् शिव का अर्चन किया करता है उनक

साक्षात् देवों के भी देव महेश्वर ग्रहण किया करते हैं ।।५८।। शिव के लिये कपूर के साथ कृष्ण अगरु की धूप देनी चाहिये । इस तरह निरन्तरता से जो एक मास के अर्धभाग तक किया करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसे भी सुनलो ।।५९।। एक सहस्र और सौ करोड कल्पों तक दिव्य भोगों का शिव के पुर में उपभोग करके उसके अन्त में यहाँ संसार में आकर पृथिवी पति राजा होता है ।।६०।। घृत से संयुक्त गुग्गल की धूपको भगवान् शङ्कर साक्षात् ही ग्रहण किया करते हैं मास के अर्ध भाग तक ऐसा करने से अर्थात् धूपदान से मनुष्य शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।६१।। मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में घृत के सहित गुग्गल का दाह करना चाहिए । वह मनुष्य उसी परम स्थान को चला जाया करता है जहाँ पर पिनाकधारी देव विराजमान रहते हैं ।।६२।। घृत से मिश्रित श्रीकर को समर्पित करके मनुष्य परागति को प्राप्त हुआ करता है । इन पदार्थों से सुगन्धित धूप छै सहस्र उत्तर गुणों वाली होती है ।।६३।। जो आदमी आक के पत्र का सम्पुट बनाकर गन्ध के द्वारा अथवा मधु शिव को निवेदित किया करता है वह अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है ।।६४।।

शालितण्डुलप्रस्थेन कुर्यादन्नं सुसंस्कृतम् ।
शिवाय तद्वरं दत्वा चतुर्दश्यां विशेषतः ।।६५

यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्नैवेद्ये परिसंख्यया ।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ।।६६

गुडखण्डघृताना च भक्ष्याणां च निवेदनात् ।
घृतेन पाचितानां तु दत्त्वा शतगुणं भवेत् । ६७

घृतदीपप्रदानेन शिवाय शतयोजनम् ।
विमानं लभते दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।।६८

यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् ।
घृतेन च चतुर्दश्याममावास्यां (यां वा) विशेषतः ।।६९

सूर्यायुतप्रतीकाशस्तेजसा भासयन्दिश ।
तेजोराशिविमानस्थ सूर्यवद्द्योतते सदा ।।७०
शिरसा धारयेद्दीप सर्वरात्र्या विशेषत ।
ललाटे वाऽथ हस्ताभ्या शिरसा वाऽथ नारद ।।७१
सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानै सार्वकामिकै. ।
कल्पायुतशत दिव्य शिवलोके महीयते ।।७२

शालि-तण्डुल प्रस्थ से अन्न को सुसस्कृत करना चाहिए । उसका चरु भगवान् शिव के लिये विशेष रूप से चतुर्दशी मे देवे । उस नैवेद्य मे परिसख्या मे जितने भी चावल होगे उतने ही सहस्र वर्षों तक वह शिव लोक मे प्रतिष्ठित रहा करता है ।।६५।।६६।। गुड, खांड और घृतो के भक्ष्य पदार्थों के निवेदन करने से जो केवल घृत मे पाचित पदार्थ है उनको समर्पित करके सौगुना पुण्य फल प्राप्त किया करता है ।।६७।। भगवान् शिवजी की सेवा मे घृत के दीपक दान से शतयोजन वाला विमान प्राप्त करता है जो परम दिव्य और करोड सूर्यों के समान दीप्ति वाला होता है । ६८।। जो आदमी कार्त्तिक मास मे परम शोभन दीपो की मालिका किया करता है । चतुर्दशी मे घृत से दीपक जलाता है तथा विशेष रूप से अमावस्या मे दीप दान करता है वह अयुत सूर्यों के प्रतिकाश वाले विमानो के द्वारा जिनमे सभी कामनाओ की पूर्ति के साधन विद्यमान थे गमन किया करते हैं और सो अयुत कल्पो तक दिव्य शिव लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ।।६९-७२।।

शिवस्य पुरतो दत्त्वा दर्पण च सुनिर्मलम् ।
चन्द्रांशुनिर्मल: श्रीमान्सुभग. कामरूप धृत् ।।७३
कल्पयुतसहस्र तु शिवलोके महीयते ।
कृत्वा प्रदक्षिण भक्त्या शिवस्याऽऽयतन नर: ।।७४
अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति नारद ।
शृगारामप्रार्थं स्तु शिवायतनकर्मणि ।।७५

उपयुक्तानि भूतानि खननोत्पातनादिषु ।
कामतोऽकामतो वाऽपि स्थावराणि चराणि च ॥७६
शिवं यान्ति न संदेह प्रसादात्परमेष्ठिन ।
क्रोशमात्रं शिवक्षेत्रं समन्तात्परमेष्ठिनः ॥७७

भगवान् शिव के आगे सुनिर्मल दर्पण को समर्पित करके जो अर्चन करता है वह स्वयं चन्द्र किरण के समान निर्मल होकर कामदेव के तुल्य सुन्दर स्वरूप को धारण करने वाला धीमान् सुभग सहस्र आयुत कल्प पर्य्यन्त शिव लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। मनुष्य भक्ति भावना से शिव के आयतन की प्रदक्षिणा करके हे नारद! एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। शिव के आयतन कर्म में कूप-आराम और प्रपा (प्याऊ) आदि से खनन और उत्पातन आदि में जो भूत उपयुक्त होते हैं, चाहे इच्छा से और भले ही बिना ही इच्छा के स्थावर और चर सब परमेष्ठी के प्रसाद से शिवकी सन्निधि को प्राप्त किया करते हैं—इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। परमेष्ठी प्रभु के सभी ओर एक कोश भर तक शिव का क्षेत्र होता है। तात्पर्य यह है कि शिवालय के चारों ओर एक कोश तक शिव का ही क्षेत्र माना जाता है ॥७३-७७॥

देहिना तत्र पञ्चत्वं शिवसायुज्यकारणम् ।
मनुष्यस्थापिते लिङ्गे क्षेत्रमानमिदं स्मृतम् ॥७८
स्वायम्भुवे योजनं स्यादार्षे चैव तदर्धकम् ।
पापाचारोऽपि यस्तत्र पञ्चत्वं याति नारद ॥७९
सोऽपि याति शिवस्थानं यद्देवैरपि दुर्लभम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानादिकं चरेत् ॥८०
तस्मादावसथं कुर्याच्छिवक्षेत्रसमीपतः ।
शिवलिङ्गसमीपस्थं यत्तोयं पुरतः स्थितम् ॥८१
शिवगङ्गेति मन्तेय तत्र स्नानादिना व्रजेत् ।
न कुर्याद्दीर्घिकां वाऽपि कूपं वाऽपि शिवाश्रमे ॥
निमग्नरुसमयुतः शिवलोके महीयते ॥८२

इस शिव के क्षेत्र मे देहधारियो की मृत्यु यदि हो जाती है तो वह शिव के सायुज्य प्राप्त कराने का कारण हुआ करता है। मनुष्य के द्वारा स्थापित किये हुए शिव लिङ्ग का यह क्षेत्रमात्र बताया गया है। स्वायम्भुव मे एक योजन (योजन ४ कोस का होता है) और ऋषियों के द्वारा यदि स्थापित शिव लिङ्ग हो तो उनका क्षेत्र स्वायम्भुव से आधा हुआ करता है। हे नारद ! कैसा ही पाप पूर्ण आचार वाला भी कोई वहाँ पर मृत हो जावे तो वह भी शिव के स्थान को गमन किया करता है जो कि देवो के द्वारा भी प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है। इसीलिये सभी प्रयत्नो से वहाँ पर स्नान आदि करना चाहिये और इसी कारण से शिव के क्षेत्र के समीप ही अपना निवास रखना चाहिये। शिव के लिङ्ग के समीप मे जो जल आगे स्थित है वह शिवगङ्गा इस संज्ञा वाली है। वहाँ पर स्नानादि करके ही गमन करे। जो कोई शिवाश्रय मे कुआ या दीर्घिका (बावडी) बनवाता है वह अपने इक्कीस कुलों के सहित शिवलोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥७८-८२॥



॥ शिवार्चन माहात्म्यादि कथन ॥

पुष्पं वा यदि वा पत्रं सकृल्लिङ्गे समर्पितम्।
तदनन्तफलं प्रोक्तं हेतुर्भवति मुक्तये ॥१

तुष्टे शिवे पदार्थः को दुर्लभो हि नृणां प्रभो।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवप्रीत्यर्थमाचरेत् ॥२

तावद्दातुं शिवः शक्तस्तावच्चिन्तयितुं प्रभुः।
तत्सर्वं न नरः सौम्यं शिवप्रीत्यर्थमाचरेत् ॥३

ऋद्धिसिद्धी न दूरस्थे शिवप्रीत्यर्थकर्मणाम्।
नराणां नरनाथे किं प्रीते नु दुर्लभं भवेत् ॥४

शिरसा शिवनिर्माल्यं भक्त्या यो धारयिष्यति ।
अशुचिर्भिन्नमर्यादः सर्वावस्था गतोऽपि वा ॥६
स्वैरी चैवाप्रयुक्तात्मा नियमैश्च वहिष्कृतः ।
तस्य पापानि नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥१०
मोहान्न धारयेच्छंभोर्निर्माल्यं न च भक्षयेत् ।
न स्पृशेदपि पादेन लङ्घयेन्नापि नारद ॥११
निर्माल्यलङ्घनाच्छंभोश्चाण्डाल. सोऽभिजायते ।
पृथूदक महत्तीर्थं गङ्गा च यमुना तथा ॥१२
नर्मदा सरयू. क्षिप्रा तथा गोदावरी नदी ।
सदा सन्निहितास्त्वेवं शंभोः स्नानोदके मुने ॥१३
शंभोः स्नानोदकं सेव्य सर्वतीर्थमयं हि तत् ।
धारणात्पापसंघातैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥१४

पार्वती पति के निर्माल्य को जो भक्ति भाव से शिर पर धारण करता है वह राजसूय यज्ञ के भजन करने का ही उत्तम पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है ।८। शिर से भक्ति भावना के साथ जो शिव के निर्माल्य को धारण करेगा चाहे वह अशुचि हो अथवा मर्यादा का भेदन करने वाला सभी अवस्थाओं मे रहने वाला भी क्यों न हो । स्वैरता से समाचरण करने वाला—अप्रयुक्त आत्मा वाला और नियमों से बहिष्कृत हो उसके सभी पाप विनिष्ट हो जाया करते हैं—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता ही नही है ।६।१०। जो मोह से शिव के निर्माल्य को धारण नहीं किया करता है अथवा उसका भक्षण नहीं करता है । हे नारद! उस शिव निर्माल्य को पैर से कभी स्पर्श नहीं करे और न उसका कभी उल्लङ्घन ही करना चाहिए।११। शम्भु के निर्माल्य के लघन करने से वह मनुष्य चाण्डाल होकर उत्पन्न हुआ करता है। हे मुने! पृथूदक महा तीर्थ-गङ्गा-यमुना-नर्मदा-सरयूक्षिप्रा तथा गोदावरी नदी शम्भु के स्नानोदक में सदा सन्निहित रहा करती हैं।१२।१३। शम्भु के स्नान के जल सदा ही सेवन करना चाहिए क्योंकि वह सभी तीर्थों से परिपूर्ण

हैं। उसके केवल धारण करने ही से समस्त पापों के संघातों से मनुष्य उसी क्षण में मुक्त हो जाया करता है।१४।

लिङ्गे स्वायंभुवे वाणे रत्नजे रसनिर्मिते ।
सिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥१५
पादोदकं च निर्माल्यं भक्तैर्धार्यं प्रयत्नतः ।
न तान्स्पृशन्ति पापानि मनोवाक्कायजान्यपि ॥१६
किं लिङ्गं प्रोच्यते तात केन वा तदधिष्ठितम् ।
भगवन्ब्रूहि मे सर्वमाश्चर्यं ह्येतदुत्तमम् ।१७
अव्यक्तं लिङ्गमित्युक्तमानन्दं तमसः परम् ।
महादेवस्य यत्नेन लिङ्गो स्यात्तेन शंकर ।१८
एकार्णवे पुरा घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
मम विष्णोः प्रबोधार्यमाविर्भूतं शिवात्मकम् ॥१९
तदाप्रभृत्यहं विष्णुर्भक्त्या परमया मुदा ।
लिङ्गमूर्तिधरं शान्तं पूजयावो वृषध्वजम् ॥२०

स्वायम्भुव लिङ्ग में—वाण में—रत्नों से निर्मित में—रस के द्वारा (पारे से) निर्मित में—सिद्धों के द्वारा प्रतिष्ठित में कभी चण्ड अधिकृत नहीं हुआ करता है।१५। शिव का पादोदक निर्माल्य भक्तों को सदा ही धारण करना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक धारण करे। उन मनुष्यों को मन वाणी और शरीर से कभी भी पाप स्पर्श नहीं किया करते हैं।१६। श्री नारद जी ने कहा—हे तात ! लिङ्ग किसको कहा जाता है और किसके द्वारा वह अधिष्ठित होता है। हे भगवान ! यह सभी आप हमारे सामने बतलाइये। यह एक उत्तम आश्चर्य ही है।१७। श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो अव्यक्त है वही लिङ्ग कहा गया है। वह आनन्द स्वरूप होता है और तम से परे है। यत्न से महादेव का लिङ्गी होना चाहिए उससे शंकर होता है।१८। प्राचीन समय में पहिले जिस समय में परम घोर एक अर्णव वहीं था और सभी स्थावर या जङ्गम भ्रष्ट हो गये थे तो मेरे विष्णु के प्रबोध प्रदान करने के लिए शिवात्मक

आविर्भूत हुए थे। तभी से लेकर मैं और विष्णु देव भक्ति से परमाधित आनन्द के साथ लिङ्ग मूर्त्ति के धारण करने वाले एवं परम शान्त वृषभ ध्वज भगवान का पूजन किया करते हैं।२०।

लिङ्गं कथमभूत्पूर्वमानन्दमजरं ध्रुवम्।
प्रबोधार्थं च युवयोर्वक्तुमर्हसि पद्मज ।।२१।।
आसीदेकार्णवे घोरे निर्विभागे तमोमये।
शेते च भगवान्विष्णुस्तप्तजाम्बूनदप्रभः ।।२२।।
तत्समीपमहं गत्वा सरम्भादिदमुक्तवान्।
कस्त्वं किमर्थं वा शेषे शीघ्रमुत्तिष्ठ दुर्मते ।।२३।।
कुरु युद्धं मया सार्धमहमेव जगत्पतिः।
अथ वा भज मां देव त्रैलोक्यस्याभयप्रदम् ।।२४।।
एवं मद्वचनं श्रुत्वा प्रहसन्मधुसूदनः।
मामब्रवीदमेयात्मा कथं गर्वायसे मुधा ।२५।
कर्ताऽहं सर्वलोकानां पालकोऽहं न संशयः
संहर्ताऽहं पुनश्चान्ते नान्योऽस्ति सदृशो मया ।२६।
एवं विवादे संजाते मम देवेन शार्ङ्गिणा।
प्रादुर्भूतं तदा लिङ्गमावयोर्दर्पहारि तत् ।२७।
कालाग्निप्रयुतप्रख्यं ज्वालामालासमाकुलम्।
आदिमध्यान्तरहितं क्षयवृद्धिविवर्जितम् ।२८।

श्री नारदजी ने कहा—यह लिङ्ग पूर्व में आनन्द स्वरूप और ध्रुव एवं अजर कैसे हुआ था जो कि दोनों पुत्रों के प्रबोधार्थ कराने के लिए ही हुआ था। हे पद्मज! यह सब आप बताने के लिये परम सुयोग्य हैं।२१। श्रीब्रह्माजी ने कहा—जिस समय में यहाँ पर एक मात्र सबत्र अर्णव ही था और यह स्थल परम घोर एवं तमोमय था उस समय में तपाये हुए सुवर्ण के समान प्रभा वाले भगवान् विष्णु उसमें शयन किया करते हैं। उनके समीप में मैंने जाकर सरम्भ से इस प्रकार से कहा था—हे दुर्मते! आप कौन हैं और क्यों शयन कर रहे हैं। शीघ्र ही

उठिये। मेरे साथ युद्ध करो क्योंकि मैं ही प्रजापति हूँ। अथवा देव मेरा यजन करो क्योंकि मैं त्रैलोक्य को अभय प्रदान करने वाला हूँ।२२-२४। इस तरह के वचनों का श्रवण करके मधुसूदन हँसते हुए मुझसे कहने लगे क्योंकि वे तो अमेयात्मा थे। उन्होंने कहा—क्यों वृथा गर्व कर रहे हो ? ।२५। इन समस्त लोकों का मैं कर्त्ता हूँ और मैं ही इनके पालन करने वाला भी हूँ—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अन्त काल में मैं ही इनके संहार का भी करने वाला हूँ और मेरे सदृश अन्य कोई भी नहीं है।२६। इस तरह से विवाद के हो जाने पर जो कि मेरा देव शार्ङ्गी के साथ हो गया था। उसी समय में हम दोनों के दर्प को हरने वाला लिङ्ग प्रादुर्भूत हो गया था जो कालाग्नि प्रयुतप्रख्य था और ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल था। वह आदि-मध्य और अन्त से भी रहित तथा क्षय एवं वृद्धि से वर्जित था।२७-२८।

तस्मिल्लिँङ्गे महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।२९।
अर्धनारीश्वरोऽनन्तस्तेजोराशिर्दुरासदः ।
ज्येष्ठत्वं युवयोस्तावदास्तां किंचिद्ब्रवीम्यहम् ।३०।
मूलं समास्य लिङ्गस्य यदि पश्यति माधवः ।
नूनं भविष्यति ज्येष्ठ इति देवेन भाषितम् ।३१।
मूर्धानमस्य लिङ्गस्य यदि पश्यति पद्मजः ।
भविष्यति ततो ज्येष्ठ इति देवेन भाषितम् ।३२।
एवं शम्भोर्निगदितमुररीकृत्य नारद ।
गतोऽस्मि मस्तकं द्रष्टुं तस्य लिङ्गस्य पुत्रक ।३३।
आवयोर्वर्षसाहस्रं गच्छतोर्मोहितात्मनोः ।
गतं देवस्वरूपे नूनं विस्मयाविष्टचित्तयोः ।३४।
हरिर्मूलमदृष्ट्वैव तं देवं पुनरागतः ।
यथा हरिस्तथैवाहमागतो वै मुने तदा ।३५।

तमेव शरणं गत्वा संस्तूय विविधैः स्तवैः ।
प्रीतो भूत्वा महादेवो वाक्यमेतदुवाच ह ।३६।

उस लिङ्ग मे स्वयं ज्योति—सनातन महादेव ही थे जो सहस्र शीर्षों वाले—सहस्राक्ष और सहस्रपात् पुरुष थे । वे अर्धनारीश्वर—अनन्त—तेज की राशि—दुरासद थे । तुम दोनो का ज्येष्ठत्व तब तक ही जब तक मैं कुछ बोलता हूँ । हे माधव ! मेरे इस लिङ्ग का मूल देखें तो आप निश्चय ही ज्येष्ठत्व को प्राप्त हो जायेंगे—यह देव ने उस समय मे कहा था ।२९।३०।३१। पद्मज (ब्रह्मा) यदि इस लिङ्ग के मूर्धा को देख लेते हैं तो वह ज्येष्ठ हो जायेंगे-यह भी देव ने कहा था ।३२। हे नारद ! इस प्रकार के शम्भु के कथन को स्वीकार करके मैं मस्तक को देखने के लिये गया था जो कि हे पुत्र ! उस लिङ्ग का था ।३३। हे देवर्षे ! मोहित आत्मा वाले तथा विस्मय से आविष्ट चित्त वाले हम दोनो को इस तरह से एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे ।३४। श्री हरि ने उस लिङ्ग के मूल को नही देखा था और वे यो ही पुन. समागत हो गये थे । उस समय मे जैसे हरि आये थे वैसे ही मैं भी आ गया था । उन्ही की शरण मे जाकर विविध स्तवो से उनकी स्तुति की थी तब महादेवजी परम प्रसन्न होकर यह वाक्य बोले थे ।३५।३६।

मत्प्रसादेन सर्वस्मादधिको भव माधव ।
मद्भक्तानां त्वमेवाग्र्यः पूज्यो मान्यस्त्वमेव हि ।३७।
लिङ्गं मां पूजय हरे लिङ्गमूर्तिधरो ह्यहम् ।
अत ऊर्ध्वं न संदेहः सर्वे चान्ये दिवौकसः ।३८।
लिङ्गाराधनतः क्षिप्रमज्ञानं नाशयाम्यहम् ।
लिङ्गार्चनरतानां च नास्ति संसारजं भयम् ।३९।
एवं हरेर्वरं दत्वा मामुवाच महेश्वरः ।
विरिञ्चे तव दास्यामि गृहाण वरमुत्तमम् ।४०।
चराचरस्य जगतो मान्यो भव पितामह ।
गृहाण चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विधे ।४१।

इत्यावाभ्यां वरं दत्त्वा देवदेवः पिनाकधृत् ।
विश्वेश्वरः स्वयंज्योतिः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।४२।

ईश्वर ने कहा था—हे माधव ! अब आप मेरे प्रसाद से आप सबसे अधिक हो जाइये। मेरे भक्तों के लिये भी आप ही अग्र में रहने वाले होंगे और आप ही पूज्य एवं मान्य होंगे। हे हरे ! मेरा पूजन लिङ्ग में ही करिए क्योंकि अब मैं लिङ्ग की मूर्ति का धारण करने वाला हो गया हूँ। इसके आगे सभी अन्य देवगण भी लिङ्ग के ही आराधना करने में रति वाले होंगे। जो मेरी आराधना करने वाले हैं उनके अज्ञान को मैं शीघ्र ही विनष्ट कर देता हूँ। जो लिङ्ग के अर्चन में निरत रहा करते हैं उनको कभी भी संसार से समुत्पन्न भय नहीं हुआ करता है।३७।३८।३९। इस प्रकार से हरि को वरदान प्रदान करके महेश्वर ने मुझसे कहा था—हे विरञ्चे ! मैं तुमको भी उत्तम वरदान दूँगा। आप उसको ग्रहण कीजिए।४०। हे पितामह ! आप इस चराचर जगत् के मान्य हो जाइए। देविधे ! आप अपने चार मुखों से चारों वेदों को ग्रहण कीजिए।४१। इस तरह से हम दोनों को वरदान देकर देवों के भी देव पिनाकधारी प्रभु विश्वेश्वर स्वयं ज्योति एक ही क्षण में वहीं पर अन्तर्धान हो गये।४२।

ततः प्रभृति विष्ण्वाद्या देवा दैत्याश्च दानवाः ।
गन्धर्वा मुनयः सिद्धा यक्षा नागाश्च किंनराः ।४३।
संपूज्य परमं लिङ्गं परां सिद्धिं गता मुने ।
नास्ति लिङ्गार्चनादान्यच्छ्रेयोऽस्मिन्भुवनत्रये ।४४।
ज्ञात्वा त्वमेव देवर्षे लिङ्गार्चनरतो भव ।
क्षेत्रेषु चैव तीर्थेषु वनेषूपवनेषु च ।४५।
यानि लिङ्गानि दिव्यानि स्थापितानि सुरासुरैः ।
द्रष्टव्यानि त्वयैतानि श्रद्धयैव हि नारद ।४६।
मुक्तिभाजो भवन्त्येव तेऽपि शम्भोरनुग्रहात् ।४७।

कानि स्थानानि दिव्यानि येषु सन्निहित. शिव. ।
आचक्ष्व तानि मे ब्रह्मन्माहात्म्य चापि कृत्स्नशः ।४८।
माहात्म्य दिव्यलिङ्गानां तीर्थानामपि नारद ।
अत्र ते कथयिष्यामि श्रूयतामघशास (नाश) नम् ।४९।

हे मुने ! तभी से लेकर विष्णु आदि देवगण—दैत्य—दानव—गन्धर्व—मुनि—सिद्ध—यक्ष—नाग—किन्नर इन सबने परम लिङ्ग की पूजा करके परासिद्धि को प्राप्त हो गये थे। इन तीनों भुवनों में लिङ्ग के अर्चन से अन्य कोई भी श्रेय नहीं है। हे देवर्षे ! आप भी इसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके लिङ्ग के अर्चन में निरत हो जाइये। क्षेत्रों में—वनों में—उपवनों में—तीर्थों में जो दिव्य लिङ्ग सुरासुरों ने स्थापित किये हैं। ब्रह्मपुरुषों को उनका दर्शन करना ही चाहिए और हे नारद ! बहुत ही श्रद्धा की भावना से ही उनका दर्शन करे। वे लोग जो दर्शन किया करते हैं मुक्ति को प्राप्त करने वाले हो जाया करते हैं। यह भगवान् शम्भु का ही परम अनुग्रह उन पर हुआ करता है। श्री नारदजी ने कहा—वे दिव्य स्थान कौन से हैं जिनमें भगवान् शिव नित्य सन्निहित रहा करते हैं। हे ब्रह्मन् ! उनको आप मुझे बतला दीजिए और पूर्ण रूप में उनका माहात्म्य भी बतला दीजिए। श्री ब्रह्मा जी ने कहा—हे नारद ! दिव्य लिङ्गों का माहात्म्य और उन तीर्थों का भी महात्म्य यहाँ पर मैं आपको बतला दूंगा उसका श्रवण आप सावधान होकर श्रवण करिये क्योंकि यह समस्त अघों का विनाश करने वाला है ।४२–४९।

या सा शैवी परा मूर्तिः शिवभक्त्या ह्युपा पतिः ।
नारायण. स्वय साक्षादहं चान्याश्च देवताः ।५०।
वसन्ति सागरे नूनं तीर्थराजेति स स्मृतः ।
जम्बूद्वीपं महापुण्यं तत्रापि लवणोदधिः ।५१।
अहोरात्रकृत पापं दर्शनादेव नश्यति ।
स्पृष्ट्वा त्रिरात्रज पापं नाशयत्येव सागरः ।५२।

सप्तरात्रकृत पापं प्रोक्षणादेव नश्यति ।
पानेन पक्षजनितं स्नानात्पक्षद्वयस्य च ।५३।
ऋतुद्वये तथाऽष्टम्यां पर्वस्नानं च वार्षिकम् ।
भानावनुदिते नित्यं य स्नाति लवणोदधौ ।५४।
कपिलायाः फलं तस्य दत्तायाः श्रोत्रिये ध्रुवम् ।
उपोष्य रजनीमेकां रविसंक्रमणं प्रति ।५५।
स्नात्वा शतसुवर्णस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ।
व्यतीपाते दिनच्छिद्रे अ (ह्य) यने विषुवेषु च ।५६।

जो भगवान् शिव की परामूर्ति है वह शिव की भक्ति से वरुण-नारायण और स्वयं साक्षात् मैं तथा अन्य देवगण उस सागर में निवास करते हैं और वह तीर्थराज इस नाम से कहा गया है। जम्बूद्वी महान् पुण्य से परिपूर्ण है। वहाँ पर भी क्षीर सागर है। अहरात्र कृत पाप उसके दर्शन से ही नष्ट हो जाया करता है। स्पर्श करने पर वह सागर तीन रात्रियों में किये हुए पाप का विनाश कर दिया करता है। सात रात्रि में किया हुआ पाप प्रोक्षण करने ही से नष्ट हो जाता है। पान करने से एक पक्ष में किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है और स्नान करने से एक मास में किया हुआ पाप नष्ट होता है। दोनों ऋतुओं में—अष्टमी तिथि और वार्षिक पर्वों में स्नान सूर्य के उदित न होने पर ब्रह्म मुहूर्त में जो नित्य ही इस लवणोदधि में स्नान किया करता है उसका फल वैसा ही होता है जैसा कि किसी श्रोत्रिय विप्र को कपिला गौ के दान देने में पुण्यफल हुआ करता है। सूर्य के संक्रमण करने के समय में एक रात्रि तक उपवास करके और स्नान करके जो शत सुवर्ण के दान का फल होता है वैसा ही पुण्य हुआ करता है। व्यतीपात में—दिन के छिद्र में—अयन में और विषुवेषु में स्नान करने का बड़ा महत्व है। ।५०-५६।

युगादौ च नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ ।
गोसहस्रस्य दत्तस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत् ।५७।

तत्फल लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् ।
दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभि ।५८।
तेषा फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ।
वडवानलमुक्तोऽसौ पूतो भवति नारद ।५९।
अतोऽस्माद्धि पर नास्ति सुतीर्थमवनीतले ।
गङ्गा गोदावरी रेवा चन्द्रभागा च वेदिका ।६०।
एतासा सगमो यत्र स्नान कुर्यान्महोदधौ ।
यानि पापानि घोराणि भ्रूणहत्यादिकानि च ।६१।
नाश यान्ति क्षणादेव सगमस्य प्रभावत ।
अश्वमेधसहस्रस्य फल च भवति ध्रुवम् ।६२।
समुद्रतीरे परम तेजोलिङ्ग दुरासदम् ।
यत्र सिद्धा पुरा वत्स मुनय सप्तकोटय ।६३।

युग के आदि दिन मे विधिपूर्वक मनुष्य स्नान लवणोदधि मे करके कुरुक्षेत्र मे एक सहस्र गौओ के दान देने म जो फल होता है वही पुण्य फल मनुष्य प्राप्त किया करता है और भूमि के दान का पुण्य–फल भी प्राप्त हो जाता है। मनीषियो के द्वारा लोको मे जो भी दान विख्यात किये गये हैं उन सबका फल चन्द्र और सूर्य के ग्रहण मे प्राप्त होता है। हे नारद ! यह मनुष्य वडवानल से मुक्त होकर पूत हो जाया करता है ।५७।५८।५९। इसीलिये इस तीर्थ से परमतीर्थ इस अवनीतल मे दूसरा कोई भी नही है। गङ्गा—गोदावरी—रेवा—चन्द्रभागा—वेदिका इन नदियो का जहाँ पर सङ्गम होता है वही पर महोदधि मे स्नान करना चाहिए। सङ्गम मे स्नान का बड़ा भारी अधिक प्रभाव होता है। इसमे जो भी महान् घोर भ्रूण हत्या आदि पाप होते हैं वे सब एक ही क्षण मे नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं। एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का फल भी निश्चित रूप से हुआ करता है। समुद्र के तट पर परम दुरासद तेजोलिङ्ग विराजमान हैं। हे वत्स ! जहाँ पर पहिले सिद्ध और सात करोड़ मुनिगण निवास किया करते थे ।६०–६३।

सप्तकोटीश्वर नाम तत प्रभृति नारद ।
तस्य लिङ्गस्य माहात्म्य मया वक्तु न शक्यते ॥६४
स्मरणादस्य लिङ्गस्य गोसहस्राफल लभेत् ।
समुद्रे विधिवत्स्नात्वा सप्तकोटीश्वर शिवम् ॥६५
ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानो मुक्तिभाजो भवन्ति ते ।
राजसूयस्य यज्ञस्य सहस्रगुणित फलम् ॥६६
तथा गोमेधयज्ञस्य दर्शनात्तत्फल त्विह ।
सप्तकोटीश्वरो देवो दृष्टश्चेद् भुवि मानवैः ॥६७
धन्यास्ते ये च लोकेऽस्मिस्तेषा मुक्ति करे स्थिता ।
तत्र स्नान जपो होमो दान च पितृतर्पणम् ॥६८
सर्वं तदक्षय प्रोक्त सप्तकोटीश्वरे शिवे ।
सप्तकोटीश्वर प्राप्य कथ शोचन्ति जन्तव ॥६९

हे नारद ! तभी से लेकर उस लिङ्ग का नाम सप्त कोटीश्वर पड गया था। उस लिङ्ग का माहात्म्य मेरे द्वारा तो वर्णित नहीं किया जा सकता है ॥६४॥ इस लिङ्ग के केवल स्मरण से ही एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त हो जाया करता है। उस समुद्र मे विधि-पूर्वक स्नान करके सप्तकोटिश्वर शिव का जो दर्शन करेंगे वे महान् आत्मा वाले मनुष्य मुक्ति के भागी हुआ करते है और उनको राजसूय यज्ञ का जो फल होता है उससे सहस्र गुना पुण्य फल हुआ करता है ॥६५॥६६। तथा गोमेध यज्ञ का फल यहाँ पर दर्शन से ही हो जाया करता है। यदि मानवो के द्वारा सप्त कोटीश्वर देव का भूमण्डल मे दर्शन कर लिया गया है तो परम सौभाग्य की बात है। वे पुरुष इस लोक में परम धन्य हैं और मुक्ति तो उनके हाथ मे स्थिर रहा करती है। वहाँ पर स्नान, जप, होम, दान और पितृ तर्पण ये सभी सप्त कोटीश्वर शिव के स्थान मे अक्षय बताये गये हैं। यह आश्चर्य की बात है कि सप्त कोटीश्वर लिङ्ग को प्राप्त करके जन्तुगण कैसे शोक किया करते हैं ॥६७ ६९॥

सर्वानुग्राहको रुद्रस्तस्मिँल्लिङ्गे व्यवस्थितः ।
न तच्छैलमय लिङ्ग न तद्धैम न राजतम् ॥७६
न तद्रत्नमय लिंग ज्ञातव्य मिति नारद।
कि तज्ज्योतिर्मय लिङ्ग शैव पदमनामयम् ॥७१
सप्तकोटीश्वर लिङ्गं प्राहुर्वेदविदो बुधाः ।
अह नारायणो देवः शक्रश्चन्द्रो दिवाकर. ॥७२
मरुतो मुनय. सिद्धाः खेचरा भूचराश्च ये ।
अर्चयित्वा पर लिङ्गं सप्तकोटीश्वर शिवम् ॥
प्राप्तवन्तः परा सिद्धि तस्मिँल्लिङ्गे च नारद ॥७३

उस लिङ्ग मे व्यवस्थित रुद्र सब पर अनुग्रह करने वाले हैं। वह शैलमय, हैम, राजत, रत्नमय लिङ्ग नही है हे नारद ! ऐसा ही जान लेना चाहिए किन्तु वह ज्योतिर्मय लिङ्ग है जो भगवान् शिव का अनामय पद है ॥७०॥७१॥ वेदो के ज्ञाता बुध पुरुष इसको सप्त कोटीश्वर लिङ्ग ही कहा करते हैं। मैं, नारायण देव, इन्द्र, चन्द्र, दिवाकर, मरुद्गण, मुनि, सिद्ध, खेचर और जो भूचर है वे सब सप्तकोटिश्वर शिव लिङ्ग का अभ्यर्चन करके उस लिङ्ग मे हे नारद ! परम सिद्धि को प्राप्त हुए है ॥७२॥७३॥

॥ महाकाल माहात्म्य कथन ॥

उज्जयिन्यां महाकाल ये वै पश्यन्ति मानवाः ।
अवाप्नुयुः पर लोक यत्र गत्वा न शोचति ॥१
महाकालस्य लिङ्गस्य दिव्यलिङ्गं तदुच्यते ।
स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सशरीराः शिव ययुः ॥२
तज्ज्ञात्वा च मया तत्र पाषाणः कुक्कुटाकृतिः ।
निक्षिप्तश्च महाकाले ततोऽभूत्कुक्कुटेश्वरः ॥३

तत्रैव नगरे रम्ये शूलेश्वर इति स्मृतः ।
तस्य दर्शनमात्रेण हयमेधफल लभेत् ॥४
शूलेश्वरस्य पूर्वे तु ॐकार लिङ्गमुत्तमम् ।
तत्र कुण्ड महादिव्य पूरितं पुण्यवारिणा ॥५
स्नान समाचरस्तत्र प्रयतात्मा समाहित. ।
द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि दशमे वाऽपि नारद ॥६
पक्षे मासेऽथ पण्मासे स्वप्ने पश्यति शकरम् ।
दिव्य ज्ञानमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उज्जयिनी पुरी मे महाकाल शिव है । जो मनुष्य उनका दर्शन किया करते है वे परमोत्कृष्ट लोक की प्राप्ति किया करते हैं जहाँ पर पहुँच कर फिर कुछ भी चिन्ता नही किया करते है ।१' महाकालेश्वर का जो लिङ्ग है वह दिव्य लिङ्ग कहा जाता है उस लिंग के केवल स्मरण करने ही से मनुष्य शरीर के सहित ही शिव को प्राप्त होगये है ॥२॥ यह जानकर मैंने एक कुक्कुट की आकृति वाला पाषाण महाकाल मे निक्षिप्त कर दिया था तभी से वह कुक्कुटेश्वर हो गये हैं । ३॥ उसी परम रम्य नगर मे शूलेश्वर कहे गये हैं । उनके दर्शन मात्र से ही हयमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है ॥४॥ इन शूलेश्वर के पूर्व मे ॐकारेश्वर नामक उत्तम शिवलिङ्ग हैं । वहाँ पर एक महान् दिव्य कुण्ड है जो परम पुण्य जल से भरा हुआ है ॥५॥ वहाँ पर स्नान का समाचरण करता हुआ प्रयत आत्मा वाला समाहित होकर द्वितीय दिन मे, तीसरे दिन मे, दसवे दिन मे हे नारद ! पक्ष मे, मास मे अथवा पण्मास मे या स्वप्न मे शङ्कर को देखा करता है । वह फिर परम दिव्य ज्ञान की प्राप्ति किया करता है जो कि ज्ञान देवगणों को भी अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है ॥६॥७॥

य पश्येल्लिङ्गमोंकार स्नात्वा कुण्डे समाहित ।
दीक्षासहस्रस्य फल प्राप्य याति परा गतिम् ॥८

तत्रं वागस्त्यमुनिना तपसाऽऽराधित शिव ।
प्रादुर्भूतश्च भगवानगस्त्येश्वरनामत ॥६
प्रसिद्धो दशनात्तस्य ब्रह्महत्या व्यपोहति ।
तत्रैव शक्तिभेदाख्य तीर्थं मुनिविषेवितम् ॥१०
तत्र स्नात्वा भद्रवट यस्तु पश्यति मानव ।
सवपापविनिर्मुक्त स्कन्दलोके महीयते ॥११
तीर्थानि कोटिश सन्ति उज्जयिन्या समन्तत ।
तेषा माहात्म्यमखिल स्कान्दे स्कन्देन भाषितम् । १२
कुरुक्षेत्रे तु देवर्षे स्थाणुर्नाम महेश्वर ।
तपस्तप्त्वा मया तत्र प्राप्त ब्रह्मत्वमुत्तमम् ॥१३
वालखिल्यादयस्तत्र सिद्धि प्राप्ता परा द्विजा ।
तत्राऽऽसीत्पुलह पूर्वं मदाक स्थाणुमन्दिरे ॥१४

जो पुरुष समाहित होकर कुण्ड मे स्नान करके ॐकार लिङ्ग का दशन किया करता है वह एक सहस्र दीक्षाओ का पुण्य, फल प्राप्त करके परागति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ वहां पर ही अगस्त्य मुनि ने तप के द्वारा भगवान् शिव की आराधना की थी और अगस्त्येश्वर क नाम से भगवान् प्रादुर्भूत हुए थे । वे इसी नाम से ही फिर प्रसिद्ध होगये थे । उनके दशन स मनुष्य ब्रह्महत्या का व्यपोह कर दिया करता है । वहाँ पर ही मुनियो के द्वारा निषेवित शक्ति भेद नाम वाला तीर्थ है ॥६॥१०॥ वहाँ पर स्नान करके जो मनुष्य भद्रवट को देखता है वह सभी पापो से निर्मुक्त होकर स्कन्द लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥११॥ उज्जयिनीपुरी म चारो ओर करोडो ही तीर्थ विद्यमान है । उनका सम्पूण माहात्म्य स्कन्द भगवान् ने स्वय ही स्कन्द पुराण म भाषित किया है । हे देवर्षे ! कुरुक्षेत्र म स्थाणु नाम वाले महेश्वर हैं । वहाँ पर मैंने तपश्चर्या का तप करके ही यह उत्तम ब्रह्मत्व पद प्राप्त किया है । वालखिल्य आदि द्विजा ने वहाँ पर परा-

सिद्धि प्राप्ति की थी। वहाँ पर पूर्व में स्थाणु मन्दिर में पुलह मशक था ॥१२-१४॥

मृतस्तु विविधान्भोगान्भुक्त्वा दिव्यमनोरथान् ।
तदन्ते मत्सुतो जातः स्थाणुमूर्द्ध(र्ति)प्रभावतः ॥१५
सर्वदेवमयो यत्र स्थाणुर्नाम महेश्वरः ।
इष्टः सकृच्च मनुजः शैवं पदमवाप्नुयात् ॥१६
तीर्थराज इति ख्यातः प्रयागो मुनिसत्तमाः ।
गङ्गायमुनयोस्तत्र सगमो लोकविश्रुतः ॥१७
तत्र स्नात्वा दिवं गत्वा भोगान्भुक्त्वा यथेप्सया ।
आस्ते महेश्वरो यत्र सर्वानुग्राहकः परः ॥१८
दर्शनादक्षयाल्लोकान्प्राप्नोति मनुजोत्तमः ।
अन्यत्तीर्थं परं गुह्यं गयातीर्थमिति स्मृतम् ॥१९
यत्र शम्भोर्भवतश्चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।
पितृणामक्षया तृप्तिस्तत्र पिण्डप्रदानतः ॥२०

मृत होकर उसमे विविध भोगों का उपभोग करके और दिव्य मनोरथों को प्राप्त करके उसके अन्त मे वह स्थाणु मूर्ति के प्रभाव से मेरा पुत्र हुआ था।।१५।। जहाँ पर सर्व देवमय स्थाणु नाम वाले महेश्वर विराजमान हैं। मनुष्य एकबार भी उनका आराधन करके इष्ट बना लेता है तो वह शिव के पद को प्राप्त किया करता है ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! प्रयाग तीर्थराज इस नाम से विख्यात हुआ था। वहाँ पर गङ्गा और यमुना इन दोनो परम पवित्र नदियों का लोकों मे प्रसिद्ध सङ्गम हुआ था ॥१७॥ वहाँ पर स्नान करके दिवलोक मे गमन करके और यथेच्छा से भोगों का उपभोग करके मनुष्य सद्गति को प्राप्त करता है। जहाँ पद पर और सभी पर अनुग्रह करने वाले महेश्वर विराजमान है ॥१८॥ उत्तम मनुज उनके दर्शन करने से अक्षय लोकों की प्राप्ति किया करता है। अन्य तीर्थ परम गुह्य हैं गया तीर्थ इस नाम से कहा गया है। जहाँ पर भगवान् शम्भु के चरण सुप्रतिष्ठित रहा करते हैं। वहाँ

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्ने च रस निर्मिते ।
सिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डस्याधिकारता ॥५
बाणलिङ्गे स्वयं भूमिश्चन्द्रकान्तिस्तथैव च ।
चान्द्रायणसमं पुण्यं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥६
वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम् ।
चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम् ॥७

उस तीर्थ मे देवकार्य की इच्छा करने वालो के द्वारा प्राय प्राप्त उपोष्य होता है । मूल पितृ तुष्टि के लिये है और महर्षियो ने उसे पित्र्य कहा है ॥१॥ जिसको प्राप्त करके सूर्य अस्तता को प्राप्त होता है यदि वह त्रिमुहूर्तिका होवे तो समस्त धर्म कृत्यो मे उसको सम्पूर्ण तिथि जाननी चाहिए ॥२॥ अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीया, चतुर्दशी ये तिथियाँ पर सयुक्त ही ग्रहण करनी चाहिए । दूसरी तिथियाँ पूर्व तिथि से मिश्रित ही ग्रहण करे ॥३॥ वृहतपा, रम्भा, सावित्री, वट पैतृकी, कृष्णाष्टमी समुन्नो तिथि सभूना ही करनी चाहिए ॥४॥ बाणलिङ्ग मे, स्वायम्भुव मे, रत्न मे, रस निर्मित मे और सिद्धो के द्वारा प्रतिष्ठित लिङ्ग मे चण्डका अधिकार से नहीं है । बाणलिङ्ग स्वयं भूमि तथा चन्द्रकान्ति है । भगवान् शम्भु के नैवेद्य के भक्षण मे चान्द्रायण के ही समान पुण्य होता ॥५॥६॥ वृषचण्ड और वृषही सोमसूत्र है तथा पुन वृष है चण्ड और सोम सूत्र-पुन. चण्ड और पुन वृष है ॥७॥

क्षार च आरनाल च कांस्यपात्रं मसूरिका ।
चणकास्तिनतैलं च मन्त्रवीर्यहराणि षट् ॥८॥
वामपादर्वे विनिक्षिप्य गृहीत्वा वामपाणिना ।
धृत्वा च दक्षिणे पाणौ तेन दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥९॥
गुरुश्चस्त्वन्धकारश्च रुशब्दस्तु निरोधक ।
अन्धकार निरोधत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥१०॥
गुरुत्यागी लभेन्मृत्यु मन्त्रत्यागी दरिद्रताम् ।
गुरुमन्त्रपरित्यागात्सिद्धोऽपि नरक व्रजेत् ॥११॥

एकमर्घ्यं प्रदातव्य मध्याह्ने भास्कर प्रति ।
उभयो सध्ययोरापस्त्रि क्षिपेदसुरक्षयात् ।१२।
भ्रातृद्वय न कुर्वीत न कतव्य पितासुतम् ।
अनग्निक न कर्तव्य न कुर्याग्दर्भिणीपतिम् ।१३।
निरग्निक स्मृतस्तावद्यावद्भार्या न विन्दति ।
साग्निको भार्यया यु क्त इत्यव मनुरब्रवीत् ।१४।

आर—आरनाल—कास्यपान—मसूरिका—चणकतिल तैल ये सौ मन्त्र के वीर्य के हरण करने वाले होते हैं ।।८।। वाम पार्श्व में विशेष रूप से निक्षिप्त करके वाम हाथ में ग्रहण करे । फिर दक्षिण हाथ मे धरकर तैल म जलाञ्जलि देनी चाहिए ।६। 'गु' यह शब्द अन्धकार वाचक है अर्थात् अन्धकार को बतलाता है और 'रु' यह शब्द निरोध करने वाले अथ का वाचक हैं । क्योंकि अज्ञान रूपी अन्धकार के निरोधक होने से ही गुरू शब्द कहा जाता है ।१०। गुरू के त्याग करने वाला मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और मन्त्र का त्याग करने वाला दरिद्रता को प्राप्त किया करता है । गुरू और मन्त्र को परित्याग करने से सिद्ध पुरुष भी नरक का गमन करने वाला हुआ करता है ।११। मध्याह्न मे भास्कर देव को एक ही बार अर्घ्य देना चाहिए । दोनो सध्याओ में असुरा केक्षय होने से तीन बार जल की अजलि का प्रक्षेप करना चाहिए ।१२। दो भाइयो को नहीं करना चाहिए और पितासुत को नही करना चाहिये । अनग्निक को न करे और गर्भिणी के पति को न करे ।१३। निरग्निक तभी तक कहा गया है जब तक भार्या को प्राप्त नहीं करता है । जो भार्या से युक्त होना,है वह साग्निक होना है—ऐसा मनुमहर्षि ने कहा है ।१४।

प्रणाममेकहस्तेन एक वाऽपि प्रदक्षिणम् ।
कालसेवा तथाऽकाले अब्दपुण्य विनश्यति ।१५।
सभाया यज्ञशालाया देवतायतने गुरौ ।
प्रत्येक च नमस्कारो हन्ति पुण्य पुराकृतम् ।१६।

गोक्षीर गोघृत चैव मुग्दधान्य तिला यवा ।
एते चैवाक्षारगणा अन्ये क्षारगणा स्मृता ।।७।
मक्षिका मशका वेश्या याचकाश्चैव मूषका ।
गणका ग्रामणीश्चैव सप्तैते परभक्षका ।१८।

एक हाथ से प्रणाम करना और एक प्रदक्षिणा तथा अकाल में काल सेवा—इनमे एक वर्ष का पुण्य विनष्ट हो जाया करता है ।१५। सभा में—रणशाला में—देवतायतन में – गुरु में प्रत्यक्ष को नमस्कार करना पुराकृत पुण्य का हनन किया करता हैं ।१६। गौ का दूध—गाय का घृत—मुग्दधान्य यव—तिल—ये सब अक्षारगण कहे गये हैं अन्य क्षारगण होते हैं। मक्षिका-मशक-वेश्या-याचक-मूषक-गणक-ग्रामणी—ये सात पर भक्षक होते हैं ।१७ १८।

।। देवेन्द्र चरित कथन ।।

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि शृणुध्व मुनिपु गवा ।
मनव षडतीतास्ते सप्तमो वर्तते किल ।१।
तेषा स्वायम्भुवस्त्वाद्यस्तत स्वारोचिष स्मृत ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ।२।
स्वायम्भुव तु कल्पादावन्तर कथित मया ।
स्वारोचिषेऽन्तरे देवास्तुषिता नाम ते स्मृता ।३।
विपाश्चिन्नाम देवेन्द्र ऋषीन्वक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा ।४।
तिमिर शार्वरीयाश्च सप्तैत ऋषय स्मृता ।
उत्तरे त्वन्तरे देवा सुधामानो द्विजोत्तमा ।५।
प्रतर्दना शिवा सत्यास्ताश्च वशवर्तिन ।
एतेषा च गणा प्रोक्ता भवद्वादशभिर्गणै ।६।

सुदान्तिर्नाम देवेन्द्रो महाबलपराक्रमः ।
रजो गोत्रोऽर्धवाहश्च सवनश्चानघस्तथा ।७।

हे मुनि पुङ्गवो ! अब आप लोग मन्वन्तरों को श्रवण कीजिए। अब तक छै मनु व्यतीत हो गये हैं। इस समय मे सातवा मनु वर्त्तमान है।१। उन सब मन्वन्तरो मे स्वायम्भुव मनु सबसे प्रथम मनु हुए थे। इसके पश्चात् स्वारोचिष मनु हुए थे। इनके पश्चात् उत्तम—तामस—रैवत और चाक्षुप हुए थे।२। कल्पादि मे स्वायम्भुव अन्तर मैंने कह दिया है। स्वारोचिष अन्तर मे तुपिता देव हुए थे ऐसा कहा गया है।३। विजाश्रित नाम वाला देवेन्द्र हुए थे। अब मैं ऋषियो को बतलाऊंगा। उस समय में ऊर्ज स्तम्भ—प्राण—दान्त—ऋषभ—तिमिर और शावरीवान्—ये सात (सप्तर्षि) ऋषि कहे गये है। हे द्विजोत्तमो ! उत्तर अन्तर मे सुधामान देव हुए थे पुतर्दन—शिव—सत्य और इसके पश्चात् वशवर्त्ती हुए थे। इनके गण भी कहे गये हैं जो आपके द्वादश गणों से युक्त थे।४।५।६। सुदान्ति नाम वाला देवेन्द्र था जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित था। रज—गोत्र—अर्धवाहु—सवन—अनघ—सुतया—शुक्र—इन नाम नामो वाले सात ऋषि हुए थे—ऐसा बतलाया गया है।७।

सुतपाः शुक्रनामाऽथ सप्तैत ऋपयः स्मृताः ।
मर्त्याश्च सुधियश्चैव तामसस्यान्तरे सुराः ।
ज्योतिर्धर्मः पृथुः कल्पश्चैत्राग्निः सवनस्तथा ।८।

पीवरश्च समाख्याताः सप्तैत ऋपयो मताः ।
स्याच्छिविर्नाम देवेन्द्रः सिद्धचारणसेवितः ।९।
देवराज्यं परित्यज्य परं वैराग्यमाश्रितः ।
ज्ञात्वैवाशाश्वतं सर्व बृहस्पतिमथाब्रवीत् ।१०।

भगवन्किं करोमीदं राज्यं तुच्छसुखं यतः ।
कैवल्यं लभते केन तन्मे ब्रूहि गुरो स्फुटम् ।११।

अस्त्यनन्तगुणावास परानन्दैकविग्रह ।
ध्यात कैवल्यपद पु सा महादेवो न चापर ।१२।
मोहपाशनिवद्ध ना महामोहान्मता हरेत् ।
स्मरणान्मोचकस्तेषामुमापतिरिति श्रुति ।१३।
यद्ब्रह्म परम ज्योति प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् ।
सर्वानुग्राहिण शभु तमाशु शरण व्रज ।१४।

तामस म वन्तर मे मनुष्य और सुधागण सुर हुए थे। ज्योति-धर्म—पृथु—काव्य—चैत्राग्नि—सवन और पीवर ये सात ऋषि माने गये हैं। शिविनाम वाला देवन्द्र था जो सिद्ध और चारणो के द्वारा सेवित था। ।८।९। वह देवराज्य का परित्याग करके परमाधिक वैराग्य के आश्रय लेने वाला हो गया था। इस सबको अनाश्रत समझ कर ही वृहस्पति जी से कहा था।१०। हे गुरुवर्य ! हे भगवान् ! इस परम तुच्छ सुख वाले राज्य से मैं क्या करूगा। अब आप मुझे यही बताने की कोशिश कीजिए कि कैवल्य की प्राप्ति किससे हो जाता है।११। देवगुरु वृहस्पति जी ने कहा—अनन्त गुणो का निवास—परानन्द ही जिनका एक विग्रह है अर्थात् आनन्दमय स्वरूप वाल महादेवजी का ध्यान किया जावे तो वे ही कैवल्य के प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई भी नहीं है।१२। वह देवेश्वर मोह के पास मे बधे हुओ की जो महामोहात्मा है उसका हरण कर दिया करते हैं। श्रुति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है कि उमापति के बल स्मरण से ही उन पाशो से मोचक हो जाया करते हैं। ।१३। जो ब्रह्म पर ज्योति—प्रतिष्ठाक्षर और अव्यय हैं तथा सभी पर अनुग्रह करने वाल है उन्हीं भगवान् शम्भु के तुम शरण म चले जाओ। ।१४।

स ज्योतिषा पर ज्योतिरानन्द तमस परम् ।
न यस्मादधिक किंचित्तत्त्व विद्धि शाकरम्।१५।
त जानीहि पर ब्रह्म विश्वात्मान महेश्वरम् ।
तदात्मकतया सर्व जानीह्यसुरसूदन ।१६।

आत्मान ये हि मत्यन्ते विभिन्न त्रिपुरद्विप ।
ते पश्यन्त्येव त देव नाऽऽवर्तन्ते पुन पुन ।१७।
सर्वस्मादधिक शभु परमात्मा महेश्वर ।
इति ये निश्चितधिय कृतार्थास्ते सुराधिप ।१८।
दर्शन तस्य काङ्क्षन्ते हरिब्रह्मादय सुरा ।
योगिनो नियतात्मानस्तमीश शरण व्रज ।१९।
महदादिविशेषान्त जगद्यस्मिल्लँय व्रजेत् ।
पुनरुत्पद्यते यस्मात्ता जानीहि पिनाकिनम् ।२०।
लीलाविलसिता यस्य विश्वमेतच्चराचरम् ।
तदभावाच्च विलयस्ता जानीहि महेश्वरम् ।२१।

वे ज्योतियो के भी परम ज्योति हैं तम से परे और आनन्द स्वरूप हैं। उनसे अधिक कुछ भी तत्त्व है ही नही। वह इसी शाङ्कर तत्त्व को समझो जो सर्वोपरि विराजमान है।१५। उनको आप परम ब्रह्म—विश्वात्मा महेश्वर ही जान लो। यह जो भी कुछ दृश्य है वह सभी उनकी आत्मा का ही स्वरूप है—ऐसा ही हे अरिसूदन ! आप जानलो। ।१६। जो लोग त्रिपुरद्विक् श्री शिव से अपने आपको भिन्न मानता है वे उस देव को देखते है अर्थात् दर्शन प्राप्त कर लिया करते हैं तो वे फिर बारम्बार इस संसार में जन्म लिया करते हैं।१७। शम्भु परमात्मा महेश्वर सभी से अधिक हैं। हे सुराधिप ! ऐसी जिनकी निश्चित बुद्धि है वे समस्त लो कि पूर्णतया कृतार्थ ही हो गये हैं।१८। हरि—ब्रह्मा आदि सुरगण भी जिनके दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं तथा योगिगण भी नियतात्मा को देखना चाहते हैं तो आप भी उसी ईश की शरणागति में चले जाओ।१९। जिसमे महत् से आरम्भ करके विशेष पर्यन्त लय को जगत् प्राप्त होता है और फिर भी उन्हीं से इसकी उत्पत्ति हुआ करती है उन भगवान् का ही ज्ञान प्राप्त करे अर्थात् शरण में जाओ। यह सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत् जिसकी एक लीला

का विनाश जैसा है और उनके अभाव से विलय को प्राप्त होता है उन्ही महेश्वर प्रभु की शरण म जाओ ।२०।२१।

यस्याऽऽज्ञया स्थितो ब्रह्मा जगज्जननकर्मणि ।
हरिश्च पालने रुद्र सहारे च स शूलभृत् ।२२।
यस्य प्रसादलेशेन मर्त्या मरणधर्मिण ।
भवन्त्येव हि तेऽमर्त्या भजन्ते वृषभध्वजनम् ।२३।
क्षण मुहूर्त्तमथवा ध्यात सम्पूजित स्मृत ।
प्रददात्याशु कैवल्य यस्त भज महेश्वरम् ।२४।
यस्यैव मूर्त्तयस्तिस्रो ब्रह्मविष्णु हरा इति ।
सर्गरक्षागुणलयैस्तमीश शरण व्रज ।२५।
यस्मात् स्थानि भूतानि येनेद भ्राम्यते जगत् ।
ब्रह्मेति च जगुर्वेदास्त रुद्र शरण व्रज ।२६।
यज्ञैर्य इज्यते देवो मुक्तये वेदवादिभि ।
कर्मणा फलस्तेषा शरण व्रज त हरम् ।२७।
ये विनिद्रा जितश्वासा ध्यायन्ति क्षीणकर्मिण ।
तेषा प्रजायते यत्तत्त्व विधि च शाकरम् ।२८।

जिन महेश्वर भगवान् की आज्ञा से ही इस जगत् के जनन करने के कर्म मे स्थित रहा करते हैं । श्री हरि भी उन्ही की आज्ञा से परिपालन करने के कर्म से जुटे रहा करते हैं एव रुद्र इसके सहार का कर्म किया करते हैं और सर्वदा सलग्न हैं वही भगवान् शूलधारी प्रभु हैं । ।२२। जिन के प्रसाद के लेश मात्र से मरण के धर्म वाले मनुष्य जो वृषभध्वज का भजन किया करते हैं वे अमर्त्य हो जाया करते हैं।२३। एक क्षणभर या एक मुहूर्त्त भर जो ध्यान किये जाने पर या सम्पूजित होने पर तथा स्मृत होने पर जो शीघ्र ही कैवल्य पद को दे दिया करते हैं उन्ही भगवान् महेश्वर का भजन करो ।२४। उन्ही की ये तीन ब्रह्मा—विष्णु और मूर्त्तियाँ हैं और सर्ग—रक्षा तथा लय करने के गुणों के ही कारण हैं तो उसी ईश की शरण मे गमन करो ।२५। जिनके

अन्तःकरण में समस्त भूत हैं और जिसके द्वारा यह जगत् भ्रमाया जाया करता है—वेद जिसको ब्रह्म कहकर गान करते हैं उन्हीं भगवान् रुद्रदेव की शरण में जाओ ।२६। जो देवयज्ञों के द्वारा यजन किया जाता है और वेदवादियों के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने को जिनका भजन किया जाता है और जो उनके कर्मों का फल प्रदान करने वाला है उन्हीं भगवान् हर की शरण में चले जाइये ।२७। जो निद्रा का त्याग करने वाले तथा श्वासों पर विजय पाने वाले क्षीण कर्मों वाले जिनका ध्यान किया करते हैं और उनको वही तत्त्व उत्पन्न हो जाया करता है वही तत्त्व शाङ्कर तत्त्व है—यह समझ लेना चाहिए ।२८।

अज्ञानरज्जवा बद्धाना मनुष्यदिशरीरिणाम् ।
महादेवादृते नान्या शक्र पश्यामि मोचकम् ।२९।
तस्मात्त्वं तपसा शक्र समाराधय शङ्करम् ।
प्रसन्नो दास्यति पद तव कैवल्यमुत्तमम् ।३०।
एव गुरोर्निगदित श्रुत्वा सुरपतिस्तदा ।
समाराधयितु देव ययौ बदरिकाश्रमम् ।३१।
तत्र गत्वा जटी भूत्वा भस्मनिष्ठो जितेन्द्रिय ।
मन्दाकिनीजले स्नात्वा भस्म चैवभिमन्त्र्य च ।३२।
अग्निरित्यादि मन्त्रैश्च समुद्धूल्य च विग्रहम् ।
पूजयामास देवेश पुष्पै पत्रैर्मनोहरै ।३३।
शैवी विद्या जपन्नास्ते शिवध्यानैकतत्पर ।
एव गतानि वर्षाणि सहस्राणि चतुर्दश ।३४।
तपसा देवराजस्य प्रसन्नोऽभूत्तत शिव ।
प्राह त्रिपुरहा शक्र वर ब्रूहि शतक्रतो ।३५।

अज्ञान की डोरी से बधे हुए मनुष्य आदि शरीरधारियों को मोचन करने वाला श्रीमहादेव जी से अन्य किसी को भी नहीं देखता हूँ ।२९। इस कारण से हे इन्द्रदेव ! आप प्रयश्चर्या के द्वारा भगवान् शकर की ही समाराधना करिए । वह प्रसन्न होकर आपको उत्तम पद को प्रदान

कर देंगे । उस समय में इस प्रकार के श्री गुरुदेव के कथन का श्रवण करके सुरपति महादेवजी की समाराधना करने के लिये वह एकाश्रम में चले गये थे ।३०।३१। वहाँ पहुँचकर सुरपति जटाधारी हो गया था । केवल भस्म में ही निष्ठा रखने वाले और जितेन्द्रिय हो गये थे । वहाँ पर मन्दाकिनी गङ्गा के जल में स्नान करके उन्होंने उस भस्म को अभिमन्त्रित किया था ।३२। "अग्नि"—इत्यादि मन्त्रों से अपने शरीर को उद्धूलित किया था । फिर उन्होंने पत्रों और मनोहर पुष्पों से वृषेश्वर का पूजन किया था ।३३। वे वहाँ पर शैवी विद्या का जाप करते हुए केवल भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण होकर स्थित रहे थे । इस प्रकार से करते हुए सुरपति के चौदह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे ।३४। इसके अनन्तर देवराज की उस तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न हो गए थे । तब त्रिपुर के शत्रु भगवान् शम्भु ने इन्द्र से कहा था— हे शतक्रतो ! वरदान माँग लो ।३५।

तपसाऽनेन तीव्रेण प्रसन्नोऽहं तवानघ ।
ईप्सितं ते प्रदास्यामि तव यद्यपि दुर्लभम् ।३६।
मयि प्रसन्ने तु हरे न किंचिदपि दुर्लभम् ।३७।
एवं शम्भोर्वचः श्रुत्वा स्तुत्वा तं विविधैः स्तवैः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्याऽऽह महेश्वरम् ।३८।
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि भवतो दर्शनाच्छिव ।
अलमन्यैर्वरैः शम्भो भक्तिर्भवतु मे त्वयि ।३९।
तव भव यमृताम्वादपरानन्दस्य देहिनः ।
भवेत्कष्टं कुतः शम्भो पूर्णकामो यतो हि सः ।४०।
तावदेवास्थिरं चेतः परिभ्रमति वस्तुषु ।
न यावत्त्वयि देवेश भक्तिर्भवति देहिनः ।४१।
तावदेव भवाम्भोधिर्दुस्तरो देहिनां हर ।
तव पादाम्बुजे भक्तिः परा यावन्न लभ्यते ।४२।

कर देंगे। उस समय में इस प्रकार के श्री गुरुदेव के कथन का श्रवण करके सुरपति महादेवजी की समाराधना करने के लिये वह एकाश्रम में चले गये थे।३०।३१। वहाँ पहुँचकर सुरपति जटाधारी हो गया था। केवल भस्म में ही निष्ठा रखने वाले और जितेन्द्रिय हो गये थे। वहाँ पर मन्दाकिनी गङ्गा के जल में स्नान करके उन्होंने उस भस्म को अभिमन्त्रित किया था।३२। "अग्नि"—इत्यादि मन्त्रों से अपने शरीर को उद्धूलित किया था। फिर उनके पत्रों और मनोहर पुष्पों से देवेश्वर का पूजन किया था।३३। वे वहाँ पर शैवी विद्या का जाप करते हुए केवल भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण होकर स्थित रहे थे। इस प्रकार से करते हुए सुरपति को चौदह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे।३४। इसके अनन्तर देवराज की उस तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न हो गये थे। तब त्रिपुर के शत्रु भगवान् शम्भु ने इन्द्र से कहा था—हे शतक्रतो ! वरदान माँग लो।३५।

तपसाऽनेन तीव्रेण प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ।
ईप्सितं ते प्रदास्यामि तत्र यद्यपि दुर्लभम् ।३६।
मयि प्रसन्ने तु हरे न किंचिदपि दुर्लभम् ।३७।
एवं शम्भोर्वचः श्रुत्वा स्तुत्वा तं विविधैः स्तवैः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्याऽऽह महेश्वरम् ।३८।
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि भवतो दर्शनाच्छिव ।
अनन्यैर्नरैः शम्भो भक्तिर्भवतु मे त्वयि ।३९।
तव भक्त्यमृतास्वादपरानन्दस्य देहिनः ।
भवेत्तत्र पुनः शम्भो पूर्णकामो यतो हि सः ।४०।
तावदचास्थिरं चेतः परिभ्रमति वस्तुषु ।
न यावत्त्वयि देवेश भक्तिर्भवति देहिनः ।४१।
तावद्दैन्यं तथा शोकोऽविद्रुस्तरो देहिनः हर ।
तव पादाम्बुजे भक्तिः परा यावन्न लभ्यते ।४२।

हे अनघ ! तुम्हारी इस तीव्र तपस्या से मै परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब मैं यद्यपि कुछ परम दुर्लभ भी होगा उम भी आपके अभीष्ट को प्रदान कर दूंगा।३६। मुझ हर के प्रसन्न हो जाने पर आपको अब कुछ भी दुर्लभ नही है।३७। इस प्रकार के भगवान् शम्भु के वचनो का श्रवण करके सुरपति ने सर्व प्रथम अनेक स्तवो के द्वारा उन का स्तवन किया था और फिर दोनो हाथो को जोडकर उनको प्रणाम किया था और फिर भगवान् महेश्वर से कहा था।३८। इन्द्रदेव ने कहा—हे शिव ! हे भगवन् ! मैं आपके दर्शन प्राप्त करके आज कृत्य-कृत्य हो गया हू। क्योकि मैंने साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर लिये हैं। अन्य वरदानो की अब कोई भी आवश्यकता नही है केवल आपके चरणो मे मेरी भक्ति बनी रहे।३९। आपकी भक्ति के अमृत का आस्वादन से देहधारी को परम आनन्द प्राप्त होता है। फिर कष्ट तो उसको हो ही नही सकता है क्योकि आप तो पूर्ण काम प्रभु है।४०। तब तक ही यह अस्थिर विश्व सासारिक भोग्य वस्तुओं मे भ्रमता रहता है। हे देवेश ! जब तक इस देहधारी की आपके चरणो मे भक्ति नहीं हुआ करती है।४१। हे हर ! देहधारियो को यह ससार रूपी सागर भी तभी तक दुस्तर हुआ करता हैं जब तक आपके पदाम्बुज मे इसको पराभक्ति प्राप्त नही हुआ करती है।४२।

तावत्पतति ससारगर्ते जन्तु. पुनः पुनः ।
यावन्न तव कारुण्यलेशो भवति शंकर।४३।
ससारविषवृक्षो य. सर्वतोऽतिभयंकरः ।
तव भक्तिकुठारेण च्छिद्यते नान्यथा शिव।४४।
इति शक्रवचः श्रुत्वा कारुण्यादवलोक्य तम् ।
समुत्स्पृश्य तु पाणिभ्यां गाणपत्य ददौ शिवः।४५।
विरञ्चिप्रमुखा देवा जायन्ते कर्मगौरवात् ।
प्रलये च विनश्यन्ति भवन्ति च पुन. पुनः।४६।

स्वर्गं गत्वा गता श्वभ्र तिर्यक्त्व च मनुष्यताम् ।
पुनर्विरञ्च्यादि पदमेव चक्रपरम्परा ।४७।
शम्भोर्गणेश्वरा ये च चाऽऽवर्तन्ते भवे पुन ।
भोगान्यथेप्सिताभुक्त्वा शम्भो सायुज्यमाप्नुयु ।४८।
स्वेच्छाविग्रहिण सर्वे स्वेच्छाचारा गणेश्वरा ।
शिवेन सह ते भोगाभुक्त्वा यान्ति शिव पदम् ।४९।

यह जन्तु इस ससार के गर्तों म तभी तक बारम्बार गिरा करता है। हे शङ्कर ! जब तक आपकी करुणा का लेश इसे प्राप्त नहीं होता है ।४३। ससार का यह विष वृक्ष जो सभी ओर से महान् भयकर होता है। हे शिव ! आपकी भक्ति रूपी कुठार से इसका छेदन किया जाया करता है । अन्य किसी भी प्रकार से इसका छेदन होता ही नहीं है ।४४। इस प्रकार के इन्द्र के वचनों का श्रवण करके बडी ही करुणा से उसकी ओर भगवान् शिव ने अपनी दृष्टि डाली थी और दोनों अपने हाथों से उसके अङ्गों का सस्पर्श किया था शिव ने उसे अपना गणपत्य पद प्रदान कर दिया था ।४५। विरञ्चि प्रमुख देवगण कर्मों के गौरव से जन्म ग्रहण किया करते हैं और जब प्रलय काल होता तो ये सब विनष्ट हो जाया करते हैं। इसी प्रकार से ये सब बारम्बार हुआ करते हैं। ये स्वर्ग में जाकर श्वभ्र वायु धारण करते हैं— तिर्यक्त्व को भी प्राप्त किया करते हैं और मनुष्यता प्राप्त करते हैं। ये फिर विरञ्चि आदि के पद को प्राप्त किया करते है। इसी प्रकार से यह चक्र भी परम्परा चला करती है ।४७। भगवान् शम्भु के जो गणेश्वर होते हैं वे इस तरह से इस ससार म फिर आवर्त्तित नहीं हुआ करते है। वे तो यथेप्सित भोगो का उपभोग करके भगवान् शम्भु के सायुज्य को ही प्राप्त किया करते हैं ।४८। गणेश्वर सब अपनी इच्छा से ही विग्रह धारण करने वाले हुआ करते हैं और स्वेच्छा से ही आचार करने वाले होते हैं। वे तो भगवान् शिव के ही साथ भोगो को भोगकर अन्त में शिव के पद को प्राप्त कर लिया करते है ।४९।

एव दत्त्वा वरं शम्भुर्गाणपत्यं सुदुर्लभम् ।
सुरराजाय शिवये तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥५०
गाणपत्यं वरं लब्ध्वा शिविर्भगवतो द्विजाः ।
आज्ञया तस्य देवस्य जगाम स्वपुरीं ततः ॥५१
महादेवार्चनरतो महादेवकथारतः ।
स्थित्वा मन्वन्तरं तत्र चण्डो नाम गणोऽभवत् । ५२
वृषध्वजस्त्रिनेत्रश्च जटाजूटेन्दुमण्डितः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशश्चतुर्बाहुस्त्रिशूलभृत् ॥५३
अक्षमालाधरः खड्गी सर्वेषामभयप्रदः ।
द्वीपिचर्माम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः ॥
रराज शाङ्करपदे नन्दीश्वर इवापरः ॥५४
एतद्वः कथितं सर्वं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।
सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥५५
श्रद्धया ये पठन्तीदं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।
प्राप्नुवन्त्यश्वमेधस्य फलमित्यब्रवीद्रविः ॥५६

इस प्रकार से भगवान् शम्भु ने वरदान करके और परम दुर्लभ गाणि पत्य पद प्रदान करके सुरराज के कल्याण के लिये वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥५०॥ हे द्विजो ! शिवि गणपत्य पद का वरदान प्राप्त करके जो भगवान् से मिला था उन्हीं देवेश्वर की आज्ञा से वह फिर अपनी पुरी को चला गया था ।५१। वह फिर सदा महादेव जी की अर्चना में ही निरत हो गया था और सर्वदा महादेवजी की कथा में रत हो गया था । एक मन्वन्तर तक वहाँ रह करके वह फिर चण्ड नाम वाला शिव का गण बन गया था ।५२। उसका स्वरूप फिर वृषध्वज—त्रिनेत्र जटाजूट में चन्द्रधारण कर परम मण्डित—शुद्ध स्फटिक मणि के सदृश—चार भुजाओं वाला और त्रिशूल के धारण करने वाला हो गया था ।५३। वह अक्षों की माला को धारण करने वाला—खड्गधारी और सभी को अभय के प्रदान करने वाला हो गया था । हाथी के चर्म

के द्वारा अङ्गों को ढाकने वाले—समस्त आभूषणों से भूषित होकर पद दूसरे नन्दीश्वर के ही समान शोभित हो गये थे।५४। हे द्विजो! यह सम्पूर्ण शिविका चरित्र मैंने आप लोगों को बता दिया है। यह सभी पापों का क्षय करने वाला है और मनुष्य को सभी सिद्धियों के देने वाला है।५५। जो इस शिवि के चरित को मख यज्ञ के भजन करने का पुण्य—फल प्राप्त कर लिया करते हैं—ऐसा रवि देव ने कहा था।५६।

।। नित्यादि प्रति संचर कथन ।।

विभुर्नामा भवेदिन्द्रो रैवतस्यान्तरे द्विजा ।
वैकुण्ठाद्या देवा गणाश्चत्वार ईरिता ।।१
हिरण्यरोमा विश्वश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथैव च ।
ऐन्द्रबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यश्च महामुनिः ।।२
सप्तैते ऋषयः प्रोक्ता प्रियव्रतकुलोद्भवा ।
मनोजय सुरेन्द्रोऽभूच्चाक्षुषेऽप्यन्तरे द्विजा. ।।३
आयोः प्रसूता भावाद्या कथिता देवतागणा ।
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो बुधः ।।४
अत्रिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः
पुत्रो विवस्वतो विप्रा मनुर्वैवस्वतः स्मृतः ।।५
साम्प्रतं वर्तते योऽसौ तत्र देवान्ब्रवीम्यहम् ।
मरुद्भूणास्तथाऽऽदित्या रुद्राश्च वसव स्मृता ।।६
पुरंदरस्तु देवेन्द्रो बभूवासुरदर्पहा ।
वसिष्ठ कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतम ।।७

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो! रैवत मन्वन्तर में विभुनाम वाला इन्द्र हुआ था। वैकुण्ठ आदि देवता हुए थे जो चार गण ही कहे गये हैं

।१। हिरण्ण सेमा-विश्वश्री-ऐन्द्र वाहु-ऊर्ध्व वाहु-सुवाहु-पर्जन्य और महामुनि—मेरी सात ऋषि बताये गये हैं जो प्रिय व्रत राजा के कुल में प्रसूत होने वाले थे ! हे द्विजो ! चाक्षुष मन्वन्तर में, मनोजव सुरेन्द्र हुआ था ।२।३। आयु से आवाद्य प्रसू से हुए थे जो देवगण कहे गये हैं। सुमेधा-विरजा-हविष्तार उत्तम-बुध-अत्रिनाम वाला सहिष्णु-ये सात ऋषि कहे गये हैं ? हे विप्रो ! विवस्वान् का पुन वैवस्वत मनु कहा गया है। ।४।५। इस समय में जो वर्त्तमान है। उसमें जो देवगण हैं उनको भी बतलाता हूँ। मरुद्गण—आदित्यगण—रुद्रगण—वसुगण— ये सब देवता बताये गये हैं ।६। असुरों के दर्प का हनन करने वाला पुरन्दर देवेन्द्र है। वसिष्ठ—कश्यप—अत्रि—जमदग्नि—गौतम—विश्वामित्र—भरद्वाज—ऐसे ऋषि गण हैं ।७।

विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्तैत ऋषयो मताः ।
मन्वान्तराण्यतीतानि वर्तमान मया द्विजाः ।।८
कथितान्यथ वक्ष्यामि शृणुध्वं प्रतिसंचरम् ।
चतुर्धा कथितः सोऽपि पुराणेऽस्मिन्द्विजोत्तमाः ।।९
नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतात्यन्तिको तथा ।
योऽय भूतक्षयो लोके नित्यं नित्यस्तु स स्मृतः ।।१०
कल्पान्ते यस्तु संहारो नैमित्तिक इहोच्यते ।
महदाद्य विशेषान्त स यदा याति संक्षयम् ।।११
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽय कथ्यते मुनिभिर्द्विजाः ।
आत्यन्तिकस्तु प्रलयो ज्ञानादेव स जायते ।।१२
तच्च ज्ञान महेशस्यभक्तिलभ्यमिति श्रुतिः ।
चतुर्युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते भूतसंक्षये ।।१३
अनावृष्टिस्ततस्तीव्रा जायते शतवर्षिकी ।
वृक्षगुल्मलताः सर्वाः पृथिव्या यान्ति संक्षयम् ।।१४

हे द्विजो ! मैंने अतीत और वर्त्तमान मन्वन्तर बतला दिये हैं इसके पश्चात् मैं प्रति सञ्चर को बतलाऊंगा। उसका आप मोष श्रवण करिये।

हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण में वह भी चार प्रकार का बताया गया है ।८।९। नित्य—नैमित्तिक—प्राकृत और आत्यन्तिक ये उसके चार भेद हैं। जो लोक में भूतों का क्षय होता है वही नित्य कहा गया है ।१०। कल्प के अन्त में जो संहार होता है वही नैमित्तिक कहा जाता है। महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक वह सब क्षय को प्राप्त होता है वही प्राकृत प्रतिसर्ग हे द्विजो ! मुनियों के द्वारा कहा गया है। आत्यन्तिक प्रलय जो होता है वह ज्ञान से ही हुआ करता है ।११।१२। और वह ज्ञान भगवान् महेश के भक्ति से तन्य हुआ करता है—यही श्रुति है। चारों युगों के एक सहस्र के अन्त के प्राप्त होने पर जो भूतों का सक्षय होता है। उसमें बहुत तीव्र अनावृष्टि होती है जो एक सौ वर्ष तक चला करती है। इस पृथ्वी में वृक्ष गुल्म और लता आदि सभी सक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं ।१३।१४।

गभस्तिमाली भगवानथ सप्तरथोऽभवत् ।
रश्मिभिः सागराम्भांसि तदा पिबति भास्करः ॥१५

दीप्ताश्च रश्मयतेन भवन्ति मुनिपुंगवाः ।
भवन्ति सूर्याः सप्तैते सर्वतो रश्मिसंकुलाः ॥१६

तेषां रश्मिप्रतापेन दग्धा भवति मेदिनी ।
द्वीपैश्च पर्वतैः सार्धं सागरैश्च द्विजोत्तमाः ॥१७

सूर्यतेजोग्निदग्धानां भूतानां च परस्परम् ।
एकत्वमुपजातानामग्निरेकस्ततोऽभवत् ॥१८

ज्वालाभिरखिलं विश्वं निर्दहत्वाशु पावकः ।
स दग्ध्वा पृथिवीं सर्वां रुद्रतेजोविजृम्भितः ॥१९

दिवं दग्ध्वाऽथ पातालं दन्दहीति द्विजोत्तमाः ।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य शतयोजनमायताः ॥२०

तेजसा तस्य कालाग्नेरग्निः संवर्तकः स्वयम् ।
दग्ध्वा स चतुरो लोकान्सयक्षोरगराक्षसान् ॥२१

इसके पश्चात भगवान गर्भस्ति माली अर्थात सूर्य सात रथो वाले हो जाया करते हैं। उस समय मे भगवान् भास्कर सागर के जलो को पीजाया करते हैं।१५। हे मुनि पुङ्गवो ! उससे उसको किरणे बहुत ही दीप्त हो जाया करती है। ये सात सूर्य सभी ओर से रश्मियो से सकुल हो जाया करते हैं।१६। उनकी किरणो के प्रताप से यह सम्पूर्ण पृथ्वी दग्ध हो जाती है। हे द्विजोत्तमो ! सभी पर्वत—द्वीप और सागरो के सहित पृथ्वी जली हुई सी हो जाया करती है।१७। सूर्य की अग्नि मे दग्ध हुए भूतो का परस्पर मे एकत्व को प्राप्त हो जाने वाले होने से एक ही अग्नि हो जाया करती है।१८। यह पावक अपनी ज्वालाओ से सम्पूर्ण विश्व को निर्दग्ध कर दिया करता है। रुद्र के तेज से विजृम्भित वह समस्त पृथ्वी को दाघ करके फिर दिव लोक को जलाकर हे द्विजोत्तमो! इसके पश्चात वह पाताल लोक को जला दिया करता है उस अग्नि की शिखायें सौ योजन तक ऊची उठा करती हैं।१६।२०। उस कालाग्नि के तेज से सम्वर्त्तक स्वयं चारो लोको को दाघ करके यक्ष—उरग और राक्षसो को जला देता है।

तप्तायःपिण्डवत्सर्वं जगदेतत्प्रकाशते ।
उत्तिष्ठन्ते ततो मेघास्तडिद्भिश्च समन्ततः ॥२२
संवर्तकोपमाः सर्वे नानावर्णा भयकराः ।
जायन्ते भास्कराद्घोरा राविणो मुनिपुंगवाः ॥२३

ततो वर्षं प्रमुञ्चन्ति विन्दुभिर्गजसन्निभैः ।
ब्रह्मणा प्रेरिता वृष्टिर्जायते शतवार्षिकी ॥२४
जलौघैर्नाशमायान्ति तदा कल्पान्तपावकाः ।
द्वीपैश्च पर्वतैर्युक्ता पृथिवी पूर्यते जलैः ॥२५
विलीयते धरा चैव सर्वा एव द्विजोत्तमाः ।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे देवदेवः प्रजापतिः ॥२६
योगनिद्रां समास्थाय शेते ध्यायन्महेश्वरम् ।
एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो मुनिपुंगवाः ॥२७

अत शृणुष्व वक्ष्यामि प्राकृतः प्रलयो यथा।
कालाग्निरुद्रो भगवान्परार्धद्वितये गते ॥२८

यह सम्पूर्ण जगत् उस समय मे एक तपे हुए लोहे के गोले के ही समान प्रकाशित हुआ करता है। इसके पश्चात फिर मेघ उठते हैं जिनमे सभी ओर विद्युत चमका करती है ।२२। सभी मेघ साम्वर्त्तक के ही समान होते हैं जिनके विभिन्न और विविध तो वर्ण होते हैं और बहुत अधिक भयङ्कर हुआ करते हैं। हे मुनि श्रेष्ठो ! वे भास्करा से अधिक घोर ध्वनि करने वाले हुआ करते हैं ।२३। इसके पश्चात् वे मेघ गजों के समान विशाल बूँदो से वर्षा किया करते हैं। यह वृष्टि ब्रह्मा जी के द्वारा प्रेरित होती है और सौ वर्ष तक निरन्तर हुआ करती है ।२४। वे कल्प के अन्त की पावक उस समय मे जलो के समुदायो से नाश को प्राप्त हो जाया करती हैं। द्वीपो और पर्वतो से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी जल से परिपूर्ण होकर भर जाया करती है ।२५। हे द्विजोत्तमो ! उस समय मे यह समस्त पृथ्वी जल मे विलीन-सी हो जाया करती है। वह तो ऐसा समय होता है कि सर्वत्र एक मात्र सागर ही दिखलाई दिया करता है और वह परम घोर होता है। उसमे देवो के देव प्रजापति योग निद्रा मे शयन करते हुए महेश्वर भगवान् का ध्यान किया करते हैं। इसीको नैमित्तिक प्रलय कहा गया है हे मुनि श्रेष्ठो ! यह भी उन चारो मे से एक प्रलय है ।२६।२७। अब इससे आगे मैं यह बतलाऊगा कि प्राकृत प्रलय कैसे होता है। परार्ध द्वितय के समाप्त होने पर भगवान् कालाग्नि रुद्र इस ब्रह्माण्ड को भस्मसात् करके ताण्डव नृत्य करने के लिये समास्थित हो गये थे ।२८

।। शिव तीर्थ कथन ।।

हेतुना केन भगवान्कालकालो महेश्वरः ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्ब्रूहि मे कमलोद्भव ।।१
आसीन्मुनिवरः पूर्वं नाम्ना श्वेत इति स्मृतः ।
तीर्थोदकानि सेवेत यमाश्च नियमास्तथा ।।२
माहेश्वराग्रणीः शान्तो महादेवार्चने रतः ।
तं नेतुमागतः कालो दण्डहस्तो भयंकरः ।।३
दृष्ट्वा काल स विप्रेन्दो भयव्याकुलितेन्द्रियः ।
स्पृष्ट्वा कराभ्या तल्लिङ्गं ध्यायमानो महेश्वरम् ।।४
प्रहसन्नब्रवीत्कालः श्वेतं मुनिवरं मुने ।
प्राप्ते मयि कथ ब्रह्मन्स्वस्थास्तिष्ठन्ति जन्तवः ।।५
चरन्ति मद्भयात्सर्वे ब्रह्मचर्यं तपासि च ।
तीर्थं दानं प्रशसन्ति निरताः स्वेषु कर्मसु ।।६
यजन्ति मद्भयाद्देवान्यज्ञाश्च विविधास्तथा ।
तस्मादुत्तिष्ठ नेष्यामि मम पाशवश गतः ।।७

श्री नारदजी ने कहा—किस हेतु से कालकाल महेश्वर भगवान हैं। हे भगवान् ! हे कमलोद्भव ! यह मैं श्रवण करना चाहता हूँ। आप मुझे बतला दीजिए।१। श्री ब्रह्माजी ने कहा—पुराने समय में एक महान श्रेष्ठ मुनि वर थे जिसका नाम श्वेत कहा गया था। वह सदा तीर्थों के ही जलों का सेवन किया करते थे तथा यमों के नियमों का भी पूर्ण पालन किया करते थे। शैवों में वे मुखिया थे और महादेव जी की अर्चना में रति रखने वाले परम शान्त मूर्त्ति थे। उनको लेने के लिए हाथ में दण्ड धारण कर महान् भयङ्कर काल आया था। उस काल को देखकर वह विप्रेन्द्र भय से व्याकुल इन्द्रियों वाला हो गया था। उनने अपने दोनों करों से भगवान् महेश्वर का ध्यान करते हुए उनके लिङ्ग का स्पर्श कर लिया था। उस समय में हँसते हुए काल ने

श्वेत मुनि वर से कहा था—हे मुने ! हे ब्रह्मन ! मेरे आ जाने पर जन्तु गण कैसे स्वस्थ रह सकते हैं ? ।२।३।४।५। मेरे ही भय के कारण से सब ब्रह्मचर्य और तप का समाचरण किया करते हैं। मेरे ही डर से लोग तीर्थरत दान की प्रशंसा किया करते हैं और अपने धर्मों में निरत रहते हैं। मेरे ही भय होने से देवों का—यज्ञों का जो कि अनेक प्रकार के होते हैं भजन किया करते हैं। अतएव अब उठिये मैं आपको ले जाऊंगा। अब तो आप मेरे पाश में प्राप्त हो गये हैं अतः चलना ही पड़ेगा।६।७।

दा(ना)तार नैव पश्यन्ति(श्यामि) तवाद्य मुनिपुङ्गवा (व)।
एवं निशम्य वचनं स वै कालस्य नारद। ८
अथाब्रवीत्यमं भीतं पाशहस्तं करालिनम्।
त्र्यम्बकेशाचनरतं त्वं मां नेतुमिहार्हसि ॥९
शिवार्चनरतानां च त्वत्त कस्माद्भयं वद।
एवमुक्तो यमः कोपादुद्बध्य मु(दभान्त्सौन्मु)निपुङ्गवम् ॥१०
पाशैर्दृढतरैः शीघ्रं ध्यायमानं महेश्वरम्।
अथ देवो महादेवः प्रादुर्भूतस्त्रिलोकभृत् ॥११
स दृष्ट्वा देवदेवशं प्रहृष्टोऽभूत्तदा मुनिः।
शंकरोऽप्यब्रवीत्कालं मम भक्तं विमोचय ॥१२
स्वतन्त्र एव मद्भक्तः स कथं नीयते त्वया।
यदुक्तं देवदेवेन तदतिक्रम्य सूर्यजः ॥१३
पुनर्बबन्ध नृपतिं स्वपुरीगमनोद्यतः।
अथ देवो महादेवो विश्वेश्वर उमापतिः ॥१४

हे मुनि पुङ्गव ! आज आपके दाता को नहीं देखते हैं। हे नारद ! इस तरह के काल के वचन को सुनकर इसके अनन्तर भयभीत मुनि ने हाथों में पाश ग्रहण करने वाले महान कराल काल से कहा—ईश के अर्चन में निरत मुझको आप कैसे यहाँ ले जाने योग्य रह रहे हैं कि शिवार्चन में नीरत जनों को भी आपसे किस कारण से भय हो सकता है ? ।८।९। जो

शिवार्चन मे निरत है उनको किससे भय हो सकता है—आप ही इसे वतलाइये। इस प्रकार से कहे गये यमराज ने क्रोध से उस मुनि पुङ्गव को वांध लिया था और महेश्वर को ध्यान मे भी वह निरत था तो भी मजबूत पाशों से यम ने शीघ्र ही पकडकर बद्ध कर दिया था। इसके अनन्तर त्रिलोकी को धारण करने वाले देव प्रादुर्भूत हो गये थे। और भगवान शंकर को देखकर जो स्तक्षात् देवों के भी देव थे वह मुनि परम प्रहृष्ट हुए थे। इसके पश्चात् शङ्कर भगवान उस काल से बोले —मेरे भक्त को छोड़ दो। मेरा भक्त तो सदा स्वतन्त्र होता है उसको तुम कैसे ले जा रहे हो ? देवदेव ने जो भी कहा था उसका भी अतिक्रमण करके यमराज ने उस नृपति को पुनः बांध लिया था और वह अपनी पुरी को गमन करने के लिये सम्प्रयत हो गया था। इसके उपरान्त यह हुआ था कि देवेश्वर महादेव जी ने जो विश्व के ईश्वर और उमा के पति हैं उन्होने उस काल को भस्म सात् कर दिया था और श्वेत मुनि को पाशो से विमोचित कर दिया था।८।१४।

अकरोद्भस्मसात्कालं श्वेत. पाशैर्विमोचितः ।
दत्तं भपुवता तस्मै गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥१५
देव्या सह महादेवः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।
अनेन हेतुना शभु: कालकाल इति स्मृतः ॥१६
अहं च विप्णुना सार्धं स्तुत्वा देव महेश्वरम् ।
प्रसाद्याथ पुनर्जातः कालः शभोरनुग्रहात् ॥१७
अन्यतीर्थं पुण्यतमं ज्वालेश्वरमिति स्मृतम् ।
रेवातीरे मुनिश्रेष्ठ महापातकनाशनम् ॥१८
कोटिशः सन्ति तीर्थानि तस्मिञ्ज्वालेश्वरे शिवे ।
तत्र स्नात्वा देवरूपे दृष्ट्वा ज्वालेश्वर शिवम् ॥१९
कुलैकविंशमुद्धृत्य (?) शिवलोके महीयते ।
अन्य श्रीपर्वत श्रेष्ठं सिद्धानामालय शुभम् ॥२०
तत्र सिद्धाश्च मुनयो दृश्यन्ते सर्वतो गिरौ ।
सदा सन्निहितः शंभुर्लिङ्गे श्रीमल्लिकार्जुने ॥२१

भगवान् शिव ने उस राजा को शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान कर दिया था ।१५। फिर देवी के ही साथ महादेव जी क्षण भर मे ही अन्तर्हित हो गये थे । इसी हेतु से भगवान् शम्भु काल के भी काल कहे गये हैं ।१६। मैंने विष्णु भगवान के ही साथ ही महेश्वर देव की स्तुति करके उनको प्रसन्न करके सन्तुष्ट किया था । इसके पश्चात् पुन. शम्भु के अनुग्रह से ही काल समुत्पन्न हुआ अर्थात् सजीव हुआ था ।१७। एक परम पुण्यतम तीर्थ है जो जालेश्वर इस नाम से कहा गया है । हे मुनि श्रेष्ठ ! यह तीर्थ रेवा नदी के तट पर है और महान् से भी महान् पातको का विनाश कर देने वाला है ।१८। उन जालेश्वर शिव के समीप मे करोडो अन्य तीर्थ भी हैं । हे दवर्षे ! उनमे स्नान करके और जालेश्वर देव का दर्शन करके इक्कीस अपने कुलो का उद्धार करके स्वय शिव लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है । एक अन्य परम श्रेष्ठ श्री पर्वत है जो परम शुभ और सिद्धो का आलय है ।१९।२०। वहा पर सभी ओर गिरि मे सिद्ध और मुनिगण दिखलाई दिया करते है । श्री मल्लिकार्जुन मे भगवान शम्भु सदा ही सन्निहित रहा करते हैं वह लिङ्ग ऐसा है जो शिवलिङ्ग है ।२१।

दृष्टे तस्मिन्परे लिङ्गे जीवन्मुक्तो नरो भवेत् ।
मनुष्या पशव कोटिमृगाश्वमशकादय ॥२२

श्रीपर्वते मृता सर्वे यान्ति शभो पर पदम् ।
केदारे परम तीर्थं प्रिय देवस्य शूलिन. ॥२३

तत्र स्नात्वोदक पीत्वा सपूज्य च पिनाकिनम् ।
गाणपत्यमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥२४

वृषध्वजे पर तीर्थं देविकायास्तटे मुने ।
यत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥२५

गोदावरी नदी यत्र निर्गता पापहारिणी ।
तत्र देवाधिदेवोऽस्त्यियम्ब[illegible] इति स्मृत ॥२६

तत्र स्नान जपो दान नह्मयज्ञमख कृत ।
सर्वं तदक्षय प्रोक्त नून ब्रह्मगिरौ मुने ॥२७
तत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा देवदेव त्रियम्बकम् ।
स्कन्दनन्दिसमो भूत्वा क्रीडते शिवसनिधौ ॥२८

उस पर लिङ्ग के दर्शन कर लेने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाया करता है । श्री पर्वत की बहुत बडी महिमा है वहा पर मनुष्य हो या पशु हा तथा कोटि कोटि मृग—अश्व और मशक आदि प्राणी है वे सब वहाँ पर मृत्युगते होकर भगवान शम्भु के परम पद को ही प्राप्त कर लिया करते हैं । केदार भी एक परमोत्तम तीर्थ है जो देवेश्वर का अत्यधिक प्रिय है । वहा पर स्नान करके तथा वहाँ का जल पान करके और विनायी प्रभु का अभ्यर्चन करके मनुष्य गाणपत्य पद की प्राप्ति कर लिया करता है जोकि परम पद देवगणो को प्राप्त करना परम दुर्लभ हुआ करता है ।२२।२३।२४। हे मुने ! देविका नदी के तट पर वृषध्वज म एक परमोत्तम तीर्थ है जहाँ पर स्नान करके और भगवान् शिव का दर्शन करके मनुष्य ब्रह्म हत्या के महा पाप का भी व्यपोह कर दिया करता है ।२५। जहाँ पर गोदावरी नदी निकली है जोकि सभी पापा का हरण कर देने वाली है वहाँ पर जो देवाधिदेव विराजमान हैं वे त्रियम्बक इस नाम स कहे गये है ।२६। हे मुने ! वहाँ पर जो किया गया स्नान—दान—तपश्चर्या और ब्रह्म यज्ञ मख है वे सब ब्रह्म गिरि म निश्चय ही अक्षय कहे गये हैं ।२७। वहा पर स्नान करके और भगवान शम्भु का दर्शन करके जो देवा के देव त्रियम्बक हैं वह स्कन्द तथा नन्दी क ही समान होकर भगवान् शम्भु देव की सन्निधि म ही क्रीणा किया करता है ।२८।

रयाया नातिदूरे तु गोकर्ण इति विश्रुत ।
अनुग्रहार्थं लोकाना तत्र सन्निहित शिव ॥२९
नियतोऽनियतो वाऽपि यो वा को वाऽपि मानव ।
यस्तु पश्यति गाण रुद्रस्यानुचरो भवत् ॥३०

देवस्य वायुदिग्भागे काशी भद्रकालिका ।
यासिद्धिप्रदा नित्यं दर्शनात्प्राणिनां मुने ॥३१
महाबलश्च भगवान्यत्राऽऽस्ते गिरिजापतिः ।
तस्य दर्शनमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥३२
अन्यद्दक्षिणगोकर्णे सिन्धुतीर्थे मनोहरं ।
तस्य दर्शनमात्रेण राजसूयफलं लभेत् ॥३३
अन्यद्दारुवनं पुण्यं शङ्करस्यातिवल्लभम् ।
गिरिजारतिना यत्र मोहिता मुनिपत्नयः ॥३४

श्रृण नारद वक्ष्यामि भवस्य चरित शुभम् ।
श्रवणादेव मनुज शिवस्य दयितो भवेत् । ६।
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
जमदग्निर्भरद्वाजो गौतमो भागुरिस्तथा ।३७।
वामदेवोऽङ्गिरा शङ्खो लिखितश्च वहृच्छ्रवा ।
विश्वामित्रोऽथ जावालिरन्य च मनयस्तथा ।३८।
यज्ञैर्यजन्ति देवेश तपन्ति च तपस्तथा ।
अज्ञात्वैव पर भाव देवदेवस्य शूलिन ।३९।
तेषा मूर्धोत्थितो धूमस्तपसा क्लेशितात्मनाम् ।
तेन धूमेन महता व्याप्तो ब्रह्माण्डमण्डप ।४०।
शभोरुत्सङ्गगा देवी धूमव्याप्त जगत्त्रयम् ।
दृष्ट्वा पप्रच्छ विश्वेश कौतुकादीश्वरेश्वरी ।४१।

श्री नारदजी ने कहा था—हे तात ! भगवान् शम्भु के द्वारा मुनियों की पत्नियाँ कैसे मोहित करदी गयी थी । इस वृत्तान्त को आप सक्षेप से ही मुझको बतलाने की कृपा कीजिए । मेरे हृदय मे इसके श्रवण करने का बडा भारी कौतुक हो रहा है ।३५। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए । मैं भगवान् भव का शुभ चरित बतलाऊ गा । एक ही क्षण मे मनुष्य भगवान् शिव का प्रिय हो जाया करता है । वह ऐसे ही परम दयालु हैं ।३६। भृगु—अत्रि—वसिष्ठ—पुलस्त्य—प्रलह—क्रतु—जमदग्नि—भरद्वाज—गौतम—भागरि—वामदेव—अङ्गिरा—शङ्ख—लिखित-वृहच्छ्रवा-विश्वामित्र-जावालि और अन्य मुनिगण उस समय म देवेश्वर का यजन यज्ञो क द्वारा किया करते थे और तपस्या का भी तपन करते थे । किन्तु व देवदेव शूली के भाव को न जानकर ऐसा किया करते थे । तप से क्लेशित आत्मा वाले उनके मूर्धा मे धूम उत्थित हुआ था । वह इतना महान् धूम था जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डप व्याप्त हो गया था ।३७।३८।३९।४०। भगवान् शम्भु की गोद में बैठी हुई देवी ने तीनो भुवनों को धूम से व्याप्त देखकर उस ईश्वर की देवी न कौतुक से ही विश्वेश्वर से पूछा था ।४१।

आश्चर्यमिव मे भाति धूमव्याप्तमिद जगत् ।
धूमस्य कारण ब्रूहि देवदेव महेश्वर ।४२।
यत्र दारुवन पुण्य मम चातीव वल्लभम् ।
तत्र तिष्ठन्ति मुनयस्तपोनिष्ठा जितेन्द्रियाः ।४३।
अविदित्वैव या देवि शरीर क्लेशकारिणि (णाम्) ।
तेषा मूर्ध्नि स्थितो धूमो व्याप्नोति सचराचरम् ।४४।
कर्माणि यानि लोकेषु पुष्कलानि बहूनि च ।
सर्वाणि निष्फलान्येव मामज्ञात्वैव पार्वति ।४५।
एव देवस्य वचन श्रुत्वा शवमथाब्रवीत् ।४६।

देवी ने कहा—मुझे बहुत ही आश्चर्य सा प्रतीत हो रहा है कि यह सम्पूर्ण जगत् धूम से व्याप्त हो रहा है। हे देवों के भी देव ! हे महेश्वर ! इसका कारण क्या है—यह मुझे आप बतलाने की कृपा कीजिए ४२। ईश्वर ने कहा—जहाँ पर पुण्यमय दारुवन है वह मुझको अत्यधिक प्रिय है। वहाँ पर मुनिगण स्थित रहा करते हैं जो कि तप में निष्ठा रखने वाले हैं और इन्द्रियों को जीत लेने वाले हैं। हे देवि ! वे लोग मुझको न जानकर ही अपने शरीर को क्लेश करने वाले हैं। उनके मस्तक में स्थित धूम ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को व्याप्त कर रहा है।४३।४४। हे पार्वति ! मेरा ज्ञान प्राप्त न करके जो भी कर्म हैं और लोकों में ऐसे बहुत से कर्म हुआ करते हैं वे सब के सब निष्फल ही हुआ करते हैं क्योंकि उन कर्म करने वालों को मेरा बिल्कुल भी ज्ञान नहीं हुआ करता है। इस प्रकार के देवेश्वर के वचन का श्रवण करके ही देवी ने भगवान् शम्भु से कहा।४५।४६।

देवदेव महादेव मुनीनां भावितात्मनाम् ।
अज्ञानस्य यथा व्याप्तिस्तामह द्रष्टुमुत्सहे ।४७।
एव देव्या वच श्रुत्वा भगवान्नीललोहित ।
विटवेषमथाऽऽस्थाय ययौ दारुवन प्रति ।४८।

स्त्रीरूपधारी विष्णुश्च शंकरेण समागतः ।
विष्णुना सह विश्वेशो देवदारुवनौकसः ।४६।
मोहयन्मायया शंभुर्विचचार वने तदा ।
मुनिस्त्रियः शिवं दृष्ट्वा मदनानलदीपिताः ।५०।
त्यक्तलज्जा विवस्त्राश्च ययुस्ता अनु शंकरम् ।
स्त्रीरूपधारिणं विष्णुं सर्वे मुनिकुमारकाः ।५१।
अन्वगच्छन्त देवर्षे कामबाणप्रपीडिताः ।
तदद्भुतं तदा ज्ञात्वा कुपिता मुनयस्तदा ।५२।
लिङ्गहीनं हरं कृत्वा यो (चक्रुर्गो) पयोधरं हरिम् ।
तदा प्रभृति विप्रेन्द्र शिवा मेखलसंज्ञिता ।५३।
उभयोश्चैव संयोगः सर्वपापहरः शिवः
इति श्रुत्वा तु देवर्षिब्रह्मणो वचनं तदा ।
जगाम कर्तुं तीर्थानि शिवभक्तिपुरस्कृतः ।५४।

देवी ने कहा—हे देवों के भी देव महादेव ! भावित आत्मा वाले मुनियों को अज्ञान की जो व्याप्ति हो गई थी उसको मैं देखने की अभिलाषिणी हूँ कि कैसा अज्ञान उन्हें है ।४७। इस प्रकार के देवी जगदम्बा के वचन को सुनकर नील लोहित भगवान् ने एक विरूका वेष धारण करके वे फिर उस दारुवन में चले गये थे ।४८। सती का स्वरूप धारण करने वाले विष्णु भगवान् भी शङ्कर के ही साथ में वहाँ पर समागत हो गये थे । विष्णु भगवान् के साथ विश्वेश्वर ने सब देवों को जो दारुवन में निवास करते थे मोहित कर दिया था । जब वे सब माया से मोहित हो गये तो भगवान् शम्भु ने उस समय में वन में विचार किया था । जितनी भी वहाँ पर मुनियों की स्त्रियाँ थीं उन्होंने जब शिव को देखा था तो वे मदन की अग्नि से दीपित हो गयी थी ।४६।५०। वे सब मुनि पत्नियाँ लज्जा का परित्याग करके नग्न होकर भगवान् शङ्कर के ही पीछे २ चली गयी थीं । हे देवर्षे ! स्त्री के रूप को धारण करने वाले विष्णु को देखकर सभी मुनियों के कुमार भी काम बाण से पीड़ित होकर उनके ही पीछे

चलने लग गये थ। उस समय म उस अद्भुत घटना को देखकर मुनिगण बहुत ही कुपित हो गये थे ।५१।५२। हर को लिङ्गहीन करके गाप वेपधारी हरि को करके तभी से लेकर हे विपेन्द्र ! शिवा मेखल सन्निता हो गयी थी ।५३। दोना का सयोग सब पापो के हरण करन वाले शिव हैं। उस समय म देवर्पि ने ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर शिव की भक्ति स वह पुरस्कृत होकर तीर्थो को करने के लिय चले गये थे। ।।५४।।

एतत्सौर पुराण ते यथावत्समुदीरितम् ।५५।
यच्छ्रुत्वा मनुज सम्यग्गोसहस्रफल लभेत् ।
किं तीर्थैस्तु प्रयागाद्यै किं यज्ञैर्भूरिदक्षिणै ।५६।
यदि श्रुत श्रद्दधानै पुराणमिदमुत्तमम् ।
यत्र देवाधिदेवस्य माहात्म्य कथ्यते विभो ।५७।
गिरीशस्य तु योगीन्द्रा किं तत्र सदृश भवेत् ।
श्रद्दधान शिवे भक्तो नियत श्रृणुयादिदम् ।५८।
ब्राह्मणाञ्छिवभक्ताश्च पुरस्कृत्य समाहित ।
समाप्य सकल वेद पूजयद्वाचक नर ।५९।
कनकेन सुशुद्धेन तथा चन्दनखण्डकै ।
विश्वेश्वरो महादव प्रीयतामिति भावत ।६०।
दद्यात्स्वण यथाशक्ति वाचकाय सचन्दनम् ।
यच्चेकशी (श) रमात्राऽपि दत्ता भूमि शिवाधिना।६१।
सा तारयति दातुर्हि पूर्वजान्सकलानपि ।
श्रुत्वा ग्रन्थमिम सम्यग्दद्याद्दानानि शक्तित । ६२।
तान्यक्षयफलान्याहुर्मुनयो वादवादिन ।६३।

यह सूय पुराण जैसा भी था वैसा ठीक-ठीक हमने सुना दिया है। ।५५। जिसका श्रवण करके मनुष्य एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। फिर प्रयाग आदि तीर्थों के करने से तथा बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों के करने से क्या लाभ है।५६।

इस उत्तम पुराण को यदि श्रद्धालु पुरुषों ने सुन लिया है जिसमें देवाधिदेव विभु का माहात्म्य कहा जाता है।५७। हे योगीन्द्रो ! इसमें गिरिश की महिमा भरी हुई है उसके सदृश अन्य क्या हो सकता है ? शिव में भक्ति रखने वाला श्रद्धालु नियत होकर इसका श्रवण करे और शिव के भक्त ब्राह्मणों को समाहित होकर आगे कर लेवे। सम्पूर्ण वेद को समाप्त करके जो वाचक मनुष्य हो उसकी पूजा करनी चाहिए।५८।५९। विशुद्ध कनक से तथा चन्दन के खण्डों से भाव से विश्वेश्वर महादेव प्रसन्न होवें।६०। जो वाचन करने वाला हो उसको यथाशक्ति चन्दन के सहित स्वर्ण का दान करे। यदि शिवार्थी के द्वारा एक क्षीर मात्र भी भूमि दी गयी है।६१। वह दाता को तार देती है और सब पूर्वजों को भी तार दिया करती है। इस ग्रन्थरत्न का श्रवण कर शक्ति से अच्छी तरह दान देने चाहिए। वेदवादी मुनिगण उन दानों को अक्षय फलों वाले कहते हैं।६२।६३।

॥ सूर्य पुराण समाप्त ॥